श्रीबनजीलाल ठोलिया—दिगम्बर जैन-ग्रन्थमालायाः प्रथमं पुष्पम् ।

नमः श्रीशान्तिनाथाय ।

अभिषेकपाठ-संग्रहः ।

सम्पादकः संशोधकश्च—
पन्नालाल सोनी शास्त्री,
झालरापाटन सिटी ।

प्रकाशक—
पं० इन्द्रलाल शास्त्री जैन
श्रीबनजीलाल ठोलिया—दि० जैन—ग्रन्थमाला समितिमंत्री ।

फाल्गुन, वीर नि० २४६२ ।
विक्रमाब्द १९९२ ।

प्रथमावृत्तिः १०००

मूल्यम्- १)

प्रकाशक—
पं० इन्द्रलाल शास्त्री
श्री धनजीलाल ठोलिया दिगंबर
जैन-ग्रन्थमाला-समिति
जयपुर सिटी।

मुद्रक—
बाबू कपूरचन्द जैन
महावीर प्रेस, किनारीबाजार,
आगरा।

अभिषेकपाठ-संग्रहः

प्रकाशकीय वक्तव्य

तीन वर्ष पहिले प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्री १०८ श्री आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज ने संघसहित जयपुरीय धार्मिक जनता के अपूर्व पुण्योदय से वर्षाकालीन चातुर्मास जयपुर में पूर्ण किया था। यों तो जयपुर की समस्त धार्मिक जनता ने ही भक्ति प्रेरित होकर गुरु पाद सेवा का लाभ लिया था तो भी स्वर्गीय स्वनामधन्य श्रीमान् सेठ बनजीलालजी ठोलिया जौहरी के पुत्ररत्नों श्रीमान सेठ गोपीचंदजी, सेठ हरकचंदजी, सेठ सुन्दरलालजी, सेठ पूनमचंदजी, सेठ ताराचंदजी ने चातुर्मास का सारा ही समय प्रायः महाराज की सेवा और चातुर्मास के उपयोग लेने लिवाने में व्यतीत किया था। मिती भाद्रपद शुक्ला १० सं० १९८९ को आचार्य महाराज का आपके घर पर निर्विघ्न आहार हुआ जिसके उपलक्ष में आपने ११०००) रुपये दान निकाले और "आचार्य शांतिसागर दि० जैन औषधालय" खोलना निश्चित कर, उसी समय घोषित करा दिया। परिणाम स्वरूप आपने मिती मार्गशीर्ष कृ० ७ सं० १९८९ को औषधालय का उद्घाटन अपनी विशाल धर्मशाला में कर दिया और उसी समय आप महानुभावों ने अपने पूज्य पिता जी की चिरस्मृति के लिए एक ग्रन्थमाला निकालने का निश्चय कर घोषित किया और यह भी निश्चय किया कि इस ग्रन्थमाला का नाम "श्री बनजीलाल ठोलिया दि० जैन ग्रन्थमाला" रहेगा और इस ग्रन्थमाला में प्राचीन संस्कृत प्राकृत के ग्रन्थ प्रकाशित होंगे एवं आवश्यकता समझी जाने पर हिन्दी भाषा के प्राचीन ग्रन्थ भी प्रकाशित किये जा सकेंगे। इस कार्य के लिए आप महानुभावों ने ५००) रुपया प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया और ११ महानुभावों की एक प्रबन्ध-

कारिणी समिति निश्चित की जिसका मंत्रित्व भार मेरे आधीन किया गया।

इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रथम पुष्प के रूप में पहले "श्री सकलकीर्ति आचार्यकृत "मूलाचार प्रदीप" निकालना निश्चित किया गया परन्तु कई असुविधाओं से वह ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नहीं आ सका। समिति के बहुभाग सज्जनों की यह सम्मति रही कि सबसे पहले अनेक आचार्यों द्वारा प्रणीत विविध अभिषेक पाठों का संग्रह प्रकाशित किया जाय। तदनुसार इस ग्रन्थ के प्रकाशन का आयोजन किया गया और इस का संपादन भार श्रीमान विद्वद्वर पंडित पन्नालाल जी सोनी प्रबन्धक ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन झालरापाटन को सौंपा गया।

मुझे इस बात का पूरा ख्याल है कि एक साल की बजाय तीन साल में यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है परन्तु यह बात भी निष्कारण नहीं है। एक स्वतंत्र ग्रन्थ प्रकाशित करने में उतना विलम्ब नहीं होता जितना कि संग्रह के प्रकाशन में होता है। यों तो अनेक अभिषेक पाठों का संग्रह १॥ साल पहले ही तैयार हो गया था और यह विचार भी हो गया था कि इतने संग्रह को ही प्रकाशित करदें परन्तु फिर अनेक अभिषेक पाठों के मिलने की आशा ने विलंब कर दिया। प्रयास करने पर वह आशा सफल भी हुई और अब इस संग्रह के प्रकाशन का समय आया।

इस ग्रन्थ के संपादन में श्रीमान् पंडित पन्नालालजी सोनी द्वारा बहुत ही सहायता प्राप्त हुई है। आपने इन अभिषेक पाठों को संगृहीत करने में बहुत ही श्रम किया है। इस कार्य में जितनी सफलता आपके द्वारा मिल सकी उतनी दूसरे से साध्य भी नहीं थी क्योंकि आपके पास सारा सरस्वती भवन विद्यमान है एवं आपको ऐसे सुत्य कार्य से प्रेम भी विशिष्ट है।

जिस समाज का साहित्य सुरक्षित एवं प्रचारित रहता है वह समाज जीवित और सर्वोपरि होता है। पूर्वकालीन पूज्य आचार्यों ने जो अपने ध्यान के समय में से समय निकालकर जिन वाणी के प्रचार और उसके द्वारा जनता के हित के लिए अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है उनकी सुरक्षा, उपयोग एवं प्रचार अनेक साधनों द्वारा करना उनके अनुयायियों का परम कर्तव्य है।

उक्त सेठ महानुभावों की दानशीलता समाज में प्रसिद्ध है। आपने श्री महावीर जी चांदनगांव व जयपुर में विशाल धर्मशालायें बनवाई हैं एवं आप महानुभावों के द्वारा अनेकों बड़े बड़े व छोटे छोटे लोकोपकार के कार्य सदैव संपादित होते रहते हैं। आपने अपने पूज्यपाद पिताजी की चिरस्मृति के लिए जो उदारता से इस ग्रन्थमाला के निकालने का आयोजन कर इस संग्रह को प्रकाशित कराया है जिसके लिए आपकी सेवा में जितना भी धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। पाठकों को इस सुयोग्य साधन से जो प्राचीन आचार्यों की लुप्त-प्राय कृतियों के दर्शन प्राप्त हो रहे हैं एवं होंगे उसका समस्त श्रेय आप ही महानुभावों को है।

श्रीमान् स्वर्गीय स्वनामधन्य सेठ धनजीलालजी साहब एक आदर्श, अनुकरणीय और स्वावलम्बी महानुभाव हो गये हैं। आप आदर्श परोपकारी, सदाचारी, धर्मात्मा, धनिक और उदार थे। आपकी भव्यमूर्ति के अवलोकन से ही आपकी सद्‌गुणावली अभिव्यक्त होती है। वाकी जिन्होंने आप से समागमलाभ किया है उन सबका यही अनुभव है कि आप मानव के रूप में देव थे। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। आप जैसे आदर्श पुरुषों की चिरस्मृति के लिए इस ग्रन्थमाला के प्रकाशन के अतिरिक्त दूसरा सुन्दर कार्य और कोई नहीं था।

इस ग्रन्थमाला के द्वारा जो ग्रन्थ प्रकाशित होंगे उन्हें लागत के मूल्य में ही दिया जायगा। जो इस ग्रन्थ की ५ से अधिक प्रतियां लेने की कृपा करेंगे उन्हें लागत से भी पौनी कीमत में दे दिया जायगा। प्रत्येक विद्वान् को चाहिये कि इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करे एवं साहित्यप्रेमी सज्जनों को भी उचित है कि प्रत्येक शास्त्रभवन में इस ग्रन्थ को विराजमान कर उपयोग में लाने की कृपा करें।

धनजी-हाउस
वसंतपंचमी
वीर संवत् २४६२

आचार्यचरणसरोरुहचंचरीक
इन्द्रलाल शास्त्री जैन
मंत्री—
श्री धनजीलाल ठोलिया
दिगंबर जैन-ग्रन्थमाला-समिति
जयपुर सिटी।

प्रारम्भिक-वक्तव्य।

धर्मप्राण-सज्जनवृन्द ! आज हम आपकी सेवा में यह एक अपूर्व-संग्रह उपस्थित करते हैं। इतस्ततः बिखरे हुए पाठों का ऐसा एक संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। आशा है इस को देखकर आप के हृदय में अभूतपूर्व आह्लाद होगा।

यह अपूर्व संग्रह स्वर्गीय श्रीमान् सेठ बनजीलाल जी ठोलिया जयपुर के धर्मप्राण सुपुत्रों की अपूर्व धर्मभक्ति का नमूना है। पूज्य १०८ मुनि श्री सुधर्मसागर जी महाराज के सुश्राव्य उपदेश से आप लोगों ने इस संग्रह के प्रकाशन का प्रथम श्रेय लूटा है। अतः श्रीमान् सेठ गोपी-चंद जी, श्रीमान् बाबू सुन्दरलाल जी आदि को जितना भी धन्यवाद दिया जाय—थोड़ा है। आप महोदयों ने एक भारी त्रुटि को दूर किया है। हमें आशा है ऐसे और भी कई संग्रह प्रकाशित कर उन त्रुटियों को भी दूर करेंगे।

इस संग्रह में १५ पंद्रह अभिषेक पाठ हैं। सभी पाठ अपूर्व हैं। संस्कृत के कुल पाठ पांचवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक के हैं। अन्त का एक भाषा पाठ सोलहवीं शताब्दी के बाद का है। इस संग्रह पर से उन शंकाओं का निरसन हो जाता है जो पक्षपात वश किंवदन्ती के रूप में चल पड़ी हैं कि पंचामृताभिषेक काष्ठासंघ का है, पीछे से भट्टारकों ने मूलसंघ में उसे स्थान दिया है और इस से वीत-रागता नष्ट हो जाती है आदि। काष्ठासंघ का एक भी पाठ इस में संग्रह नहीं किया गया है। तथा भगवत्पूज्यपाद रचित महाभिषेक काष्ठासंघ की उत्पत्ति से करीब तीन शताब्दी पहले का है। भट्टारकों के अलावा आचार्यों द्वारा रचित भी अनेक पाठ इस में हैं। तथा आचार्यों द्वारा

प्रणीत होने से वीतरागता नष्ट होने का प्रश्न भी हल हो जाता है। इन पाठों के अलावा आगे और भी अनेक अभिमत प्रकाशित किये गये हैं उन सब पर से उक्त सब शंकाओं का निरसन अच्छी तरह हो जाता है।

मूलाराधनाके प्रणेता आचार्य शिवकोटि और गोम्मटसारके रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती अपने अपने ग्रन्थों में लिखते हैं—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥१॥

सम्यग्दृष्टि जीव आचार्यों द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है और स्वयं न जानता हुआ अपने गुरु के उपदेश से जिन भगवान् का कहा हुआ समझ कर असद्भाव-विपरीत भावोंका भी श्रद्धान करता है। तो भी वह सम्यग्दृष्टि है। परन्तु—

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ॥

गणधरोक्त सूत्र से अच्छी तरह दिखाये-समझाये गये उस पदार्थ का जब वह श्रद्धान न करे—अपने असत्य श्रद्धान को न छोड़े तो वह जीव उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

अतः ज्ञानवान् निरीह वीतराग आचार्योंके वचनानुसार अज्ञानी गुरुओंके उपदेश से जायमान असत्-श्रद्धान को जलाञ्जलि दे देना चाहिये। आचार्य शिवकोटि यहां तक कहते हैं कि जो सूत्र अर्थात् आगम में कहे हुए एक पद तथा एक अक्षर का भी श्रद्धान नहीं करता है उस को शेष सारे आगम का श्रद्धान करते हुए भी मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए। यथा—

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

भगवत्कुन्दकुन्द कहते हैं कि जिसे तुम कर सकते हो उसे करो और जिसे नहीं कर सकते उस का श्रद्धान करो। केवलि-भगवान् ने कहा है कि श्रद्धान करने वाले के सम्यक्त्व है। यथा—

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहइ।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ॥

इस संग्रह में के कई पाठों में गोमय-आरार्तिक का भी उल्लेख है। बीसियों प्रतिष्ठापाठों में भी हम देखते हैं। गोमय शुद्ध भी होता है ऐसा भी अनेक ग्रन्थों में देखा है। अतः उन सब ग्रन्थों को अप्रमाण कहने के लिये हमारी लेखनी आगे नहीं बढ़ती है और भट्टारकों ने यह विषय मिला दिया या ब्राह्मणों ने अपना मत पुष्ट करने के लिए ऐसे ग्रन्थ बना डाले ऐसा कहने को भी हम लाचार हैं। क्योंकि वे भी जैन थे, जैन धर्म की बादशाही जमानों में पूर्ण रक्षा की है, परमतवालों से पूर्ण लोहा लिया है और स्वयं जैनमत के कट्टर श्रद्धानी थे, आगम-वाक्यों में फेर-फार करना तथा विरुद्ध मिला देना पाप समझते थे।

ग्रन्थकर्ताओं का परिचय।

१—पूज्यपादस्वामी

इन के तीन नाम थे देवनन्दी, जिनेन्द्रबुद्धि और पूज्यपाद। यह अपने समय के प्रखर दिग्गज विद्वान् थे। बाद के सभी आचार्यों ने इन को बड़ी ऊँची दृष्टि से देखा है। इन का समय विद्वानों ने विक्रम की पांचवी शताब्दी निश्चित किया है। इन ने कई ग्रन्थ बनाये हैं। जिन में से जैनेन्द्र-पंचाध्यायी, सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, समाधिशतक, इष्टोपदेश और सिद्धिप्रिय-स्तोत्र सर्वत्र उपलब्ध हैं। अभिषेकपाठ भी इन का बनाया हुआ है जिस का उल्लेख शिलालेख नं० ४० (६४) में है। इन का बनाया हुआ पूजा-प्रतिष्ठा सम्बन्धी भी कोई ग्रन्थ है ऐसा अय्यपार्य के उल्लेखसे जाना जाता है। उसी शिलालेखसे यह भी जाना जाता है कि स्वास्थ्य—वैद्यक संबन्धी ग्रन्थ भी इन के बनाये हुए हैं। इस विषय के कुछ ग्रन्थ मिलते भी हैं। पहले ये ग्रन्थ कनड़ी लिपि में थे, अब एक-दो की नागरी लिपि भी हो गई है। उक्त शिलालेख नं० ४०से इन के बनाये हुए छन्दोग्रन्थ के होने का भी आभास होता है, इस की पुष्टि पेज नं० ६६ में उल्लिखित भाव शर्मा के एक वाक्य परसे भी होती है। वह वाक्य यह है—"शार्दूलविक्रीडिते द्वादशार्धातः स्यात् तद्साबाद्यतिभंगश्चेन्न श्रीपूज्यपादपादैः समालेऽपि यतिकका"। इन का बनाया हुआ एक सारसंग्रह भी है। जिस का पूज्यपाद के नाम के साथ साथ 'धवला' में उल्लेख मिलता है।

कोई कोई इतिहासज्ञ द्वितीय पूज्यपाद की कल्पना करते हैं। अतएव श्री नाथूराम जी प्रेमी ने 'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उन के ग्रन्थ' में उन के ग्रन्थों की लिस्ट दी है। वे ग्रन्थ ये हैं—पूजाकल्प, सिद्धि-

प्रिय, पाणिनीयसूत्रवृत्ति काशिका (श्लोक २००००), जैनेन्द्रपंचाध्यायी की टीका, पंचवास्तुक, श्रावकाचार, वैद्यक, जैनेन्द्रव्याकरण की लघुटीका।

अय्यपार्य ने पूज्यपाद के जिस ग्रन्थ को देखकर 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' की रचना की है। संभवतः उसी का नाम 'पूजाकल्प' कल्पित किया है। यदि यह ठीक है तो अय्यपार्य जिस श्रद्धा से उल्लेख करता है उस पर से तो यही ज्ञात होता है कि उस का लक्ष्य प्रथम पूज्यपाद की ओर ही है। (१)। सिद्धिप्रिय स्तोत्र का अन्तिम पद्य पद्मचक्र है, उस में 'देवनन्दिकृतिः' ऐसा स्पष्ट उल्लेख है, इस से यह दूसरे पूज्यपाद का सिद्ध नहीं होता (२)। पाणिनीयसूत्रवृत्ति काशिका जयादित्य और वामन नाम के दो श्वे० जैन विद्वानों की बनाई हुई है। इन दोनों विद्वानों का समय लगभग वि० सं० ८०० इतिहासज्ञों ने सिद्ध किया है। काशिका का विवरण किसी जिनेन्द्रबुद्धि ने लिखा है, संभवतः वह २०००० श्लोक प्रमाण भी है। अतः काशिका और उस का विवरण किसी भी पूज्यपाद का बनाया हुआ नहीं है। जिनेन्द्रबुद्धि यह पहले पूज्यपाद का नाम है, दूसरे का नहीं। जिनेन्द्रबुद्धि पूज्यपाद का समय विक्रम की पाँचवीं शताब्दी है और काशिका के विवरण कर्ता का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी के बाद आता है। द्वितीय पूज्यपाद का नाम भी जिनेन्द्रबुद्धि और देवनन्दी मान लेना उचित भी नहीं जान पड़ता है। एवं यह ग्रन्थ भी पूज्यपाद का बनाया हुआ नहीं हो सकता (३)। जैनेन्द्रपंचाध्यायी की टीका और जैनेन्द्रव्याकरण की लघु टीका ये एक ही ग्रन्थ के दो नाम मालूम पड़ते हैं, जैनेन्द्रपंचाध्यायी और जैनेन्द्रव्याकरण दोनों एक हैं, सिर्फ एक में लघुपद विशेष है, जब तक दोनों की उपलब्धि न हो जाय तब तक इन को जुदा जुदा मानना सन्देहास्पद है। तथा इन की उपलब्धि के बिना ये दो ग्रन्थ हैं और उन के प्रणेता भी कोई द्वितीय पूज्यपाद थे यह कल्पना भी निराधार है। (४-५)। 'पंचवास्तुक' यह 'जैनेन्द्र' की बहुत ही छोटी सी प्रक्रिया है, वह मिलती भी है पर वह किसी पूज्यपाद-विरचित तो नहीं है, इतना

निश्चित है, या तो उस में कर्ता का नाम ही नहीं है, यदि हो भी तो किसी और की बनाई हुई है ऐसा हमें पूर्ण स्मरण है (६) शिलालेख नं० ४० में 'समाधिशतक-स्वास्थ्य' ऐसा पद है। उपलब्ध समाधिशतक के साथ स्वास्थ्य शब्द जुड़ा हुआ नहीं है अतः स्वास्थ्य शब्द का अर्थ वैद्यक ग्रन्थ हो सकता है। यह स्वास्थ्य शब्द प्रथम पूज्यपाद के वैद्यक सम्बन्धी ग्रन्थ के होने की सूचना देता है। इसलिए यही सिद्ध होता है कि वैद्यक सम्बन्धी ग्रन्थ भी जैनेन्द्र व्याकरण आदि के कर्ता पूज्यपाद का ही बनाया हुआ है। अतः इस ग्रन्थ पर से भी द्वितीय पूज्यपाद का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता (७) 'श्रावकाचार' यह एक छोटा सा ग्रन्थ है। कहते हैं इस की रचना प्रौढ़ नहीं है इसलिए यह उन प्रसिद्ध पूज्यपाद का बनाया हुआ नहीं हो सकता पर यह हेतु इतना प्रबल हेतु नहीं जिस से द्वितीय पूज्यपाद की सिद्धि हो ही हो। प्रौढ़ता विषय की शिथिलता आदि हेतु द्वितीय पूज्यपाद की कल्पना कर ग्रन्थ को अमान्य ठहराने के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं, फिर भी ये अविनाभावी हेतु नहीं हैं जो साध्य की सिद्धि करते ही हों।

प्रस्तुत 'अभिषेकपाठ' प्रथम पूज्यपाद का ही बनाया हुआ है। यह पाठके अन्त वृत्त पर से स्पष्ट होता है। वह यह है—

पुण्याहं घोषयित्वा तदनु जिनपतेः पादपद्मार्चितां श्री—
शेषां संधार्य मूर्ध्ना जिनपतिनिलयं त्रिः परीत्य त्रिशुद्धया।
आनम्येशं विसृज्यामरगणमपि यः पूजयेत्पूज्यपाद
प्राप्नोत्येवाशु सौख्यं भुवि दिवि विबुधो देवनन्दीडितश्रीः॥४०॥

इस पद्य के तृतीय चरण में 'पूज्यपाद' और चतुर्थ चरण के अन्त में 'देवनन्दीडितश्रीः' ये दो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। इन दोनों विशेषणों से ध्वनित होता है कि यह पाठ पूज्यपाद द्वितीयनाम देवनन्दी का बनाया हुआ है। जैनेन्द्र व्याकरण के मंगलाचरण में भी इसी तरह वे अपना नाम देवनन्दी ध्वनित करते हैं। यथा—

लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य निरवद्यावभासते ।
देवनन्दितपूजेशे नमस्तस्मै स्वयम्भुवे ॥ १ ॥

सिद्धिप्रिय का यह अन्तिम पद्य है, यह पद्य पद्मारचक्र है। यथा—

तुष्टिं देशनया जनस्य मनसो येन स्थितं हृत्सता,
सर्वं वस्तु विजानता शमवता येन क्षता कृच्छ्रता ।
भव्यानन्दकरेण येन महतां तत्त्वप्रणीतिः कृता,
तापं हन्तु जिनः स मे शुभधियां तातः सतामीशिता।२५।

टीकाकार लिखते हैं "देवनन्दिकृतिः इत्यङ्कगर्भे, पद्मारचक्रमिदं ।" इस छंद को पद्मारचक्र के आकार में लिखने पर ऊपर के तीसरे वलय में 'देवनंदिकृतिः' ऐसा निकल आता है।

इस तरह अपना नाम सूचित करने की परिपाटी और भी अनेक ग्रन्थकर्ताओं की देखी जाती है। वह उन के ग्रन्थों में सुस्पष्ट है।

पूजासार नाम का एक ग्रन्थ है, उस में यह 'अभिषेकपाठ' पूर्ण उद्धृत है। पूजासार कम से कम पांचसौ वर्ष का पुराना है अतः आज से पाँचसौ वर्ष पहले अर्थात् वि० सं० १५०० के लगभग भी इस का अस्तित्व था।

अय्यपार्य ने 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' नाम का ग्रन्थ शक सं० १२४१ वि० सं० १३७६ में बनाया है। उस में वह उल्लेख करता है कि-

"इति पूज्यपादाभिषेकेण गर्जांकुशाभिषेकेण वा तदर्पणमभिषिच्याष्टविधार्चनैः ध्वजपटमभ्यर्च्य नयनोन्मीलनादिकं कुर्यात् ।"

इस पर से दो बातें साबित होती हैं। एक तो पूज्यपाद का कोई अभिषेक विषय का ग्रन्थ है। दूसरी विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में भी यह ग्रन्थ था।

शिलालेख नं० ४० (६४) में निम्न लिखित दो पद्य दिये गये हैं।

यो देवनन्दिप्रथमाभिधानो,
बुद्ध्या महत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः ।
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभि-
र्यत्पूजितं पादयुगं यदीयम् ॥१०॥
जैनेन्द्रं निजशब्दभोगमतुलं सर्वार्थसिद्धिः परा
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां जैनाभिषेकः स्वकः ।
छन्दस्सूक्ष्मधियं समाधिशतकस्वास्थ्यं यदीयं विदा-
माख्यातीह स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः ॥११॥

पहले पद्य में पूज्यपाद के तीन नाम प्रख्यात होने का हेतु बताया है और दूसरे में उन के बनाये हुये जैनेन्द्र व्याकरण, सर्वार्थसिद्धि, जैनाभिषेक, छन्दःशास्त्र, समाधिशतक आदि ग्रन्थों का उल्लेख है। इस पर से कोई शंका ही नहीं रहती कि भगवत्पूज्यपाद का बनाया हुआ कोई अभिषेक-पाठ है या नहीं। इतना ही नहीं, प्रत्युत अभिषेक-पाठ इन्हीं पूज्यपाद का बनाया हुआ है, दूसरे तीसरे आदि कल्पित पूज्यपाद का बनाया हुआ नहीं है, यह भी निर्णीत होता है। यह शिलालेख शक संवत् १०८५ वि० सं० १२२० में उत्कीर्ण किया गया है। इस से यह भी निश्चित हो जाता है कि विक्रम की बारहवीं शताब्दी में भी इस का अस्तित्व था और उस वक्त तक प्रथम पूज्यपाद का ही माना जाता था।

ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन बम्बई ने इस अभिषेक की एक प्रति कनड़ी लिपि पर से नागरी लिपि में कराकर मंगाई थी। उसी एक प्रति पर से इस का सम्पादन किया गया है। यह प्रति कुछ अशुद्ध भी है और इस में कई स्थलों में पाठ भी छूटा हुआ है। संशोधन के समय पूजासार नाम का ग्रन्थ देखने में आया उस में यह पाठ उद्धृत है परन्तु उस से भी अत्यन्त अशुद्ध होने से विशेष सहायता न ली जासकी, परन्तु त्रुटित पाठों की पूर्तिमात्र की गई।

२—भगवद्गुणभद्र-भदन्त।

इस संग्रह में दूसरे नम्बर पर 'बृहत्स्नपन' प्रकाशित है। उस के कर्त्ता भगवद्गुणभद्र-भदन्त हैं। प्रेस-कापी हो जाने और उस के प्रेस में भेज देने के बाद हमें दो प्रतियां और मिलीं। एक प्रति के प्रारम्भ में नेमिजिनेश की पूजा है। पूजा के अन्त में दोनों ही प्रतियों में एक पद्य लिखा गया है। वह पद्य यह है—

श्रीजैनेन्द्रार्चनार्हत्पदसरसिजयोर्नित्यसिद्धांघ्रियुग्मा—
नाचार्योपाध्यायसाधोस्त्वरणनलिनयोर्वन्दनीयान्तरेषु।
वन्द्यान्ते नित्यरूपैः सकलभुवनयोर्मन्त्रतंत्रोकसारैः
श्रीमज्जन्माभिषेकोत्सवविधि गुणभद्रोदितं सर्वशान्त्यै ॥७॥

यह पद्य अशुद्ध जान पड़ता है, लक्षण शास्त्र की दृष्टि से भी इस में अशुद्धियां प्रतीत होती हैं। दोनों प्रतियों के पाठों में भी कुछ भेद है। दूसरी प्रति में 'श्रीमज्जन्माभिषेक' इत्यादि के स्थान में 'अर्हज्जन्माभिषेकोत्सवविधिगुणभद्रोदितं' ऐसा पाठ है। इस के चौथे चरण से जाना जाता है कि यह अभिषेकोत्सव की विधि गुणभद्रोदित है।

पद्य नं० ६६ इस प्रकार का है—

ॐ विश्वैः श्रीगुणभद्रदेवगणभृत्पूज्यक्रमाब्जक्रमै—
र्योऽसौ संस्नपितः कृतो जिनपतिस्त्राता भवाम्भोनिधेः।
पूते तस्यदपद्मपीठनिकटे निष्पातये शान्तये
सर्वस्यापि जगत्त्रयस्य परमप्रीत्याम्बुधारामिमाम् ॥

इस पद्य के प्रथम चरण में आये हुए "श्रीगुणभद्रदेवगणभृत्पूज्यक्रमाब्जक्रमैः" इस पद से भी ध्वनित होता है कि बृहत्स्नपन के कर्त्ता 'गुणभद्रदेवगणभृत्' हैं।

बृहत्स्नपन की पंजिका में इन्द्रवामदेव उक्त पद का अर्थ ऐसा भी लिखते हैं—

"अथवा श्रीगुणभद्रदेवाभिधानो ग्रन्थकर्ता स चासौ गणभृच्च आचार्यस्तेन पूज्ये चरणकमले यस्य।"

अभयनन्दिविरचित लघुस्नपन के टीकाकार पं० भावशर्मा ने "प्रयोगश्च गुणभद्रदेवकृतमहाभिषेकवाक्ये दृश्यन्ते। यथा—" ऐसा लिखकर 'अलिमलिनजटाल' इत्यादि एक पद्य उद्धृत किया है वह पद्य इस 'बृहत्स्नपन' के पेज २४ में मौजूद है। यद्यपि पाठ-भेद है पर है वह वही पद्य।

इन सब उल्लेखों से भी इस के कर्त्ता गुणभद्र ही निश्चित होते हैं। अतः इन उल्लेखों से 'बृहत्स्नपन' के गुणभद्र-प्रणीत होने में कोई सन्देह नहीं है परन्तु गुणभद्र नाम के कई आचार्य और कई भट्टारक भी हुए हैं, उन में से कौन से गुणभद्र-प्रणीत वह है, यह एक आशंका फिर भी प्रादुर्भूत होती है। इस आशंका पर पर्यालोचन करना भी आवश्यक है।

(१) एक वे प्रसिद्ध गुणभद्र भदन्त जो वीरसेन स्वामी के प्रशिष्य और जिनसेन स्वामी के शिष्य थे। इन का समय विक्रम की दशवीं शताब्दी है क्योंकि इन ने शक सं० ८२० (वि० सं० ९५५) में उत्तरपुराण पूर्ण किया था।

(२) दूसरे वे गुणभद्र सिद्धान्तदेव जिन का शिलालेख नं० ४६१ में उल्लेख पाया जाता है। यह शिलालेख शक सं० १०९५ (वि० सं० १२३०) का है। इस शिलालेख में इन की, इन के शिष्य नयकीर्ति और प्रशिष्य भानुकीर्ति की बड़ी भारी प्रशंसा की गई है। इस शिलालेख पर से इन का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी निश्चित होता है। और यह भी निश्चित होता है कि ये देवसंघ के देशीयगण और पुस्तक गच्छ के अधिपति थे और बड़े भारी प्रखर आचार्य थे।

(३) तीसरे वे गुणभद्र जो धन्यकुमार चरित्र के कर्त्ता हैं। ये माणिक्यसेन भट्टारक के प्रशिष्य और नेमिसेन भट्टारक के शिष्य थे। उन से लम्बकंचुक (लमेचू) गोत्र के शुभचन्द्र के पुत्र बल्हण ने विलासपुर में इस चरित्र की रचना कराई। रचना के समय वहां राजा प्रमार्दी का राज्य था। झालरापाटन के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में 'धन्यकुमारचरित्र' की दो प्रतियां हैं। उन में से एक वि० सं० १६०४ और दूसरी वि० सं० १६१६ की लिखी हुई है। इन गुणभद्र का समय सोलहवीं शताब्दी के भीतर भीतर ही है। संभवतः ये काष्ठासंघ की किसी गद्दीपर आरूढ़ थे। इन का कुछ परिचय इस प्रकार है—

यः संसारमसारमुन्नतमतिर्ज्ञात्वा विरक्तोऽभव—
हत्वा मोहमहाभटं सुकृतिना रागान्धकारं तथा।
आदायेति महाव्रतं भवहरं माणिक्यसेनो मुनि—
र्नैर्ग्रन्थ्यं सुखदं चकार हृदये रत्नत्रयं मंडनम् ॥१॥

शिष्योऽभूत्पदपंकजैकभ्रमरः श्रीनेमिसेनो विभु—
स्तस्य श्रीगुरुपुंगवस्य सुतपश्चारित्रभूषान्वितः।
कामक्रोधमदान्धकारिणां ध्वंसे मृगाणां पतिः
सम्यग्दर्शनबोधसाम्यनिचितो भव्याम्बुजानां रविः ॥२॥

आचारं समितीर्दधौ ? दशविधं धर्मं तपः संयमं
सैद्धान्तस्य गुणाधिपस्य गुणिनः शिष्यो हि मान्योऽभवत्।
सैद्धान्तो गुणभद्रनाममुनिपो मिथ्यात्वकामान्तकृत्
स्याद्वादामलरत्नभूषणधरो मिथ्यानयध्वंसकः ॥३॥

तस्येयं निरलङ्कारा ग्रन्थाकृतिरसुन्दरा।
अलङ्कारवता दृष्ट्या सालङ्कारा कृता न हि ॥४॥

शास्त्रमिदं कृतं राज्ये राज्ञो हि श्रीपरमार्द्दिनः।
पुरे विलासपूर्वे च जिनालयैर्विराजिते ॥४॥

यः पाठति पठत्येव पठन्तमनुमोदयेत् ।
स स्वर्गं लभते भव्यः सर्वाक्षसुखदायिकम् ॥६॥
लंबकंचुकगोत्रेऽभूच्छुभचन्द्रो महामनाः ।
साधुः सुशीलवान् शान्तः श्रावको धर्मवत्सलः ॥७॥
तस्य पुत्रो बभूवात्र बल्हणो ज्ञानवान् वशी ।
परोपकारचेतस्को न्यायेनार्जितसद्धनः ॥८॥
धर्मानुरागिणा तेन धर्मकथानिबन्धनम् ।
चरित्रं कारितं पुण्यं शिवायेति शिवार्थिना ॥९॥

ग्रंथ संख्या ६००, श्रीरस्तु, लेपकपाठकयोः शुभं भवतु । सं० १६०४ वर्षे भादवा वदि २ बुधवासरे । श्रीमूलसंघे नंद्याम्नाये बलात्कार-गणे स............................... ।

(४) चौथे वे गुणभद्र जिन के सम्बन्ध में एक लेखक-प्रशस्ति "सिद्धान्तसारादिसंग्रह" की भूमिका में उद्धृत की गई है। प्रशस्ति का समय १५२१ है। इस पर से इन का समय पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध समझना चाहिये। ये काष्ठासंघके माथुर गच्छ की गद्दी पर हुए हैं।

(५) पांचवे वे गुणभद्र जो त्रिवर्णाचार के प्रणेता सोमसेन भट्टारक के गुरु थे। सोमसेन भट्टारक ने वि० सं० १६६७ में त्रिवर्णाचार और १६५६ में पद्मपुराण की रचना पूर्ण की थी इसलिए इन गुणभद्र का समय सतरहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध समझना चाहिये।

(६) छठे वे गुणभद्र जिन के बारे में झालरापाटनके ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन की श्राचारवृत्ति में यह उल्लेख है—

संवत् १८१० वैशाख कृष्ण १३ बुधे नेणापुरमध्ये श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगच्छे उभयतयभाषाप्रवीणतपनिधिभट्टारक श्रीउद्धरसेनदेवाः तत्पट्टे सिद्धान्तजलसमुद्रविवेककल्लोलमालिनी-विकाशनैकदिनमणिभट्टारक श्रीदेवसेनदेवाः तत्पट्टे कविविद्याप्रधा-

नभट्टारकश्रीधर्मसेनदेवा तत्पट्टे भट्टारकश्रीभवसेनदेवा तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भट्टारकश्रीयशःकीर्तिदेवाः तत्पट्टे दयाद्रिचूडामणिभट्टारकश्रीमलयकीर्तिदेवा तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणभद्रदेवाः, इत्याचारवृत्तिग्रंथ संपूर्ण समाप्ता, शुभं भवतु कल्याणमस्तु, लिपिकृतं ब्रह्म० जीवण श्रीकृष्ण पठनार्थं श्रीरस्तु।

भवन में एक और आचारवृत्ति की प्रति है वह सं० १८०० की लिखी हुई है, उस में भी हूबहू यही परम्परा दी हुई है। इस से मालूम पड़ता है ये गुणभद्र आज से सौ वर्ष पूर्व गुन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्ध में हो चुके हैं।

एवं ये छह गुणभद्र हुए हैं और भी हो सकते हैं परन्तु उन के बाबत हमारे देखने में कोई उल्लेख आया नहीं है। अब यह देखना है कि इन में से कौन से गुणभद्र का बनाया हुआ यह' बृहत्स्नपन' है।

इस संग्रह के अन्त में इन्द्रवामदेव-प्रणीत बृहत्स्नपन की पंजिका प्रकाशित है, जिस प्रति पर से यह पंजिका सम्पादित और प्रकाशित की गई है वह वि० सं० १५३६ की लिखी हुई है। इसलिये नं० ५ और नं० ६ के गुणभद्र तो इस बृहत्स्नपन के कर्ता हो नहीं सकते। क्योंकि नं० ५ का समय सत्रहवीं शताब्दी और नं० ६ का समय उन्नीसवीं शताब्दी है। नं० ५ वाले पंजिका की प्रति के लिखे जाने के बाद करीब सौ वर्ष पीछे हुये हैं और नं०६ वाले तीन सौ वर्ष से भी अधिक के बाद हुए हैं।

नं० ४ और नं० ३ के गुणभद्र भी इस के कर्ता नहीं हैं। इस में हेतु यह है कि झालरापाटन के सरस्वती भवन में देवसेन-प्रणीत भावसंग्रह की दो प्रतियां हैं। उन में से एक वि० सं० १४८८ की लिखी हुई है उस में जहां तहां वामदेव-प्रणीत भावसंग्रह के श्लोक 'उक्तं च' रूप से प्रक्षिप्त हैं। इस से मालूम पड़ता है पंडित वामदेव १४८८ से पहले हो गये हैं। कितने पहले हुये हैं यह निश्चित तो नहीं कहा जा सकता फिर भी यदि ४० वर्ष पूर्व भी मान लिया जाय तो वामदेव का समय १४५० के

करीब माना जा सकता है। ऐसी हालत में सं० १७५० के करीब बनी हुई पंजिका वाले अभिषेक के कर्त्ता १५२१ के करीब हुए गुणभद्र नं० ४ नहीं हो सकते। नं० ३ के गुणभद्र का समय भी लगभग यही मान लिया जाय तो ये भी इस के कर्त्ता हो नहीं सकते। वि० सं० १५०० के बाद ही इन के अस्तित्व का समय है, पूर्व नहीं। सब की सब पंद्रहवीं शताब्दी भी इन का समय मान लिया जाय तो भी ये नं० ३ के गुणभद्र इस बृहत्स्नपन के कर्त्ता नहीं हो सकते। इस में भी हेतु यह है—

शक सं० १२४१ (वि० सं० १३७६) में अयप्पार्य ने 'जैनेन्द्र कल्याणाभ्युदय' बनाया है। उसमें वह लिखता है कि "इति शुद्धय-एककलशैर्जिनार्चांशुद्धिं विधाय पुनः जिनपतिमतैरिव सर्वजनजीव-नैरिव (नः) प्रारभ्य पंचामृतेनाभिषेकं निर्वर्त्य तदनन्तरं ॐ ह्रीं क्रौं अर्हन् मम पापं खंड खंडेति, निखिलभुवनेति, ॐ नमोऽर्हते भगवते त्रैलोक्यनाथायेति, निखिलमंगलकरणप्रययेति, पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तामिति पंचप्रकारशान्तिमंत्रैर्गन्धोदकाभिषेकं कृत्वा सरोजदलधारिणेत्यष्टविधामिष्टिं कुर्यात्"। इस का भाव यह कि इस प्रकार आकर शुद्धि करने वाले आठ कलशों से (प्रतिष्ठेय) जिन-प्रतिमा की शुद्धि करके फिर 'जिनपतिमतैरिव सर्वजनजीवनैः' यहां से प्रारंभ कर पंचामृत से अभिषेक करके उस के अनन्तर ॐ ह्रीं क्रौं इत्यादि पांच प्रकार के शान्तिमंत्रों से गन्धोदकाभिषेक करके 'सरोजदलधारिणा' इत्यादि छंदों को पढ़ कर आठ प्रकार की पूजा करे।

पंडित अयप्पार्य 'जिनपतिमतैरिव सर्वजनजीवनैः' यहां से लेकर जो पंचामृताभिषेक करने की सूचना देता है वह पंचामृताभिषेक इस बृहत्स्नपन के पेज नं० २६ से प्रारंभ होकर पेज नं० ३४ में समाप्त होता है।,इसके बाद गन्धोदक का स्नपन होता है। उसके लिए वह कहता है कि ॐ ह्रीं क्रौं इत्यादि पांच प्रकार के शान्तिमंत्रों को पढ़ते हुए गन्धोदका-भिषेक करे। ये पांचों मंत्र उस के अभिषेक पाठ में हैं। अनन्तर 'सरोज-

दलधारिख्या' इत्यादि पद्यों द्वारा वह जलादि आठ प्रकार की पूजा की सूचना देता है। सो ये जलादि पूजन के आठ पद्य पेज नं० २५ के पद्य नं० ६१ से प्रारंभ होकर पेज नं० २७ के पद्य नम्बर ६८ में समाप्त होते हैं। इस से स्पष्ट है कि यह बृहत्स्नपन वि० सं० १३०६ के पहले भी मौजूद था। अतः नं० ३ के गुणभद्र का बनाया हुआ यह किसी भी हालत में नहीं हो सकता। राजा परमार्दी के समय से इन का समय निश्चित हो सकता है, राजा परमार्दी के समय को जानने के लिये हमारे पास इस समय कोई साधन नहीं है।

आचार्यकल्प पंडिताशाधर ने वि० सं० १२९६ में सागारधर्मामृत की भव्यकुमुदचन्द्रिका नाम की टीका बनाई है। उस में वे 'तदुक्तं' ऐसा लिख कर इस पद्य का हवाला देते हैं—

"निस्तुषनिर्व्रणनिर्मलजलार्द्र शालीयतंदुलालिखिते।
श्रीकामः श्रीनाथं श्रीवर्णे स्थापयाम्युच्चैः॥ १॥"

यह पद्य इस बृहत्स्नपन के पेज नं० १९ में नं० ३१ पर आया है। इस से यही पूर्ण निश्चय होता है कि यह बृहत्स्नपन वि० सं० १२९६ के पहले भी था। एवं आज से ७०० वर्ष पहले यह अभिषेक पाठ बन चुका था। इसलिये नं० ६-५-४-३ के भट्टारकों का बनाया हुआ तो है नहीं। पं० आशाधर से कितने पहले का है, इस के जानने का साधन इस समय हमारे पास नहीं है।

अब रहे गुणभद्र नं० २, ये भी प्रखर आचार्य थे। इन का समय शिलालेख नं० ४९१ से वि० सं० १२०० के लगभग हुए हैं—ऐसा जान पड़ता है। ये इस के कर्त्ता तब तक माने जा सकते हैं जब तक कि इन से पहले कोई उल्लेख न मिले। परन्तु एक तो इन का बनाया हुआ कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, दूसरे 'श्रीगुणभद्रदेवगणाकृत' यह पद नं० १ के गुणभद्र के साथ ही अधिक शोभा देता है। तीसरी बात यह है कि प्रतिष्ठापाठों में आगे के आचार्यों ने इन के किसी पूजा-प्रतिष्ठा संबन्धी

ग्रन्थ का आश्रय लेकर जो स्मरण किया है उस से यह ध्वनित होता है कि जिनने प्रतिष्ठा सम्बन्धी ग्रन्थ बनाये हैं उन ने अपने ग्रन्थों में ही और किन्हीं ने उन से पृथक् भी अभिषेकपाठों की रचना की है अतः या तो यह अभिषेकपाठ गुणभद्र के उस पूजाकल्प में का हो और उस से जुदा निकाल लिया गया हो या स्वतंत्र ही पृथक् रचना हो जैसा कि पं० आशाधर का नित्यमहोद्योत उन के जिनयज्ञकल्प से पृथक् है। इस तरह नं० २ के गुणभद्र का न मान कर नं० १ के गुणभद्र का माना जाना ही समुचित प्रतीत होता है।

एक एक नाम के कई आचार्यों के होने हुए भी पीछे वालों द्वारा जो स्मरण किये गये हैं वे प्रायः प्रसिद्ध आचार्य ही होने चाहिए। जैसे समन्तभद्र, देवनन्दी, अकलंक, विद्यानन्दी, प्रभाचंद्र, जिनसेन, गुणभद्र आदि। भगवद्गुणभद्र भी एक आदर्श आचार्य हो गये हैं अतः पिछले ग्रन्थकारों ने उन्हीं का अपने अपने ग्रन्थों में स्मरण किया है। प्रतिष्ठाशास्त्रों के प्रणेताओं ने उस विषय के ग्रन्थकारों ही को अधिक महत्त्व दिया है और अपने ग्रन्थों में उन के ग्रन्थों का आश्रय लिया है। जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय में अय्यपार्य लिखते हैं—

वीराचार्य-सुपूज्यपाद-जिनसेनाचार्यसंभाषितो
यः पूर्वं गुणभद्रसूरि-वसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जितः।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धीरित-
स्तेभ्यः स्वाहृतसारमार्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥१५॥
—अभ्युदय १।

पूजासार के संगृहीता लिखते हैं, अत्र क्रमः—

प्रोक्तो गौतमनायकैरनु ततो देवेन्द्रवन्द्यैः कृतो।
भट्टश्रेणिकभूभुजा(?)दतो विजयतां श्रीजैनपूजाक्रमः॥
वीरसेनजिनसेनसूरिणा पूज्यपादगुणभद्रसूरिणा।
इन्द्रनन्दिगुरुणैकसन्धिना जैनपूजनविधिः प्रभाषितः॥

इत्यार्यैः कविभिर्विनेयगुरुभिः प्रोक्तं जिनार्चाविधिं
श्रुत्वाभ्यच्च्य विचित्तमंत्रसंततं ? श्रुत्वा मयाप्यर्जितः ? ।
भव्यश्रेणिहितासिहेतुरतुलः संमंत्रसंवेष्टितः
पूजासारसमुच्चयो विजयतां श्रीजैनपूजाक्रमः ॥

जिनसंहिता में एकसन्धि लिखते हैं—

पूज्यपादगुणभद्रसूरिभिर्वज्रपाणिभिरपि प्रपूजितैः । *
मन्त्रपद्धनमप्युदाहितं शस्यतेऽत्र सकलेऽपि कर्मणि ॥१॥
इति स्नपनक्रियामन्त्राः ।

उक्त उल्लेखों में ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि वीरसेन, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनन्दी, इन्द्रनन्दी, आशाधर, हस्तिमल्ल और एकसन्धि के ग्रन्थों से सार लेकर मैं ने यह जैन पूजाक्रम अर्थात् जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय रचा है। पूजासार के संगृहीता कहते हैं कि गौतम नायक ने सब से प्रथम जैन पूजाक्रम कहा—उस के बाद देवेन्द्रवन्द्य ने कहा, फिर भट्ट श्रेणिक ने कहा सो जयवन्त रहे। वीरसेन, जिनसेन, पूज्यपाद, गुणभद्र, इन्द्रनन्दी और एकसन्धि ने जैन पूजन विधि कही। इत्यादि सब कवियों द्वारा कही हुई जिनार्चा विधि को सुन कर मैं ने भी संग्रह किया आदि। एकसन्धि लिखते हैं—परमपूज्य पूज्यपाद, गुणभद्र और वज्रपाणि ने जो मन्त्र-पद्धन कहा है वह यहाँ इस सब कर्म में प्रशंसनीय है अर्थात् उस का यहाँ उपयोग किया गया है।

उक्त आचार्यों ने 'जैनपूजाक्रम' बनाये हैं, इस में भी कोई सन्देह नहीं, और ये सब प्रसिद्ध आचार्य ही हैं, इस में भी कोई सन्देह नहीं रहता, ऐसी हालत में इस बृहत्स्नपन को जिनसेन स्वामी के शिष्य गुणभद्र का बनाया हुआ मानने में कोई भी आपत्ति नहीं है।

इतना लिखा जाने के बाद और और शिलालेखों पर दृष्टि पड़ी तो मालूम हुआ कि द्वितीय गुणभद्र का नाम गुणभद्र नहीं था किन्तु गुणचन्द्र था। नं० ४६१ के शिलालेख को छोड़ कर नं० ७०, ६०, १२४,

१६७, ४२६ और नं० ४६४ में गुणचन्द्र सिद्धान्तदेव लिखा है। गुण-चन्द्र के नयकीर्ति शिष्य थे और नयकीर्ति के दामनन्दी, भानुकीर्ति, बालचन्द्र, प्रभाचन्द्र, माघनन्दी, पद्मनन्दी और नेमिचन्द्र। उक्त सब शिलालेख नयकीर्ति और उन के शिष्यों के समय के हैं। इस से और दृढ़ होता है कि बृहत्स्नपन के कर्ता भगवद्गुणभद्र ही हैं।

ग्रन्थसम्पादन—

(१) इस बृहत्स्नपन की प्रेस-कापी झालरापाटन के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन की एक ही प्रति पर से की गई। यह प्रति न बहुत शुद्ध ही है और न अत्यन्त अशुद्ध ही।

(२) संशोधन के लिये चि० पंडित धरणेन्द्रकुमार से बम्बई के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन की ताड़पत्र की प्रति पर से नागरी लिपि में करा कर एक दूसरी प्रति मंगाई गई। अत्यन्त अशुद्ध होने से इस से कोई विशेष सहायता नहीं ली जा सकी। इस प्रति के प्रारम्भ में नेमिजिनेश की पूजा है, बाद 'श्रीजिनेन्द्रार्चन' इत्यादि श्लोक लिख कर यह अभिषेकपाठ लिखा गया है। इस प्रति में मुद्रित प्रति से एक तो मंत्र भाग अधिक है और अनेक लक्षण पद्य भी प्रक्षिप्त हैं।

(३) एक महाभिषेक की प्रति भी उक्त भवन से प्रेस-कापी करने को मँगाई गई। जब प्रेस कापी करना प्रारम्भ किया गया तो यह महाभिषेक वही बृहत्स्नपन पाया गया। यह प्रति भी अशुद्ध है और किसी ताड़पत्र की प्रति पर से वी० नि० २४५१ में मूडबिद्री से नागरी लिपि में करा कर मँगाई गई है। इस के प्रारम्भ में गोम्मटेश की पूजा है, बाद वही पद्य लिख कर बृहत्स्नपन लिखा गया है। इस में भी मुद्रित प्रति से मंत्रभाग अधिक है। कहीं कहीं इस से भी संशोधन में सहायता ली गई है।

(४) इस बृहत्स्नपन की एक प्रति पूज्य १०८ श्री मुनि सुधर्मसागर जी महाराज द्वारा प्राप्त हुई। इस प्रति से कोई सहायता नहीं ली गई क्योंकि बृहत्स्नपन के छप जाने के बाद यह प्रति मिली थी।

(५) पूजासारसमुच्चय में भी यह सम्पूर्ण बृहत्स्नपन उद्धृत है। इस से भी कहीं कहीं सहायता ली गई परन्तु अधिक अशुद्ध होने से सन्दिग्ध पाठ ज्यों के त्यों ही मुद्रित किये गये हैं।

समयाभाव के कारण इन पाँचों प्रतियों का पाठान्तर नहीं दे सके हैं। नं० २, ३ और ५ का और नं० १, ४ का मूल पाठ प्रायः समान है।

३—सोमदेवसूरि।

ये आचार्य प्रकृष्ट विद्वान् थे। इन के बनाये हुए नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलक चम्पू से जैन समाज का मस्तक ऊँचा है। इतना ही नहीं, इन दो ग्रन्थों से अजैन समाज पर भी काफी छाप पड़ी है। नीतिवाक्यामृत की कई नीतियां यशस्तिलक चम्पू में पाई जाती हैं, इस से तो ज्ञात होता है कि नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक चम्पू से पहले बन चुका था। परन्तु नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति में और और ग्रन्थों के साथ यशस्तिलक चम्पू का भी नाम जुड़ा हुआ है। उस से यह मालूम पड़ता है कि शायद नीतिवाक्यामृत बाद का बना हुआ हो, कुछ भी हो; दोनों कृतियां एक ही कर्ता की हैं इस में तो कोई सन्देह ही नहीं है। यशस्तिलक चम्पू शक संवत् ८८१ (विक्रम सम्वत् १०१६) में पूर्ण हुआ है। अध्यात्मतरंगिणी नाम का ध्यान का ग्रन्थ भी इन्हीं का बनाया हुआ है। अध्यात्मतरंगिणी को आचार्य गुणधरकीर्ति-कृत एक टीका है। यह टीका संवत् ११८९ में पूर्ण हुई है। उस में यह उल्लेख पाया जाता है—

"अथवा यशस्तिलकाभिधानचम्पूकथाकौस्तुभरत्नोत्पत्तिरत्नाकरैकान्तवादिभगोत्रिचयपराभवादित्यसदोऽनवद्यगद्यपद्यरचनाश्चर्यितसोमदेवाः पंडितसोमदेवाऽ(अ)भिधीयन्ते"

इस उल्लेख से जाना जाता है कि अध्यात्मतरंगिणी भी इन्हीं सोमदेव की बनाई हुई है। नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति से इन के बनाये हुए तीन ग्रन्थों का और पता लगता है, वे हैं षण्णवतिप्रकरण, युक्तिचिन्तामणि और महेन्द्रमातलिसंजल्प। खेद है कि इन तीनों की अभी तक उपलब्धि नहीं हुई है। न मालूम इन का अस्तित्व ही उठ गया है या किसी भण्डार में छुपे पड़े हैं। प्रस्तुत जिनाभिषेक यशस्तिलक चम्पू में से ही पृथक् निकाला गया है। इस का सम्पादन और संशोधन मुद्रित और लिखित दो प्रतियों पर से किया गया है। इस की टिप्पणी में सुभीते के लिये मन्त्र भी दे दिये गये हैं।

सोमदेव सूरि देवसंघ के आचार्य थे और यशोदेव के प्रशिष्य तथा नेमिदेव के शिष्य थे। यथा—

श्रीमानस्ति स देवसंघतिलको देवो यशःपूर्वकः
शिष्यस्तस्य बभूव सद्‌गुणनिधिः श्रीनेमिदेवाह्वयः।
तस्याश्चर्यतपःस्थितेस्त्रिनवतेर्जेतुर्महावादिनां
शिष्योऽभूदिह सोमदेवयतिपस्तस्यैष काव्यक्रमः॥

ऐसी हालत में इन के मूलसंघी होने में भी कोई सन्देह नहीं है।

४—भगवदभयनन्दिसूरि।

भगवदभयनन्दी, भगवन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के गुरु थे। आचार्यप्रवर नेमिचद्र सिद्धान्तचक्र-र्ती ने गोम्मटसार आदि अनुपम ग्रन्थों में स्थान स्थान पर गुरु तरीके इन का स्मरण किया है। इतिहासवेत्ताओं ने सिद्धान्तचक्रवर्ती का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी

निश्चित किया है। अतः इन के गुरु भगवदभयनन्दी का समय भी यही समझना चाहिए।

आचार्य अभयनन्दी के बनाये हुए अभी तक दो ही ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। एक जैनेन्द्रमहावृत्ति और दूसरा लघुस्नपन। जैनेन्द्रमहावृत्ति ३।२।६० तक बनारस में प्रकाशित हो चुकी है। 'लघुस्नपन' इस संग्रह में प्रकाशित किया गया है। लघुस्नपन का दूसरा नाम श्रेयोविधान भी है। इन दो के सिवा इन के बनाये हुए और कोई ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं।

इस लघुस्नपन के टीकाकार पेज नं० ५२ में लिखते हैं कि—

"तत्र नित्यमहभेदे जैनेन्द्रवृत्तिविधायिभिरभयनन्दिसूरिभिरभूरिक्रियोपेतं लघुस्नपनं चक्रे"।

अर्थात् अर्हन्तदेव की इज्या के भेदों में से प्रथम भेद 'नित्यमह' में जैनेन्द्र व्याकरण की वृत्ति (महावृत्ति) बनाने वाले अभयनन्दी सूरि ने थोड़ी क्रियाओं से युक्त ' लघुस्नपन ' बनाया। इस पर से सिद्ध है कि 'जैनेन्द्रमहावृत्ति' के कर्ता आचार्य अभयनन्दी का बनाया हुआ यह पाठ है।

इस पाठ के अन्त में पद्य नं० ५९ में भी 'अभयनन्दि' ऐसा एक पद आया है। उस की व्याख्या में भी टीकाकार लिखते हैं **"अत्राचार्येण स्नपनान्ते अभयनन्दीत्यात्मनो नामापि निरूपितमिति"** अर्थात् यहां पर आचार्य ने स्नपन के अन्त में 'अभयनन्दी' ऐसा अपना नाम भी निरूपण किया है। कौन से अभयनन्दी का बनाया हुआ यह पाठ है? इस प्रश्न का उत्तर भी टीकाकार के उक्त उद्धरण पर से हो ही जाता है। इस लिए इस विषय में अधिक छान-बीन करने की कोई आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती है।

टीकाकार—

उक्त 'लघुस्नपन' सटीक प्रकाशित किया गया है, टीका के कर्ता भावशर्मा नाम के विद्वान् थे। टीका के अन्त में इन ने थोड़ा सा अपना परिचय दिया है। उस का संक्षिप्त भाव यह है कि प्रमुख पुरुषों द्वारा परिचालित अन्वय में एक वीरसिंह नाम के सज्जन हुए। उन के बाद हरिपाल और चन्द्रमति से नक्षत्रदेव का जन्म हुआ, नक्षत्रदेव की पत्नी का नाम माणिक्य देवी था। इन दोनों से भावशर्मा हुए। उन ने यह टीका बनाई। टीका की समाप्ति का इन ने कोई समय नहीं दिया है अतः इन के समय के जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। इतना कह सकते हैं कि इन ने टीका में कई ग्रन्थकारों का स्मरण किया है। उन में कुमुदचन्द्र, वर्धमान उपाध्याय आदि का स्मरण भी किया है। आचार्य कुमुदचन्द्र का समय लगभग विक्रम की चौदहवीं शताब्दी है, अतः विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के बाद किसी समय में भावशर्मा हो गये हैं। कितने बाद हुए हैं, यह हम इस समय कुछ नहीं कह सकते।

यह टीका बहुत ही प्रौढ़ टीका है, इस से इस के कर्ता भावशर्मा भी प्रखर विद्वान् थे, ऐसा प्रतीत होता है। भावशर्मा इस नाम से बने हुए ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं—

१—लघुस्नपन टीका.

२—भावप्रकाशिनी.

३—शब्दभाव-प्रकाश.

४—दशलक्षणधर्म जयमाल (प्राकृत)

५—त्रिंशच्चतुर्विंशतिविधान.

(१) इन में से लघुस्नपन टीका तो इस संग्रह में प्रकाशित है। (२) भावप्रकाशिनी यह 'वृत्तरत्नाकर' की टीका है। (३) शब्दभावप्रकाश यह कोई व्याकरण की टीका जान पड़ती है।

भावप्रकाशिनी और शब्दभावप्रकाश का स्वयं कवि ने इसी टीका के पेज ६६ में उल्लेख किया है। ये दोनों ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। (४) दशलक्षणधर्म-जयमाल यह अपभ्रंश भाषा में है। ब्रह्मचर्यधर्म की समाप्ति के अन्त में लिखा कि "इति श्रीपंडित-नक्षत्रदेवात्मजपंडितभावशर्माविरचिते दशलक्षणीकजयमाल सम्पूर्णं।" इस के सिवा और कोई उल्लेख ग्रन्थ में नहीं है। इस की एक प्रति वि० सं० १७६२ की लिखी हुई झालरापाटन के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में सुरक्षित है। (५) 'त्रिशच्चतुर्विंशतिविधान' यह पूजाग्रन्थ है। इस में पिता का नाम नहीं है। किसी मधुकर श्रावक ने भावशर्मा से यह ग्रन्थ बनवाया है। प्रति के लिखे जाने का संवत् भी प्रति में नहीं है। इस की एक प्रति बंबई के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में सुरक्षित है। जो अत्यन्त ही अशुद्ध है।

जैनेन्द्रवृत्ति, अभयनन्दिदेव, जिनसेनादि, वृषभसेन, आशाधर-सूरि, भारवि, निघंटु, अमर, जिनसंहिता, जिनसंहिता टीका, कुमुदचन्द्र-देव, अनेकार्थ, आगम, वाग्भटालङ्कार, वामन, पूज्यपाद, वृत्तरत्नाकर-टीका भावप्रकाशिनी, शब्दभावप्रकाश, गुणभद्रदेव, महाभिषेक, श्रीवसुनन्दिदेव, प्रतिष्ठासारसंग्रह, वसन्तराज, धर्मोपदेशामृत-श्रावका-ध्ययन, श्रीवर्धमानोपाध्याय, आर्षमहापुराण, धरणि, इत्यादि ग्रन्थों और ग्रन्थकर्ताओं के नाम इस में आये हैं। व्याकरण के सूत्र जो टीका में दिये गये हैं वे सब प्रायः कातन्त्रव्याकरण के हैं।

सम्पादन—

इस टीका का सम्पादन एक ही प्रति पर से हुआ है। जो हाल ही में लेखक ने लिखकर हमारे पास भेजी थी, जिस प्रति पर से लेखक ने यह प्रति नकल कर हमारे पास भेजी थी वह प्रति पुरानी जान पड़ती है क्योंकि उस की पड़ी मात्राओं और कितने ही प्रचीन लिपि के अक्षरों को लेखक न समझ सकने के कारण और का और लिख गया है। फिर भी प्रति प्रायः शुद्ध है।

५—महाकवि-गजांकुश

इन का बनाया हुआ जैनाभिषेक नं० ५ पर मुद्रित है। पद्य नं० १० में 'कामोद्दामगजांकुश' ऐसा जिनपति का एक विशेषण दिया गया है। उस के विषय में टीकाकार प्रभाचन्द्र लिखते हैं—

"कविपक्षे तु कामोऽभिलाषः उद्दामो महान्मोक्षविषयो यस्यासौ कामोद्दामः स चासौ गजांकुशश्च कविस्तं"

इस पर से इस अभिषेक के कर्त्ता महाकवि गजांकुश सुनिश्चित हैं। अयप्पार्य ने गजांकुश के अभिषेक का उल्लेख भी किया है। इस से मालूम होता है कि गजांकुश का बनाया हुआ कोई अभिषेक अयप्पार्य के समय था। वह उक्त विशेषण को देखते हुए यही निश्चित होता है।

गजांकुश का समय जानने का साधन भी इस समय हमारे पास नहीं है। इतना कह सकते हैं कि अयप्पार्य ने वि० सं० १३७६ में "जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय" को बनाकर पूर्ण किया है। उस में 'गजांकुशाभिषेकेण वा' इत्यादि पूर्व उल्लिखित एक वाक्य आया है उस से जाना जाता है कि १३७६ के पहले यह अभिषेक बन चुका था। आगे जो एक पाठ नं० १४ में मुद्रित हुआ है उस के श्रुत, महर्षि, सिद्ध और रत्नत्रय संबन्धी अभिषेकके पद्योंके कर्त्ता आचार्यकल्प आशाधर जान पड़ते हैं। यदि यह ठीक है और यदि स्वयं पंडित आशाधर ने ही गजांकुश के अभिषेक-पद्यों को इसके साथ में जोड़ा है तो यह भी कहा जा सकता है कि महाकवि गजांकुश पंडिताशाधर से भी पहले हो गये हैं।

टीकाकार—

जैनाभिषेक की प्रभाचन्द्राचार्य-कृत एक टीका है, वह टीका भी इस के साथ मुद्रित की गई है। आचार्य प्रभाचन्द्र का एक क्रियाकलाप नाम का ग्रन्थ है। उस में यह सटीक जैनाभिषेक भी है। आचार्य प्रभाचन्द्र के समय के सम्बन्ध में आगे मुद्रित होनेवाले 'क्रियाकलाप' नामक

दूसरे ग्रन्थ की भूमिका में यदि अवकाश मिला तो विस्तार से लिखेंगे। यहां इतना लिख देना ही पर्याप्त है कि ये प्रभाचन्द्र चौदहवीं शताब्दीमें या इस के पूर्व किसी समय हो गये हैं।

सम्पादन—

इस का सम्पादन एक मुद्रित प्रति पर से और संशोधन एक लिखित प्रति पर से हुआ है। मुद्रित प्रति सेठ रावजी सखाराम दोशी सोलापुर की छपाई हुई है। अतः हम आप के आभारी हैं। इस में इस अभिषेक का कर्त्ता पूज्यपाद को लिखा है, सो ठीक नहीं है क्योंकि पूज्यपाद का अभिषेक पाठ जुदा है। दूसरी प्रति बम्बई के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन की है। यह करीब १०-१२ वर्ष की नवीन ही लिखी हुई है। जो बहुत ही अशुद्ध है। इस प्रति में भी इक्षुरसाभिषेक का पद्य और उस की टीका दोनों ही नहीं हैं। और कोई प्रति कोशिश करने पर भी नहीं मिली। टिप्पणी में मंत्रभाग हम ने जोड़ा है।

६—महाविद्वान् पंडित आशाधर।

महाविद्वान् पंडित आशाधर अपने समय के उद्भट विद्वान् थे। न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त, धर्मशास्त्र, वैद्यक आदि सभी विषयों के उत्तम ज्ञाता थे। उन के बनाये हुए मौलिक ग्रन्थ ही उन की विद्वत्ता के साक्षी हैं। यह कहना अत्युक्ति नहीं कि यदि पं० आशाधर के बनाये हुए ग्रन्थ न होते तो कितने ही विषयों की गुत्थियां सुलझती भी नहीं एवं उन विषयों से अपरिचित ही बने रहते। आचार्य उदयसेन पं० आशाधर को 'कलिकालिदास' कहा करते थे, भगवन्मदनकीर्ति 'प्रज्ञा-पुञ्जोऽसि—तुम प्रज्ञापुंज हो' ऐसा कहकर आदर व्यक्त करते थे। मालवे के अधिपति परमारवंश-शिरोमणि महाराज विन्ध्यवर्मा के परराष्ट्र सचिव

कविवर बिल्हण उन को सरस्वती-पुत्र के नाते अपना स्वाभाविक सहोदर मानते थे।

उन के पिता का नाम सल्लक्षण था और माता का नाम रत्नी। वे सपादलक्ष-देश के मांडलगढ़ के रहने वाले थे, उन की जाति बघेरवाल थी। जब शहाबुद्दीन ने सपादलक्ष देश को अपने कब्जे में कर लिया तब चारित्र की क्षति देख वे विन्ध्यवर्मा दूसरा नाम विजयवर्मा द्वारा शासित मालवे की धारा नगरी में जा रहे। वहाँ पहुंच कर वादिराज-पंडित धरसेन के शिष्य पंडित महावीर से जैन न्याय शास्त्र और जैनेन्द्रव्याकरण पढ़े। बाद वे विन्ध्यवर्मा के पौत्र अर्जुनवर्मदेव के समय नलकच्छपुर (नालछा) में रहने लगे थे। उन के एक छाहड नाम का पुत्र था, उस ने अपने गुणों से अर्जुनवर्मदेव को अपने ऊपर अनुरक्त कर लिया था। नालछा में रह कर उन ने अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना की। जैसे—(१) प्रमेयरत्नाकर (न्याय-ग्रन्थ) (२) सिद्धचक्रभरतेश्वराभ्युदय और उस की टीका (३) धर्मामृत और उस की ज्ञानदीपिका और भव्यकुमुदचन्द्रिका नाम की दो टीकाएं (४) सटीक नेमीश्वर-राजीमती विप्रलंभकाव्य (५) अध्यात्मरहस्य (६) मूलाराधना-दर्पण, (७) इष्टोपदेश की टीका (८) आराधनासार की टीका (९) भूपालचतुर्विंशतिस्तव की टीका (१०) अमरकोष की क्रियाकलाप टीका (११) रुद्रटाचार्य के काव्यालङ्कार की टीका (१२) सहस्रनामस्तोत्र और उस की टीका (१३) सटीक जिनयज्ञकल्प (१४) त्रिषष्टिस्मृति और उस की पंजिका (१५) नित्य-महोद्योत जिनस्नानशास्त्र (१६) रत्नत्रयविधान (१७) अष्टाङ्गहृदयोद्योत-वाग्भट के अष्टाङ्गहृदय पर टीका। इन ग्रन्थों का उल्लेख स्वयं पं० आशाधरजी ने किया है। इन के अलावा एक कल्याणमाला है जो इन के नाम से 'सिद्धान्तसारादि संग्रह' में मुद्रित है।

इन में से नं० १, २, ४, ५, ८, १०, ११, और १७ के ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। नं० ३ की ज्ञानदीपिका नाम की टीका भी अभी तक नहीं मिली है और भव्यकुमुदचंद्रिका प्रकाशित हो चुकी है।

इष्टोपदेश की टीका और जिनयज्ञकल्प मूल ये दोनों भी प्रकाशित हो चुके हैं। नित्यमहोद्योत इस संग्रह में प्रकाशित है। जिनयज्ञकल्प की टीका का अस्तित्व दि० जैन भंडारों में है परन्तु वह अभी हमारे देखने में नहीं आई है। सहस्रनाम स्तोत्र मूल प्रकाशित हो चुका है, सुना है उस की टीका, पं० हीरालालजी न्यायतीर्थ के पास है। भूपालचतुर्विंशति-स्तव की टीका, त्रिषष्टिस्मृति और उस की टीका तथा योगोद्दीपनीय नाम का १२ वाँ अध्याय झालरापाटन के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में सुरक्षित हैं। यह अध्याय संभवतः अध्यात्मरहस्य का उक्त अध्याय होगा परन्तु ग्रंथ का नाम धर्मामृतसूक्तिसंग्रह है और अध्याय का नाम योगोद्दीपनीय है। इस नाम का अध्याय सागारधर्मामृत और अनगारधर्मामृत में तो है नहीं। रत्नत्रयविधान भी बंबई के उक्त भवन में मौजूद है। तथा मूलाराधनादर्पण भी अभी हाल में मुद्रित हो चुका है। यह मूलाराधना अर्थात् भगवती-आराधना की टीका है।

जो ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं वे किस किस समय में बनाये गये थे इस के जानने का कोई साधन नहीं है। उपलब्ध ग्रन्थों में कई ग्रन्थों के बनाये जाने का समय नहीं है। जिनयज्ञकल्प, सागारधर्मामृत की टीका, अनगारधर्मामृत की टीका और त्रिषष्टिस्मृति के बनाये जाने का समय इन ग्रन्थों में कुछ विशेष परिचय के साथ पाया जाता है।

विक्रम सं० १२८५ में जिनयज्ञकल्प की और १२९२ में त्रिषष्टि-स्मृति और उस की पंजिका की रचना हुई है, उस समय धारा में देवपाल-देव का राज्य था। तथा वि० सं० १२९६ में सागारधर्मामृत की टीका और १३०० में अनगारधर्मामृत की टीका बनी है। उस समय देवपाल देव के पुत्र जयतुगी देव का राज्य था। महाविद्वान् पं० आशाधरजी विन्ध्यवर्मा, सुभटवर्मा, अर्जुनवर्मदेव, देवपाल देव और जयतुगी देव एवं पाँच धारेश्वरों के शासनकालमें रह चुके हैं, ऐसा उन के ग्रंथों के अवलोकन से पता चलता है।

पं० आशाधर ने पंडित-देवचन्द्र आदि को व्याकरण शास्त्र, विशालकीर्ति आदि को न्यायशास्त्र, भट्टारकदेव विनयभद्र आदि को सिद्धान्तशास्त्र तथा बाल-सरस्वती महाकवि मदन आदि को काव्यशास्त्र पढ़ाये थे। इस से जाना जाता है कि महाविद्वान् पंडित आशाधर इन सब विषयों में पूर्ण निष्णात थे।

पंडित-प्रवर आशाधर वस्तुतः प्रज्ञापुञ्ज थे और जैनधर्म के अपूर्व श्रद्धानी थे इस बात को उन की कृतियां अभी भी प्रकट कर रही हैं। वर्तमान की जैन समाज में संप्रदाय भेद होने से उन के वाक्यों को अप्रमाण कह देना आसान हो गया है, यह एक खेद की बात है। यहां हम इतना ही कहेंगे कि छोटे मुंह बड़ी बात वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। अस्तु, इस संग्रह में पंडित-प्रवर आशाधर का बनाया हुआ नित्योमहोद्योत नाम का जिनस्नानशास्त्र श्रुतसागर-प्रणीत टीका सहित प्रकाशित किया गया है।

टीकाकार—

टीकाकार श्रुतसागर सूरि भी कम विद्वान् नहीं थे। इनने अनेक बड़े बड़े ग्रन्थों पर टीकाऐं बनाई हैं और कई मौलिक ग्रन्थ रचे हैं। मूलसंघ, नंदी-आम्नाय, सरस्वती गच्छ और बलात्कार गण की अनेक शाखा-प्रशाखायें इस धरातल को सुशोभित कर चुकी हैं। इतना ही नहीं, इन शाखाओं ने जैनधर्म को परचक्र के चंगुल से बाल-बाल बचाया है। श्रुतसागर सूरि भी इन्हीं शाखाओं में होगये हैं।

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के अन्त में और पन्द्रहवीं के प्रारम्भ में एक आचार्य प्रभाचन्द्र हो गये हैं। उन के पट्ट पर आचार्य पद्मनन्दी हुए। पद्मनन्दी से तीन शाखाऐं उद्भूत हुई। एक सकलकीर्ति आदि की, दूसरी प्रथम शुभचन्द्र आदि की, और तीसरी देवेन्द्रकीर्ति आदि की। तीसरी शाखा में श्रुतसागर सूरि हुए हैं। ये देवेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य और विद्यानन्दी के शिष्य थे। इन का समय विक्रम की

सोलहवीं शताब्दी है। ये विद्यानन्दी के पट्ट पर अभिषिक्त नहीं हुए थे, किन्तु इन के गुरु भाई मल्लिभूषण अभिषिक्त हुए थे। मल्लिभूषण के पट्ट पर लक्ष्मीचन्द्र हुए थे। लक्ष्मीचन्द्र के समय में भी श्रुतसागर सूरि कई वर्षों तक विद्यमान रहे थे। विद्यानन्दी के समय का वि० सं० १५२३ का एक प्रतिमालेख मिला है, तथा मल्लिभूषण और लक्ष्मीचन्द्र के समय की अनेक लेखक-प्रशस्तियां पाई जाती हैं। इन से मालूम पड़ता है कि सोलहवीं शताब्दी के मध्य में श्रुतसागर सूरि होगये हैं। श्रुतसागर सूरि ने अपने ग्रन्थों में मल्लिभूषण और लक्ष्मीचन्द्र का बड़े गौरव के साथ स्मरण किया है। तथा उन ने अपने ग्रन्थ प्रायः लक्ष्मीचन्द्र के समय में बनाये हैं, ऐसा उन ग्रन्थों पर से विदित होता है। इन के बनाये हुए कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) षट्प्राभृत टीका (२) आशाधरकृत सहस्रनाम टीका (३) नित्यमहोद्योत टीका (४) सिद्धभक्ति टीका (५) सिद्धचक्राष्टकपूजा टीका (६) तत्त्वार्थतात्पर्यवृत्ति (७) प्राकृतव्याकरण औदार्यचिन्तामणि-वृत्ति सहित (८) यशोधरचरित (९) व्रतकथाकोष (१०) श्रुतस्कन्ध-सारस्वत यंत्र (११) यशस्तिलक की टीका (१२) ज्ञानार्णवगद्य-टीका। ये सब ग्रन्थ ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में मौजूद हैं। कवि की अन्तिम कृति यशस्तिलक की टीका जान पड़ती है क्योंकि वह अपूर्ण रह गई है।

सम्पादन—

इस का सम्पादन एक ही प्रति पर से हुआ है। जिस प्रति पर से संपादन हुआ है वह सेठ माणिकचन्द जी के चौपाटी के मन्दिर की प्रति पर से भाई बालकिशन जी जैन लेखक पालम की की हुई है। संशोधन के समय प्रयत्न करने पर भी वह मातृ प्रति नहीं मिल सकी। मातृ प्रति वि० सं० १५२२ की लिखी हुई है।

७–अभिषेक-क्रम ।

यह संगृहीत मालूम पड़ता है। इस में के कितने ही पद्य भगवद्भय-नंदी के लघुस्नपन के, कितने ही गजांकुश-कृत जैनाभिषेक के, कितने ही गुणभद्रभदन्त-प्रणीत बृहत्स्नपन के और कितने ही पंडिताशाधर-कृत नित्यमहोद्योत के हैं और कितने ही ऐसे भी हैं जो इस संग्रह के किसी पाठ में नहीं पाये जाते हैं। वे या तो इन के अलावा और किसी अभिषेक-पाठ के होंगे या स्वयं संगृहकर्ता के बनाये हुए होंगे । इस का संपादन भी झालरापाटन के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन की एक ही प्रति पर से हुआ है। कहीं कहीं आशाधर जी के नाम से मुद्रित पूजापाठ से भी सहारा लिया गया है।

८–अय्यपार्य कवि ।

इस कवि का बनाया हुआ जिनेन्द्रकल्याणभ्युदय नाम का एक उत्तम प्रतिष्ठापाठ है। प्रस्तुत जन्माभिषेकविधि उसी का एक अभ्युदय है। कवि ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में देव, गुरु, शास्त्र आदि का गुणानुवाद-पूर्वक उन को नमस्कार करते हुए लिखा है कि श्रीमान् समन्तभद्रादि गुरुओं के पर्वक्रम से चला आया शास्त्रावतार-सम्बन्ध पहले कहा जाता है। यथा—

श्रीमत्समन्तभद्रादि-गुरुपर्वक्रमागतः ।
शास्त्रावतारसम्बन्धः प्रथमं प्रतिपाद्यते ॥

इस प्रतिज्ञानुसार वृषभनाथ से लेकर महावीर तक शास्त्रावतार सम्बन्ध बताया है। फिर लिखा है कि उन गणधर गौतम से लेकर अनुक्रम से अब तक चला आया वह जिनेन्द्रकल्याणभ्युदय शास्त्र यहां कहा जाता है। यथा—

तस्माद्गणधराद्यावायैरनुक्रमसमागतः ।
नाम्ना जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयोऽयमिहोच्यते ॥

आगे लिखा है कि जो मुनिपुंगव सेन, वीर, वीर्य और भद्र इन आख्याओं से, जो ऋषिसत्तम नन्दि, चन्द्र, कीर्ति और भूषण इन संज्ञाओं से, जो यतिनायक सिंह, सागर, कुम्भ और आस्रव इन नामों से और जो मुनि देव, नाग, दत्त और तुंग इन नामों से हो गये हैं उन सब मुनियों को नमस्कार करके शास्त्र रूपी समुद्र से सूक्ति रूपी मणियों को प्राप्त कर आर्यजन के पहनने योग्य हार की रचना कर मैं ने यह जिनेन्द्रकल्याण की विधि कही है।

सेन-वीर-सुवीर्य-भद्रसमाख्यया मुनिपुंगवा :
नन्दि-चन्द्र-सुकीर्ति-भूषणसंज्ञया ऋषिसत्तमाः ।
सिंह-सागर-कुम्भ-आस्रवनामाभर्यतिनायका
देव-नाग-सुदत्त-तुंगसमाह्वयैर्मुनयोऽभवन् ॥
तेभ्यो नमस्कृत्य मया मुनिभ्यः
शास्त्रोदधेः सूक्तिमणीश्च लब्ध्वा ।
हारं विरच्यार्यजनोपयोग्यं
जिनेन्द्रकल्याणविधिर्विधायि ॥

आगे लिखा है कि जो जैन-प्रतिष्ठा शास्त्र मुझ से पहले वीराचार्य (वीरसेन), पूज्यपाद, जिनसेनाचार्य, गुणभद्रसूरि, वसुनन्दी, इन्द्र-नन्दी, आशाधर, हस्तिमल्ल और एकसन्धि ने कहे हैं उन सब से उत्तम सार लेकर मुझ आर्य-अय्पार्य ने यह जैन-पूजा का क्रम [अर्थात् जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय रचा है।

वीराचार्य-सुपूज्यपाद-जिनसेनाचार्यसंभाषितो
यः पूर्वं गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जितः ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धीरित-
स्तेभ्यो स्वाहृतसारमार्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥

इस से मालूम पड़ता है कि कवि ने इस में अपनी तरफ से कोई नमक मिर्च नहीं लगाया है। जो कुछ उस ने लिखा है पूर्वशास्त्रानुसार ही लिखा है। सिर्फ विषय का क्रमवार संकलन उस ने किया है। उस के लिये उस ने इस में प्रकरणानुसार प्राचीन प्रतिष्ठापाठोंके पद्य भी ज्यों के त्यों रक्खे हैं। यथा—

पूर्वस्मात्परमागमात् समुचितान्यादाय पद्यान्यहं
तंत्रे प्रस्तुतसिद्धयेऽत्र विलसाम्येतन्न दोषाय तत्।
कल्याणेषु विभूषणानि धनिकादानीय निष्किञ्चनः
शोभार्थं खलु न भूषयति किं सा राज्यते नात्य तैः॥

विद्वान् अय्यपार्य आचार्य धरसेन का शिष्य था। वह कौमारसेनि अर्थात् कुमारसेन मुनि का भी शिष्य था या उस के लिये उस ने यह ग्रन्थ बनाया था, दोनों ही बातें संभव होती हैं। यथा—

तर्कव्याकरणागमादिलहरीपूर्णश्रुताम्भोनिधेः
स्याद्वादाम्बरभास्करस्य धरसेनाचार्यवर्यस्य च।
शिष्येणार्यपकोविदेन रचितः कौमारसेनेर्मुने—
ग्रंन्थोऽयं जगताञ्जगत्रयगुरोर्बिम्बप्रतिष्ठाविधिः॥

स्वयं अय्यपार्य ने अपनी प्रशस्ति लिखी है। उस का संक्षिप्त भाव यहां दिया जाता है। मूल प्रशस्ति इस पाठ के अन्त में मुद्रित है। "वीर भगवान् को नमस्कार कर गुरुओं का अन्वय कहता हूँ—मूल संघ रूपी आकाश के चन्द्रमा भारत के भावी तीर्थंकर पद ऋद्धि के धारी आचार्य समन्तभद्र जयवन्ते रहें। जो भगवान् तत्त्वार्थसूत्र का व्याख्यान 'गन्धहस्ति' के और देवागम के बनाने वाले थे। उन के शिष्य शिवकोटि और शिवायन ये दो हुए। उन के अन्वय में विद्वानों में श्रेष्ठ, स्याद्वाद विद्या में निष्ठ, सब आगमों के ज्ञाता, तार्किकों के शिरोभूषण सब रागादि दोषों से रहित श्री वीरसेन हुए। उन के शिष्य जिनसेन मुनीश्वर हुए जिन ने आदिपुराण बनाया। उन के प्रिय शिष्य गुणभद्र मुनीश्वर

हुए जिन की सूक्तियों से सब शलाका के पुरुष सदा के लिए भूषित हुए। उन गुणभद्र गुरु का माहात्म्य कौन वर्णन कर सकता है ? जिन के कि वचनरूपी अमृत से पृथ्वी पर सब जिनेश्वर अभिषिक्त हुए हैं। गुणभद्र के शिष्यों के अनुक्रम में एक गोविंदभट्ट हुए जो देवागम को सुन कर सम्यग्दर्शन से युक्त हुए थे। उन्हीं गोविंदभट्ट के स्वर्णयक्षी के प्रसाद से छह पुत्र हुए। श्रीकुमारकवि, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण, हस्तिमल्ल और वर्धमान। ये छहों ही महाकवि थे। इन में से हस्तिमल्ल के सम्यक्त्व के परीक्षार्थ पांड्य महीश्वर ने इन पर एक हाथी छोड़ा था उस हाथी का मद इन ने ध्वंस कर दिया था इस लिये विद्वानों ने इन को हस्तिमल्ल इस नाम से पुकारा (तीन चार श्लोकों में इन की स्तुति की गई है) हस्तिमल्ल के अन्वय में वीरसूरि नाम के जैन मुनि हुए। उन के शिष्य पुष्पसेन नाम के मुनीश्वर हुए। उन के शिष्य करुणाकर हुए। ये करुणाकर दाक्षिणात्य थे, वैद्य थे, जिनेन्द्र के चरणों के भक्त थे और सागारधर्म में रत थे। उन की धर्मपत्नी का नाम आंचो या अर्कमांचो ? ऐसा कुछ था। विद्वान् अय्यपार्य इन्हीं दोनों का पुत्र था।

अय्यपार्य ने शक संवत् १२४१ सिद्धार्थ संवत्सर के माघ महीने की शुक्लपक्ष की दशमी रविवार के रोज पुष्य नक्षत्र में रुद्रकुमार-शासित एकशैलनगर में इस जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय ग्रन्थ को पूर्ण किया था। देखो प्रशस्ति का अन्तिम पद्य।

सम्पादन—

इस का सम्पादन दो प्रतियों पर से किया गया है। एक जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय की प्रति झालरापाटन के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन की हमारे पास थी। दूसरी सिर्फ प्रेस कापीनुमा अभिषेक मात्र की, सो भी कुछ अपूर्ण अन्यत्र से आ गई थी। वह पूज्य १०८ मुनि श्री सुधर्मसागर जी महाराज की अनुकम्पा से प्राप्त हुई थी। भवन की प्रति में अन्त का अभ्युदय नहीं है। इस लिए उस में कवि-प्रशस्ति भी नहीं है।

यह प्रशस्ति दूसरी कापी में थी। जैसी थी वैसी साथ में प्रकाशित कर दी गई है। इस विषय में कापी प्रेषक संभवतः चि० पंडित अनन्तराजेन्द्र वैद्य के हम आभारी हैं।

६—कवि नेमिचन्द्र।

इन ने एक प्रतिष्ठातिलक नाम का बिम्बप्रतिष्ठा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। इस प्रतिष्ठा-तिलक में यह खूबी है कि सब विधि प्रयोगानुपूर्वी सहित एक ही जगह मिल जाती है। और और प्रतिष्ठापाठों में कई विधानों की सूचना मात्र हैं। वे कोई किसी में से तो कोई किसी में से लेकर कराने पड़ते हैं। इस में यह बात नहीं है। इस में जो बातें करने की हैं वे पहले नाम-मात्र कह दी गई हैं। फिर उन प्रत्येक की प्रयोगानुपूर्वी बड़े उत्तम ढंग से बतलाई गई है। किसी भी विधान के लिये दूसरे दूसरे प्रतिष्ठापाठों की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रस्तुत नित्यमह इसी प्रतिष्ठापाठ में से निकाला गया है। यह नित्यमह इस प्रतिष्ठापाठ से जुदा भी मिलता है।

कवि नेमिचन्द्र भी अपने समय के प्रखर विद्वान् थे। इस की साक्षी उन की प्रौढ़ रचना स्वयं दे रही है। प्रतिष्ठातिलक के अन्त में कवि ने अपना सविस्तृत परिचय दिया है। उस का भावानुवाद यहां दिया जाता है।

"पहले कृतयुग की आदि में आदिब्रह्मा के पुत्र अन्त्य-ब्रह्मा भरत ने जिन ब्राह्मणों की सृष्टि की थी, उन में से कितने ही विवेकी ब्राह्मण ऐसे हैं जिन ने अब भी जैन-मार्ग को नहीं छोड़ा है और जो वंश परम्परा से अविच्छिन्न चले आये आचरण को पाल रहे हैं। उन के कितने ही वंशज कांची नगर में रहते थे जो गर्भाधानादि त्रेपन क्रियाओं में निष्ठ थे और देवपूजादि छहों कर्मों के पालने में कर्मठ थे। उन को

विशाखाचार्य ने उपासकाध्ययन नाम के सातवें महावेद के रहस्य के उपदेशों से सत्कृत किया। उन के वंश में उत्पन्न हुए, ब्राह्मण बाल्यावस्था में उपासकाध्ययन आगम का अभ्यास करते रहते हैं, यौवनावस्था में राजाओं द्वारा पूजित होते हुए भोगों को भोगते रहे हैं और वृद्धावस्था में जैनी दीक्षा धारण करते रहे हैं। इस तरह प्रायः अपने कुलव्रत का पालन करते हुए कितने ही ब्राह्मण हो गये हैं। उन के वंश में थोड़े थोड़े समय बाद भट्टाकलङ्कदेव, इन्द्रनन्दी, अनन्तवीर्य, वीरसेन, जिनसेन, वादीभसिंह और वादिराज हुए। अनन्तर इन्हीं के कुल में हस्तिमल्ल और परवादिमल्ल हुए। इस प्रकार और भी ब्राह्मण उस ब्राह्मण वंश में हुए जिन ने दीक्षा लेकर जैनधर्म की भारी प्रभावना की थी। अनन्तर उसी वंश में लोकपालाचार्य हुए। ये गृहस्थाचार्य थे। चौल नरेश उन का सत्कार करते थे। ये लोकपालाचार्य अपने बन्धुओं को लेकर चौलनरेश के साथ साथ कर्नाटक देश को चले गए।

लोकपालाचार्य के समयनाथ नाम का पुत्र था जो न्यायशास्त्रका उत्तम वेत्ता था। उस के कवि राजमल्ल पुत्र हुआ, यह कवियों में शिरोमणि था। उस के चिन्तामणि नाम का पुत्र हुआ, जो वादी और वाग्मी हुआ। चिन्तामणि के अनन्तवीर्य हुआ, यह षट्वाद में पूर्ण पंडित था। अनन्तवीर्य के संगीत शास्त्र का वेत्ता पार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ के आयुर्वेद में निपुण आदिनाथ हुआ। आदिनाथ के धनुष विद्या का जानकार रामचन्द्र ? और रामचन्द्र के षट्कर्मों में निपुण बुद्धिमान् मल्लदेव हुआ। मल्लदेव के देवेन्द्र नाम का पुत्र हुआ, जो देवेन्द्र के समान वैभव वाला था, संहिता शास्त्रों में निष्णात था, कलाओं में कुशल था, राज्यमान्य था, दानी था, जिनमन्दिर आदि का बनाने वाला था, त्रिवर्ग लक्ष्मी से सम्पन्न था, चतुर था और बन्धुओं को प्यारा था। उस के आदिदेवी नाम की सहधर्मिणी धर्मपत्नी थी। आदिदेवी के पिता का विजयार्य और माता का नाम श्रीमती था। चंद्रपार्य, मल्लसूरि और

पार्श्वनाथ ये तीन भाई थे। उन देवेन्द्र और आदिदेवी के आदिनाथ, नेमिचन्द्र और विजयप ऐसे तीन पुत्र हुए। उन तीनों में आदिनाथ सब जिनसंहिताओं का पारगामी हुआ, उस के त्रैलोक्यनाथ जिनचन्द्र आदि पुत्र हुए। बुद्धिमान् विजयप भी ज्योतिःशास्त्र का विद्वान् हुआ। उस के समन्तभद्र नाम का पुत्र हुआ। वह साहित्य शास्त्र का वेत्ता हुआ। तथा बुद्धि जिस का धन है ऐसा मैं नेमिचन्द्र तर्कशास्त्र और व्याकरण शास्त्र को महामहोपाध्याय अभयचन्द्र के पास पढ़कर न्यायशास्त्रज्ञ और व्याकरणशास्त्रज्ञ की रूढ़ि को प्राप्त हुआ। मेरे कल्याणनाथ और धर्मशेखर दो पुत्र हुए। उन में पहला सम्पूर्ण शास्त्र रूपी समुद्र का पारगामी और दूसरा भी सब शास्त्रों में अद्वितीय हुआ।

नेमिचन्द्रार्य जो सब शास्त्रों को अच्छी तरह जानता है, और धर्म की कामना से अर्थी जनों के समस्त शास्त्रों का व्याख्यान करता है, जिस ने सब विद्वानों द्वारा स्तुत सत्यशासनपरीक्षा, मुख्यप्रकरण आदि शास्त्र रचे हैं जो राजसभाओं में कर्कश प्रतिवादियों को तर्कशास्त्र में बहुत बार परास्त कर जैनमत की प्रभावना कर रहा है, जिस को राजाओं ने शिबिका (पालकी) छत्र आदि विभूति भेंट की है, जो याचकों को यथेष्ट द्रव्य प्रदान करता है, अपने बन्धुओं के साथ भोगों को भोगता है, जिस ने जिनमन्दिर, मंडपवीथिका आदि बनवाये हैं, भगवान् पार्श्वनाथ के आगे गीत, वाद्य और नृत्य की व्यवस्था की है। इस तरह वह धर्म, अर्थ और काम नाम की त्रिवर्ग संपत्ति से सुशोभित हुआ और राजाओं द्वारा पूजित हुआ स्थिरकदंब नाम के नगर में रहता है।

एक दिन जिन का मन श्रीपार्श्वनाथ के चरण-कमलों की सेवा में तल्लीन है, ऐसे मामा उन के पुत्र, पितृव्य (पिता के भाई) सहोदर, उन के पुत्र, मेरे सुत के पुत्र तथा और भी विद्वान् बांधवों ने मुझ नेमिचंद्र से प्रार्थना की कि हे सर्वशास्त्रविशारद आयुष्मान् सूरि सुत, तू

पंचकल्याण का जिस में विस्तार से वर्णन हो ऐसे एक प्रतिष्ठाशास्त्र की रचना कर। इस प्रार्थनानुसार और जिनभक्ति से प्रेरित होकर उस गुरु नेमिचन्द्र ने यह प्रतिष्ठातिलक नाम का उत्तम प्रतिष्ठाशास्त्र बनाया है। इस में जो मेरी भूल हुई हो उसे बुद्धिमान् क्षमा करें। इत्यादि।"

नेमिचंद्र ने न अपना ही समय लिखा और न परिचय में किसी राजा का ही नाम दिया। अतः ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि इस ने इस धरातल को कब सुशोभित किया था। इतना निश्चय है कि हस्तिमल्ल के बाद ये हुए हैं। हस्तिमल्ल का समय लगभग चौहदवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। नेमिचंद्र हस्तिमल्ल के बाद लोकपालाचार्य से ले कर अपने पिता देवेन्द्रपार्य तक करीब १० पीढ़ी का उल्लेख करते हैं। इन दश पीढ़ियों का समय यदि २०० वर्ष मान लिया जाय तो नेमिचंद्र का समय करीब १५५० आ जाता है जो बहुत कुछ संभव है। क्योंकि द्वितीय भट्टाकलंक ने जो प्रतिष्ठापाठ बनाया है वह नेमिचंद्र के प्रतिष्ठातिलक के अनुसार बनाया है। भट्टाकलंक का समय प्रायः सोलहवीं शताब्दी का अन्त है। इस तरह नेमिचंद्र का समय भी लगभग १६ वीं शताब्दी निश्चित होता है।

१०—आचार्य-इन्द्रनन्दी।

इन की बनाई हुई एक संस्कृत-जिनसंहिता है जिस को इन्द्रनन्दी संहिता भी कहते हैं। इस की संधियों में लिखा है—

"इत्यार्षे भगवदिन्द्रनन्द्याचार्यप्रणीते महाशास्त्रे जिनसंहितासार-संग्रहे" इत्यादि।

इस से दो बातें मालूम पड़ती हैं। एक तो यह कि यह संहिता आर्ष ग्रंथ है। दूसरी यह कि आचार्य इन्द्रनन्दी के साथ भगवत्पद जुड़ा हुआ है, इस से वे कोई प्रख्यात आचार्य थे। संहिता भर में उक्त परिचय

के सिवा और कोई विशेष परिचय नहीं है, जिस से यह नहीं जाना जाता कि उन की गुरु-परंपरा क्या थी। समय भी इन का ठीक ठीक ज्ञात नहीं होता फिर भी ऐसा मालूम पड़ता है कि संभवतः इन का समय चौदहवीं शताब्दी के लगभग हो। इस में हेतु यह है कि इस संहिता में एक 'सिद्धभक्ति' उद्धृत है। उस के अन्तिम पद्य में 'शश्वच्छिवाशाधरः' ऐसा एक पद है। उस पर से उस के कर्ता पंडिताशाधर जान पड़ते हैं। इस 'सिद्धभक्ति' की श्रुतसागरसूरिकृत टीका भी है। श्रुतसागरसूरि इस को आशाधरकृत लिखते हैं। पंडिताशाधर ने अपने बनाये हुए अनेकों ग्रन्थों में शिवाशाधर पद प्रयुक्त किया है। अतः यह निर्भ्रान्त है कि यह 'सिद्धभक्ति' पंडित-प्रवर आशाधरकृत है। इस से मालूम पड़ता है कि उक्त इन्द्रनन्दिसंहिता पंडिताशाधर की सिद्धभक्ति के बाद बनी है। पंडिताशाधर वि० सं० १३०० में जीवित थे। शक सं० १२४१ (वि० सं० १३७६) में अय्यपार्य ने जो 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' बनाया है उस में इन्द्रनन्दी के ग्रंथ से भी सार ले कर मैं ने यह ग्रन्थ बनाया है ऐसा स्पष्ट लिखा है। यदि अय्यपार्य का तात्पर्य इसी संहिता से है तब तो यह कहना होगा कि यह संहिता वि० सं० १३७६ से पहले किसी समय बन चुकी थी। अय्यपार्य एकसन्धि का भी उल्लेख करते हैं और एकसन्धि इन्द्रनन्दी का। यदि एकसन्धि के भी अभीष्ट यही इन्द्रनन्दी हैं तो एकसन्धिकृत जिनसंहिता के पहले भी यह 'इन्द्रनन्दि संहिता' बन चुकी थी ऐसा निःसंकोच कहा जा सकता। तब यह क्रम सिद्ध हो जाता है—पंडिताशाधर, भगवदिन्द्रनन्दी, भगवदेकसन्धि और अय्यपार्य। इस तरह इस संहिता के कर्ता इन्द्रनन्दी का समय तेरहवीं शताब्दी का अन्त और चौदहवीं का प्रारम्भ सिद्ध होता है।

इस संग्रह में मुद्रित नं० १० का 'जिनस्नपन' इसी संहिता से लिया गया है। अतएव इस का सम्पादन और संशोधन एक ही प्रतिपर से हुआ है।

११—आचार्य-सकलकीर्ति ।

आचार्य सकलकीर्ति आचार्य पद्मनन्दी के पट्ट पर हुए हैं। यद्यपि स्वयं सकलकीर्ति ने अपने किसी भी ग्रंथ में अपने गुरु का नाम नहीं दिया है तो भी वे आचार्य पद्मनन्दी के पट्टधर हैं यह इन की परंपरा के भट्टारकों की ग्रन्थ-प्रशस्तियों और लेखक-प्रशस्तियों पर से निश्चित है। तथा झालरापाटन के शान्तिनाथ मंदिर में वि० सं० १४९२ की सकलकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठित एक मूर्ति है। उस के लेख में पद्मनन्दी और पद्मनन्दी के पट्ट पर सकलकीर्ति का उल्लेख है। वह लेख इस प्रकार है।

"सं० १४९२ वर्षे वैसाख वदी ९ सोमे श्री मूलसंघे भ० श्री पद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भ० श्री सकलकीर्ति हुंबडज्ञातीय..............।"

इस से तो और भी स्पष्ट हो जाता है कि सकलकीर्ति आचार्य पद्मनन्दी के शिष्य थे। एवं सकलकीर्ति का समय भी निर्भ्रान्त पंद्रहवीं शताब्दी का ठीक अंत निश्चित होता है। सुना है महसाना (अहमदाबाद) में इन की एक निषिधा है जिस में १४९९ में इन का स्वर्गवास हुआ लिखा है। एक प्रतिमा-लेख पर से मालूम होता है कि इन के गुरु आचार्य पद्मनन्दी १४७२ में मौजूद थे। दूसरी दूसरी प्रतिमाओं के लेखों से पता चलता है कि सं० १५०४ में सकलकीर्ति के शिष्य भट्टारक भुवनकीर्ति ने एक प्रतिष्ठा कराई। एवं १४७२ के बाद से लेकर १५०४ के पूर्व सकलकीर्ति पट्ट पर रहे हैं। ये प्रखर विद्वान थे। इन के बनाये ग्रंथ कम से कम २०–२५ होंगे। जैन समाज में ये एक मानीता समझे जाते हैं। इन का बनाया हुआ एक रत्नत्रयविधान है, उसी में से यह रत्नत्रयाद्यभिषेक लिया गया है।

१२—भट्टारकदेव शुभचन्द्र ।

ये सकलकीर्ति की परंपरा में हुए हैं। इन ने भी अनेक ग्रंथ बनाये हैं। जिन में के कितने ही ग्रंथों के बनाये जाने का उल्लेख इन ने स्वयं किया है। वि० सं० १५९६ में चन्द्रप्रभचरित और वि० सं० १५७२ में जीवंधरचरित्र बनाया है। उस वक्त ये गद्दी पर नशीन नहीं हुए थे। क्योंकि वि० सं० १५८४ के लिखे हुए प्रा० पंच संग्रह की प्रशस्ति से मालूम पड़ता है कि १५८४ तक इन के गुरु विजयकीर्ति पट्ट पर थे। प्रमाणनिर्णय की लेखक-प्रशस्ति पर से मालूम पड़ता है कि सं० १५८६ में ये पट्ट पर अभिषिक्त हो गये थे। एवं वि० सं० १५८४ के बाद और १५८६ के पहले किसी समय ये पट्ट पर अभिषिक्त हुए थे। धुलेव के ऋषभनाथ जी के मंदिर में सं० १६१२ में शुभचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित कई मूर्तियां हैं। वि० सं० १६२० में इन के पट्टधर भट्टारक सुमतिकीर्ति ने सागवाड़ा में प्रतिष्ठा कराई थी। इससे मालूम पड़ता है कि वि० सं० १६१२ के पश्चात् और सं० १६२० के पूर्व इन का स्वर्गवास हुआ है। वि० सं० १६०० में स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका और सं०१६०८ में पांडव-पुराण भी इन ने बनाया है। इस तरह सं० १५९६ से भी पहले से लेकर सं० १६१२ के बाद तक इन का समय सुनिश्चित है।

ये शुभचन्द्र मूलसंघ, नंदी आम्नाय, सरस्वती गच्छ और बलात्कार गण के भट्टारक थे। इन की गद्दी ईडर (महीकांठा) में रही है। इस गद्दी पर निम्न लिखित भट्टारक अभिषिक्त हुए थे।

१—प्रभाचन्द्र (१४२३)

२—पद्मनन्दी (१४७२)

३—सकलकीर्ति (१४९०-९९)

४—त्रिभुवनकीर्ति (१५०४-१५२७)

५—ज्ञानभूषण (१५३५-५७)

६—विजयकीर्ति (१५५७-८४)
७—शुभचन्द्र (१५६६-१६१२)
८—सुमतिकीर्ति (१६२०-२६)
९—गुणकीर्ति (१६२६-४१)
१०—वादिभूषण (१६४५)
११—रामकीर्ति प्र० (१६७२)
१२—पद्मनन्दी द्वि० (१६६६)
१३—देवेन्द्रकीर्ति (१७१०)
१४—क्षेमकीर्ति १७४६)
१५—नरेन्द्रकीर्ति (१७६८)
१६—विजयकीर्ति द्वि०
१७—नेमिचन्द्र (१७६२)
१८—चन्द्रकीर्ति (१८०१)
१९—रामकीर्ति द्वि०
२०—यशःकीर्ति (१८५०-८२)
२१—सोहनकीर्ति

सोहनकीर्ति के बाद एक या दो भट्टारक और हुए। अन्तिम भट्टारक कनककीर्ति हुए। उन के बाद यह गद्दी प्रायः सदा के लिए अस्त हो गई। हां, कनककीर्ति के पट्ट पर एक मोतीलाल नाम के जयसवाल विजयकीर्ति के नाम से अभिषिक्त हुये थे परन्तु वे गद्दी से उतार दिये गये।

भट्टारक शुभचंद्र के बनाये हुए बीसियों उत्तमोत्तम ग्रन्थ हैं जिन की सूची प्रस्तावना के बढ़ जाने के भय से नहीं दी गई है। इन के बनाये हुए कई ग्रन्थों की हिन्दी भाषा पुराने पंडितों ने की है। जिस से ग्रन्थकर्ता के गौरव का परिचय मिलता है। प्रस्तुत सिद्धचक्राभिषेक इन के बनाये हुए 'सिद्धचक्रपूजाविधान' से लिया गया है।

१३—कलिकुंडयंत्राभिषेक।

कलिकुंडयंत्र-पूजा नाम का कल्प सर्वत्र भंडारों में पाया जाता है। विद्यानुशासन में इस कल्प के कई यंत्र विधियों सहित अलग अलग विषयों की सिद्धि के कारण दिखलाये गये हैं। उक्त कल्प में से यह अभिषेक-पाठ लिया गया है। इस के कर्ता का नाम मालूम नहीं हो सका है।

१४–जिन-श्रुत-गुरु-सिद्ध-रत्नत्रयस्नपन

इस में अर्हन्त-प्रतिमा, सरस्वती, गुरुपादुका, सिद्ध-प्रतिमा और रत्नत्रययंत्र के एक साथ जुदे जुदे अभिषेकों की विधि बताई गई है।

पद्य नं० १, २, ३, ५, १६, २५, ३०, ३५, ४०, ४६, ५१ और ५६ गजांकुशकविप्रणीत जैनाभिषेक के, नं० ६ से १५ तक के अभयनन्दिप्रणीत लघुस्नपन के, पद्य नं० १६ और १७ वसुनन्दिकृत-प्रतिष्ठा सारोद्धार के और पद्य नं० १८ आशाधरविरचित नित्यमहोद्योत के हैं। शेष पद्य, पद्य नं० ५७, ५८ और ५९ से मालूम पड़ता है कि पंडित प्रवर आशाधर के बनाये हुए हैं। आश्चर्य नहीं नित्यमहोद्योत बनाने के पहले स्वयं पंडितराट् आशाधर ने ही ऐसा संकलन किया हो। क्योंकि लघुस्नपन तो आशाधर जी से पूर्व का है ही। जैनाभिषेक भी इस बात को देखते हुए यदि कोई बाधक कारण न हो तो पहले का ही सिद्ध होता है। अस्तु, कुछ भी हो जैसा संकलित पाठ हमें मिला है वैसा ही प्रकाशित कर दिया गया है। संभवतः सिद्धाद्यभिषेक पं०प्रवरप्रणीत रत्नत्रयविधान में का हो। क्योंकि पंडितप्रवर का बनाया हुआ एक रत्नत्रयविधान भी है। इस का अस्तित्व तो भंडारों में है परन्तु हमारे देखने में नहीं आया है। इस का संपादन लेखक की भेजी हुई एक ही प्रति पर से हुआ है।

१५—भाषापंचामृताभिषेकपाठ।

यह सर्वत्र प्रचलित है। पूजा पुस्तकों के साथ प्रकाशित भी हो चुका है। इस के कर्त्ता का नाम मालूम नहीं हो सका है। अतः उन के बाबत कुछ भी नहीं लिख सके हैं। केवल हिन्दी भाषा के प्रेमियों के उपयोगार्थ हम ने इस के साथ पूर्ण मंत्र-विधान जोड़ दिया है। यह मंत्र विधान आचार्य सकलकीर्ति-प्रणीत त्रिवर्णाचार से लिया गया है।

अन्त में हम सुहृद्धिजवरों से क्षमायाचना करते हैं कि इन सब पाठों के संगृह करने में बड़ा प्रयत्न करना पड़ा है। प्रायः सभी पाठों की एक एक प्रति के अलावा दूसरी दूसरी प्रतियां मिली ही नहीं हैं। ऐसी हालत में अनेक स्थानों में अशुद्धियां रह गईं हैं। कुछ प्रेस की गड़बड़ से कुछ असावधानी के कारण और कुछ अवकाशाभाव की वजह से विशेष अनुसन्धान न कर सकने के कारण भी रह गई हैं। आशा है पाठक क्षमा करेंगे। हम चाहते थे कि साथ में शुद्धयशुद्धि-द्योतक पत्र तथा सब अभिषेकों के श्लोकों का अकाराद्यनुक्रम भी जोड़ देते तथा गुणभद्र-कृत वृहत्स्नपन की सब प्रतियों का पाठ भेद भी लगा देते] और प्रक्षिप्त पद्यों को भी अलग कर देते परंतु समयाभाव के कारण ऐसा नहीं कर सके हैं 'अतः पुनरपि क्षमां याचे'। इति शुभम्।

झालरापाटन सिटी
वी०नि०२४६२,वि०सं०१९९२

जैनधर्म का प्रगाढ श्रद्धानी—
पन्नालाल सोनी न्यायसिद्धान्तशास्त्री

अन्येषां ग्रन्थकर्तॄणां स्वस्वविरचितग्रन्थेषु

पंचामृतस्योल्लेखः ।

प्राकृतभावसंग्रहे देवसेनसूरयः[1]—

(१)

थंगे णासं किच्चा इंदोहं कप्पिऊण णियकाए ।
कंकण सेहर मुद्दी कुणऊ जण्णोपवीयं च ॥४२६॥
पीढं मेरुं कप्पिय तस्सोवरि ठाविऊण जिणपडिमा ।
पच्चक्खं अरहंतं चित्ते भावेउ भावेण ॥४२७॥

१—ये देवसेन सूरि दर्शनसार के कर्ता देवसेन सूरि से जुदे हैं। दर्शनसार के कर्ता देवसेन सूरि ने दर्शनसार वि० सं० ९९० में बनाया है। उस में श्वेताम्बरसंघ, द्राविड़संघ, यापनीयसंघ, काष्ठासङ्घ आदि का उल्लेख है। परन्तु प्राकृतभावसंग्रह में श्वेतांबरसङ्घ को छोड़कर औरों का उल्लेख नहीं है। यदि प्राकृतभावसंग्रह और दर्शनसार के कर्ता एक ही होते तो श्वेताम्बरसङ्घ की तरह इन सङ्घों का भी वे उल्लेख करते। इस से मालूम पड़ता है कि प्राकृतभावसंग्रह के कर्ता देवसेन सूरि और हैं और दर्शनसार के कर्ता देवसेन सूरि और। सम्भवतः प्राकृतभाव-संग्रह और नयचक्र के कर्ता देवसेन सूरि एक हैं। नयचक्र का उल्लेख स्वामी विद्यानन्दी श्लोकवार्तिक में करते हैं। विद्यानन्दी का समय करीब विक्रम को आठवीं शताब्दी का प्रारम्भ सुनिश्चित होता है। इस से मालूम पड़ता है कि भावसंग्रह के कर्ता सातवीं

कलसचउक्कं ठाविय चउसुवि कोणेसु णीरपरिपुण्णं ।
घयदुद्ददहियभरियं णवसयदलछण्णमुहकमलं ॥४३८॥
आवाहिऊण देवे सुरवइ-सिहि-काल-णेरिए-वरुणे ।
पवणे जक्खे ससूली सपिय सवाहणे ससत्थे य ॥४३९॥
दाऊण पुज्जदव्वं बलिचरुयं तह य जण्णभायं च ।
सव्वेसिं मंतेहिं य बीयक्खरणामजुत्तेहिं ॥४४०॥
उच्चारिऊण मंते अहिसेयं कुणउ देवदेवस्स ।
णीर-घय-खीर-दहियं खिवउ अणुक्कमेण जिणसीसे ॥४४१॥
ण्हवणं काऊण पुणो अमलं गंधोवयं च वंदित्ता ।
सवलहणं च जिणिंदे कुणऊ कस्सीरमलएहिं ॥४४२॥

इत्यादि ।

पद्मपुराणे रविषेणाचार्यः[1]—

(२)

अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभिवारिणा ।
अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥

शताब्दी से भी पहले हो गये हैं और उस समय हुए हैं जिस समय कि श्वेताम्बरसङ्घ को छोड़ कर काष्ठासङ्घ आदि की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी ।

१—इन ने वीरनि० संवत् १२०३ ॥ (वि० सं० ७३३, शक सं० ५९८) में इस पुराण को बनाया था । आचार्य रविषेण काष्ठासङ्घ के अनुयायी थे, ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है परन्तु यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि काष्ठासंघ की वि० सं० ७५३ में कुमारसेन द्वारा उत्पत्ति हुई है ऐसा दर्शनसार में स्पष्ट उल्लेख है अतः यह कैसे सम्भव माना जाय कि रविषेणाचार्य काष्ठासंघी थे । मूलसंघ और श्वेताम्बरसंघ के आचार्यों ने इन की खूब ही प्रशंसा की है । इतना ही नहीं इन के पद्मपुराण का आधार लेकर बड़े बड़े ग्रन्थों की रचना की है ।

अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय क्षीरधारया ।
विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युतिः ॥१६६॥

दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणां यः करोत्यभिषेचनम् ।
दध्याभकुट्टिमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥

सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम् ।
कान्तिद्युतिप्रभावाढ्यो विमानेशः स जायते ॥१६८॥

अभिषेकप्रभावेण श्रूयन्ते बहवो बुधाः ।
पुराणेऽनन्तवीर्याद्या शुभूलब्धाभिषेचनाः ॥१६९॥

—इत्यादि पर्व ३२ ।

हरिवंशपुराणे जिनसेनाचार्यः[1]—

(२)

क्षीरेक्षुरसधाराौघैर्घृतदध्युदकादिभिः ।
अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चितां नृसुरासुरैः ॥२१॥

हरिचन्दनगन्धाढ्यैर्गन्धशाल्यक्षताक्षतैः ।
पुष्पैर्नानाविधैस्तैर्धूपैः कालागुरूद्भवैः ॥२२॥

दीपैर्दीप्रशिखाजालैर्नैवेद्यैर्निरवद्यकैः ।
तावानर्चतुरर्चां तामर्चनाविधिकोविदौ ॥२३॥

—इत्यादि सर्ग २२ ।

१—आचार्य जिनसेन ने इस पुराण की रचना शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८४०) में की है। ये जिनसेन आदि पुराण के कर्ता भगवज्जिनसेन से जुदे हैं।

उपासकाध्ययने वसुनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तिनः[1]—

(४)

गब्भावयारजम्माहिसेय-णिक्खमण-णाण-णिव्वाणं ।
जम्मि दिणे संजादं जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा ॥४५३॥
इक्खुरस-सप्पि-दहि-खीर-गंधजलपुण्णविविहकलसेहिं ।
णिसि जागरं च संगीयणाडयाइहिं कायव्वं ॥४५४॥
णंदीसरहदिवसेसु तहा अण्णेसु उचियपव्वेसु ।
जं कीरइ जिणमहिमा विण्णेया कालपूजा सा ॥४५५॥

नागकुमार-पंचमीकथायां मल्लिषेण-सूरयः[2]—

(५)

कारयित्वा जिनेन्द्राणां सद्बिम्बं स्नापयन्ति ये ।
चोचेक्ष्वाम्ररसैर्नित्यमाज्यदुग्धादिभिस्तथा ॥१२॥

१—आचार्य वसुनन्दी का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी है। इन ने मूलाचार की आचारवृत्ति में आचार्य अमितगति-कृत श्रावकाचार के कुछ पद्य उद्धरण में दिये हैं। आचार्य अमितगति १०७० के बाद तक जीवित थे। इन ने एक मूलाराधना या भगवती-आराधना नाम का ग्रन्थ भी संस्कृत में लिखा है। उस में उन ने इस आराधना की पुष्टि में 'वसुनन्दियोगिमहिता' ऐसा एक पद दिया है, इस से मालूम पड़ता है कि वसुनन्दी और अमितगति दोनों समसामयिक हैं और वह समय विक्रम की ग्यारहवीं सदी है।

२—आचार्य मल्लिषेण उभयभाषाकविचक्रवर्ती थे, पद्मावती और सरस्वती इन पर प्रसन्न थीं। त्रिषष्टिलक्षण-महापुराण, स्वोपज्ञ टीका-

पूजयन्ति च ये देवं नित्यमष्टाविधार्चनैः ।
पूजां देवनिकायस्य लभन्ते तेऽन्यजन्मनि ॥११३॥

जिनसंहितायां भगवदेकसन्धिः[1]—

(६)

ततस्तुर्यरवैर्व्योमसरस्युद्दामगीतिभिः ।
अभ्युद्धरेन्मुदा पूर्णकुम्भं स्नपयितुं प्रभुम् ॥१॥
तोयैश्चोचजलैरिक्षुरसैश्चूतरसैर्घृतैः ।
क्षीरैर्दधिभिरप्यर्घ्यैः स्नापयेदनघं क्रमात् ॥२॥
तत उन्मार्जयेत्कल्कचूर्णैश्चोद्वर्तनैरलम् ।
जिनेन्द्रश्रीतनुस्नेहं चन्दनक्षोदशालिभिः ॥३॥
वर्णोदनादिभिः पश्चाद्दीतदोषं निवर्तयेत् ।
निवर्तनविधिद्रव्यैर्जगतामभिवृद्धये ॥४॥

युक्त पद्मावतीकल्प, सरस्वतीकल्प आदि अनेक ग्रन्थ इन के बनाये हुए हैं। इन में त्रिषष्टिलक्षण महापुराण को शक संवत् ९६९ वि० सं० ११०४ में इन ने बनाया था और शक संवत् १०५० वि० सं० ११८५ में इन का स्वर्गवास हुआ था। इस से मालूम पड़ता है ये कम से कम शतायु थे।

१—इन का आसन जैन समाज में बहुत ऊँचा रहा है। यह पीछे के ग्रंथकर्त्ताओं के स्मरण से प्रतीत होता है। जिनसंहिता की कई प्रतियां हम ने देखी हैं वे सब अपूर्ण हैं। सब में अन्तिम पाठ भी समान है। अतः नहीं कहा जा सकता कि प्रति का अंतिम पाठ नष्ट होगया या काल के वैचित्र्य से यहीं तक बन पाई थी। अस्तु, भगवदेकसन्धि का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के लगभग है। इतना निश्चित है कि वि० सं० १३७६ के पहले यह संहिता बन चुकी थी।

ततः क्षीरतरुत्वग्भिः कषायैः स्नापयेज्जलैः ।
ततः संस्नापयेत्कुम्भैश्चतुर्भिः कोणसंश्रितैः ॥५॥
• • • •
जलादिस्नपने निष्ठां गते गन्धाम्बुधारया ।
अभिषिच्येशमर्हन्तममलं त्रिजगद्गुरुम् ॥६॥
—परिच्छेद १० ।

संस्कृतभावसंग्रहे वामदेवपंडिता[१]:—

(७)

पश्चात्स्नानविधिं कृत्वा धौतवस्त्रपरिग्रहः ।
मंत्रस्नानं व्रतस्नानं कर्तव्यं मंत्रवत्ततः ॥४७०॥
एवं स्नानत्रयं कृत्वा शुद्धित्रयसमन्वितः ।
जिनावासं विशेन्मंत्री समुच्चार्य निषेधिकाम् ॥४७१॥
कृत्वेर्यापथसंशुद्धिं जिनं स्तुत्वातिभक्तितः ।
उपविश्य जिनस्याग्रे कुर्याद्विधिमिमां पुरा ॥४७२॥

१—पण्डित वामदेव का समय लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। १५३६ की लिखी हुई पंजिका की एक प्रति है और १४८८ की लिखी हुई प्रा० भावसंग्रह की प्रति में इन के बनाये हुए भावसंग्रह के श्लोक प्रक्षिप्त हैं। इस से मालूम पड़ता है कि वि० सं० १५३६ और १४८८ के पूर्ववर्ती लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के ये विद्वान् हैं। मूलसंघ में एक विनयचन्द्र नाम के आचार्य होगये हैं, उन के शिष्य त्रिलोककीर्ति और त्रिलोककीर्ति के शिष्य लक्ष्मीचन्द्र हुए हैं। इन्हीं त्रिलोककीर्ति और लक्ष्मीचन्द्र के पंडित वामदेव शिष्य थे। इन का कुल नैगमकुल था। इन के बनाये हुए त्रिलोकदीपक, संस्कृतभावसंग्रह, महाभिषेकपंजिका आदि ग्रन्थ हैं।

तत्रादौ शोषणं स्वाङ्गे दहनं प्लावनं ततः ।
इत्येवं मंत्रविन्मंत्री स्वकीयाङ्गं पवित्रयेत् ॥४७३॥
हस्तशुद्धिं विधायाथ प्रकुर्यात्सकलीक्रियाम् ।
कूटबीजाक्षरैर्मंत्रैर्दशदिग्बंधनं ततः ॥४७४॥
पूजापात्राणि सर्वाणि समीपीकृत्य सादरम् ।
भूमिशुद्धिं विधायोच्चैर्दर्भाग्निज्वलनादिभिः ॥४७५॥
भूमिपूजां च निर्वृत्य ततस्तु नागतर्पणम् ।
आग्नेयदिशि संस्थाप्य क्षेत्रपालं प्रतृप्य च ॥४७६॥
स्नानपीठं दृढं स्थाप्य प्रक्षाल्य शुद्धवारिणा ।
श्रीबीजं च विलिख्यात्र गन्धाद्यैस्तत्प्रपूजयेत् ॥४७७॥
परितः स्नानपीठस्य मुखार्पितसपल्लवान् ।
पूरितांस्तीर्थसत्तोयैः कलशांश्चतुरो न्यसेत् ॥४८८॥
जिनेश्वरं समभ्यर्च्य मूलपीठोपरिस्थितम् ।
कृत्वाह्वानविधिं सम्यक् प्रापयेत् स्नानपीठिकाम् ॥४८९॥
कुर्यात्संस्थापनं तत्र सन्निधानविधानकम् ।
नीराजनैश्च निर्वृत्य जलगंधादिभिर्यजेत् ॥४९०॥
इन्द्राद्यष्टदिशापालान् दिशाष्टसु निशापतिम् ।
रक्षोवरुणयोर्मध्ये शेषमीशानशक्रयोः ॥४९१॥
न्यस्याह्वानादिकं कृत्वा क्रमेणैतान् मुदं नयेत् ।
बलिप्रदानतः सर्वान् स्वस्वमंत्रैर्यथादिशम् ॥४९२॥
ततः कुंभं समुद्धार्य तोयचोचेक्षुसद्रसैः ।
सद्घृतैश्च ततो दुग्धैर्दधिभिः स्नापयेज्जिनम् ॥४९३॥
तोयैः प्रक्षाल्य सच्चूर्णैः कुर्यादुद्वर्तनक्रियाम् ।
पुनर्नीराजनं कृत्वा स्नानं कषायवारिभिः ॥४९४॥
चतुष्कोणस्थितैः कुम्भैस्ततो गन्धाम्बुपूरितैः ।
अभिषेकं प्रकुर्वीरन् जिनस्य च सुखार्थिनः ॥४९५॥

स्नोतपाद्गं प्रतिष्ठाप्य जिनाभिषेकवारिणा ।
जलगन्धादिभिः पश्चादर्चयेद्विम्बमर्हतः ॥४९६॥
स्तुत्वा जिनं विसर्ज्यापि दिगीशादिमरुद्गणान् ।
अर्चिते मूलपीठेऽथ स्थापयेज्जिननायकम् ॥४९७॥

वरांगचरिते वर्धमानभट्टारकाः—

(८)

यः संस्थाप्य जिनेन्द्रं विधिवत्पंचामृतैर्जिनं यजते ।
जलगन्धाक्षतपुष्पैर्नैवेद्यैर्दीपधूपफलनिवहैः ॥१६॥
यो नित्यं जिनमर्चति स एव धन्यो निजेन हस्तेन ।
ध्यायति मनसा शुचिना स्तौति च जिह्वागतैः स्तोत्रैः ॥१७॥
—सर्ग १२ ।

श्रीपालचरित्रे सकलकीर्तिभट्टारकाः[1]—

(९)

कृत्वा पंचामृतैर्नित्यमभिषेकं जिनेशिनाम् ।
ये भव्याः पूजयन्त्युच्चैस्ते पूज्यन्ते सुरादिभिः ॥

× × × ×

१—आचार्य सकलकीर्ति आचार्य पद्मनन्दी के पट्ट पर हुए हैं। इन्हों ने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं, जो जैनसमाज में बड़ी ही भक्ति के साथ पढ़े जाते हैं। इतना ही नहीं, ये बहुत ही प्रामाणिक भी माने जाते हैं। वि० सं० १४९० और १४९२ की इन के द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां भी पाई जाती हैं। सुनते हैं, इन का स्वर्गवास १४९९ में गुजरात के महसाना नगर में हुआ था। कहते हैं, वहां इन की समाधि भी बनी हुई है।

मूर्ध्नां गत्वानु संस्नाप्यामृतैः पंचविधैर्वरैः ।
जिनेन्द्रप्रतिमां भक्त्या पूजयेत्स्वशुभाप्तये ॥

उपदेशरत्नमालायां पंडिताचार्य-सकलभूषण[1]:—

(१०)

पंचामृतैः सुमंत्रेण मंत्रितैर्भक्तिनिर्भरः ।
अभिषिच्य जिनेन्द्राणां प्रतिबिम्बानि पुण्यवान् ॥

णमोकारकल्पे सिंहनन्दिन[2]:—

(११)

पूजाद्रव्यं कुंकुमं च सदकं चरुसंचयं ।
रत्नदीपकं वामे च धूपकुंडं च दक्षिणे ॥
फलं देयं जिनेशस्य पुरतो बीजपूरकं ।
चूतं चोचाम्रकदलीमुखं षट्कर्तुषु क्रमात् ॥

१—इन ने वि० सं० १६२७ में इस ग्रन्थ की रचना की थी। ये आचार्य सकलकीर्ति की परम्परा में हुए हैं। भट्टारक शुभचन्द्र के ये शिष्य थे। ग्रंथरचना के समय शुभचन्द्र के पट्ट पर सुमतिकीर्ति थे। वि० १६२६ में सुमतिकीर्ति विरक्त हो गये थे और गुणकीर्ति को अपने पट्ट पर अभिषिक्त कर दिया था ऐसा, भिलोड़ा (गुजरात) के बावन जिनालय आदि के वर्णन में स्वयं सकलभूषण ने लिखा है।

२—इन ने वि० सं० १६६७ में यह कल्प बनाया है। अतः इन का समय विक्रम की सत्तरहवीं शताब्दी है। ये सेनसंघ के थे। इन की परम्परा वगैरह पुस्तक इस समय पास न होने से नहीं दे सके हैं।

कंकोलैलालवंगादिसर्वौषध्याभिषेचनं ।
दधिदुग्धेक्षुसर्पिर्भिरभिषेको जिनस्य च ॥

पद्मपुराणभाषा में पं० दौलतरामजी[1]

(१२)

जो नीर कर जिनेंद्र का अभिषेक करैं सो देवों कर मनुष्यों कर सेवनीक चक्रवर्ती होय, जिस का राज्याभिषेक देव विद्याधर करैं और जो दुग्धकर अरहंत का अभिषेक करैं सो क्षीरसागर के जल समान उज्वल विमान के विषैं परम कांति धारक देव होय फिर मनुष्य होय मोक्ष पावै और जो दधिकर सर्वज्ञ वीतराग का अभिषेक करै सो दधिसमान उज्वल यश को पाय कर भवोदधि को तरै और जो घृत कर जिननाथ का अभिषेक करै सो स्वर्ग विमान विषैं महाबलवान् देव होय परंपराय अनन्तवीर्य को धरै और जो ईषरस कर जिननाथ का अभिषेक करै सो अमृत का आहारी सुरेश्वर होय नरेश्वर पद पाय मुनीश्वर होय अविनश्वर पद पावै। अभिषेक के प्रभाव कर अनेक भव्यजीव देवों कर इंद्रों कर अभिषेक पावते भये तिनकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।

पर्व ३२ श्लोक नं० १६५-१६८

१—पद्मपुराण की भाषा पं० दौलतरामजी ने वि० सं० १८२३ में बनाई है। पद्मपुराण के मूलश्लोकों का यह अनुवाद है। यह भाषा जैन समाज में अत्यधिक आदरणीय मानी जाती है। पं० दौलतरामजी जयपुर की तेरह पंथ शैली में एक समादृत विद्वान् थे।

वसुनन्दिश्रावकाचारभाषा में बाबा दुलीचन्दजी[1]—

(१३)

भगवान का गर्भावतार अर जन्माभिषेक, तपकल्याण, ज्ञान-कल्याण, निर्वाणकल्याण, जिस दिन विषै हुवा तिह दिन विषै कलशाभिषेक अर प्रभावना करणी । इक्षुरस, घृत, दही, दूध, सुगंध जलका पवित्र नाना प्रकार का कलशा करि अभिषेक करणा । बहुरि रात्रि विषै जागरण संगीत नाटकादिक जो संगीत नृत्य तथा गानादिक करणा । अर नंदीश्वर के आठ दिन विषै तथा और भी उचित पर्व्या विषै जो करै भगवान की महिमा सो काल पूजा जाणनी, या कालपूजा कही ।

—पत्र ८?, गा०, नं० ५३–५४–५५ ।

१—बाबाजी ने यह भाषा कौन से सम्वत् में बनाई थी । यह हमारे पास की प्रतिका अंतिम पत्र गायब होजाने से नहीं लिख सके हैं । बाबाजी इसी बीसवीं शताब्दी में करीब २०–२५ वर्ष कम तक जीवित थे । संभवतः वे यह भाषा १९५५ के पहले किसी समय में बना चुके थे ।

पूजा-विधिः

भगवत्पूज्यपादस्वामी स्वप्रणीत महाभिषेक के प्रारम्भ में पूजक के लिए लिखते हैं कि पूजा-अभिषेक के प्रारम्भ में मैं पूजक अर्हन्तदेव को नमस्कार कर जलस्नान से, मन्त्र से और व्रतस्नान से शुद्ध होकर, आचमन कर, अर्घ्य देकर, पवित्र सफेद अन्तरीय (धोती) और उत्तरीय (दुपट्टा) पहन-ओढ़ कर, वन्दनाविधि के अनुसार तीन प्रदक्षिणा देकर जिनालय को नमस्कार अर्थात् स्तुति करता हूँ। तथा द्वारोद्‌घाटन और मुखवस्त्र हटाकर विधिपूर्वक ईर्यापथशुद्धि करके, सिद्धभक्ति करके, सकलीकरण करके, जिनेन्द्रदेव की पूजा करने के लिए भूमिशुद्धि, पूजाद्रव्य की शुद्धि, पूजापात्रों की शुद्धि और आत्मशुद्धि कर के भक्तिपूर्वक मन वचन काय की शुद्धि से अब जिनेन्द्रदेव का महामह अर्थात् अभिषेक-पूजा प्रारम्भ करता हूँ।

अभिषेक-पूजा की विधि लिख कर अन्त में लिखते हैं कि जो व्यक्ति इस प्रकार पंचोपचारों से मन्त्रपूर्वक जिन भगवान् का पूजन कर के मन्त्रों सहित अनेक प्रकार के पुष्पों से, निर्मल मणियों के समुदाय से से तथा अंगुलियों से एक सौ आठ जाप देकर अर्हन्तदेव की आराधना करके और चैत्यभक्ति,आदि,आदि शब्द से पंचमहागुरुभक्ति और शान्ति-भक्तिद्वारा स्तवन करके शान्तिमन्त्र और गणधरवलय को पंचवार पढ़कर और पुण्याहवाचन का घोषण कर, इस के बाद जिनेन्द्र के चरण-कमलों से पूजित शेषा—आसिका को मस्तक चढ़ा कर, जिनालय की तीन प्रदक्षिणा देकर, मन वचन काय की शुद्धिपूर्वक जिनेन्द्र को नमस्कार कर और अमरगण अर्थात् पूजा के लिए बुलाये गये देवों का विसर्जन कर पूज्यपाद जिनेन्द्र की पूजा करता है वह देवनन्दीविनयी विद्वान् मर्त्यलोक और देवलोक में शीघ्र ही सुख प्राप्त करता है।

और सिद्धान्त में लिखा है कि पूजाभिषेक मंगल में सिद्धभक्ति को आदि लेकर शान्तिभक्ति पर्यन्त की चार भक्तियां की जाती हैं। अथवा अभिषेकवन्दना, सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति द्वारा की जाती है। यथा—

सिद्धभक्त्यादिशान्त्यन्ता पूजाभिषवमंगले।

अथवा—

अहिसेयवंदणा सिद्ध-चेदिय-पंचगुरु-संतिभत्तीहिं।

भगवत्पूज्यपादस्वामी ने अभिषेक-पूजाविधि स्वयं बता दी है। आद्यविधि और अन्त्यविधि की दो दो पद्यों द्वारा सूचना मात्र दी है। तदनुसार शास्त्रान्तर से थोड़ी सी आद्यविधि और अन्त्यविधि यहां लिखी जाती है।

आद्यविधि—

जल स्नान के पहले यह मन्त्र पढ़ कर वस्त्रांचल से शरीर का शोधन करे—

ॐ ह्रीं ह्रं श्रीं नमः भूः प्रपद्ये, भुवः प्रपद्ये, स्वः प्रपद्ये, श्रीमच्चतुर्विंशतितीर्थंकरचरणशरणं प्रपद्ये, ममाङ्गानि शोधयामि स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़ कर जल से हाथ धोवे—

ॐ ह्रीं ह्रं श्रीं नमः हस्तशुद्धिं करोमि स्वाहा।

अनन्तर जिस पात्र में जल लेकर स्नान करना हो उस पात्र को यह मंत्र पढ़ कर जल से शुद्ध करे—

ॐ ह्रीं ह्रं श्री नमोऽर्हते भगवते पवित्रजलेन पात्रद्रव्यशुद्धिं करोमि स्वाहा।

अनन्तर उस पात्र में जल भर कर उस को इस मंत्र से मंत्रित करे—

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हं नमः, इदं समस्त-गंगासिन्ध्वादिनदीनदतीर्थजलं भवतु स्वाहा ।

अनन्तर यह मंत्र पढ़ कर जलस्नान करे—

ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय सं हं क्षं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सं अ सि आ उ सा अर्हं नमः मम सर्वाङ्गशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ।

उक्त जलस्नान के अनन्तर नीचे लिखा मंत्रस्नान का मंत्र पढ़े—

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा हं नमः वं मं हं सं तं पं, वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं क्षं क्षं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं क्षं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा हं नमः मम सकलकर्ममलं प्रक्षालय प्रक्षालय स्वाहा ।

अनन्तर नीचे लिखा मंत्र पढ़ कर व्रत ग्रहण करे इसी का नाम व्रतस्नान है—

ॐ ह्रीं हं श्रीं नमः अणुव्रतपंचकं गुणव्रतत्रयं शिक्षाव्रतचतुष्टयं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधून् साक्षीकृत्य सम्यक्त्वपूर्वकं सुव्रतं दृढव्रतं समारूढं भवतु मह्यं स्वाहा ।

अनन्तर नीचे लिखा मंत्र पढ़ कर धोती-दुपट्टा पहने-ओढ़े—

ॐ ह्रीं हं श्रीं नमः श्वेतवर्णे सर्वोपद्रवहारिणी सर्वमनोरंजिनी परिधानोत्तरीयधारिणी हं हं क्षं क्षं वं वं सं सं तं तं पं पं परिधानोत्तरीये धारयामि स्वाहा ।

अनन्तर देवपूजा¹ के लिए श्रीजिनमन्दिर को आवें, वहाँ उचित स्थान में बैठकर दोनों हाथों और दोनों पैरों को धोवें। अनन्तर—

"निसही निसही निसही"

ऐसा तीन बार उच्चारण कर चैत्यालय में प्रवेश करें। वहां जिनेन्द्रदेव के मुख का अवलोकन कर तीन बार प्रणाम करें। अनन्तर "दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि" इत्यादि दर्शन-स्तोत्र को वन्दना मुद्रा जोड़ कर पढ़ते हुए चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा देवें। प्रत्येक दिशा में तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनति करते जावें।

अनन्तर² खड़ा रह कर, दोनों पैरों को समान कर, चार अंगुल का अन्तर रख कर और दोनों हाथों को मुकुलित कर नीचे लिखा "ऐर्यापथिक³ दोषविशुद्धिपाठ" पढ़ें।

पडिक्कमामि भंते! इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते, अइग्गमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीजुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडिपइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, बे इंदिया वा, ते इंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा,

---

१—सुतरङ्घ्यात्मनि स्तुत्यं पश्यन् गत्वा जिनालयम्।
कृतद्रव्यादिशुद्धिस्तं प्रविश्य निसहीगिरा ॥ १ ॥
चैत्यालोकोद्यदानन्दगलद्बाष्पस्त्रिरानतः।
परीत्य दर्शनस्तोत्रं वन्दनामुद्रया पठन् ॥ २ ॥

२—कृत्वेर्यापथसंशुद्धि······।

३—प्रतिक्रम्य पृथग्गाथां द्विष्ट्यैकाशान्तरेऽपकाम्।
नव कृत्वः स्थितो जपवा निषद्यालोचयाम्यहम् ॥

संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, परिदाविदा वा, किरिच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाणचंकमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्तकरणं तस्स विसोहिकरणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकारं पज्जुवासं करोमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

इस तरह प्रतिक्रमण पढ़ कर "णमो अरहंताणं" इत्यादि गाथा का सत्ताईस उच्छ्वासों में नौ बार खड़े खड़े जाप्य देवें। अनन्तर पर्यंकासन बैठ कर नीचे लिखा "आलोचना-पाठ" पढ़े—

आलोचना—

ईर्यापथे प्रचलिताद्य मया प्रमादा—
देकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा।
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥१॥

इच्छामि भंते! आलोचेउं इरियावहियस्स पुव्वुत्तरदक्खिण-पच्छिमचउदिसविदिसासु विहरमाणेण जुगंतरदिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा। पमाददोसेण डवडवचरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अनन्तर [1]उठकर देव को पंचाङ्ग नमस्कार करे। पुनः देव के समक्ष बैठ कर कृत्य विज्ञापन करे कि—

नमोऽस्तु भगवन्! देवपूजां करिष्यामि।

१.........................मालोच्यानतकांघ्रिभिरीः।
नत्वाश्रित्य गुरोः कृत्यं पर्यंकस्थोऽग्रमंगलम् ॥ ३ ॥

अनन्तर पर्यंकासन से बैठे हुए ही नीचे लिखा मुख्य मंगल पढ़े—

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थसिद्धेः कारणमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ॥१॥
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम् ॥२॥

[1]अनन्तर बैठे बैठे ही नीचे लिखा पाठ पढ़ कर सामायिक स्वीकार करे ।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि ॥१॥
रायबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥२॥
हा दुट्ठकयं हा दुट्ठचिंतियं भासियं च हा दुट्ठं ।
अंतोअंतो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेयंतो ॥३॥
दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराहसोहणयं ।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचकाएण पडिकमणं ॥४॥
समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं मतं ॥५॥

[2]अथ कृत्यविज्ञापना—

भगवन्नमोऽस्तु प्रसीदंतु प्रभुपादाः, वंदिष्येऽहं एषोऽहं सर्वसावद्ययोगाद्विरतोऽस्मि ।

अनन्तर नीचे लिखा क्रियाविज्ञापन करे—

अथ पौर्वाह्णिकं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि ।

१—उक्त्वात्तसाम्यो ·································· ।
२·············विज्ञाप्य क्रिया·····

इस तरह कृत्यविज्ञापना कर खड़े हो कर भूमि-स्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करे। पश्चात् जिनप्रतिमा के सन्मुख चार अंगुल प्रमाण दोनों पैरों का अन्तर कर खड़े होवें। तीन आवर्त और एक शिरोनमन करे। पश्चात् मुक्ता-शुक्ति मुद्रा जोड़ कर नीचे लिखा सामायिक दण्डक पढ़े। पहले उच्छ्वास में अर्हत्-सिद्ध मंत्र का, दूसरे में आचार्य-उपाध्याय मन्त्र का और तीसरे में सर्व-साधु मन्त्र का स्वश्रवणगोचर जिसे दूसरा न सुन सके इस तरह एक बार उच्चारण कर पश्चात् चत्तारि दण्डक स्तोत्र को समीपस्थ मनुष्य के कानों को मनोहर मालूम पड़े ऐसी सुरीली आवाज से पढ़े। तथथा—

सामायिक दंडक—

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं (१) णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं (२) णमो लोए सव्व साहूणं (३) ॥१॥

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं,

---

१..............................मुत्थाय विमर्द।
महीकृत्य त्रिभ्रमैकशिरोवनतिपूर्वकम्॥ ४॥
मुक्ताशुक्त्यंकितकरः पठित्वा साम्यदण्डकम्।

धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंग-चक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं, णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं ।

करेमि भंते ! सामइयं (देवपूजां) सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं (जावन्नियमं) तिविहेण मणसा वचसा कायेण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि । तस्स भंते ! अइचारं पच्चक्खामि, णिंदामि गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

इस प्रकार सामायिक दंडक पढ़ कर पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति करे। पश्चात् जिनमुद्रा जोड़ कर कायोत्सर्ग करे। जिस में 'णमो अरहंताणं' इत्यादि मन्त्र का सत्ताईस उच्छ्वासों में नौ बार पूर्वोक्त विधि के अनुसार जाप देवें या चिन्तन करे।

अनन्तर भूमिस्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करे। पश्चात् पूर्वोक्त विधि से खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर नीचे लिखा चतुर्विंशतिस्तव पढ़े—

चतुर्विंशतिस्तव—

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे ।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे ॥१॥
लोयस्सुज्जोययरे धम्मंतित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥
एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता ।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर नीचे लिखी सिद्ध-भक्ति पढ़े—

लघुसिद्धभक्ति—

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥१॥

आलोचना—

(बैठ कर)

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्ममुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं अदीदाणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं ।

सकलीकरण—

ॐ ह्रीं ह्रं क्ष्वां ठ ठ स्वाहा ।
यह मन्त्र पढ़ कर दर्भासन बिछावे ।

ॐ ह्रीं ह्रैं निस्सही हूं फट् दर्भासने उपविशामि स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़ कर दर्भासन पर बैठे।

ॐ ह्रीं ह्रैं ह्र्धं मौनस्थिताय अर्हं मौनव्रतं गृह्णामि स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़ कर मौन ग्रहण करे।

ॐ ह्रीं ह्रैं भगवतो जिनभास्करस्य बोधसहस्रकिरणैर्मम कर्मेन्धनस्य द्रव्यं शोषयामि घे घे स्वाहा।

इस मन्त्र का उच्चारण कर कर्म रूपी ईंधन का शोषण करे।—शोषण।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा ह्रैं रं रं रं रं ॐ ॐ ॐ ॐ ह्म्ल्व्र्यूं सं दह दह कर्ममलं दह दह दुःखं हूं हूं फट् फट् घे घे स्वाहा।

इस मन्त्र का उच्चारण कर कर्मरूपी ईंधन जल गये, ऐसा चिन्तवन करे।—दहन।

ॐ ह्रीं ह्रैं श्रीं नमो जिनप्रभजिनाय कर्मभस्मविधूननं करोमि स्वाहा।

ऐसा उच्चारण कर कर्मरूपी ईंधन की भस्म उड़ गई, ऐसा चिन्तवन करे।——प्लावन।

अनन्तर पंचगुरुमुद्रा जोड़ कर उस के अग्रभाग में अ सि आ उ सा को और उन के ऊपर झं वं ह्वः पः ह्वः इन अमृत बीजों को निक्षिप्त कर उस मुद्रा को अपने शिर पर अधोमुख रख कर नीचे लिखा मन्त्र पढ़े—

ॐ ह्रीं ह्रैं श्रीं नमः अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय हं हं झं झं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्वं पः ह्वः अ सि आ उ सा ह्रैं नमः स्वाहा।

ऐसा उच्चारण कर उस मुद्रा से झरती हुई अमृतधारा से अपने को स्नान कराये। —अभिषवण।

इस तरह तीन प्रकार से विशुद्ध होकर करन्यास करे। दोनों हाथों की कनिष्ठा आदि पांचों अंगुलियों के मूल की रेखाओं मध्य की रेखाओं और अग्रभाग की रेखाओं पर नीचे लिखे पंचनमस्कारों का अंगुली-क्रम से निक्षेप करे।

ॐ ह्रां णमो अरहंताणं—कनिष्ठा पर।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं—अनामिका पर।

ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं—मध्यमा पर।

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं—तर्जनी पर।

ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं—अंगूठे पर।

अनन्तर—

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा हूं नमः—यह मन्त्र पढ़ कर दोनों हाथों को संपुटित करे। इसे करन्यास कहते हैं। —करन्यास।

अनन्तर दोनों अंगूठों से ही स्वाङ्गन्यास करे। अर्थात् दोनों अंगूठों से नीचे लिखे मन्त्र पढ़ते हुए हृदय आदि स्थानों का स्पर्श करे।

ॐ ह्रां णमो अरहंताणं स्वाहा—हृदि।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा—ललाटे।

ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं स्वाहा—शिरसो दक्षिणे।

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा—शिरसः पश्चिमे।

ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं—शिरसो वामे।

—प्रथम स्वाङ्गन्यास।

अनन्तर उक्त मन्त्रों को पढ़ते हुए दोनों अंगूठों से क्रम से शिर के मध्य भाग का, शिर के आग्नेय भाग का, शिर के नैऋर्त्यभाग का, शिर के वायव्य भाग का और शिर के ईशान भाग का स्पर्श करे।

—द्वितीय अंगन्यास।

अनन्तर उक्त मन्त्रों को पढ़ते हुए दोनों अंगूठों से क्रम से दक्षिण भुजा, वाम भुजा, नाभि, दक्षिण पसवाड़े और वाम पसवाड़े का स्पर्श करे।

—तृतीय अंगन्यास।

अनन्तर अपने बायें हाथ की तर्जनी अंगुली पर उक्त णमोकार मन्त्र की स्थापना कर अपनी रक्षा के लिये पूर्वादि दशों दिशाओं में उस अंगुली को क्रम से फिरावे।

अनन्तर—

ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः स्वाहा इन कूट बीजाक्षरों को और ॐ हां हीं हूं हें हैं हों हौं हं हः स्वाहा इन शून्य बीजाक्षरों को पूर्वादि दशों दिशाओं में क्षेपण करे। —दिशाबन्ध।

अनन्तर—

ॐ हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुं, अस्त्राय फट्।

यह मन्त्र पढ़ कर शिखाबन्ध करे। —शिखाबन्ध।

अनन्तर—

ॐ ह्रां णमो अरहंताणं अर्हद्भ्यो नमः।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धेभ्यो नमः।

ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं आचार्येभ्यो नमः।

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायेभ्यो नमः।

ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं लोके सर्वसाधुभ्यो नमः ।

इस मन्त्र का इक्कीस बार जाप दे ।—परमात्म-ध्यान ।

इस प्रकार सकलीकरण करने वाले को कोई से भी विघ्न नहीं सताते, आधि-व्याधि नष्ट हो जाती हैं और दुर्जन भी पीड़ा नहीं देते ।

यह मन्त्र पढ़ कर पूजा-पात्रों को जल से शुद्ध करे—

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रजलेन पात्रशुद्धिं करोमि स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़ कर पूजा द्रव्यों को शुद्ध करे—

ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्मौं क्ष्वौं वं मं हं सं तं पं झ्वीं क्ष्वीं हं सं अ सि आ उ सा समस्तजलेन पूजापात्रे निक्षिप्तपुष्पादिपूजाद्रव्याणि शोधयामि स्वाहा ।

अनन्तर आगे मुद्रित अभिषेकों में से कोई से अभिषेक के अनुसार परमात्मा के प्रतिबिंब का अभिषेक करे। अनन्तर जो जो पूजाएँ करनी हों—करे।

अन्त्यविधि—

पूजा के अनन्तर १०८ जाप देकर क्रमसे चैत्यभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़े । इनके पढ़ने की विधि यह है—

परमात्मा के अभिमुख बैठकर कृत्यविज्ञापन करे कि—

अथ पौर्वाह्निकजिनपूजायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसहितं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि ।

अनन्तर खड़े होकर सिद्धभक्ति कायोत्सर्ग में बताई हुई विधि के अनुसार सामायिकदंडकादि पढ़ कर चैत्य के प्रदक्षिणा देते हुए "जयति भगवान्" इत्यादि अथवा "वर्षेषु वर्षान्तर" इत्यादि चैत्यभक्ति पढ़े ।

भक्ति के पूर्ण हो जाने पर परमात्मा के सन्मुख बैठ कर उस के अन्त में लिखी हुई अंचलिका पढ़े। पश्चात्—

अथ पौर्वाह्णिकजिनपूजायां…… ……पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—ऐसा कृत्यविज्ञापन कर खड़ा होवे। पूर्वोक्त विधि से कायोत्सर्ग कर'मणुयणाइंद' इत्यादि पंचमहागुरुभक्ति पढ़े।

अनन्तर भक्ति के अंत में लिखी अंचलिका बैठकर पढ़े। अंचलिका पूर्ण हो जाने पर नीचे लिखा कृत्यविज्ञापना कर खड़ा होवे—

अथ पौर्वाह्णिकजिनपूजायां…………शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अनन्तर पूर्वोक्त विधि के अनुसार कायोत्सर्ग करके "**शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं**" इत्यादि स्तुति पुष्प प्रक्षेपण करते हुए पढ़े।

अन्त में बैठ कर अंचलिका पढ़े। अंचलिका पूर्ण होने पर निम्न प्रकार कृत्यविज्ञापना करे कि—

अथ पौर्वाह्णिकजिनपूजायां…… ……सिद्धभक्ति-चैत्यभक्ति-पंचमहागुरुभक्ति-शान्तिभक्तीर्विधाय तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोमि—

अनन्तर खड़े होकर पूर्वोक्तविधि से कायोत्सर्ग कर "**अथेष्ट-प्रार्थना प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः**" इत्यादि समाधिभक्ति पढ़े[1]।

अनन्तर शान्तिमन्त्र और गणधरवलय को पांचबार पढ़ कर

१—ऊनाधिक्यविशुद्ध्यर्थं सर्वत्र प्रियभक्तिका।

पुण्याहघोषणा करे। अनन्तर आसिका ले। जिनालय के तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्र को नमस्कार करे और क्षमापणा पूर्वक देवों का विसर्जन करे।

क्षमापणा में 'ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि' इत्यादि तीन श्लोक पढ़ें। देवता-विसर्जन में 'आहूता ये पुरा देवाः' इत्यादि श्लोक पढ़ कर नीचे लिखा मंत्र पढ़ें।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वे देवाः स्वस्थानं गच्छत गच्छत जः जः जः।

इस संग्रह में प्रकाशित अभिषेकपाठ ।

नं०	ग्रंथनाम कर्ता का नाम	पृष्ठसंख्या
१	महाभिषेक—पूज्यपादस्वामी	१
२	बृहत्स्नपन—गुणभद्रभदन्त	१४
३	जिनाभिषेक—सोमदेव-सूरि	४०
४	लघुस्नपन-सटीक—अभयनन्दि-सूरि	५१
५	जैनाभिषेक सटीक—गजाङ्कुशकवि	६३
६	नित्यमहोद्योत—पंडिताशाधर-सूरि	१०९
७	अभिषेक-क्रम—	२६६
८	जन्माभिषेक-विधि—पंडित अय्यपार्य	२९३
९	नित्यमह—पंडित नेमिचन्द्र	३२२
१०	जिनस्नपन—इन्द्रनन्दी योगीन्द्र	३४०
११	रत्नत्रयाद्यभिषेक—आचार्य सकलकीर्ति	३४७
१२	सिद्धचक्राभिषेक—भट्टारक शुभचन्द्र	३५२
१३	कलिकुंडयंत्राभिषेक—	३५६
१४	जिन-श्रुत-गुरु-सिद्ध-रत्नत्रयस्नपन विधि-पंडिताशाधरसूरि	३५९
१५	भाषापंचामृताभिषेक—	३६७
१६	महाभिषेक या बृहत्स्नपन पंजिका—इन्द्रवामदेव	३७२

अभिषेक पाठ-संग्रहः।

ॐ

॥ नमो जिनाय ॥

अभिषेकपाठ-संग्रहः ।

पूज्यपादापराह्वदेवनन्दि-विरचितो महाभिषेकः ।

(१)

आनम्यार्हन्तमादावहमपि विहितस्नानशुद्धिः पवित्रै-
स्तोयैः सन्मंत्रयंत्रैर्जिनपतिसवनाम्भोभिरप्याप्तशुद्धिः ।
आचम्यार्घ्यं च कृत्वा शुचिधवलदुकूलान्तरीयोत्तरीयः
श्रीचैत्यावासमानौम्यवनतिविधिना त्रिःपरीत्य क्रमेण ॥१॥
द्वारं चोद्घाट्य वक्त्राम्बरमपि विधिनेर्यापथाख्यां च शुद्धिं
कृत्वाहं सिद्धभक्तिं श्रुधनुतसकलीसत्क्रियां चादरेण ।
श्रीजैनेन्द्रार्चनार्थं क्षितिमपि यजनद्रव्यपात्रात्मशुद्धिं
कृत्वा भक्त्या त्रिशुद्ध्या महमहमधुना प्रारभेयं जिनस्य ॥२॥
ॐ वः पुष्णातु पुण्याभ्युदयमभिषवारम्भ एष स्वयम्भू-
र्देवस्य स्नानपीठे कृतकनकगिरेर्यस्य जन्माभिषेके ।
दूराद्दुग्धोदधाराम्बुनि विबुधगणैर्नूनमावर्ज्यमाने-
जातो नाद्यापि रूढेर्विरमति जगति व्योमगंगास्तिवादः ॥३॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भूः स्वाहा । प्रस्तावनपुष्पाञ्जलिः ।

ॐ शुद्धयर्थं तीर्थनाथस्नपनभुवमिमां नाकभूलोकराज-
श्रीवल्लीपुण्यबीजाङ्कुरजननभुवं वार्भिरासिच्य रुच्यैः ।
पूतैर्दर्भैरवामभ्रमदमलशिखाजालभस्मीकृताप-
स्वांशं हुत्वा हुतांशं मुदमुपनिदधे भोगिवृन्दैः सुधाभिः ॥४॥

ॐ ह्रीं नमः सर्वज्ञाय सर्वलोकनाथाय धर्मतीर्थंकराय श्रीशान्तिनाथाय परमपवित्रेभ्यः शुद्धेभ्यो नमो भूम्यशुद्धिं करोमि स्वाहा । भूमिशोधनम् ।

ॐ ह्रीं क्षीं अग्निं प्रज्वालयामि निर्मलाय स्वाहा ।

ॐ ह्रीं वन्हिकुमाराय स्वाहा ।

ॐ ह्रीं ज्ञानोद्योताय नमः स्वाहा । अग्निज्वालनम् ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्षीं भूः नागेभ्यः स्वाहा । नागतर्पणम् ।

ॐ ह्रीं अत्रस्थक्षेत्रपालाय स्वाहा । क्षेत्रपाल बलिदानम् ।

भूमिशुद्धिर्भूदेवताबलिः ।

ब्रह्मस्थानमिदं दिशावलयमप्येतत्पवित्रांकुरै-
रर्हद्ब्रह्ममहामहाध्वरविधिप्रत्यूहविध्वंसिभिः ।
जैनब्रह्मजनैकभूषणमिदं यज्ञोपवीतं मया
बिभ्राणेन महेन्द्रविभ्रमकरं संधार्यते मण्डनम् ॥५॥

ॐ ह्रीं क्रों दर्पमथनाय नमः स्वाहा । ब्रह्मादिदशदिग्बलिः ।

ॐ ह्रीं नीरजसे नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं शीलगन्धाय नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं अक्षताय नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं विमलाय नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं परमसिद्धाय नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं ज्ञानोद्योताय नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं श्रुतधूपाय नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं अभीष्टफलदाय नमः स्वाहा ।

नवदर्भाष्टविधार्चना-भूम्यर्चनम् ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा।
ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्राय स्वाहा।
ॐ ह्रीं इन्द्रोऽहं स्वाहा।

यज्ञोपवीताभरणपवित्रेन्द्रमंत्राः।

भव्यक्षेमनिधानपुण्यकलशाः स्थाप्यन्त एते मया
चत्वारः कलधौतपूर्णकलशाः कोणेषु यज्ञक्षितेः।
मत्वा मन्दरशैलशेखरशिलापीठं जगद्गोमिनी–
भर्तुर्मज्जनपीठमेतदपि च प्रक्षाल्य सम्पूज्यते ॥६॥

ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रौं नेत्राय संवौषट् कलशार्चनं करोमि स्वाहा।
ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्मं ठ ठ श्रीपीठं स्थापयामि स्वाहा। पीठस्थापनम्।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रजलेन श्रीपीठ-प्रक्षालनं करोमि स्वाहा।

कलशस्थापनार्चनश्रीपीठस्थापनप्रक्षालनानि।

तोयैश्चन्दनपंकिलैः परिमलं मुञ्चद्भिरालेपनै–
र्गन्धोद्गारिभिरक्षतैरलिवधूकान्तैर्लतान्तोच्चयैः।
घ्राणामोदमनोहरेण हविषा दीपैरदीनप्रभै–
र्धूपैरागुरवैः फलैरलिखितैः पीठीमिमां प्रार्चये ॥७॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राय स्वाहा।
ॐ ह्रीं दर्पमथनाय स्वाहा।

श्रीपाठार्चन-दर्भस्थापनम्।

अर्हन्नाथस्य यागं प्रकटयितुमिवाशेषदिक्पालकेभ्यः
सर्वाशाकोटरेषु प्रसरति सुभगे गेयवाद्यप्रघोषे।
श्रीवर्णाकीर्णमुक्ताफलपटलहटचण्डुलव्रातमेत—
त्पीठं श्रीपादपीठे कृतसुरभिरसं देवमारोपयामि ॥८॥

ॐ ह्रीं श्रीलेखनं करोमि स्वाहा ।
ॐ ह्रीं श्रीं श्रीयन्त्रं पूजयामि स्वाहा ।
ॐ ह्रीं ध्यातृभिः अभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं धात्रे वषट् नमः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनं करोमि स्वाहा ।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः पवित्रतरजलेन पात्रद्रव्यशुद्धिं करोमि स्वाहा ।
ॐ ह्रीं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रजलेन श्रीपादप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ।

श्रीलेखन-श्रीयन्त्रार्चन प्रतिमास्थापन-श्रीपादप्रक्षालनपूजोपचारमन्त्राः ।

दूर्वापल्लवगुच्छलाञ्छनशिखैः सिद्धार्थधौताक्षत—
स्मेरैः स्वस्तिकवर्धमानपटलैरन्यैश्च नीराजनैः ।
ईदृक्षःप्रभुमज्जनक्रम इति त्रैलोक्यरक्षामणि—
र्देवोऽयं विहितावतारणविधिः श्रीपादयोः पूज्यते ॥९॥

ॐ ह्रीं क्रौं समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भगवान् स्वाहा ।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं पाद्यमर्घ्यं करोमि नमोऽर्हद्भ्यः स्वाहा ।

नीराजनापाद्यार्घविधिः ।

वार्भिर्निर्भरसौरभभ्रमधुकृतां गन्धैः सुगन्धप्रियैः
प्राप्तैर्मौक्तिकदामशालिमदकैः पुष्पैः सुपुष्पन्धयैः ।
सामोदैश्चरुभिः प्रकाशितशिखैर्दीपैर्जगद्बन्धुरैः
धूपैः सूतसुधैः फलैर्महमहं निर्मामि कर्मच्छिदः ॥१०॥

ॐ ह्रीं अर्हन्नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं अर्हन्नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं अर्हन्नमः अनादिनिधनेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं अर्हन्नमः सर्वनृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं अर्हन्नमोऽनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं अर्हन्नमोऽनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं अर्हन्नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा।
ॐ ह्रीं अर्हन्नमोऽनन्तसौख्येभ्यः स्वाहा।

इत्यष्टविधार्चनम्।

पूर्वाशादेश हव्यासन महिषगते नैर्ऋते पाशपाणे
वायो यक्षेन्द्र चन्द्राभरण फणिपते रोहिणीजीविनेश।
सर्वेऽप्यायात यानायुधयुवतिजनैः सार्धमों भूर्भुवः स्वः
स्वाहा गृह्णीत चार्घ्यं चरुममृतमिदं स्वस्तिकं यज्ञभागं ॥११॥

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिन्हसपरिवारा इन्द्राग्नियमनैर्ऋत्यवरुणवायुकुबेरेशानधरणेन्द्रसोमनामदशलोकपाला आगच्छत आगच्छत सम्वौषट्, स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, ममात्र सन्निहिता भवत भवत वषट् इदमर्घ्यं पाद्यं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा।

इन्द्रादिदशलोकपालपरिवारदेवतार्चनम्।

ॐ तुर्याराद्येशपर्णार्चितरुचिरचक्रप्रीतदिक्पालसंस—
त्संगीतारंभवाद्यारव इव सरति व्योमसूद्दामगीते।
देवं धर्मैकचक्रेश्वरमखिलजगद्भव्यचक्रात्मसार्धं—
स्वार्थाभ्युद्धारहेतोः स्नपयितुमयमप्युद्धृतः पूर्णकुंभः ॥१२॥

ॐ ह्रीं स्वस्तये पूर्णकलशोद्धरणं करोमि स्वाहा।

एतज्जैनेन्द्रवृन्दारकजनसवनानन्दकन्दप्ररोह—
स्कल्याणोद्यानकुल्या जल इति मनसा नेत्रपेयं विनेयैः।
भूयाद्भूतैकबन्धो स्नपनजलमिदं मोहनीयप्रहोग्र—
व्याबाधाशांतिधाराजलमखिलजगद्भव्यसस्यव्रजस्य ॥१३॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं क्ष्वीं द्रां द्रीं हं सः त्रैलोक्यस्वामिनो जलाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

जलाभिषेकः।

अच्छं चन्द्रमणिद्रवादपि हिमं चन्द्रांशुजालादपि
स्वादामोदि सुधारसादपि जगत्कान्तं च काव्यादपि ।
एतत्कोमलनालिकेरसलिलं जैनाभिषेकाम्बुनः
पूतं क्षीरधि-वारिणोऽपि कुरुतादात्मोपमं मद्वचः ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं हंहं संसं तंतं पंपं झ्रों झ्रां झ्रीं झ्रीं द्रावय द्रावय झंझं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सत्त्रैलोक्यस्वामिनो नालिकेररसाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

नालिकेररसाभिषेकः ।

एतैरिक्षुरसैश्च दुग्धसलिलैरक्षीरसिन्धूद्भवै-
रेभिश्चूतरसैश्च नूनममृतैः संक्रान्तनामान्तरैः ।
प्राज्यश्रीजिनराजमज्जनविधिः प्राप्तोपयोगार्चित-
स्तोत्रैः श्रोत्ररसायनं त्रिजगतां सम्पद्यतां मद्वचः ॥१५॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं हंहं संसं तंतं पंपं झंझं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सत्त्रैलोक्यस्वामिन इक्षुरसाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

इक्षुरसाभिषेकः ।

यत्प्राज्यं बालसूर्यत्विषिपिदविरलं कुङ्कुमाम्भश्छटाभं
यत्पूर्वं कर्णिकारस्रजि यदुपचितं रोचनाम्भोजदाम्नि ।
तल्लावण्यं लवोस्या रुचयति विनुतच्छायमामोदपीनं
धाराहैयङ्गवीनं जिनसवनविधावस्तु दीर्घायुषे नः ॥१६॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं हंहं संसं तंतं पंपं झंझं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सत्त्रैलोक्यस्वामिनो घृताभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

घृताभिषेकः ।

भक्तेरस्याभिषेक्तुः सपदि परिणतैर्नूनमिष्टैरदृष्टैः—
सिद्धायाः कामधेनोः प्रथमतरमयं प्रस्नवोयप्रवृत्तः ।
इत्यालोक्यत्रिलोकी परमपरमुदः स्नानदुग्धप्लवोऽयं
पुष्याच्चः पुष्पलक्ष्मीदयितजनमनोवर्तिनीं कीर्तिहंसीम् ॥१७॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं हंहं संसं तंतं पंपं झंझं भवीं क्ष्वीं हं सस्त्रैलोक्यस्वामिनः क्षीराभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

क्षीराभिषेकः ।

स्त्यानं शीतगभस्तिमालिविमलज्योत्स्नाम्बु जायेत चेत्
प्रालेयद्युतिनूत्नरत्नसलिलं शीतं भवे द्वादि ।
तस्याल्लब्धसमोपमानमिदमित्यावर्णनीयं जिन—
स्नानीयं दधि सर्वमंगलमिदं सर्वैर्जनैर्वन्द्यताम् ॥१८॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं हंहं संसं तंतं पंपं झंझं भवीं क्ष्वीं हं सस्त्रैलोक्यस्वामिनो दधिस्नपनं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

दध्यभिषेकः ।

स्नेहोन्मज्जनहेतवे जिनपतेस्त्रैलोक्यपुण्योत्तरा—
लम्बं बिम्बमुपागमग्र्य गमितं सौभाग्यमत्यद्भुतम् ।
एभिर्बन्धुरगन्धवस्तुजनितैरुद्वर्तनैश्चन्दन—
क्षोदाद्यैर्भवतां विभूतिवनितावश्यौषधैर्भूयताम् ॥१९॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं हंहं संसं तंतं पंपं झंझं भवीं क्ष्वीं हं सस्त्रैलोक्यस्वामिनः कल्कचूर्णैरुद्वर्तनं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

उद्वर्तनं ।

वर्णाढ्यप्रमुखैर्निवर्तनविधिद्रव्यैर्जगद्वृत्तये
निर्वर्त्य त्रिजगत्प्रभोरभिषवोपान्त्यावतारक्रियां ।

सारक्षीरतरुत्वचां परिचयादेभिः कषायैर्जलै—
स्समस्तसंसृतिसंज्वरज्वरहरैर्निर्वर्तये मज्जनम् ॥२०॥

ॐ ह्रीं क्रौं समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भगवान् स्वाहा ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिभुवनपतेः कषायोदकाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

नीराजन-कषायोदकाभिषेकः ।

तृष्णार्तिच्छेदसिद्धौषधिसलिलघटैर्धर्मसिद्धाश्रमोघ-
त्पुण्यक्षोणीरुहाभ्युक्षणजलकलशैर्भक्तिभाजां जनानाम् ।
मांगल्यद्रव्यगर्भैरभिपवणमहीकोणकल्याणकुम्भै—
रेभिः संस्नापयेऽहं त्रिजगदधिपतिं स्वामिनं देवदेवम् ॥२१॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमोऽर्हते भगवते मङ्गलोत्तमकरणाय कोणकलशजलाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

चतुःकोणकुम्भजलाभिषेकः ।

गन्धाम्भःकुम्भधारा जयति मलयजक्षोदकर्पूरचूर्ण-
प्राज्यामोदप्रमोदग्रहिलमधुकरश्रेणिझङ्कारणीयम् ।
स्वस्वामीये भवेऽस्मिन् महति भगवती भारती चानुरागात्-
पुण्यं पुण्यानुबन्धित्रिभुवनभविनामुद्यमुद्घोषयंति ॥२२॥

ॐ नमोऽर्हन्ते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हन् अ सि आ उ सा नमः मम सर्वशान्तिं कुरु, मम सर्वतुष्टिं कुरु, मम सर्वपुष्टिं कुरु स्वाहा स्वधा ।

गन्धोदकाभिषेकः ।

प्रालेयाद्रिप्रणालीपथपरिगलितस्वर्धुनीनीरवृन्दै-
रर्हद्वृन्दारकस्य स्नपनविधिजलैः सिक्तपूतोत्तमाङ्गः।
श्रीपादौ नाकलोकेश्वरनिकरशिरःशोणमाणिक्यशोचि-
र्बालाशोकप्रवालप्रचयविरचितप्रार्चनामर्चयामि ॥२३॥

ॐ नमोऽर्हत्परमेष्ठिभ्यः मम सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा।

आत्मपवित्रीकरणम्।

ॐ ह्रीं ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा।

पुष्पाञ्जलिः।

अम्भः सेकानपेक्षाः फलमभिलषितं कल्पवृक्षाः फलन्ती-
त्येषा वार्तैव नूनं यदयमुपनमत्यम्भसः सेक एकः।
तेषामेतेषु मूलेष्विति परमजिनेन्द्राङ्घ्रिपीठेषु वारां
धारापातप्रणूतो जनयतु जगदातंकपंकप्रदातिम् ॥२४॥

ॐ ह्रीं अर्हन् नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा।

जलम्।

यत्प्राग्व्यालिप्य दष्टिस्मितमलयरुहालेपनैर्मौलिरत्न-
ज्योतिःकाश्मीरमिश्रैश्चतुर्दिशि भ्रमदामोदिभिर्दिव्यगन्धैः।
व्यालिम्पन्ते निलिंपास्तदहमहमिकासम्पतच्चञ्चरीका-
नीकैर्गन्धप्रवेकैर्भुवनगुरुपदद्वन्द्वमाराधयामः ॥२५॥

ॐ ह्रीं अर्हन् नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा।

गन्धः।

कुन्दानां कुड्मलौघः ककुभि ककुभि जित्सौरभं भूरिगुञ्ज्यै-
द्ध्यायामं प्रकामं भजति च कलिकाजालकं मल्लिकानाम्।

तस्यादस्योपमानं द्वितयमिति जिनेन्द्रार्चनातण्डुलाना-
मुत्कारः स्तूयमानः शिवपदपदवीपान्थपाथेयमस्तु ॥२६॥

ॐ ह्रीं अर्हन् नमोऽनादिनिधनेभ्यः स्वाहा ।

अक्षताः ।

एनोवृन्दान्धकूपप्रपतितभुवनोद्धरणप्रौढरज्जु-
श्रेयःश्रीराजहंसीहरणविसरुहप्रोल्लसत्कन्दवल्ली ।
स्फारोत्फुल्लत्समासन्नयनपडवन श्रोणिपेया विधेया-
त्पुष्पस्रङ्मञ्जरी वः फलमलघुजिनेन्द्राङ्घ्रिदिव्याङ्घ्रिपस्था ॥२७॥

ॐ ह्रीं अर्हन् नमः सर्वनृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा ।

पुष्पम् ।

यद्यत्कामेत्क्रमेण द्वितयमभिचलन्मेघवर्त्मैव वाष्प-
स्तज्जिघ्रन्तोऽस्य गन्धं ध्रुवममृतभुजो विस्मयाद्विस्मरंति ।
स्वैरक्रीडाविलीढातिशयपदमिदं गन्धशालीयमन्धः
कुर्वे निर्वाणलक्ष्मीश्वरचरणचरुं चारुपाच्यप्रकारम् ॥२८॥

ॐ ह्रीं अर्हन् नमोऽनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा ।

चरुः ।

लोकानां नाकलक्ष्मीं वशयितुमनिशोत्पद्यमानोद्यमाना-
मेतज्जानामि सिद्धाञ्जनमिति कलितं कज्जलं प्रोद्वमन्तः ।
ध्वान्तध्वान्तापहारं विदधतु भवतां चक्रचक्रेशचूडा-
मालामाणिक्यदीपार्चितसकलजगद्गेहदीपार्घ्यदीपाः ॥२९॥

ॐ ह्रीं अर्हन् नमोऽनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा ।

दीपः ।

आकण्ठघ्राणपेये सरति परिमले मुख्यविद्याधराणां
प्रायः केलिप्रभावः स्खलति खल इवाम्भोदमार्गे मुहूर्तम्।
इत्याश्चर्यन्तु तस्योत्कलिकलिलतपापायमेघौघधूप-
स्तूपो धूपोऽयमर्हच्चरणमहमखाविष्कृतो याजकानाम् ॥२०॥
ॐ ह्रीं अर्हन् नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा।

धूपः।

आघ्रातुं यद्वदस्याः सुलभमसुलभं सौरभं प्राप्तवन्तः
तद्वत्पातुं रसौघामृतमपि च वयं प्राप्नुमश्चेत्तदानीम्।
किं नाकानोकहानामपि कुसुमरसैरित्यलीनां कुलेन
स्तुत्यागीतापदेशाज्जयति ततिरियं जैनपूजाफलानाम् ॥२१॥
ॐ ह्रीं नमोऽनन्तसौख्येभ्यः स्वाहा।

फलम्।

यानि श्रीमन्ति नानासिचयविरचनावन्ति यानि प्रभोद्य-
न्यञ्चद्भास्वन्ति जाम्बूनदमणिघटावन्ति तैर्दैशिकान्तैः।
द्रव्यैः श्वेतातपत्रत्रितयचमरिजादर्शघण्टाध्वजौघै-
रर्हन्तं मुक्तिकन्यावरमखिलजगन्मंगलैः पूजयामि ॥२२॥
ॐ ह्रीं अर्हन् नमः परममङ्गलेभ्यः स्वाहा।

अर्घ्यम्।

भक्तेरित्यभिपूज्यवासवशिरोमन्दारपुष्पासव-
स्वच्छन्दभृङ्गशिलीकृताङ्घ्रिकमलं श्रीपूज्यपादं जिनम्।
तस्याशेषकवीन्द्रसूक्तिसुमनःपूज्यस्य पादान्तिके
वार्धारा नमितेयवस्तुविनमल्लोकत्रयीशान्तये ॥२३॥

ॐ ह्रीं नमः स्वस्ति भद्रं भवतु, जगतां शान्तये शान्तिधारां निष्पादयामि शान्तिकृद्भ्यः स्वाहा ।

शान्तिधारा ।

शुम्भद्वाकुम्भदम्भडम्बरसरःश्रीविभ्रमैरप्सरो-
वृन्दैर्यस्य महामहेषु विलसन्नेत्रः सहस्रेक्षणः ।
नाट्यं ताण्डवलास्यभेदमतनोत्तस्यानुमोदामहे
देवस्य त्रिजगत्त्रिकालविषयां पूजां जिनस्वामिनः ॥३४॥

ॐ ह्रीं अर्हन् नमो ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा ।

पुष्पाञ्जलिः ।

भूपः साम्राज्यलक्ष्मीपतिरमरवरः कल्पलक्ष्मीपतिश्च
द्वावप्येतौ विधत्तां जिनमहमखिलं तुच्छमस्मद्विधश्च ।
ताभ्यां तस्मै च दुग्धे सदृशमभिमतं भक्तिरित्यात्मबन्धो-
रर्हत्तीर्थाधिनाथे भगवति भवताद्भूयसी भक्तिरेव ॥३५॥
स्वस्ति स्वस्ति लोकाय कायवचनस्वान्तस्फुरद्भक्तये
देवेन्द्राय जिनेन्द्रमज्जनमहाव्यापारपुण्यात्मने ।
भूपेन्द्राय सदेवदेवसवनस्तोत्रोपयोगार्जितं
पुण्यं श्रीश्च सरस्वती च भवतः पूर्णं यशोभूषणम् ॥३६॥
निष्ठाप्यैवं जिनानां सवनविधिरपि प्राच्यंभूभागमन्यं
पूर्वोक्तैर्मन्त्रयन्त्रैरिव भुवि विधिनाराधनापीठयंत्रम् ।
कृत्वा सचन्दनार्धैर्वसुदलकमलं कर्णिकायां जिनेन्द्रान्
प्राच्यां संस्थाप्य सिद्धानितरदिशि गुरून् मंत्ररूपान् निधाय॥३७॥
जैनं धर्मागमार्चानिलयमपि विदिक्पत्रमध्ये लिखित्वा
बाह्ये कृत्वाथ चूर्णैः प्रविशदसदकैः पंचकं मण्डलानाम् ।
तत्र स्थाप्यास्तिथीशा ग्रहसुरपतयो यक्षयक्ष्यः क्रमेण
द्वारेशा लोकपाला विधिवदिह मया मन्त्रतो व्याह्वियन्ते ॥३८॥

एवं पंचोपचारैरिह जिनयजनं पूर्ववन्मूलमंत्रे-
णापाद्यानेकपुष्पैरमलमणिगणैरङ्गुलीभिः सर्मत्रैः ।
आराध्यार्हन्तमष्टोत्तरशतममलं चैत्यभक्त्यादिभिश्च
स्तुत्वा श्रीशान्तिमंत्रं गणधरवलयं पंचकृत्वः पठित्वा ॥३९॥
पुण्याहं घोषयित्वा तदनु जिनपतेः पादपद्मार्चितां श्री-
शेषां संधार्य मूर्ध्ना जिनपतिनिलयं त्रिःपरीत्य त्रिशुद्ध्या।
आनम्येशं विसृज्यामरगणमपि यः पूजयेत् पूज्यपादं
प्राप्नोत्येवाशु सौख्यं भुवि दिवि विबुधो देवनन्दीडितश्रीः ॥४०॥

इति श्रीपूज्यपादस्वामिविरचितो महाभिषेकः

* समाप्तः *

❁ नमः सिद्धेभ्यः ❁

गुणभद्रभदन्तभणितं बृहत्स्नपनम् ।

(२)

श्रीमन्मूर्ध्नि प्रमेरोरमरपरिवृढैरम्बुभिः क्षीरसिन्धो-
रुद्धृत्योद्धृत्य मूर्च्छामितभुजगमितैर्हाटिकीयैर्घटौघैः
जन्मन्युच्चैर्जिनानां विधिरभिषवणे योऽभ्यधायीद्धशोभः
सोऽस्मिन् प्रस्तूयतेऽद्य प्रकृतिपरिकरैः सर्वलोकैकशान्त्यै ॥१॥

प्रस्तावना ।

ॐ सर्वात्मप्रदेशघनघटितघातिजातग्रथितदुर्घविघटनप्रकटीभूतपरमात्मभावस्य सकलविमलकेवलावबोधप्रभाप्रभावावबोधितभव्यपद्माकरस्य सुरासुराधीशमुकुटतटघनघटितमणिगणकिरणवारिधाराधौतचारुचरणारविन्दस्य जिनेन्द्रस्य भगवतोऽभ्रंकषाग्रविभ्रमविचित्रकूटकोटिविनद्धविततविधूयमानविविधध्वजराजीविराजमानस्य नवसुधाधवलिमविमलीकृतनिखिलदिक्पालनिलयस्य श्रीमदर्हत्परमेश्वरचारुचरणाराधनासक्तविनेयजनसमासक्तपुण्यपुंजायमानस्य चन्द्रार्कायमाणमणिदर्पणादिनानोपकरणकिरणाभिद्योतिताभ्यन्तरस्य विचित्रचित्रितभित्तिचैत्यालयस्य मध्ये कृतमहामेरुतया जम्बूद्वीपोपमाने प्राङ्गणे स्नपनभूमौ सोदकानि पुष्पाणि निक्षिपेत् ।

ॐ शोधयामि भूभागं जिनेन्द्राभिषवोत्सवे ।
कलधौतोज्ज्वलस्थूलकलशापूर्णवारिणा ॥२॥

भूमि-शोधनम् ।

ॐ प्रक्षाल्य पवित्राग्रि प्रसिञ्चाम्यमृताञ्जलिम् ।
तृप्त्यै पङ्क्तेर्महादीनां सहस्राणां च तावताम् ॥३॥
नागसन्तर्पणार्थं दर्भंप्रक्षाल्य पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

ॐ दर्भकाण्डं समादाय विश्वविघ्नैकखण्डनम् ।
क्षिपामि ब्रह्मणः स्थाने भक्त्या ब्राह्मे महामहे ॥४॥
ब्रह्मदर्भः ।

ॐ मघोनः ककुब्भागे दर्भं निर्भग्नविभ्रकम् ।
भोगैश्वर्यादिवृद्ध्यर्थं क्षिपामि क्षिप्तकल्मषम् ॥५॥
इन्द्रदर्भः ।

ॐ सन्तापापनोदार्थं प्राणिनां प्रक्षिपाम्यहम् ।
दर्भं हुताशनाशायां सर्वज्ञस्नपनोत्सवे ॥६॥
अग्निदर्भः ।

ॐ तीक्ष्णं दक्षिणाशायां दर्भं लक्ष्म्या समीहितम् ।
क्षिपाम्यभिषवारम्भे यमारम्भविधित्सया ॥७॥
यमदर्भः ।

ॐ नरारोहणदिग्भागे निःशेषक्लेशनाशनम् ।
विदधे दर्भमारब्धुं जिनेन्द्राभिषवोत्सवे ॥८॥
नैर्ऋत्यदर्भः ।

ॐ त्रैलोक्येश्वरनाथाय नमस्कृत्य जिनेशिने ।
वरुणस्य हरिद्भागे स्थापये दर्भमद्भुतम् ॥९॥
वरुणदर्भः ।

ॐ मातरिश्वदिग्देशे विश्वविश्वम्भराप्रभोः ।
अभिषेकसमारंभे दर्भगर्भं प्रकल्पये ॥१०॥
वायुदर्भः ।

ॐ यक्षरक्षितक्षेत्रेऽस्मिन् क्षिपाम्यक्षूणवीक्षणं ।
यागदीक्षाक्षणे क्षेमं विधित्सुं दर्भमद्भुतम् ॥११॥
यक्षदर्भः ।

ॐ सर्वशान्तये शान्तं नत्वा श्रीवृषलक्षितम् ।
वर्धमानेशमीशानीं विदधे दर्भिणीं दिशम् ॥१२॥
ईशानदर्भः ।

ॐ स्फूर्जत्फणामणियुवोरगवृन्दवन्द्य
संसेव्यमान कमलेक्षण नागराज !
जातिर्जरामरणनाशमहोत्सवेऽहं
दर्भं ददामि सजलाक्षतचन्दनाद्यैः ॥१३॥
धरणेन्द्रदर्भः ।

ॐ जीवात्मके हिमसुशीतलसिंहयान
लोकप्रदीप वररोहिणिसौख्यधाम ।
यक्षे शशाङ्करविभूषणमूर्ध्वधाम
दर्भं ददामि जलचन्दनसाक्षतं ते ॥१४॥
सोमदर्भः ।

ॐ मदीयपरिणामसमानविमलतमसलिलस्नपनपवित्रीभूतसर्वाङ्गयष्टिः सर्वाङ्गीणार्द्रहरिचन्दनसौगन्ध्यदिग्धदिग्विवरो हंसांशधवलधौतदुकूलान्तरीयोत्तरीयः । स्नानानुलेपनशुचिवस्तुनिरूपणमिन्द्रस्य ।
श्रीखण्डानुलेपनम् ।

ॐ मतिनिर्मलमुक्ताफलललितं यज्ञोपवीतमतिपूतम्।
रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुषापहरणमाभरणम्॥१५॥
यज्ञोपवीतम्।

ॐ मभिनवसुगंधिनानाप्रसूनरचितां विचित्रवरमालाम्।
गुणगणमणिमालामिव जिनपादादादाय धारये शिरसा॥१६॥
शेखरम्।

ॐ सर्वरत्नखचितं रचितेन्द्रचाप-
व्यापिप्रभाप्रहतदिग्विवरान्धकारम्।
स्वर्गापवर्गसुखसारमिव प्रदानं
श्रीकंकणं करयुगे कलितं करोमि॥१७॥
कंकणम्।

ॐ शुद्धरत्नरचितामिव सुभगायाः सुमुक्तिकन्यायाः।
करवाणि करगतायाः मदंगुलावमलमुद्रिकामुद्राम्॥१८॥
मुद्रिका।

ॐ स्वर्गमार्गमिव निरर्गलमप्युकामे पवमानचलितललितकेतुमालाविलासिते भामारभास्वन्माणिक्यमयस्तम्भसम्भूते विचित्रनेत्रपिनद्धवितलवितानशोभिते जिनेशशशिविशदयशोराशिबिम्बाभिनवमुक्ताफललंबलंबूषभूषिते सुगन्धिसलिलसंसेकसमुत्सर्पिद्धारसौरभाभिरामे विन्यस्तविविधार्चनाभिषेकपरिकरपरिपूर्णे पूर्णकलशचतुष्टयमध्यस्थाभिषेकपीठे महाभिषेकमंडपे मण्डपान्तः समन्तात् पुष्पाक्षतं क्षिपेत्।
मण्डपस्थापनम्।

ॐ स्नानेच्छापेतताप श्रमरतिरजसां नैव भावार्हतां सा
श्रद्धालुः स्नापनायां विहितमतिरिदं स्नापनार्हत्प्रभूणाम्।

मोक्षं मेरुमिवारुरुक्षुप्रथममिव कृतं तस्य सोपानमुच्चै—
रारोढाम्युद्यमुद्यद्ध्वनिपिहितदिशास्थानकं स्नानपीठम् ॥१९॥

पीठस्थापनम् ।

ॐ निरतिशयसुगन्धिद्रव्यसम्भारसम्बन्धबन्धुरैः सुरसिन्धुसम्भूताम्भोभिरिव स्पर्द्धमानैः निर्धूतकल्मषैरभिनवाम्भःसंभृतैरनेकरत्नरचितस्फुटहाटकघनघटितगम्भीरघटैः—

निष्टप्तकांचनमयं मृदुरात्मपयोने—
रध्यासनादतितरामुपलब्धशुद्धिम् ।
प्रक्षालयामि विधिनाहमितीह पीठ—
मेतच्छलान्मम मनः परमार्थकामः ॥२०॥

पीठप्रक्षालनम् ।

श्रीमद्भिर्विमलैर्जलैः सुरभिभिर्गन्धैः शुभैस्तन्दुलैः
प्रोत्फुल्लैः कुसुमैर्लसच्चरुवरैर्डिंडीरपिंडोपमैः ।
दीपैर्दीपितदिग्वधूवदनकैर्धूपैर्जगद्व्यापिभिः
सुच्छायैः सुरसैः फलैश्च बहुभिः पीठं यजाम्यर्हताम् ॥२१॥

पीठार्चनम् ।

ॐ द्वीपे नन्दीश्वराख्ये स्वयममृतभुजोऽकृत्रिमं स्नापयेयु—
र्मावे भावार्हतो वा भवभयभिदया भाक्तिकश्चैत्यगेहात् ।
आनीयास्मिन् स्वकीये सितिविमलतमे कृत्रिमे स्नानपीठे
सद्भावस्थापनार्हत्प्रतिकृतिमधुना यक्षयक्षीसमेतम् ॥२२॥
ॐ यः श्रीमदैरावणवाहनेन निवेशितोऽङ्के विधृतातपत्रः ।
ईशानशक्रेण सनत्कुमारमाहेन्द्रसच्चामरवीज्यमानः ॥२३॥
शच्यादिभिः श्र्यादिभिरप्युदारैर्देवीभिराप्तोज्ज्वलमंगलाभिः ।
पुरः स्फुरन्तीभिरिवाप्सरोभिश्चाग्रे नटन्तीभिरुपास्यमानः ॥२४॥

शेषैस्तु शक्रैर्जय जीव नन्द प्रसीद शश्वत्प्रतप क्षपारीन् ।
इत्यादिवाग्गुल्वणितप्रमोदैः मुहुः प्रसूनैरुपहार्यमाणः ॥२५॥
सुरैः स्फुटास्फोटितगीतनृत्यैर्वादित्रहास्योत्प्लुतवल्गितानि ।
समंगलाशीर्धवलस्तुतीनि स्वैरं सृजद्भिः परिचार्यमाणः ॥२६॥
अहो प्रभावस्तपसां सुदूरमपि व्रजित्वा प्रतिमास्त्वपीक्ष्यः ।
यः सैष साक्षाद्धुवमीक्षितोऽर्हन्नमेदनादिः स्वयमात्मवन्द्यः ॥२७॥
सविस्मयानन्दमतिब्रुवाणैर्विलोक्यमानो भुवनावभासी ।
देवर्षिभिः स्वर्चितदेवयुग्मैः नभोगयुग्मैरपि सेव्यमानः ॥२८॥
प्रदक्षिणाध्वव्रजनेन नीत्वा पूर्वोत्तरस्यां दिवि मेरुशृंगं ।
निवेश्य तत्राद्रिशिलार्धपीठे क्षीरोदनीरैः स्नपितः सुरेन्द्रैः ॥२९॥
तं देवदेवं जिनमद्यजातमप्यस्थितं लोकपितामहस्त्वं ।
इमं निवेश्योत्तरवेदिपीठे प्राग्वक्त्रमस्मिन् विधिनाभिषिंचे ॥३०॥
ॐ निस्तुषनिर्व्रणनिर्मलजलार्द्रशालेयधवलतन्दुलैर्लिखते ।
श्रीकामः श्रीनाथं श्रीवर्णे स्थापयामि जिनम् ॥३१॥
ॐ कुर्वन्तु सर्वशान्तिमिति स्वाहा । श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनम् ।

हरिन्मणिमयूखकोमलविशालदूर्वाङ्कुरैः-
स्फुटाभिनवनूतनैर्हरितगोमयैः पिण्डकैः ।
जिनेशमवतारयाम्यहं महाभिषेकोद्यमी
मुदासुरगिरौ स्वयं सुरवरैः पुरा पूजितम् ॥३२॥

गोमयपिण्डकावतारणम् ।

ॐ सुस्निग्धकुन्दकलिकोज्वलचारुभक्तैः
पिण्डानुखण्डगुणमण्डितविग्रहस्य ।

इत्यादराज्जिनपतेरवतारयामि
निर्वाणसंभवमहासुखलब्धयेऽहम् ॥२३॥

भक्तपिण्डकावतारणम् ।

ॐ पूतेन्धनैः पतितशीलतलचूतिपिण्डैः
चन्द्रांशुखण्डधवलैः करकुड्मलस्थैः ।
भस्मार्थमष्टविधकर्ममहेन्धनस्य
लोकेश्वरस्य परिवर्चनमातनोमि ॥२४॥

भस्मपिण्डकावतारणम् ।

ॐ सितसर्षपसंगमङ्गलैर्मृदुमृत्स्नाविहितैर्मनोहरैः ।
जिननाथमिहावतारयाम्यभिवृद्ध्यै परवर्धमानकैः ॥२५॥

वर्धमानकैरवतारणम् ।

ॐ कनत्कनककपिशवर्तीरप्रबलप्राज्ञिज्वालाज्वलिताखिलदिङ्मुखैः पापारातिकुलोन्मूलनदाहदक्षैः निबिडनिबद्धवर्मपूलैर्नीराजनविधिना भगवतोऽर्हतोऽवतारणं करोमि श्रियै ।

नीराजनावतारणम् ।

ॐ अखण्डितमुक्ताभिनवनूतनैः स्मिताद्रैंसिततण्डुलनैर्मिहमन्दारवत्सरोजदलचम्पकप्रभृतिपुष्पपूर्णं स्फुटं भगवतोऽर्हतोऽवतारणं करोमि श्रियै ।

पुष्पाञ्जलिः ।

ॐ सिद्धिर्वृद्धिर्जयश्रीर्धृतिरमितिरतिभाग्यसौभाग्यरामा
कान्तिः शान्तिप्रसादात्प्रथितगुणगणैर्मङ्गलं पुष्टि-तुष्टिम् ।

कीर्तिः क्षेमं सुभिक्षं सुखमखिलमयं स्वायुरारोग्यमीत्रं
सर्वं भद्रं भवद्भ्यो भवतु भवभृतां स्थापितेऽस्मिन् जिनेशि ॥३६॥

आशीर्वादः ।

कपिशकाञ्चनकुम्भसमाश्रयादिव सरोजरजःपरिपिञ्जरैः ।
शुभविशुद्धसरःप्रभवैरभिनवाम्बुभिरर्चनमारभे ॥३७॥

जलम् ।

मदालिनादैः कर्णस्य वदतेव समुच्चकैः ।
घ्राणस्य सौरभेणैव गन्धेनाराध्यते जिनम् ॥३८॥

गन्धम् ।

शशिकान्तिसकलविमलैर्दयांकुरैरिव निषिक्तभक्तिजलैः ।
खण्डितमुख्यानन्यखण्डैर्यजे जिनेशस्य तंदुलैश्चरणौ ॥३९॥

अक्षतान् ।

सिताभिनवसिन्दुवारवरमल्लिकामालती-
प्रभृत्यखिलमंगलप्रसववासिताशामुखम् ।
चलच्चटुलचिञ्चरीकमृदुपातपातक्षमं
क्षिपामि जिनपादपद्मोरुपधरित्रि पुष्पाञ्जलिम् ॥४०॥

पुष्पम् ।

अनन्तसुखतृप्तस्य भुक्तिमुक्तिप्रदायिनः ।
प्रोत्क्षिपामि हविर्भक्त्या बुभुक्षुरमृताशनम् ॥४१॥

नैवेद्यम् ।

कर्पूरोपलदीपानलिच्छलाद्द्वेषितांस्तमःपटलैः ।

प्रत्यर्थिभिरिव प्रदीप्रान् भक्त्या प्रद्योतयामि जिनमानोः ॥४२॥

दीपम् ।

हिमहरिचन्दनयोगकतुरुष्कवरशर्करादिसम्भूतैः ।
धूपैर्धूपितकाष्ठुरापतदलिकुलकुलैर्यजामि जिनम् ॥४३॥

धूपम् ।

सुरभितरसुरससुरुचिरसुवर्णनारिङ्गमातुलिङ्गाद्यैः ।
सद्योऽभिलषितफलदैः फलैः फलार्थी यजामि जिनम् ॥४४॥

फलम् ।

आहृत्य स्नपनोचितोपकरणं दध्यक्षताद्यार्चितान्
संस्थाप्योज्वलवर्णपूर्णकलशान् कोणेषु सूत्रावृतान् ।
तूर्याशीःस्तुतिगीतमङ्गलरवैष्वक्ष्यैर्जयस्तुध्वनिं
सोत्साहं विधिपूर्वकं जिनपतेः स्नानक्रियां प्रस्तुवे ॥४५॥
चर्चिताश्चन्दनैः पूर्णाः श्वेतसूत्राभिवेष्टिताः ।
शोभध्वं कलशा यूयं पुष्पपल्लवधारिणः ॥४६॥

कलशेषु स्थापितेषु सोदकानि पुष्पाणि निक्षेपन् ।

कलशस्थापनम् ।

मेरौ प्रागमरैरिवात्र विधिना संस्थाप्य सम्पूजित-
स्तेजोराशिरशेषकल्मषहरैः श्रीलक्षणैर्लक्षितः ।
लक्ष्मीधामभवाध्वगश्रमहरश्छायाद्रुमशाश्वतीं
शांतिं यच्छतु सुश्रिया स महान् श्रीवर्धमानो जिनः ॥४७॥

आशीर्वादः

ॐ दधिघृतसितभक्ष्यक्षीरगन्धाक्षताम्भः-
प्रसवफलसमृध्यद्गन्धसम्बन्धसारम् ।
कनकरजतपात्रे स्थापितं चार्घमन्धुं ।
सकलदिगधिनाथान् व्याहरामः क्रमेण ॥४८॥

अर्घोद्धरणम् ।

ॐ पूर्वस्यां दिशि कैलाशशैलसमुत्तुङ्गकायघटनहठद्घाटकघनघटितघंटागलघंटिकाजालं कटदानप्रभ्रमालाख्यखण्डमण्डितायोगमंडितं कोमलमृणालधवलदन्तांतकान्तिकमलाकरं कमलदलरंगारचितसंगीतकं मृदुमहामोदमुद्रितमधुरकरनिकरारब्धझंकाररावरम्यमैरावणमहावारणमारूढं—
उद्योत्यमयतमुदिताभरणप्रभाभिराशाननान्यभिहताखिलविघ्नवर्गम् ।
स्फूर्जत्पवित्रप्रहरणं रमणीसमेतमिन्द्रं जिनेन्द्रसवनेऽहमिहाह्वयामि ॥४९॥

ॐ इन्द्र! आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा। इन्द्रपरिजनाय स्वाहा। इन्द्रानुचराय स्वाहा। इन्द्रमहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। सोमाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वधा स्वाहा। ॐ इन्द्रदेवाय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गन्धं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थं क्रियते कर्म सुप्रीतो भवतु मे सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

इन्द्राव्हानम् ।

ॐ पूर्वदक्षिणस्यां दिशि वज्र श्मश्रुकेशविलोलविलोचनविभीषणं भाभारभासमानमाणिक्यप्रभर्मनिर्मितमुकुटकटककटिसूत्रकुण्डलकेयूरहारगदादिमणिभूषणं ज्वलज्ज्वालासहस्रप्रभाभारभासुरमहाप्रहरणं—
देहज्योतिर्ज्वलितककुभं वीक्षणानीलमूर्ति-
र्भास्वद्भासोऽप्यमिनवभयं भावयन्तं ज्वलन्तम् ।

वस्तारूढं त्रिभुवनगुरोर्भूपदीपाधिकारे-
स्वाहानाथं विधिभिरधुना वह्निमाव्हानयेऽहम् ॥५०॥

ॐ अग्ने ! आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा। अग्नि परिजनाय स्वाहा। अग्न्यनुचराय स्वाहा। अग्निमहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। सोमाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवःस्वः स्वधा स्वाहा। ॐ अग्निदेवाय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गन्धं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्ति कमक्षतं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थं क्रियते कर्म सुप्रीतो भवतु मे सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

अग्न्याव्हानम्।

ॐ दक्षिणस्यां दिशि जिनेन्द्रसवनसमयसमुज्जृम्भितगंभीरखरपुरुष्करध्वनिश्रवणसमुत्पन्नसाध्वससमासादितान्तकान्तिपापाञ्जनपुञ्जायमानप्रतिपक्षमीव्ययमेव तीक्ष्णविषाणाग्रभागविघट्यमानज्योतिर्विमानसमितिं प्रतिमहिषरुषेव सूत्कारवातसमुद्‌भूतघनाघनसंघातं चलबहुलगमनसमुच्छलत्कनककिंकिणीझंकारारावपूरितदिगन्तरालं महाप्रमाणदेहं महिषवरमारूढं—

अलिमलिनजटालस्थूलजूटातिभीष्मं
स्फुरदुरगविभूषं माषकल्माषवर्णम्।
विधृतविपुलदण्डं खण्डितं छाययामा
यममहिषमविघ्नं निर्घृणं व्याहरामि ॥५१॥

हे यम ! आगच्छ आगच्छ इत्यादि।

यमाव्हानम्।

ॐ दक्षिणपश्चिमायां दिशि प्रतिदिनसमुदायमानदिनकरनिकरनिराकृतघनतमःसन्तानमिव व्यतीतानन्तसमयसंशुद्धविनेयजनविशुद्ध-

ध्याननिर्धूतदुरितारातिनिकुरम्बमिवान्तकान्तिकसमुपस्थितं महिषमुखाहारातिरूक्षमूर्धाकारं कपारविकृतिदेहं रक्षोवाहनमारूढं—

भास्वद्धर्मकिरीटकोटिघटितप्रत्यग्ररत्नप्रभा—
भारोद्भिन्नघनात्मवाहनतनुच्छायातमःसंहतिम् ।
हेतिव्रातविधूतमुद्गरकरं जायासमेतं पतिं
नैर्ऋत्यं परमेश्वराभिषवणे भक्त्या मयाहूयते ॥५२॥

ॐ नैर्ऋत्य ! आगच्छ आगच्छ इत्यादि नैर्ऋत्याव्हानम् ।

ॐ पश्चिमायां दिशि शशाङ्कशकलायमानकुटिलदंष्ट्राप्रभाद्योतिताननगुहान्धकारं तालस्थूलवृत्तायतोल्लिसितकरपुष्करेणैव ताराविकरकुसुमानीव जिनशान्तिस्नपनसमयोपहारार्थं समुद्भिन्नान्तकरिमकरमारूढं—

परिणतकरभास्वत्पद्मरागाभिरामा—
भरणकिरणमग्नं स्रग्विणं रुक्मवर्णम् ।
निरुपमवरुणानीवल्लभं व्याहरामो
वरुणमरुणिताशं पाशपाणिं प्रचण्डम् ॥ ५३ ॥

हे वरुण ! आगच्छ आगच्छ इत्यादि, वरुणाव्हानम् ।

ॐ पश्चिमोत्तरस्यां दिशि तनुमृदुचिरस्तबालवालधिविराजमानमतिपृथुललितपृष्ठभागाभिरामं मुष्टिसमायातमध्यप्रदेशं कुब्जकर्णास्कन्धबन्धुरं स्वच्छहिमसलिलबुद्बुदविलोलविलोचनं निर्मांसघनपादसनाथमुच्चैर्बद्धोदरं मणिकनकमययोगालंकृतं कुंकुमकर्दमस्थासकस्थगितधवलगात्रं प्रलम्बतरस्कचर्गाचामरविराजितमतिदूरविनिर्जितोच्चैःश्रवोजनितजवाटोपमतितेजस्विनं वाजिराजवरमारूढं—

हटन्मुकुटमण्डितं मणिमयोज्वलकुण्डलं
प्रलम्बतरहारमुक्कुटरत्कटिसूत्रकम् ।

४

महीरुहमहायुधं झटिति वायुवेगीयुतं
प्रकम्पितपयोधरं पवनदेवमाव्हानये ॥ ५४ ॥

हे पवन ! आगच्छ आगच्छ इत्यादि पवनाव्हानम्।

ॐ उत्तरस्यां दिशि महानीलवज्राधिष्ठानबन्धबन्धुरं विपुलतरललितकलशवृत्तवैडूर्यमयस्तम्भसंभृतं नानानेकरत्नरचितविचित्रभित्तिविश्रुतं मरकतमणिविहितविशालगवाक्षजालोपलक्षितं स्फटिककपाटपुटघटितद्वारबन्धं हाटककूटकोटिपिनद्धधवलध्वजमालाविलासितं राजद्राजहंससुशोभमानमतिसुरभितकुसुमदामामोदमिलितालिकुलकलकलं पुष्पकविमानमारूढं—

विपुलविलसन्नानारत्नस्फुरन्मणिभूषणं
कलितककुभाभोगं भास्वद्भुजोद्धृतशक्तिकम्।
भुवनधनददेवं देव्या युतं धनपूर्वया
धनदनिनदं भक्तं भर्तुर्जिनस्य समाव्हानये॥ ५५ ॥

हे धनद! आगच्छ आगच्छ इत्यादि, धनदाव्हानम्।

ॐ पूर्वोत्तरस्यां दिशि हिमशैलशिखराकारमहाप्रमाणदेहं कठिनककुद्रं समुत्तुंगसंगततरकुभंगुरशृङ्गं धौतकलधौतविलसत्स्वच्छप्रभमालामण्डितमस्तकं रणत्कनककिङ्किणीघंटिकाघटितकंठं दुंदुभिगंभीरमधुरध्वनिमनोहरं साक्षाद्वृषभमारूढं—

जटामुकुटधारिणं सकलचन्द्रसन्धारिणं
त्रिशूलकरशालिनं भुजगभूषणोद्भासिनम्।
प्रभूतगणवेष्टितं सुरवरं भवानीपतिं
भवं भुवनमङ्गले जिनसवोत्सवे व्याव्हानये ॥ ५६ ॥

हे ईशान ! आगच्छ आगच्छ इत्यादि, ईशानाव्हानम्।

ॐ अधरस्यां दिशि सुरधारणधरणतलपृथुलतमपृष्ठभागमखिलजलधरप्रथमशेषधराभारधरणश्रुतिश्रेष्ठं विनिर्मितकूर्माकारं कूर्मवरमारूढं—

फणामणिगणोज्ज्वलं कुटिलकुन्तलोल्लासिनं
लसत्कुसुमशेखरं विकटविस्फुरत्स्वस्तिकम् ।
भुजङ्गमसमन्वितं प्रहसितवदनरूपपद्मावतीपतिं
फणाभृतां गणैरनणुमाव्हानयाम्यादरात् ॥५७॥

हे धरणेन्द्र ! आगच्छ आगच्छ इत्यादि, धरणेन्द्राव्हानम् ।

ॐ ऊर्ध्वस्यां दिशि संहाररसन्ध्यारुणसरलसटाटोपं कुटिलदंष्ट्राविभीषणविदारितवदनं मदिराहारारक्तसमुद्गतास्फुरविभीषणाविलोललोचनभयानकं करालकरवालधाराकारनखनिकरभीकरमहाकालानुकारिणं ककुभ्वलयनिश्चलमदलकरिकर्णकठोरकण्ठीरवमारूढं—

साक्षान्नक्षत्रमालं पृथुमिव दधतां वक्षसां रत्नमालां
मालां ज्योत्स्नामिवांशे कुवलयकलितां निर्मलां मालतीनाम् ।
रोहिण्यां दत्तदृष्टिं धवलितभुवनं श्वेतभानुं सुभानुं
कान्ताङ्गं कुन्तपाणिं कविभिरभिनुतं देवमाव्हानयामः ॥ ५८ ॥

हे सोम ! आगच्छागच्छ इत्यादि, सोमाव्हानम् ।

आयात यूयमेतेऽप्यमरपरिवृढाः प्राप्तसम्मानदानाः
स्थाने स्वस्मिन् समाध्वं प्रमुदितमनसो लब्धरक्षाधिकाराः ।
निघ्नन्तो विघ्नवर्गं परिजनसहिता यागभूमिं समन्ता-
द्दिक्पालाः पालयध्वं विधिरभिपवणे वर्धतां वर्धमानः ॥५९॥
ईशानाः प्राग्दिगिन्द्रास्तदनु हुतवहा प्रेतराजो यमो वा
नैर्ऋत्यो देवतेन्द्रो गजपतिगमनो वायुदेवः कुबेरः ।

नागेन्द्राः सूर्यचन्द्राः स्वगणपरिवृता व्यन्तरा ये च यक्षाः
लोकान्ते ये सुरेशा जिनमहिनविधौ भक्तिनम्रोत्तमाङ्गाः ॥ ६० ॥
ये देवाः सन्ति मेरौ वरकनकमये मन्दिरे ये च यक्षाः
कैलाशे श्रीविकाराः प्रमुदितमनसो ये च विद्याधरास्ते ।
पाताले ये भुजङ्गाः स्फुटमणिकिरणा ध्वस्तमोहान्धकारा
मोक्षाग्रद्वारभूतं जिनवरवचनं श्रोतुमायान्तु सर्वे ॥ ६१ ॥

दिक्पालानां पूर्णार्घः ।

सद्येनातिसुगन्धेन स्वच्छेन बहुलेन च ।
स्नपनं क्षेत्रपालस्य तैलेन प्रकरोम्यहम् ॥ ६२ ॥
भोः क्षेत्रपाल! जिनपप्रतिमाङ्कमाल
दंष्ट्राकराल जिनशासनरक्षपाल ।
तैलाहिजन्मगुडचन्दनपुष्पधूपै-
र्भोगं प्रतीच्छ जगदीश्वरयज्ञकाले ॥ ६३ ॥
क्षेत्रपालाय यज्ञेऽस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे ।
बलिं ददामि दिश्यग्रेर्वेद्यां विघ्नविनाशिने ॥ ६४ ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं अत्रस्थ-क्षेत्रपाल ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट्, अर्घं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

इति क्षेत्रपालार्चनम् ।

ॐ विश्वातोद्यप्रघोषो विघटयतु दिशां संधिबन्धं सुमेयं
गायन्तूर्वैर्नटन्तु स्फुटघटितरसं मङ्गलान्यापठन्तु
सन्तः स्वस्मिन्नियोगे प्रकटकलकलं भव्यलोकाः प्रकामं
कुर्वन्तु द्रागिदानीं जिनसवनविधावुद्धृतः पूर्णकुम्भः ॥ ६५ ॥

कुम्भोद्धरणम् ।

ॐ जिनपतिमतैरिव सर्वजनजीवितैः, सज्जनमनोभिरिव स्वच्छतमैः, तर्कशास्त्रैरिव शुद्धिप्रदर्शनैः, अनुपचारप्रसादसम्पादितस्वामिसम्मानदानैरिव सन्तर्पकैः, यौवनारम्भैरिव मनोहरैः, चतुरस्वजनबन्धुसम्भ्रमैरिव सदाह्लादनहेतुभिः, शशिकरनिकरप्रसारैरिवातिशीतलैः, नदीनदवापीकूपतडागसरोवरादिशुचिजलप्रदेशसम्भूतैः, मणिकनकरजतमयकुम्भसंभृतैः शुभदम्भोभिरमीभिः—

अम्भोधिभ्यः स्वयम्भूरमणपृथुनदीनाथपर्यन्तकेभ्यो
गंगादिभ्यः सरिद्भ्यः कुलधरणिधराधित्यकोद्भूतिभाग्भ्यः ।
पद्मादिभ्यः सरोभ्यः सरसिरुहरजःपिञ्जरेभ्यः समन्ता-
दानीतैः पूर्णकुम्भैरनिमिषपतिभिर्योऽभिषिक्तः सुराद्रौ ॥ ६६ ॥

तं शारदैर्जलधरैरिव रूप्यकुम्भैः
सन्ध्याभ्रविभ्रमकरैर्वरहेमकुम्भैः ।
प्रावृट्पयोधरनिभैः सुरनीलकुम्भैः
कुम्भैः परैरपि यजेऽभिषवेण शम्भुम् ॥ ६७ ॥

ॐ एतानि जिनाङ्गसङ्गमङ्गलानि नानैनोनिदाघातपतप्तसकलजगत्तापनोदनदक्षाणि जिनवरचरणाराधनाशक्तभव्यभवभूतः शुभस्य संवर्धनकराणि स्नानसलिलानि जगतः शान्तिं कुर्वन्त्विति स्वाहा ।

जलस्नपनम् ।

---

* ॐ निरुपमहतसुमहद्वनलितरठमधुरतरसद्धसप्रतिनवापरिम्लानां, स्निग्धमसृणत्वगुणग्रामसमप्रलासमधिकस्फूर्जद्धीधानां, निखिलभुवनजननिवहनयनसन्दोहोद्दामानन्ददाननव्यसनिनां, निखिलभुवनवासिनां, केषाञ्चित्सम्फुल्लसेफालिकाफुल्ललोहितकान्तीनां, अवधारितचिरागपद्मरागपटसौष्ठवानां, केषांचित्समुन्मिषितशिरीषपुष्पहरितद्युतीनां, वैकृतविद्योतमानमरकतकलशविलासानां, केषांचित्प्रविकसितचम्पकप्रसवचितसत्कीर्तीनां, बिभूतशुम्भत्स्फुरत्कुम्भसौभाग्यानां, प्रभूतवारिभरितगम्भीरोदरकुडुराभ्यन्तराभिरामाणां, तत्क्षणविरच्यमा-

* पुष्पमध्यगतः पाठः पुस्तकान्तरात्संयोजितः ।

नपरिमितरुचिरद्वारप्रणालसनाथसुललितनिजाग्रभागसरभसदूरोत्पतितप्रतिनवनीरशीकरकणिकापरिकरप्रारब्धमार्गदुर्दिनव्यतिकराणां,नालिकेरफलोत्कराणां—

कर्तुं जन्माभिषेकं विबुधपरिवृढं संगता यस्य कीर्त्या
लोके कृत्स्नेऽपि चन्द्रातपविशदरुचा श्वेतिते जातशङ्का।
मूर्ध्न्यैवोत्तुङ्गभावात्कनकशिखरिणं स्पष्टसौधर्मधाम्ना
दुग्धाब्धिशङ्कयैव स्फुटतरमविधुः पंचमं चार्णवानां ॥ ६८ ॥

प्रोद्यद्राकामृगांकप्रतिनवकिरणश्रेणिसम्भेदभूरि—
प्रश्च्योतश्चन्द्रकान्तोपलविमलजलासारपूरप्रसक्तैः।
प्रालेयाम्भोमृणालीमलयजकदलीहारकल्हारशीतै—
रेतैस्तोयप्रवाहैस्त्रिजगदधिपतिं तं जिनं स्नापयामः ॥ ६९ ॥

श्रीमज्जैनेन्द्रगात्रक्षितिधरणिपतन्निर्झराम्भःप्रवाहः
श्च्योतत्पीयूषराशिद्रवरसविभवस्पर्धिमाधुर्यधुर्यः।
विश्वामेनां प्रसर्पद्बहलकलकलं मेदिनीं व्यश्नुवानः
स्तादेनःशान्तये नः क्षपितजगदघश्चोचतोयौघ एषः* ॥७०॥

ॐ सुस्वादुरूप्यगुरुकोमलनालिकेरस्थूलप्रभूतफलनिर्मलवारिपूरैः।
संसारसागरसमुत्तरणैकसेतुभूतं जिनेन्द्रमभितः परिषेचयामि ॥ ७१ ॥

नालिकेरस्नपनम्।

ॐ श्रीशातकुम्भकलशोद्धृतशुद्धधर्मनकुङ्कुमाभमधुराम्ररसप्रवेकैः।
रागादिवैरिपरिमर्दनलब्धकीर्तिश्वेतीकृतासमभुवं स्नपयामि वीरम् ।७२

ॐ तुष्टिकरैः पुष्टिकरैः पक्वैः पथ्यैर्मनोहरैर्मधुरैः।
गुरुवचनैरिव गुरुभिश्चाम्ररसैः स्नपयामि जिनम् ॥७३॥

आम्ररसस्नपनम्।

ॐ संस्थावरेतरविभेदसमस्तसत्त्वसंरक्षणक्षमदयामयधर्मधुर्यम् ।
उद्दण्डपुण्ड्रधवलेक्षुरसप्रपूर्णैः सौवर्णचारुकलशैरभिषेचयामि ॥७४॥

सुक्षेत्रोद्भासितेक्षुप्रवरजलनिधेर्वारिपाकप्रभूतैः
कर्पूरस्फाररेणूत्कर इव विरलैरिन्दुरोचिर्विलासैः ।
स्निग्धैः शैत्यैरतर्कैरमृतरसमयैः स्वर्णपात्रोत्सरद्भिः ।
संशुद्धैः शर्करौघैर्जिनपतिमनघं भक्तितः स्नापयामि ॥ ७५ ॥

इक्षुरसस्नपनम् ।

ॐ तपनीयद्रवप्रवाहानुकारिणा जलकेलिसंसक्तसुरसुन्दरीकठिनकुचतटास्फालननिष्पीडितसरोजरजःसम्मिश्रसुरसरिद्वारिधारापिङ्गलेन क्षमक्षमथनसमयसमुद्भूतक्रोधानलाविद्देवहारविस्फारितविलोचनप्रभाप्रसरकपिलेन निजामोदविग्धदिग्मण्डलाग्राणचिवरेण पारदेनेव राजतानिव कुम्भान् शातकुम्भकुम्भान् सम्पादयता जिनाङ्गसङ्गमङ्गलेन मङ्गलीभूतेन हैयङ्गवीनेन—

ॐ घृताब्धिघृतशातकुम्भपृथुकुम्भकोटि—
घटैः पटुस्वखुजवर्तनापटितनाटकाटोपकैः।
हठत्कटककाञ्चनाचलविशालकूटोत्कटैः
कृपाटपटुभिः सदाभ्युपचितं जिनपतिं स्नापये ॥ ७६ ॥

ॐ जिनस्नपनपावनेन सीरभपरिपूरितसकलधरातलेन प्रक्षीताशेषप्राणिगणेन घृतेन सर्वेषां शान्तिरस्तु,कान्तिरस्तु,तुष्टिरस्तु, पुष्टिरस्तु सिद्धिरस्तु, वृद्धिरस्तु, कल्याणमस्तु, मनःसमाधिरस्तु दीर्घमायुरस्त्विति स्वाहा ।

घृतस्नपनम् ।

ॐ जितसुरसिन्धुफेनधवलसंजातशोभाविशेषैरतिक्रान्तराजहंसांशश्वेततमरमणीयकैरवहसितलक्ष्मीलीलाट्टहासविलासैरधरीकृतनवसुधाधवलिमधर्मैरतिनिर्जितकुन्दकुमुदस्मितसिन्दुवारादिकुसुमच्छायाविशेषैः, दयामयधर्मैरिव निर्मलैः, शुक्लध्यानैरिव कर्मनिर्मूलनदक्षैः,मूर्तीभूतजिनपतिकीर्तिवितानानुकारिभिः गव्यैर्माहिषैश्च क्षीरैः—

यः क्षीरनीरनिधिनिर्मलनीरपूर्णसौवर्णवर्णविलसत्कलशावलीभिः
आनीयमानसरसोत्सुकरैः करेभ्यः शैलेश्वरे सुरवरैरभिषिक्तपूर्वः।
यः शारदाभ्रधवलाम्बुधराभिरामव्योमान्तरालविलसद्विधुबिम्बदीप्तो
दुग्धाब्धिपूरितरवारिपरीतमूर्तिः कार्तस्वराचलतटे विलसत्सलीलम्॥

कुम्भांभोदास्त एते किमु जिनभवने क्षीरवारि क्षरंति
क्षीराम्भोधिः सदम्भः किमिह पटुतरैः प्राहिणोत् स्वर्णकुंभैः।
गंगा स्वं किं जिनाङ्गे कनकघटभृता मङ्गलीकर्तुमागा-
दित्याशंकां जनानां व्यदधदधिपतिं स्नापये तं प्रशान्त्यै॥७८॥

या सा सर्वप्रसिद्धा सपदि सुरसरित् किंस्विदत्रावतीर्णा
धारां किं वा विधाय स्नपयति सकलं ज्योत्स्नयेदं जिनेन्द्रम्।
भक्त्या पीयूषमैरावतकरपृथुलं पातितं किं सुरेशै-
रित्याक्षिप्तो विभूत्यै पततु जिनपतेर्मूर्ध्नि धाराभिषेकः॥७९॥

श्वेतं दीप्तं धरित्रीं विदधदुदधिना स्पर्धितुं पंचमेन
स्वच्छाया स्वच्छहासैः सुचिरमुपहसच्छारदीं कौमुदीं वा।
पुण्याणूनां द्रवो द्रागदुरितमलहरं दूरमुत्सारयन् वा
शांतिं सर्वजनानां वितरतु विभरत्स्नानसत्पूक्षीरः॥८०॥

ॐ अरिहननरजोहननरहस्याभावान् त्रिजगत्पूजार्हदङ्गसङ्गमङ्गलं क्षीरमेतत् सर्वेषाममृतानां सुधायतां रसायनत मिति स्वाहा।

क्षीरस्नपनम्।

ॐ हिमरजतस्फटिकचन्द्रकान्तशिलाधवलेन व्यपाकृतपरिपक्व-कपित्थसुगन्धिबन्धुरसौरभेण सकललौकिकमंगलमुख्येन भगवदर्हद-भिषेकयोगित्वात्परिप्राप्तमुख्यमङ्गलहेतुव्यपदेशेन निजवीर्यमाधुर्यनि-र्जितामृतगर्वितालब्धस्तब्धेनेव कुठारीविपाद्यमानकाठिन्येनाशेषदा-पप्रतानविजयिना हस्तद्वयोद्धृतेन दध्ना--

ॐ शुद्धेद्धनिष्क्रमणनिष्क्रमकेवलावबोधप्रबुद्धभुवनत्रितयं जिनन्द्रं ।
इन्द्रैः सुरेन्द्रधरणीधरमूर्ध्नि वर्द्धिताश्चर्यकार्यविदधुर्यमनन्तवीर्यम् ।८१।

शुभतमपरमाणुद्भूतनिर्धूतदेहं प्रभवबहलभास्वज्ज्वलेश्याबदातम् ।
विधुधवलविसर्पज्ञावलेश्याविशेषं स्नपयितुमहमीडे मङ्गलं मंगलार्थी ८२

ॐ शुभतमदुग्धमभिजातमपंकिलघृतहेतुभूतमभिपूततमं ।
विधिवदधीश्वराभिषवशुद्धमिदं दधि विधातु शांतिमखिलस्य सदा ।८३।

ॐ अर्हद्भ्यः स्वाहा । सिद्धेभ्यः स्वाहा । सूरिभ्यः स्वाहा । पाठकेभ्यः स्वाहा । सर्वसाधुभ्यः स्वाहा । जिनधर्मेभ्यः स्वाहा । जिनागमेभ्यः स्वाहा । जिनचैत्येभ्यः स्वाहा । जिनचैत्यालयेभ्यः स्वाहा । सर्वभव्येभ्यः सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा । राजभ्यः सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा । प्रजाभ्यः सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा । सर्वभूतेभ्यः शान्तिर्भवतु स्वाहा । यशो मम सदा भवतु । गुणाः सम्पूर्णा भवन्त्विति स्वाहा ।

दधिस्नपनम् ।

दुःसंसारगदागदैः शिवपदश्रीचित्तवश्यौषधैः
कर्मारातिजयोत्पतत्क्षितिरजःसन्दोहसन्देहदैः ।
स्नेहालेपविलोपनाय निपतद्भृङ्गाङ्गनाराजिभि-
र्भक्त्योद्वर्तनमारभे सुरभिभिः सद्गन्धचूर्णैर्विभोः ॥८४॥

ॐ कङ्कोलैलालवङ्गप्रियंग्वादिसुगन्धिद्रव्यश्लक्ष्णसंपिष्टशुष्कचूर्णैः, जिनप्रतिमालग्नक्षीरघृतदधिप्रवाहलेपापनोदं विदधामि मम भगवन्तोऽर्हन्तः सन्ततानुबद्धदुरितोपलेपनमपनुदंतु स्वाहा ।

शुष्कचूर्णम् ।

कर्पूरधूलिमिलितैः घनसारपङ्कसम्मिश्रितैः कमलतन्दुलपिण्डपिण्डैः ।
उद्वर्तनं भगवतो वितनोमि देहस्नेहोपलेपकलनापरिलोपनाय ॥८५॥

ॐ कर्पूरचन्दनसमिश्रजलार्द्रशालेयधवलतन्दुलपिष्टपिण्डैरालेपनेन भगवदङ्गं विमलीकरोमि मम सकलकर्मक्षयमपनयतु स्वाहा।

पिष्टम्।

रक्तैः श्यामतमैः सितेतरतमैः शुभ्रैः सुपीतैस्तथा
संवृद्ध्यै जगतां त्रयस्य विधिवद्वर्णान्नपिण्डैः क्रमात्।
अन्यैरप्यवतारमङ्गलविधिद्रव्यैरशेषैरहं
स्नानोपान्तनिवर्तने जिनपतेर्निर्वर्तयाम्यादरात् ॥८६॥

नीराजनावतरणम्।

जम्बूदुम्बरचूतपिप्पलवटप्लक्षादिवृक्षत्वचां
सम्पर्कैः सुकषायितैरभिषवं जिष्णोर्जलैः कुर्महे।
कृष्टाशेषकषायवैरिविजयश्रीगोमिनीसंगमं
संसारज्वरतापसन्ततिरुजा मूर्छाच्छिदां चेच्छवः ॥८७॥

ॐ प्लक्षन्यग्रोधाश्वत्थोदुम्बराम्रजम्बूप्रभृतिवृक्षद्रुमसमुत्पन्नत्वक्कषायपरिपूर्णसुवर्णकलशैरभिषेचयामि विगतकषायविशेषं विदधातु नः स्वाहा।

कषायोदकस्नपनम्।

ॐ चत्वारः किं शुभाख्याः प्रथितजलधयः पुष्करावर्तकादि-
ख्याताम्भोदप्रभेदाः किमु कलशजलव्याजमासाद्य सद्यः।
कर्तुं भर्तुर्मदीयस्नपनमगमभित्यनिक्षेपयोग्यैः
कोणस्थैः पूर्णकुम्भैः सकलमलहरैः स्नापयामश्चतुर्भिः ॥८८॥

कोणस्थचतुःकलशस्नपनम्।

ॐ कर्पूरकाश्मीरागुरुमलयजादिक्षोदव्यामिश्रैर्निर्गिंकसुवर्णरेणु-घमानकञ्जकिञ्जल्कपुञ्जपिञ्जरैर्वितनविलासिनीविलोललोचननीरजन्लप-परिपूरितैः सकलजनघ्राणविवरबन्धुरसौगन्ध्यैः—

अन्धीकृतालिभिरभिप्लुतहेमकुम्भ-
सन्धारितैर्विजितदिग्गिमदानुगन्धैः ।
बन्धुं प्रभुं भवभृतामिति सर्वपश्चा-
द्गन्धोदकैर्जिनपतिं स्नपयामि शान्त्यै ॥८९॥

गन्धोदकस्नपनम् ।

ॐ श्रद्धालौ चलिताचलेश्वरतटे प्रोद्दण्डपादाहते
भ्राम्यद्व्योम्नि समं विमानतनयो दीप्ताखिलाशाभुजैः ।
यस्योच्छ्वाससमीरदूरविलुठत्कूटस्य जन्मोत्सवे
देवेन्द्रे नटति स्फुटं बहुरसं सोऽयं जिनस्त्रायताम् ॥९०॥

इन्द्रनाटकस्तुतिः ।

ॐ सरोजदलधारिणा सकललोकसन्धारिणा
क्वणत्कनकरेणुना क्षपितपापदूरेणुना ।
भ्रमद्भ्रमरचारुणा निखिलगन्धसन्धारिणा
जिनेन्द्रचरणौ वरौ सुरभिवारिणाराधये ॥९१॥

जलम् ।

श्रीखण्डकुङ्कुमचतुःसमदन्तिदान-
कालागुरुप्रभृतिबन्धुरगन्धवर्गैः ।
अन्धीकृतालिनिकरैरतिभक्तियुक्तो
मुक्त्यै सुरासुरवरार्चितमर्चयामि ॥९२॥

गन्धम् ।

लक्ष्मीकटाक्षललितैर्नवनीलनीर-
जाताधिवाससुरभीकृतदिक्कटान्तैः ।
शाल्यक्षतैः क्षतमलैरमलैरखण्डै-
र्भक्त्यार्पितैर्जिनपतिं परिपूजयामि ॥९३॥

अक्षतम् ।

प्रोत्फुल्लपङ्करुहपाटलपारिजात-
मन्दारसुन्दरतरुप्रभवैः प्रभूतैः ।
अन्यैश्च पुष्पनिवहैर्निचितैर्निबद्धै-
र्मुक्त्यै मुहुर्जिनपदाब्जयुगं यजेऽहं ॥९४॥

पुष्पम् ।

सुरसुरभिशुद्धस्निग्धशाल्यन्नसम्य-
ग्ग्रथितदधिघृताज्यक्षीरभक्ष्योपदंशम् ।
कनकरजतपात्रे स्थापितं हारसारम् ।
हविरमृतमिवोच्चैरुत्क्षिपामो जिनेभ्यः ॥९५॥

चरुम् ।

मसृणधवलदीर्घस्थूलकर्पूरपाली-
ज्वलितविमलदीप्तिव्याप्तदीपप्रदीपैः ।
अलिभिरिव पतङ्गैर्गन्धलुब्धैः समन्ता-
त्परिकरितशरीरैर्द्योतयामो जिनार्हान् ॥९६॥

दीपम् ।

अभिनवरससारद्रव्यसंयोगजातैः
स्थगितसकलदिक्कैर्दिग्गजैर्दीपनैर्वा ।

सुरभिभिरपि धूपैरापतद्भृङ्गसंघै-
रघविघटनदक्षैर्धूपयामो जिनांह्रीन् ॥९७॥

धूपम् ।

नारङ्गैर्नालिकेरैः पनसफलशतैर्मोचलैर्मातुलिङ्गै-
र्जम्बीरैः शातकुम्भद्युतिभिरभिनवैराम्रभेदैरनर्घैः ।
अम्बूभिश्चिञ्चरीकच्छविभिरिक्षुफलैश्चापरैः पूजयामो
भक्त्या भावोपनीतैः फलतु जिनपतेरंह्रिपङ्केजयुग्मम् ॥९८॥

फलम् ।

ॐ विघ्नैः श्रीगुणभद्रदेवगणभृत्पूज्यक्रमाब्जक्रमै-
र्योऽसौ संस्नपितः कृती जिनपतिस्त्राता भवाम्भोनिधेः ।
पूते तत्पदपद्मपीठनिकटे निष्पातये शान्तये
सर्वस्यापि जगत्त्रयस्य परमप्रीत्याम्बुधारामिमाम् ॥९९॥

शान्तिधारा ।

जातीकेतकिमालतीविचकिलैरुद्गन्धिभिर्बन्धुरै-
श्चारुचम्पकपाटलैः सुरभिभिः पुन्नागसौगन्धिकैः ।
गन्धाकृष्टपरिभ्रमन्मधुकरव्रातावृताङ्गो मया
देवस्य प्रतिकीर्यते जिनपतेः पुष्पाञ्जलिः पादयोः ॥१००॥

ॐ ह्रीं ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा ।

पुष्पाञ्जलिः ।

स्वस्ति कुर्युर्जिनेन्द्रास्ते विश्वविश्वस्य भीभिदः
यन्नामस्मरणादेव प्राणी पापैः प्रमुच्यते ॥१०१॥

मत्यात्मा व्रतिहानिमूलविभवलब्धपक्षराद्यागम-
बाधं श्रुत्युपशान्तमुक्तिसदलं सद्युतिपुण्यं श्रुतः ।
आमोदाम समुद्गिरन्तु कवयो नामाक्षरस्यास्तु मे
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ॥१०२॥

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः
सन्तन्यतां प्रतपतु सततं स कालः ।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण
रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षुवर्गे ॥१०३॥

अर्हद्भ्यो नमः सिद्धेभ्यो नमः सूरिभ्यो नमः पाठकेभ्यो नमः सर्वसाधुभ्यो नमः, अतीतानागतवर्तमानत्रिकालगोचरानन्तद्रव्यगुणपर्यायात्मकवस्तुपरिच्छेदकसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राद्यनेकगुणगणाधारपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः, पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां प्रीयन्तां मांगल्यं माङ्गल्यं, ऋषभादिमहतिमहावीरवर्धमानपर्यन्तपरमतीर्थंकरदेवं तत्समयपालिन्योऽप्रतिहतचक्रचक्रेश्वरीप्रभृतिचतुर्विंशतिशासनदेवताः, गोमुखप्रभृतिचतुर्विंशतियक्षाः, आदित्यचन्द्रमङ्गलबुधबृहस्पतिशुक्रशनिराहुकेतुप्रभृत्यष्टाशीतिग्रहाः, वासुकीशङ्खपुलिककर्कोटपद्मकुलिकानन्ततक्षकमहापद्मजयविजयनागा देवनागा यक्षगन्धर्वब्रह्मराक्षसभूतपिशाचप्रभृतिव्यन्तराः, सर्वेऽप्येते जिनशासनवत्सलाः, ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकाद्यखिलाजकराजमन्त्रिपुरोहितसामन्तारक्षकप्रभृतिसमस्तलोकसमूहस्य शान्ति-वृद्धि-पुष्टि-तुष्टि-क्षेम-कल्याण-स्वायुरारोग्यप्रदा भवन्तु, सर्वसौख्यप्रदाश्च सन्तु, देशे राष्ट्रे पुरेषु च सर्वदैवचोरारिमारीतिदुर्भिक्षविग्रहविप्रोपद्रुष्टग्रहभूतशाकिनीप्रभृतिशेषान्यनिष्टानि विलयं प्रयान्तु, राजा विजयी भवतु, प्रजा सौख्यं भवतु, राजप्रभृतिसर्वलोकाः सततं जिनधर्मवत्सलपूजादानव्रतशीलमहामहोत्सवपूजोद्यता भवन्तु, चिरकालमानन्दन्तु, यत्र स्थिता भव्यप्राणिनः संसारसागरलीलयोत्तीर्यानुपमं सिद्धिसौख्यमनन्तकालमनुभवन्तु, तथाशेषप्राणिगणशरणभूतं जिनशासनं नन्दत्विति स्वाहा ।

स्वस्ति कुर्युर्जिनेन्द्रास्ते विश्वविश्वस्य भीभिदः।
यन्नामस्मरणादेव प्राणी पापैः प्रमुच्यते ॥१॥

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखीभवतु लोकः ॥२॥

* इति बृहत्स्नपनविधिः समाप्तः *

सं० १८६२ मिती पूष शुक्ला २।

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः ।

श्रीसोमदेवसूरि-विरचितो जिनाभिषेकः

(२)

श्रीकेतनं वाग्वनितानिवासं पुण्यार्जने क्षेत्रमुपासकानाम् ।
स्वर्गापवर्गागमनैकहेतुं जिनाभिषेकाश्रयमाश्रयामि ॥१॥

भावामृतेन मनसि प्रतिलब्धशुद्धिः
पुण्यामृतेन च तनौ नितरां पवित्रः ।
श्रीमंडपे विविधवस्तुविभूषितायां
वेद्यां जिनस्य सवनं विधिवत्तनोमि ॥२॥

उदङ्मुखं स्वयं तिष्ठेत्प्राङ्मुखं स्थापयेज्जिनम् ।
पूजाक्षणे भवेन्नित्यं यमी वाचंयमक्रियः ॥३॥
प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापना ।
पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम् ॥४॥

यः श्रीजन्मपयोनिधिर्मनसि च ध्यायन्ति यं योगिनो
येनेदं भुवनं सनाथममरा यस्मै नमस्कुर्वते ।
यस्मात्प्रादुरभूच्छ्रुतिः सुकृतिनो यस्य प्रसादाज्जना
यस्मिन्नेष भवाश्रयो व्यतिकरस्तस्यारभे स्नापनाम् ॥५॥

वीतोपलेपवपुषो न मलानुषङ्ग-
स्त्रैलोक्यपूज्यचरणस्य कुतः परोऽर्थः।
मोक्षामृते धृतधियस्तव नैव कामः
स्नानं ततः कमुपकारमिदं करोतु ॥६॥
तथापि स्वस्य पुण्यार्थं प्रस्तुवेऽभिषवं तव।
को नाम सूपकारार्थं फलार्थी विहितोद्यमः ॥७॥
१-प्रस्तावना।†

स्नानाम्बुभिः कुशकृशानुभिराप्तशुद्धौ
भूमौ भुजङ्गमपतीनमृतैरुपास्य।
कुर्मः प्रजापतिनिकेतनदिङ्मुखानि*
दूर्वाक्षतप्रसवदर्भविदर्भितानि ॥८॥
पायःपूर्णान् कुम्भान् कोणेषु सुपल्लवप्रसूनार्चान्।
दुग्धाब्धीनिव विदधे प्रवालमुक्तोल्वणांश्चतुरः ॥९॥
२-पुराकर्म।

---

† स्नपनकरणे योग्यतास्थापनं प्रस्तावनम्।

१—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भूः स्वाहा इति जिनाभिषेकप्रस्तावन-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

* ब्रह्मस्थानप्रमुखानि।

२—ॐ ह्रीं नमः सर्वज्ञाय सर्वलोकनाथाय धर्मतीर्थंकराय श्री-शान्तिनाथाय परमपवित्रेभ्यः शुद्धेभ्यः नमो भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा। इत्यनेन भूमिशोधनं। ॐ ह्रीं क्षीं अग्निं प्रज्वालयामि निर्मलाय स्वाहा, ॐ ह्रीं वन्हिकुमाराय स्वाहा, ॐ ह्रीं ज्ञानोद्योताय नमः स्वाहा। इति अग्निज्वालनम्। ॐ ह्रीं श्रीं क्षीं भूः नागेभ्यः स्वाहा। इति नागतर्पणम्। ॐ ह्रीं क्रों दर्पमथनाय नमः स्वाहा। इति ब्रह्मादिदशदिग्बलिः। ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं नेत्राय संवौषट् कलशार्चनं करोमि स्वाहा। इति पुराकर्म।

यस्य स्थानं त्रिभुवनशिरःशेखराग्रे निसर्गा-
त्स्यामर्त्यक्षितिभृति† भवेश्चाद्भुतं स्नानपीठम्‡ ।
लोकानन्दामृतजलनिधेर्वारिचितसुधात्वं
धत्ते यत्ते सवनसमये तत्र चित्रीयते कः ॥१०॥

तीर्थोदकैर्मणिसुवर्णघटोपनीतैः
पीठे पवित्रवपुषि§ प्रविकल्पितार्घे¶ ।
लक्ष्मीश्रुतागमनबीजविदर्भगर्भे
संस्थापयामि भुवनाधिपतिं जिनेन्द्रम् ॥११॥

३—स्थापना ।

सोऽयं जिनः सुरगिरिर्ननु पीठमेत—
देतानि दुग्धजलधेः सलिलानि साक्षात् ।
इन्द्रस्त्वहं तव सवप्रतिकर्मयोगा-
त्पूर्णा ततः कथमियं न महोत्सवश्रीः ॥१२॥

४—सन्निधापनम् ।

---

† मेरौ, ‡ सिंहासनं, § जलैः प्रक्षालिते, ¶ पीठस्यापि अर्घः पूर्वं दीयते ।

३—ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्मं ठठ श्रीपीठं स्थापयामि स्वाहा । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रजलेन श्रीपीठप्रक्षालनं करोमि स्वाहा । ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय स्वाहा । इति श्रीपीठमभ्यर्चयेत् । ॐ ह्रीं श्रीलेखनं करोमि स्वाहा । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्रीवर्णे प्रतिमा-स्थापनं करोमि स्वाहा । इति स्थापना ।

४—श्रीमंडपादिषु शक्रमंडपादिभावस्थापनार्थं जात्यकुंकुमाकुलित-दर्भदूर्वापुष्पाक्षतं क्षिपेत् । इति सन्निधापनम्

(अथातः पूजाविधानम् —)

यागेऽस्मिन्नाकनाथ ज्वलन पितृपते नैगमेय प्रचेतो
वायो रैदेश शेषोडुप सपरिजना यूयमेत्य ग्रहाग्राः ।
मंत्रैर्भूःस्वःस्वधाद्यैरधिगतवलयः स्वासु दिक्षूपविष्टाः
क्षेपीयः क्षेमदक्षाः कुरुत जिनसवोत्साहिनां विघ्नशान्तिम् ॥१३॥

(१–लोकपालाव्हानम्)

देवेऽस्मिन् विहितार्चने निनदति प्रारब्धगीतध्वना-
वातोद्यैः स्तुतिपाठमङ्गलरवैश्चानन्दिनि प्राङ्गणे ।
मृत्स्ना–गोमय–भूतिपिण्ड–हरिताक्ष*–दर्भ–प्रसूनाक्षतै-
रम्भोभिश्च सचन्दनैर्जिनपतेर्नीराजनां प्रस्तुवे† ॥१४॥

(२–नीराजनावतरणम् ।)

पुष्पद्रुमदिनिरमयं नवपल्लवश्री-
श्चेतःसरः प्रमदमन्दसरोजगर्भम् ।

---

* दूर्वा, † जिनशरीरे नीराजना प्रारंभे ।

१–ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिन्ह-सपरिवारा इन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवायुकुबेरेशानधरणेन्द्रसोमनामदश-लोकपाला आगच्छत आगच्छत संवौषट्, स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, ममात्र सन्निहिता भवत भवत वषट्, इदमर्घ्यं पाद्यं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा । इति इन्द्रादिदशलोकपालपरिवारदेवतार्चनम् ।

२–ॐ ह्रीं क्रों समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि दुरितमस्माक-मपहरतु भगवान् स्वाहा । इति मृत्स्नागोमयादिपवित्रद्रव्यैर्नीराजनम् ।

वागापगा च मम दुस्तरतीरमार्गा
स्नानामृतैर्जिनपतेस्त्रिजगत्प्रमोदैः ॥१५॥
(१–जलाभिषेकः)

द्राक्षाखर्जूरचोचेक्षुप्राचीनामलकोद्भवैः ।
राजादनाम्रपूगोत्थैः स्नापयामि जिनं रसैः ॥१६॥
(२–रसाभिषेकः)

आयुः प्रजासु परमं भवतात्सदैव
धर्मावबोधसुरभिश्चिरमस्तु भूयः ।
पुष्टिं विनेयजनता वितनोतु कामं
हैयंगवीनसवनेन जिनेश्वरस्य ॥१७॥
(३–घृताभिषेकः)

येषां कामभुजङ्गनिर्विषविधौ बुद्धिप्रबन्धो नृणां
येषां जन्मजरामृतिष्व्युपरमध्यानप्रपंचाग्रहः ।

१–ॐ ह्रीं स्वतये कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं हंहं संसं तंतं पंपं भंभं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सस्त्रैलोक्यस्वामिनो जलाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा । इति जलाभिषेकः ।

२–ॐ ह्रीं श्रीं………………त्रैलोक्यस्वामिनो रसाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा । इति रसाभिषेकः ।

३—ॐ ह्रीं श्रीं………………त्रैलोक्यस्वामिनो घृताभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

येषामात्मविशुद्धबोधविभवालोके सतृष्णं मन-
स्ते धारोष्णपयःप्रवाहधवलं ध्यायन्तु जैनं वपुः ॥१८॥
(४-दुग्धाभिषेकः)

जन्मस्नेहच्छिदपि जगतः स्नेहहेतुर्निसर्गात्
पुण्योपाये मृदुगुणमपि स्तब्धलब्धात्मवृत्तिः ।
चेतोजाड्यं हरदपि दधि प्राप्तजाड्यस्वभावं
जैनस्नानानुभवनविधौ मङ्गलं वस्तनोतु ॥१९॥
(५-दध्यभिषेकः)

एलालवङ्गकङ्कोलमलयागुरुमिश्रितैः ।
पिष्टैः कल्कैः कषायैश्च जिनदेहमुपास्महे ॥२०॥
(६-सर्वौषध्यभिषेकः)

नन्द्यावर्तस्वस्तिकफलप्रसूनाक्षताम्बुकुशपूलैः ।
अवतारयामि देवं जिनेश्वरं वर्धमानेश ॥२१॥
(७-नीराजना)

४—ॐ ह्रीं श्रीं.........त्रैलोक्यस्वामिनो दुग्धाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

५—ॐ ह्रीं श्रीं.........त्रैलोक्यस्वामिनो दधिस्नपनं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

६—ॐ ह्रीं श्रीं.........त्रैलोक्यस्वामिनः कल्कचूर्णैरुद्वर्तनं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

७—ॐ ह्रीं क्रों समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भगवान् स्वाहा ।

ॐ भक्तिभरविनतोरगनरसुरासुरेश्वरशिरःकिरीटकोटिकल्प-
नखपङ्क्त्याप्यमानचरणयुगलं, अमृतायनाङ्गनाकरविकीर्यमाणमन्दा-
रनमेरुपारिजातसन्तानकवनप्रसूनस्यन्दमानमकरन्दस्वादोन्मदमिलन्म-
धालिकुलप्रलापोच्चालितनिलिम्पालसिव्यापारिचितं, अम्बरचरकुमार-
हेलास्फालितवेणुवल्लकीपणवानकमृदङ्गशंखकाहलविविलतालझल्लरीभे-
रीभंभा* प्रभृत्यनवधिघनशुषिरततावनद्धवाद्यनादनिवेदितनिखिलवि-
ष्टपाधिपोपासनावसरं, अनेकामरविकिरकीर्णकिशलयाशोकानोकहो-
ल्लसत्प्रसवपरागपुनरुक्तसकलदिक्पालहृदयरागप्रसरं, अखिलभुवनैश्व-
र्यलाञ्छनातपत्रत्रयशिखण्ड† मण्डनमणिमयूखरेखालिख्यमानमनुजसुर-
खेचरीभालतलतिलकपत्रं, अनवरतपवनविक्षिप्यमाणोभयपक्षचामर-
परम्परांशुजालधवलितविनेयजनमनःप्रसादचरित्रं, अशेषप्रकाशितपदा-
र्थातिशायिशारीरप्रभापरिवेषमुषितपरिषत्सभास्वारमतितिमिरनिकरं,
अनवधिवस्तुविस्तारात्मसाक्षात्कारासारविस्फारितसरस्वतीतरङ्गसन्त-
र्पितसत्त्वसरोजाकरं, इभारातिपरिवृढोपवाह्यमानासनावसानलग्न-
रत्नकरप्रसरपल्लवितविपत्पादपाभोगं, अनन्यसामान्यसमवशरणसभा-
सीनमनुजदिविजभुजङ्गमेन्द्रवृन्दवन्द्यमानपादारविन्दयुगं—

मङ्गलावलिलक्ष्मीलतिकावनस्य प्रवर्धनावर्जितवारिपूरैः ।
जिनं चतुर्भिःस्नपयामिकुम्भैर्नभस्सदोधेनु‡पयोधराभैः ॥२२॥

(८—चतुःकोणकलशाभिषेकः)

लक्ष्मीकल्पलते ! समुल्लस जनानन्दैः परं पल्लवैः§—
धर्मारामफलैः प्रकामसुभगस्त्वं भव्यसेव्यो भव ।

---

* दुबका, † मस्तक, ‡ कामधेनोः, § सह,

८—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमोऽर्हते भगवते मंगललोकोत्तमशरणाय कोणकलशजलाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

बोधाधीश ॐ विमुञ्च सम्प्रति मुहुर्दुष्कर्मघर्मक्लमं
त्रैलोक्यप्रमदावहैर्जिनपतेर्गन्धोदकैः स्नापनात् ॥२३॥

(९–गन्धोदकाभिषेकः)

शुद्धैर्विशुद्धबोधस्य जिनेशस्योत्तरोदकैः ।
करोम्यवभृथस्नानमुत्तरोत्तरसम्पदे ॥२४॥

(१०–आत्मपवित्रीकरणम्)

अमृतकर्णिकेऽस्मिन्निजाङ्कबीजे कलादले कमले ।
संस्थाप्य पूजयेयं त्रिभुवनवरदं जिनं विधिना ॥२५॥

(१–आह्वान-स्थापना-सन्निधिकरणानि पुष्पाञ्जलिर्वा)

पुण्योपार्जनशरणं पुराणपुरुषं स्तवोचिताचरणम् ।
पुरुहूतविहितसेवं पुरुदेवं पूजयामि तोयेन ॥२६॥

(२–जलम्)

ॐ हे आत्मन् ।

९—ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्री शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्ष्यामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हन् अ सि आ उ सा नमः मम सर्वशान्तिं कुरु मम सर्वपुष्टिं कुरु स्वाहा स्वधा ।

१०—ॐ नमोऽर्हत्परमेष्ठिभ्यः मम सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा । इति स्वमस्तके गन्धोदकप्रक्षेपणम् ।

१—ॐ ह्रीं ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा–पुष्पाञ्जलिः ।

२—ॐ ह्रीं अर्हन् नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा–जलम् ।

मन्दमदमदनदमनं मन्दरगिरिशिखरमज्जनावसरे ।
कुन्दमुमालतिकाया चन्दनचर्चाचितं जिनं कुर्वे ॥२७॥
(३–चन्दनम्)

—

अवमतरुगहनदहनं निकामसुखसंभवामृतस्थानम् ।
आगमदीपालोकं कलमभवैस्तन्दुलैर्भजामि जिनम् ॥२८॥
(४–अक्षतं)

—

स्मररसविमुक्तसूक्ति विज्ञानसमुद्रमुद्रिताशेषम् ।
श्रीमानसकलहंसं कुसुमशरैरर्चयामि जिननाथम् ॥२९॥
(५–पुष्पम्)

—

अर्हन्तममितनीतिं निरञ्जनं मिहिरकमाधिदावाग्नेः ।
आराधयामि हविषा मुक्तिस्त्रीरमितमानसमनङ्गम् ॥३०॥
(६–नैवेद्यम्)

—

भक्त्यानतामराशयकमलवनारालतिमिरमार्तण्डम् ।
जिनमुपचरामि दीपैः सकलसुखारामकामदमकामम् ॥३१॥
(७–दीपम्)

—

० मेयं ।

३—ॐ ह्रीं अर्हन् नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा–गन्धम् ।
४—ॐ ह्रीं अर्हन् नमोऽनादिनिधनेभ्यः स्वाहा–अक्षतान् ।
५—ॐ ह्रीं अर्हन् नमः सर्वनृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा–पुष्पम् ।
६—ॐ ह्रीं अर्हन् नमोऽनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा–नैवेद्यं ।
७—ॐ ह्रीं अर्हन् नमोऽनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा—दीपम् ।

अनुपमकेवलवपुषं सकलकलाविलयवर्तिरूपस्थम् ।
योगावगम्यनिलयं यजामहे निखिलगं जिनं धूपैः ॥२२॥
(८–धूपम्)

स्वर्गापवर्गसङ्गतिविधायिनं व्यस्तजातिमृतिदोषम् ।
व्योमचरामरपतिभिः स्तुतं फलैर्जिनपतिमुपासे ॥२३॥
(९–फलम्)

अम्भश्चन्दनतंदुलोद्गमहविर्दीपैः सुधूपैः फलै-
रर्चित्वा त्रिजगद्गुरुं जिनपतिं स्नानोत्सवानन्तरम् ।
तं स्तौमि प्रजपामि चेतसि दधे कुर्वे श्रुताराधनं-
त्रैलोक्यप्रभवं च तन्महमहं कालत्रये श्रद्दधे ॥२४॥
(१०–अर्घम्)

यज्ञैर्मुदावभृथभाग्भिरुपास्य देवं
पुष्पाञ्जलिप्रकरपूरितपादपीठम् ।
श्वेतातपत्र-चमरीरुह-दर्पणाद्यै-
राराधयामि पुनरेनमिनं जिनानाम् ॥२५॥
(११–पुष्पाञ्जलिः) ५—पूजा।

८—ॐ ह्रीं अर्हन् नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा–धूपम् ।
९—ॐ ह्रीं अर्हन् नमोऽनन्तसौख्येभ्यः स्वाहा–फलम् ।
१०—ॐ ह्रीं अर्हन् नमः परममङ्गलेभ्यः स्वाहा–अर्घ्यम् ।
११—ॐ ह्रीं अर्हन् नमो भ्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः–स्वाहा। पुष्पाञ्जलिः ।

भक्तिर्नित्यं जिनचरणयोः सर्वसत्त्वेषु मैत्री
सर्वातिथ्ये मम विभवधीर्बुद्धिरध्यात्मतत्त्वे ।
सद्विद्येषु प्रणयपरता चित्तवृत्तिः परार्थे
भूयादेतद्भवति भगवन् ! धाम यावत्त्वदीयम् ॥३६॥
प्रातर्विधिस्तव पदाम्बुजपूजनेन
मध्याह्नसन्निधिरयं मुनिमाननेन ।
सायंतनोऽपि समयो मम देव ! याया-
न्नित्यं त्वदाचरणकीर्तनकामितेन ॥३७॥
धर्मेषु धर्मनिरतात्मसु धर्महेतौ*
धर्मादवाप्तमहिमास्तु नृपोऽनुकूलः ।
नित्यं जिनेन्द्रचरणार्चनपुण्यधन्याः
कामं प्रजाश्च परमां श्रियमाप्नुवन्तु ॥३८॥

६—पूजाफलम् ।

आलस्याद्वपुषो हृषीकहरणैर्व्याक्षेपतो वात्मन-
श्चापल्यान्मनसो मतेर्जडतया मान्द्येन वाक्सौष्ठवे ।
यः कश्चित्तव संस्तवेषु समभूदेष प्रमादः स मे
मिथ्या स्तात्त्वनु देवताः प्रणयिनां तुष्यन्ति भक्त्या यतः॥३९॥
देवपूजामनिर्माय मुनीननुपचर्य च ।
यो भुञ्जीत गृहस्थः सन् स भुञ्जीत परं तमः ॥४०॥

इति सोमदेवसूरिविरचिते उपासकाध्ययने स्नपनार्चनविधिर्नाम षट्त्रिंशः कल्पः ।

---

* चैत्यालयादौ ।

नमः सिद्धेभ्यः ।

श्रीमदभयनन्दि-विरचितं
लघु-स्नपनम् ।

श्रीभावशर्मकृत-प्राभाकरीटीकया युतम् ।

(४)

श्रीमज्जिनेन्द्रमानम्य लघुस्नपनकर्मणि ।
विधत्ते भावशर्माख्यष्टीकां प्राभाकरीमिमाम् ॥१॥
असम्प्रदायादिह पाठशुद्धिर्न विद्यते क्वापि सतामभीष्टा ।
अतोऽर्थशुद्ध्यै विधिवन्मदीयः समूलपाठेऽत्र महान् प्रयत्नः ॥२॥

अथ स्वल्पसारसंसारसंभवासुखसन्ततेः समुद्धृत्य सत्वानुत्तमे सुखे धरतीति व्युत्पत्त्याप्तैर्धर्मः समुद्दिष्टः । स किल सागारानगारविषय-भेदेन तैरेव द्विधा प्रतिपादितः । तत्र—

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुःसंज्ञाज्वरातुराः ।
शश्वत्स्वज्ञानविमुखाः सागारा विषयोन्मुखाः ॥१॥

तेषां इज्या, वार्ता, दत्तिः, स्वाध्यायः, संयमः, तप इति षट् कर्माणि निरूपितानि । तत्रार्हत्पूजा इज्या । स च नित्यमहः, चतुर्मुखः, कल्पवृक्षः, आष्टान्हिकः, ऐन्द्रध्वज इति पंचधा भवति ।

तत्र नित्यमहो नाम स नित्यं स्वजिनोऽर्च्यते ।
नीतैश्चैत्यालयं स्वीयगेहाद्गंधाक्षतादिभिः ॥१॥
भक्त्या मुकुटबद्धैर्या जिनपूजा विधीयते ।
तदाख्याः सर्वतोभद्र—चतुर्मुख—महामहाः ॥२॥

किमिच्छकेन दानेन जगदाशाः प्रपूर्य यः ।
चक्रिभिः क्रियते सोऽर्हद्यज्ञः कल्पद्रुमो मतः ॥३॥
जिनार्चा क्रियते भव्यैर्या नन्दीश्वरपर्वणि ।
आष्टाह्निकोऽसौ सेन्द्राद्यैः साध्या त्विन्द्रध्वजो महः ॥४॥

बलिः स्नपनं सन्ध्यात्रयेऽपि जगद्गुरोः पूजाभिषेककरणमित्यादिपूजाविशेषाणामत्रैवान्तर्भावः । यद्वा पूजा त्रिविधा—नित्या, नैमित्तिका, काम्या च । तत्र नियमात् प्रतिबन्धकासत्वे सर्वदा विहिता नित्या । चतुर्दश्यष्टम्यादिभवा नैमित्तिका । शान्तिकपौष्टिकादिनिमित्ता काम्या । तत्र नित्यमहभेदे जैनेन्द्रश्रुतिविधायिभिरभयनन्दिसूरिभिर्भूरिक्रियोपेतं लघुस्नपनं चक्रे । तत्र विहिताचारशास्त्रोक्तस्नानगणोऽनुस्नानभाक् धौतसितसूक्ष्मवासोद्वयोऽकृतेर्यापथशुद्धिः पर्यङ्कस्थ उदङ्मुखो याजकाचार्यो जिनेन्द्रपादपद्ममानम्य स्वाङ्गेषु चन्दनमारोपयेदिति सूचयितुं वसन्ततिलकेन सौगन्ध्यशब्दरूपमंगलाचरणमभिधत्ते—

सौगन्ध्यसङ्गतमधुव्रतझङ्कृतेन
संवर्ण्यमानमिव गन्धमनिंद्यमादौ ।
आरोपयामि विबुधेश्वरवृन्दवन्द्यं
पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानाम् ॥१॥

टीका—महाकवीनां वचांसि साध्याहाराणि भवन्तीति वचनादिहानुक्तोऽप्यङ्गशब्दोऽध्याहार्यः । अनेकभवविषमगहनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयन्तीति जिनाः सामान्यकेवलिनस्तेषूत्तमाः श्रेष्ठास्तीर्थंकरपरमेष्ठिनस्तेषाम् । विबुधा देवास्तेषामीश्वरा इन्द्रास्तेषां वृन्देन समूहेन वन्द्यं नुत्यं स्तुत्यं वा । पादारविन्दमंघ्रिकमलं । अभिवन्द्य मनोवाक्कायैर्नत्वा स्तुत्वा वा । आदौ स्नपनारम्भे । अनिंद्यं मालिन्यादिदोषमुक्तं कस्तूर्याद्युपद्रव्यसंगतिरहितं वा । गन्धं गन्धविशिष्टं चन्दनादि । स्वाङ्गेषु आरोपयामि निवेशयामि । यद्वा विशिष्टा बुधाः पंडिता जिनसेनाद्यास्तेषामीश्वरा वृषभ-

श्वेनप्रभृतयः । यद्वा विशेषेण बुधा विद्वांसस्तेषामीश्वरा भरणपोषणत्वा-बाळवर्त्यादयः । अत्र यद्यपि गन्धशब्दः परिमले गुणे शक्तस्तथापि लक्षणया वृत्त्या "मंचाः क्रोशन्तीतीव" चन्दनादिद्रव्ये द्रष्टव्यः । यद्वा गन्धो विद्यतेऽस्येति गन्ध मिति "अर्शादिभ्योऽच्" । अस्यैव विशेषणमुत्प्रेक्षयाह —शोभनोऽतिशयितश्चासौ गन्धः सुगन्धस्तस्य भावः सौगन्ध्यं परिमलो-द्रेकस्तेन तस्माद्वा हेतौ तृतीयापंचम्यौ इति । संगता मिलिता ये मधुव्रता मधुकरास्तेषां झंकृतं भ्रमितिरूपः शब्दस्तेन । संवर्ण्यमानमिव स्तूयमान-मिव । सौरभ्यातिशयेन ये षट्पदाः समागतास्ते स्वशब्दव्याजेन चन्दनस्य स्तुतिमिव कुर्वन्निह हो जगदानन्दनचन्दन ! एकेन्द्रियांगत्वे सत्यपि यस्य तव प्राधान्यं जगद्गुरुक्रमयोरपि प्रारम्भेऽस्ति तस्याधिक्यं किमुच्यते वयं तु चतुरिन्द्रिया अपि न परमेश्वरस्य स्तवनश्रवणेऽपि समर्था इति । ननु प्राधान्याज्जिनाङ्गाभ्याहारः किमिति न विधीयते इति चेदुच्यते—यज्ञे हि प्राधान्याप्राधान्यविचारो न स्वकपोलकल्पनया कल्पते किन्तु यथा पूर्वाचार्यवाक्यं दृश्यते तदनुरोधेन व्याख्या विधीयते । पूर्वाचार्यैस्तु स्वाङ्गमेवोक्तं न जिनाङ्गमतः ।

पूज्यपूजावशेषेण गोशीर्षेणाह्वतालिना ।
देवाधिदेवसेवायै स्वयपुरूर्वयेऽमुना ॥१॥

इत्याशाधरसूरयः । आदावित्यनेनाक्षततिलकादिना जिनार्चा न कार्येति द्योतितं । अत्रादौ स्नपनस्य सर्वं चन्दनादि जिनपादमूले विन्यस्यानादिसिद्धमंत्रेणाभिमंत्र्य स्वीकार्यमित्यमिन्दशब्दार्थोऽवबोद्धव्यः । यतः श्रीमदाशाधरसूरयः—

तस्येह भगवत्पाद-पीठे दिव्यं प्रसाधनं ।
कृत्येदमादेऽनादिसिद्धमंत्राभिर्मंत्रितम् ॥१॥

इति गन्धः ।

—

अतो मुद्रिकास्वीकारमाह—

प्रत्युप्तनीलकुलिशोपलपद्मराग—
निर्यत्करप्रकरबद्धसुरेन्द्रचापम् ।
जैनाभिषेकसमयेऽङ्गुलिपर्वमूले
रत्नाङ्गुलीयकमहं विनिवेशयामि ॥२॥

टीका—प्रत्युप्ताः खचिता ये नीलादयो मणयो नीलो नीलमणिः, कुलिशोपलो हीरकाख्यो मणिः, अत्रोपलशब्दो मणिवाचकः प्रकरणाद्बोद्धव्यः न पाषाणमात्रवाची । तथा च भारविप्रयोगः—

मध्यमोपलनिभे लसदंशावेकतश्च्युतिमुपेयुषि भानौ ।
द्यौरुवाह परिवृत्तिविलोलां हारयष्टिमिव वासरलक्ष्मीम् ॥१॥

अत्र मध्यमोपलशब्देन नायकमणिरुक्तः । पद्मरागः प्रसिद्धः । तेभ्यो निर्यन्तो निःसरन्तो ये कराः किरणास्तेषां प्रकरेण निकरेण, बद्धोऽनुकृतः सुरेन्द्रचाप इन्द्रधनुर्यत्र । तदेतादृशं रत्नाङ्गुलीयकं श्रेष्ठमुद्रिकां "रत्नं स्वजातिश्रेष्ठे" इति वचनादिह रत्नशब्दः श्रेष्ठवाचको ज्ञेयः । अत्राङ्गुलौ निवेशितस्याङ्गुलीयस्यार्धदर्शनादिन्द्रचापानुकृतिकथनम् । जिनस्यायं जैनः स चासावभिषेकश्च तस्य समयेऽवसरे, अङ्गुलिपर्वणां मूले प्रान्तेऽहं विनिवेशयामि—स्थापयामि । अत्र जैनाभिषेकसमयपदेनाभिषेकवेलायामवश्यं मुद्रिकादिस्वीकारः कार्यस्तदभावे चन्दनाद्यनुकल्पोऽपि विधेय इति सूचितम् । तथा सामान्यादङ्गुलिशब्दोपादानादप्यनामिकैव ग्राह्या नान्या, यतो लोकाः प्रायेण तस्यामेव मुद्रिकापरिधानं कुर्वन्ति ।

इति मुद्रिकास्वीकारः ।

अथ कटकाङ्गीकारमाह—

सम्यक्पिनद्धनवनिर्मलरत्नपंक्ति-
रोचिर्बृहद्वलयजातबहुप्रकारम् ।
कल्याणनिर्मितमहं कटकं जिनेश-
पूजाविधानललिते स्वकरे करोमि ॥३॥

टीका—सम्यक्-यथाशोभं दृढतया वा पिनद्धानि खचितानि नवानि नूतनानि अपरिभुक्तानि वा, निर्मलानि बिन्दुरेखादिदोषरहितानि रत्नानि वज्रप्रभृतीनि तेषां या पंक्तिः श्रेणी तत्र यानि रोचींषि तेजो-विशेषास्तेभ्यो बृहन्तो महान्तो वलयानां कटकानां जाता समुत्पन्नाः, बहवो नैकाः, प्रकारा विधा यत्र । एकमपि कटकं खचितपंचवर्णरत्न-किरणकदम्बकेन कटकानां बाहुल्यमिव दृश्यते । तथा कल्याणार्थं जिना-भिषेकोपकरणार्थं निर्मितं रचितं, एतेन नवीनत्वं सूचितं न तु पुरातन-मिति । यद्वा कल्याणे जिनाभिषेके निर्मितो मह उत्सवो येनेत्येकमेव पदं शोभाकारित्वात् । अथवा कल्याणेन सुवर्णेन निर्मितं रचितं, अन्यथा रत्नखचितेरसम्भवात् । "रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन" इत्युक्तेः । "श्रीकेतनं भूषणार्हं कल्याणं सुवर्णमिष्यते" इति निघन्टुः । एवंभूतं कटकं वलयं कर्मतापन्नं । "कटकं वलयोऽस्त्रियां" इत्यमरः । जिनेशस्य पूजाविधानेनार्चा-निष्पादनेन ललिते, करोति जिनार्चामिति कर इत्यन्वर्थान्मनोहरे स्वकरे आत्मीयहस्ते, अहं करोमि निवेशयामि । अत्र करशब्देन मणिबन्धो लक्ष्यते तत्र तत्परिधानायोगात्, यथा गंगायां घोषः प्रतिवसतीति गंगाप-देन तत्तटो लक्ष्यते तत्र घोषाधिकरणासम्भवादिति । अत्र स्वकर इत्यत्र स्वपदेन मुख्येन जिनाभिषेककारकेणालङ्कारवता भवितव्यमन्ये भवन्तु मा वेत्यन्येषामनियमः सूचितः ।

कटकम् ।

अथ यज्ञोपवीतस्वीकारमाह—

पूर्वं पवित्रतरसूत्रविनिर्मितं य
त्प्रीतः प्रजापतिरकल्पयदङ्गसङ्गि ।
सद्भूषणं जिनमहे निजकन्धरायां
यज्ञोपवीतमहमेष तदातनोमि ॥४॥

टीका—पूर्वं-कल्पवृक्षापगमे युगादौ, प्रजापतिः-श्रीनाभेयात्मजो भरतचक्रवर्ती, प्रीतः—प्रजानां भक्तिमवलोक्य अङ्कुरपरित्यागेन चरणा-चरणचातुरीं वा विलोक्य सन्तुष्टः सन्। अतिशयेन पवित्रं पवित्रतरमेता-दृशं सूत्रं तन्तुस्तेन निर्मितं रचितं कमलतन्तुजं पट्टसूत्रजं वा अकर्तितका-र्पाससूत्रजं वेति तरशब्दाज्ज्ञेयं, यद्वा पवित्रतरसूत्रं-सर्वागमेभ्य उत्कृष्टो जिनप्रतिपादित आगमस्तेन निर्मितं यथागमे निरूपितं तथा विहितं न तु मिथ्यादृष्टिकल्पितमित्यर्थः, ईदृशं, यज्ञसज्ञि-नित्यमज्ञसज्ञो विद्यतेऽस्येति नित्ययोगे इन, एतेन सदोपवीतिना भाव्यमित्यङ्गीकृतं, सद्भूषणं-ब्राह्म-णादिवर्णत्रयचिन्हं, यदकल्पयत्-कल्पितवान्, श्रीयुगादिदेवो देवद्विजा-दिवर्णव्यवस्थार्थमुपनयनाख्यो विधयः प्रयुक्ता इति कल्पनाशब्दार्थः, तनु तत्तुल्यत्वेन निर्मितं, यज्ञोपवीतं कण्ठसूत्रं, जिनमहे-जिनस्नपने, कृतप्रति-ज्ञो यः सोऽहं, निज कन्धरायां-आत्मग्रीवायां, आतनोमि-विस्तारयामि। "अथ ग्रीवायां शिरोधिः कन्धरेत्यपि" इत्यमरः। यद्वा यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् -यतो हेतोः पूर्वं प्रीतोऽष्टवर्षानन्तरं व्रतविधये सन्तुष्टः प्रजापतिर्वृषभेश्वरः पवित्रतरसूत्ररचितमज्ञसज्ञि अकल्पयत् तत एव जिनमहे निजकन्ध रायां सद्भूषणं यज्ञोपवीतमातनोमीति योज्यम्। अत्रापि निजपदेन पूर्वंवत्स्वस्य प्राधान्यं द्योतितं। सद्भूषणपदेन तु जिनमहे नवीनं कंठ-सूत्रं धार्यमित्यायातं यतोऽनुपवीतस्य जिनार्चाकरणेऽधिकार एव न सूत्रे प्रतिपादितः। उपनयनं हि मुख्यं कर्म द्विजन्मनामुक्तं जिनसंहितायाम्। यथा—

उपनीतिक्रिया सूनोर्वर्षे गर्भाष्टमेऽथवा।
व्रतहेतुर्यतस्तस्मान्मुख्या सा सर्वकर्मसु ॥१॥
सर्वशुद्धिमहास्नानमर्हतो पंचमण्डले।
महामहं विधायामु सचौलं स्नापयेत्सुतम् ॥२॥
शिरोलिंगं शिखां शीर्षे कटीलिंगं कटीतटे।
सकोपीनं कटीसूत्रं मौंजी सन्धारयेदमुम् ॥३॥

ब्रह्मसूत्रमुरोलिंगमुत्तरीयं च वक्षसि ।
यज्ञोपवीतसंज्ञं तद्धरेद्रत्नत्रयाभिधम् ॥४॥
इति चिन्हत्रयं मूर्ध्नि धृत्वार्हत्पदशेषया ।
शौचमाचमनं स्नानमर्घ्यं तस्योपदिश्यते ॥५॥

इत्याद्युक्तम् । यज्ञोपवीतनिर्मापणं तु जिनसंहिताटीकायां श्रीकुमुदचन्द्रदेवैरुक्तम् । तद्यथा—कमलतन्तुजं पट्टसूत्रजमकर्तितकार्पाससूत्रजं वा रत्नत्रयस्मरणात्त्रिगुणं विधाय नवदेवतास्मरणान्नवगुणं च विधाय सप्तमार्गं यज्ञोपवीतं कृत्वा समंत्रं धारयेदिति । मंत्रास्त्वार्षे द्रष्टव्याः ।

यज्ञोपवीतम् ।

अथ मुकुटस्वीकारमाह ;—

पुन्नागचम्पकपयोरुहकिंकरात-
जातिप्रसूननवकेशरकुन्दमाद्यम् ।
देव ! त्वदीयपदपङ्कजसत्प्रसादा-
न्मूर्ध्नि प्रणामवति शेखरकं दधेऽहम् ॥५॥

टीका—भो देव-परमाराध्यजिनेन्द्र ! त्वदीये पदपङ्कजे चरणकमले तयोर्यः सन् उत्तमः प्रसादः प्रसन्नता ततः, प्रणामवति-प्रणामोपेते, मूर्ध्नि-मस्तके, शेखरकं-प्रशस्तमुकुटं, अहं दधे-धरामि । शेखरकमित्यत्र प्रशंसायां कः । अथ यावन्मुद्रिकाद्यलङ्कारस्वीकारो बहुशो विहितः शेखरस्वीकारस्तु भवत्पादपद्मप्रसादादेव जात इति प्रणामो मूर्ध्नि इत्यर्थः । किं विशिष्टमित्याह—पुन्नागं देववल्लभाख्यं, चम्पकं हेमपुष्पकं, पयोरुहं पद्मं, किंकरातं पिया इति रूढिः, जातिर्मालती, एतानि प्रसूनानि पुष्पाणि तथा नवकेशरं नवीनबकुलं, कुन्दमाद्यं, एतैरुद्यं गुम्फितमिति । लोकेऽपि पुष्पैर्गुम्फितस्य शेखर इति प्रसिद्धिः ।

मुकुटम् ।

अथेन्द्रः सालङ्कारो भूत्वा स्नपनयोग्यभूमेः प्रक्षालनं कुर्यादित्याह;—

ये सन्ति केचिदिह दिव्यकुलप्रसूता
नागाः प्रभूतबलदर्पयुता भुवोऽधः।
संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥६॥

टीका—ये केचित्—अविदितनामप्रभावा, नागाः—नागकुमाराः, इह—यज्ञमण्डपे, भुवः—पृथिव्याः, अधः—अधोभागे, सन्ति—विद्यन्ते। किं विशिष्टाः ? दिव्यानि प्रधानानि यानि कुलानि तत्र प्रसूता उत्पन्नाः, तथा प्रभूतं प्रचुरं यद्बलं भुजादिसामर्थ्यं सैन्यं वा तन्निमित्तो यो दर्पोऽहङ्कारस्तेन युताः। अत्र नागशब्दो वास्तुदेवादीनामुपलक्षणार्थं इति बहुवचनं ज्ञेयं। तेषां—नागादीनां, संरक्षणार्थं यथा ते प्रत्यूहं न कुर्वन्ति स्वयं रक्षका वा ते भवन्ति तदर्थं, शुभेन-प्रासुकेन तैर्थ्येन वा, अमृतेन-अमृततुल्येन तोयेन, पुरतः—स्नपनादौ, स्नपनस्य भूमिं—स्नपनकर्मोचितां पृथ्वीं, प्रक्षालयामि-शुद्धां करोमीत्यर्थः। अत्र भूशुद्धिग्रहणमन्यशुद्ध्युपलक्षणार्थं। यतः शुद्धिस्त्रिविधा—जिनाभिषेकभूमिशुद्धिः, अर्चनाद्रव्यपात्रशुद्धिः, पूजावस्तुशुद्धिरिति।

भूमिशोधनम्।

अथ शुद्धायां भूमौ पीठं न्यस्य प्रक्षाल्यत इत्याह;—

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः
प्रक्षालितं सुरवरैर्यदनेकवारम्।
अत्युद्यमद्य तदहं जिनपादपीठं
प्रक्षालयामि भवसंभवतापहारि ॥७॥

टीका—सुरवरैः-इन्द्रादिदेवैः कर्तृभिः, क्षीरार्णवस्य-दुग्धाब्धेः, पयसां—दुग्धानां "पयः क्षीरं पयो जलं" इत्यनेकार्थस्मरणात्, शुचिभिः—

उज्ज्वलैः, प्रवाहैः—ओघैः, अनेकवारं—प्रतितीर्थंकरापेक्षया बहुशः, यत्-पीठं, प्रक्षालितं—निर्मलीकृतं तदनुरूपेण प्रतिपन्नं, जिनपादपीठं—जिनपादौ यत्र स्थाप्येते, तत्—पीठं, अद्य-स्नपनसमये, अहं प्रक्षालयामि-तत्तुल्यतया निर्मलीकरोमीत्यर्थः। किंविशिष्टं तत् ? अत्युरं—जिन-पूजायोग्यत्वादतिशयतां प्राप्तं सर्वपीठेभ्य उत्कृष्टं वा, अत एव भवसंभव-श्चतुर्गतिसंसारसमुत्पन्नो यः तापो जन्मजरामरणलक्षणः सन्तापस्तं हर्तुं शीलं यस्येति तत् । एतेन पीठस्य अतिशयः प्रकाशितः । यद्वा भवसंभव-तापहान्यै इति पाठस्तदा संसारसमुत्पन्नसन्तापशान्त्यै इति योज्यम् ।

पीठप्रक्षालनम् ।

पीठस्थापनानन्तरं पीठमभितो दशदिक्पालाः स्थापनीया इत्याह;—

इन्द्राग्निदण्डधरनैर्ऋतपाशपाणि-
वायूत्तरेणशशिमौलिफणीन्द्रचन्द्राः ।
आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिन्हाः
स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके ॥८॥

टीका—इन्द्रः पुरन्दरः, अग्निर्वह्निः, दंडधरो यमः, नैर्ऋतो राक्षसः, पाशपाणिर्वरुणः, वायुः पवनः, उत्तरेणः उत्तराशापतिः कुबेरः "गिरिणयादेश्च" इति विकल्पेन णत्वं, शशिमौलिरीशानः, फणीन्द्रो धरणेन्द्रः, चन्द्रः सोमः, एषां द्वन्द्वः पश्चात् सम्बोधनं भो इन्द्रादयः! यूयं इह—जिनपाभिषेके, सानुचराः—ससेवकाः, तथा सचिह्नाः—चिह्नं वज्रादि तेन सह वर्तमाना एवंभूताः सन्तः, आगत्य—एत्य स्वं स्वं—आत्मीयमात्मीयं, बलिं—पूजा, प्रतीच्छत—स्वीकुरुतेत्यर्थः । "बलिः पूजोपहारयोः" इत्यमरः । अत्र कर्पूरचन्दनागुरुजलेन दशदिक्पाल-प्रोक्षणं कार्यमिति पितृसम्प्रदायः । अथ वक्ष्यमाणमंत्रैर्दशस्वपि दिक्षु दर्भन्यासः कार्यः । तत्रेन्द्रादीनामष्टानां स्वीयस्वीयदिशि दर्भस्थापनं । धर-

शेन्द्रस्य तु शक्रेशानयोर्मध्ये, सोमस्य तु नैर्ऋत्यवरुणयोर्मध्ये इति । यत आशाधरसूरयः—

अष्टाविन्द्रादिपीठानि यथास्वं परिकल्पयेत् ।
शेषसोमासने त्विन्द्रपाशिदक्षिणपार्श्वयोः ॥ १ ॥

इति । दर्भन्यासमंत्रा यथा—

ॐ इन्द्र ! आगच्छ इन्द्राय स्वाहा । ॐ अग्ने ! आगच्छ अग्नये स्वाहा । ॐ यम ! आगच्छ यमाय स्वाहा । ॐ नैर्ऋत्य ! आगच्छ नैर्ऋत्याय स्वाहा । ॐ वरुण ! आगच्छ वरुणाय स्वाहा । ॐ पवन ! आगच्छ पवनाय स्वाहा । ॐ धनद ! आगच्छ धनदाय स्वाहा । ॐ ईशान ! आगच्छ ईशानाय स्वाहा । ॐ धरणेन्द्र ! आगच्छ धरणेन्द्राय स्वाहा । ॐ सोम ! आगच्छ सोमाय स्वाहा इति ।

अत्र केचन क्षेत्रपालाव्हाननमपि कुर्वन्ति तत्र कोविदवृन्दवन्द्यं, उद्देशपदेऽनुद्दिष्टत्वात् नागादिष्वन्तर्भावाद्वा । केचिदत्रब्रह्मस्थाने ब्रह्माह्वानमपि प्रतिपादयन्ति तदपि न सताममानन्दाय तस्य पीठस्थापनेऽन्तर्भावात् ।

एवं पीठमभितो दर्भान् विन्यस्य यत्र जिनप्रतिमास्ति तत्र गत्वा जिनं परिवर्तयेदित्याह:—

पुण्याहमद्य सुमहान्ति च मंगलानि
सर्वे प्रहृष्टमनसश्च भवन्तु भव्याः ।
पुण्योदकेन भगवन्तमनन्तकान्ति-
मर्हन्तमुज्वलतनुं परिवर्तयामि ॥ ६ ॥

टीका—अद्य—इत्यादिर्दीपकत्वेन सर्वत्र योज्यम् । अद्य-यत्र जिनस्नपनं विधीयते तत्पुण्याहं—पुण्यदिनं "अहः सर्वैकदेश: ३०७" इत्यादिना अदन्तता, तथा अद्य सुमहान्ति—अतिशयगुरूणि मंगलानि च, तथा अद्य सर्वे—कृत्स्नाः, भव्याः—अभूवन्, भवन्ति भविष्यन्ति वा सम्यग्दर्शनं येषु ते प्राणिनश्च, प्रहृष्टं जिनाभिषेके सोत्कण्ठं मनश्चित्तं येषां ते एतादृशा

भवन्तु—सन्त्विति अनुमतौ पंचमी । अहमपि भगवन्तं—भगः श्रीः माहात्म्यं ज्ञानं वीर्यं कीर्तिश्च विद्यते यस्य तं "भगः श्रीकाममाहात्म्यवीर्यज्ञानार्ककीर्तिषु" इत्यमरः । तथा अनन्ता वक्तुमशक्या कान्तिः कायशोभा यस्य, अतएव उज्वला सर्वोत्कृष्टा तनुर्मूर्तिर्यस्य तं अर्हन्तं जिनेन्द्रं, पुण्योदकेन—जिनस्नानोपयोगित्वात्पवित्रपानीयेन यद्वा तीर्थतोयेन, परिवर्तयामि—परीतोऽवतारयामि ।

पुण्योदकावतारणम्—

अतोऽस्मायर्घदानमपि कार्यमित्याह;—

नाथ ! त्रिलोकमहिताय दशप्रकार-
धर्माम्बुवृष्टिपरिषिक्तजगत्त्रयाय ।
अर्घं महार्घगुणरत्नमहार्णवाय
तुभ्यं ददामि कुसुमैर्विशदाक्षतैश्च ॥ १० ॥

टीका—इन्द्रो भगवंतं साक्षादिव कृत्वार्घं प्रयच्छति, इन्द्रधरणेन्द्रचक्रिभिर्नाथ्यते याच्यत इति नाथस्तत्सम्बुद्धौ भो नाथ ! जगत्प्रभो ! त्रयश्च ते लोका भुवनानि त्रिलोकाः, अत्र लोकशब्देन तन्निवासिनो जना लभ्यन्ते तैर्महितः पूजितस्तस्मै "लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः, यद्वा त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकं तेन महिताय, तथा दशाधच्छिन्नाः प्रकारा उत्तमक्षमादयो विधयो यस्य स धर्म एव अम्बु पानीयं तस्य वृष्ट्या वर्षणेन परिषिक्तं परिषेचनात्पवित्रीकृतं जगत्त्रयं येन तस्म, महान्तोऽनिर्वचनीया अर्घा मूल्यानि येषां "आकारो महतः कार्यस्तुल्याधिकरणे पदे चार्थे २७६" इत्याकारः, "मूल्ये पूजाविधावर्घः" इत्यमरः, ते महार्घास्ते च ते गुणा अनन्तज्ञानादयस्त एव रत्नानि बहुमूल्यत्वान्मणयस्तेषां महार्णवोऽतलस्पर्शसमुद्रस्तस्मै, तुभ्यं—जगत्पतये, कुसुमैः—जात्यादिपुष्पैः, विशदाक्षतैश्च—अखण्डशुभ्रतन्दुलैश्च , अर्घं—पूजाविधिं, ददामि—प्रय-

च्छामि । एतादृशगुणविशिष्टायापि तुभ्यमघं ददामीत्यपिशब्दोऽध्याहार्यो भक्त्यतिशयाय ।

अर्घावतारणम्—

जन्मोत्सवादिसमयेषु यदीयकीर्ति
सेन्द्राः सुराः प्रमदभारनताः स्तुवन्ति ।
तस्याग्रतो जिनपतेः परया विशुद्ध्या
पुष्पाञ्जलिं मलयजार्द्रमुपाक्षिपेऽहम् ॥११॥

टीका—जन्मोत्सवो जन्माभिषेक आदिर्येषां तपःकल्याणादीनां ते जन्मोत्सवादयस्ते च ते समया अवसरास्तेषु, प्रमदो हर्षस्तस्य भारो बाहुल्यं तेन नता नम्राः, तथा सेन्द्राः—शतेन्द्रानुगता एवंभूताः, सुराः—देवाः, यदीयां यत्सम्बन्धिनीं कीर्तिं, स्तुवन्ति—क्षेत्रान्तरेषु अद्यापि स्तोतृत्वेन गायन्तीत्यर्थः पर्वतास्तिष्ठन्तीतिवन्नित्यप्रवृत्तौ वर्तमानप्रयोगः । यद्वा "जन्मोत्सवादिसमये स्म" इति पाठस्तत्र स्तुवन्ति स्मेति योज्यम् । तस्य जिनपतेरग्रतः "सार्वविभक्तिकस्तस्" इत्यग्रे, परया—उत्कृष्टया, विशुद्ध्या—नैर्मल्येन मनोवाक्कायशुद्ध्येत्यर्थः, मलयजश्चन्दनरसस्तेनार्द्रं क्लिन्नं, पुष्पाञ्जलिं—पुष्पैः पूरितोऽञ्जलिस्तं, अहं उपाक्षिपे—अञ्जलिना मलयजार्द्राणि पुष्पाणि क्षिपामीत्यर्थः । अत्राञ्जलिपदोपादानं भक्त्यतिशयद्योतनार्थं ।

द्वौ संहतौ संहततलप्रतलौ वामदक्षिणौ ।
पाणिर्निकुब्जः प्रसृतिस्तौ युतावञ्जलिः पुमान् ॥१॥

इत्यमरः ।

पुष्पाञ्जलिः ।

अथैवं सत्कृतं बिम्बं पूर्वस्थापितपीठे निवेशयमित्याह:—

यं पाण्डुकामलशिलागतमादिदेव-
मस्नापयन्सुरवरा सुरशैलमूर्ध्नि ।

कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः
सम्भावयामि पुर एव तदीयबिम्बम् ॥१२॥

टीका—सुरशैलः सुदर्शनाख्यो मेरुस्तस्य मूर्ध्नि मस्तके "घटे गाव-श्चरन्तीतिवत्समीपे सप्तमी" मस्तकसमीपे इत्यर्थः, तत्र पांडुका चासौ अमलशिला तत्र गतं स्थापितं, आदिदेवं—नाभेयं, सुरवराः—सुरश्रेष्ठा इन्द्रादयः, अस्नापयन्—स्नापयामासुः, अत्र आदिदेवपदमन्यतीर्थंकराणा-मुपलक्षणार्थं यथा काकेभ्यो दधि रक्षतामित्यत्र काकपदं दध्युपघातकानां बिडालादीनामुपलक्षणार्थमिति, कल्याणं—गर्भजन्माद्युत्सवरूपमंगलं, ईप्सुः—प्राप्तुकामः, अहं, तदीयबिम्बं सोऽयमिति यत्राध्यवसायस्तां प्रतिमां, पुर एव—अग्रत एव कलशस्थापनात्पुरस्तादेव वा, अक्षतैस्तन्दुलैः, तोयैर्जलैः, पुष्पैः प्रसूनैः, संभावयामि—सम्मानयामीत्यर्थः। अत्र केचन "यं पांडकम्बलशिलागतमादिदेवमिति" पठन्ति तन्न सहृदयहृदयङ्गमं यतो भरतोत्पन्नतीर्थंकराणामभिषेको मेरुशृंगे ईशानदिशि शक्रैः क्रियते तत्र या शिला सा आगमे पाण्डुकशिलेति पठ्यते पाण्डुकम्बलेत्याग्ने-य्यामेव। आगमो यथा—

पांडुक पांडुकंबल रत्तं तह रत्तकंबलकं सिला।
ईसाणादो कंचणरूप्पयतवणीयरुहिरणिहा ॥१॥

आशाधरसूरयोऽपि तथैव पेठुः—

सैषा मेरुतटी जिनालयपुरःक्षोणी तदेतन्मृजा-
पीठं पाण्डुशिलासनं........................इति।

बिम्बस्थापनम्।

अथ कलशस्थापनमाह;—

सत्पल्लवार्चितमुखान् कलधौतरूप्य-
ताम्रारकूटघटितान् पयसा सुपूर्णान्।

संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान्
संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकान्ते ॥१३॥

टीका—सन्ति अनिषिद्धग्रुकोद्भवानि पल्लवानि किशलयानि तैरर्चितानि अलंकृतानि मुखानि येषां तान्, तथा कलधौतं सुवर्णं, रूप्यं रजतं, ताम्रं प्रतीतं, आरकूटो रीतिः "रीतिः स्त्रियामारकूटो न स्त्रियां" इत्यमरः, एभिर्घटितान् सम्पादितान्, तथा पयसा—पानीयेन, सुपूर्णान्—आमुखं भृतान्, यद्वा सुपदं भिन्नक्रमे द्रष्टव्यं तेन सुपयसा तीर्थोदकेनेति ज्ञेयं, यत आशाधरदेवाः "सुपयपूर्णान्" इत्यूचुः। यद्वा देहलीदीपकन्यायेन सुपदमुभयत्र योज्यं सुपयसा सुपूर्णानिति, एकत्र सुपदं तीर्थजलोयप्रतिपादनार्थमन्यत्र मुखपर्यन्तमित्यर्थे द्रष्टव्यम्। तथा चतुरः—चतुः संख्यकान्, समुद्रान्—पयोधीन्, संवाह्यतां—स्व-स्वस्थापनाद्बहिर्भूमितां, गतान्—प्राप्तानिव, यद्वा संवाह्यतां—सम्यगेकीभावतामिति, अयमर्थः चत्वारः समुद्राः स्वं स्वं स्थानं विहाय जिनस्नपनार्थं एकीभावतां जिनयज्ञवेदिकाया बहिर्भूमिं गतानिवेत्युत्प्रेक्षायामिवशब्दः। यतो दण्डी—

शंके मन्ये ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः ॥१॥

इति। एवंविधान् कलशान्—कुम्भान्, जिनो यत्र स्थापितः सा जिनवेदिका तस्या अन्ते कोणेषु "जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनं च" इति व्याख्याने बहुवचने व्याख्येयं, संस्थापयामि—सम्यग्दृढतया निवेशयामीत्यर्थः। अत्र संपदं पूर्वाचार्योक्तप्रकारे द्रष्टव्यं तेन यथा पूर्वाचार्यैः स्थापितास्तथाहमपि स्थापयामीति। पूर्वाचार्यास्तु वेदिकोणेषु सदर्भस्वस्तिकशालिनिकरं निक्षिप्य पुष्पमालालंकृतान् सूत्रावृतान् कलशान् स्थापयन्ति स्मेति। अत्र समुद्राणां चतुःसंख्यात्वमागमानुसाराप्रोक्तं किन्तु कविधर्मापेक्षयेति। यतो वाग्भटालङ्कारे—

वारणं शुभ्रमिन्द्रस्य चतुरः सप्त वाम्बुधीन्।
बलस्यः कीर्तयेद्वाद्धौ दश वा ककुभः क्वचित् ॥१॥

इति। अत एवोत्प्रेक्षा दर्शिता न तु स्वरूपं। यद्वा चतुरः चतुःसंख्यकान् कलशान् स्थापयामीति योज्यं। कोणानां चतुष्कात्तथासंख्यातानपि समुद्रान् चतूरूपेण संबाध्यतां गतानिवेति व्याख्येयं। अत्रैव कलशस्थापनानन्तरं कलशेषु निक्षेप्यं चूर्णिकमाह—

"कलशेषु सोदकानि गन्धानि पुष्पाण्यक्षतानि हिरण्यानि च क्षिपेत्"

कलशेषु-कोणस्थापितपूर्णकुम्भेषु सोदकानि सतीर्थजलानि गन्धानि प्रसिद्धगन्धद्रव्याणि पुष्पाणि प्रसूनानि अक्षतानि प्रसिद्धानि हिरण्यपदं द्रव्यरत्नोपलक्षणार्थं तेन हिरण्यरत्नानि निक्षेपयेत्प्रक्षेपयेदिति।

कलशस्थापनम्।

अथारार्तिकावतारणं कार्यमित्याह:—

दध्युज्ज्वलाक्षतमनोहरपुष्पदीपैः
पात्रार्पितैः प्रतिदिनं महतादरेण।
त्रैलोक्यमङ्गल! सुखालय! कामदाह—
मारार्तिकं तव विभोरवतारयामि ॥१४॥

टीका—भोस्त्रैलोक्यमङ्गल!—त्रैलोक्यस्य मङ्गलं त्रैलोक्यमङ्गलं यद्वा त्रैलोक्यस्य मङ्गलं यस्मात् तत्सम्बुद्धौ भोः, तथा सुखालय!—सुखस्यानन्तचतुष्टयान्तर्गुणविशेषस्यालयः स्थानं तत्सम्बुद्धौ भोः, तथा कामद! —कामं वाञ्छितं ददातीति कामदस्तत्सम्बुद्धौ भोः, विभोः—जगत्स्वामिनः, तव-प्रत्यक्षीभूतस्यैव देवदेवस्य, "नित्यं वसादयोऽन्वादेशे" इति नियमादेनन्वादेशत्वात्तवेत्यस्य न ते इत्यादेशः। महता-गुरुणा, आदरेण—भक्त्यतिशयेन, प्रतिदिनं—दिनं प्रति, आरार्तिकं—ज्वलच्चतुर्वर्तियुक्तशुभ्र(मृन्)शरावद्वयकृतदीपविशेषं, अवतारयामि—अवतार्य निवेशयामीत्यर्थः। कैरुपलक्षितमित्याह—पात्रार्पितैः—पात्रे स्वर्णादिभाजने अर्पितैः स्थापितैः, यद्वा पात्रेण याजकाचार्येण स्थापितैः न्यस्तैः, दधि प्रसिद्धं, उज्ज्वला-

न्यक्षतखण्डानि निर्मलानि चाक्षतानि तन्दुलानि, मनोहराणि हृदयहारीणि पुष्पाणि, दीपाः प्रसिद्धास्तैः समुपलक्षितमित्यर्थः। अत्र प्रतिदिनपयोपादानं स्नानस्य सर्वकालीनत्वद्योतनार्थम्। अत्र पीठस्थापितस्य परमेश्वरस्य मङ्गलारार्तिकावतारणं कार्यं, लोकेऽपि कुतश्चित्समागत्य साधोः पीठे स्थापितस्य दीपेन मुख्यावतारणं विधीयते प्रसिद्धं चैतत्कन्यादुर्लभादौ।

मंगलारार्तिकावतारणम्।

इदानीं पूर्वाहूता अपि दिक्पालाः पुनराहूय शार्दूलविक्रीडितेनार्च्यन्ते तत्र पूर्वस्यां दिशि शक्रपूजनमाह;—

ॐ पूर्वस्यां दिशि कुण्डलांशुनिचयव्यालीढगण्डस्थलं
शक्रं मूर्धनि बद्धसाधुमुकुटं स्वारूढमैरावतम्।
पत्नीबान्धवभृत्यवर्गसहितं देवं समाह्वानये
पाद्यार्घाक्षतदीपगन्धकुसुमं दत्तं मया गृह्यताम्॥१५॥

टीका— ॐमिति मंगलार्थं वृत्ताद्बहिर्ज्ञेयं सर्वत्र। कुण्डलयोः कर्णवेष्टनयोः अंशवः किरणाः तेषां निचयेन समूहेन व्यालीढे स्पृष्टे प्रकाशिते वा गण्डस्थले यस्य तं। "कुण्डलं कर्णवेष्टनं" इत्यमरः। तथा मूर्धनि—मस्तके, बद्धं स्थापितं साधु दृढं मुकुटं किरीटं येन तं। यद्वैकं पदं, मूर्ध्नि मस्तके निबद्धं निश्चलतया रचितं साधु सर्वोत्तमत्वादुत्तमं मुकुटं येन तं। तथा ऐरावतं—ऐरावताख्यं हस्तिनं, स्वारूढं—शोभनमारूढं। तथा पत्नी शची बान्धवा ईशानेन्द्रादयः भृत्याः सामानिका देवास्तेषां वर्गेण समूहेन सहितं, एवंभूतं देवं—पूज्यं शक्रं इन्द्रं, पूर्वस्यां—प्राच्यां, दिशि—ककुभि, समाह्वानये सम्यगाह्वानयामि। तेन शक्रेण मया दत्तं पाद्यादिकं गृह्यतां—स्वीक्रियतामिति सम्बन्धः। पाद्यं पादप्रक्षालनार्थमुदकं अर्घः पूजाविधिः, अक्षतादीनि प्रसिद्धानि एषां द्वन्द्वः, तत्सर्वोऽपि "द्वन्द्वो विभाषैकवचनम्" इत्येकवद्भावः। आह्वाननमंत्रो यथा—

ॐ पूर्वस्यां दिशि इन्द्रदेवमाह्वानयामहे स्वाहा । अथ पूजामंत्रः—हे इन्द्र ! आगच्छ इन्द्राय स्वाहा । इन्द्रमहत्तराय स्वाहा । इन्द्रपरिजनाय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । अनिलाय स्वाहा । वरुणाय स्वाहा । सोमाय स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । ॐ स्वाहा । भूः स्वाहा । भुवः स्वाहा । स्वः स्वाहा । ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा । ॐ इन्द्रदिक्पालाय स्वगणपरिवृताय पाद्यं गन्धं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं च भावाब्धिवेदितं यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

अत्र इन्द्राय स्वाहा इत्यादि स्वाहान्ताश्चतुर्दश मंत्रास्तद्व्याख्या मंत्रस्थान्न विहिता । मंत्रव्याख्यां तु केवलं केवलिनः कलयन्ति । स्वगणेनात्मपरिवारेण, परिवृताय वेष्टिताय, इन्द्राख्यदिक्पालाय, भावाब्धिशुद्धेः, निवेदितं प्रतिपादितं, अर्घादिकं यजामहे ददामहे । अर्घादि निगदितव्याख्यं, चरुं नैवेद्यं, बलिं अर्धस्विन्नमाखापूपादि, स्वस्तिकं वर्तिद्वयविहितार्धचक्रचतुष्करूपं, यज्ञभागं जिनपूजां, शान्तिनेदं प्रतिगृह्यतामिति वारत्रयपाठेन भक्त्यतिशयो द्योत्यते न पौनरुक्त्यदोषशंकेति यथा—"जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने" इत्यादि ।

अथाग्नेय्यामग्निदिक्पालाह्वानायाह:—

अग्निं पालितपूर्वदक्षिणदिशं पिङ्गोग्रनेत्रद्वयं
छागारोहणमक्षसूत्रवलयव्यग्राग्रहस्ताङ्गुलिम् ।
स्वाहासंयुतमुज्ज्वलाङ्गमहसं संशब्दये सम्मुदा
देवाधीशमहे सदा समुचितं गृह्णातु दीपादिकम् ॥ १६ ॥

टीका—पूर्वस्या दक्षिणस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा पूर्वदक्षिणा पालिता रक्षिता पूर्वदक्षिणा आग्नेयी दिग्येन स तथा । "सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पूर्वपदस्य ४-८" इति पुंवद्भावः । तथा पिङ्गं—पिङ्गाभं गोरोचनामिति यावत् । "पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ" इत्यमरः, उग्रमतिभयानकं नेत्रद्वयं यस्य ।

तथा छागेऽङ्गे आरोहणमारूढिर्यस्य । अक्षैरुपलक्षितं सूत्रमक्षसूत्रं शाकपार्थिवत्वान्मध्यपदलोपीसमासः तस्य वलयं जपमाला तत्र व्यग्रा आसक्ता अग्रा मुख्या हस्तस्य दक्षिणपाणेरङ्गुलयो यस्येति, ननु कथमग्रहस्त इति प्रयोग आहिताग्न्यादिष्वपाठात् सत्यं गुणगुणिनोरभेदात् यत्र तु गुणगुणिनोरभेदः स्यात् तत्र हस्ताग्रमिति स्यात् । तथा च वामनसूत्रं—"हस्ताग्राग्रहस्तादयो गुणगुणिनोर्भेदाभेदादिति" । तथा स्वाहा अग्निभार्या तया संयुतं । तथा उज्ज्वलं निर्मलं अङ्गानां हस्तपादादीनां महस्तेजो यस्य, यद्वा उज्ज्वलाङ्गोमहस्याङ्गोत्सवस्य सा लक्ष्मीर्यस्य, एवंभूतमपि अग्निनामानं दिक्पालं, संशब्दये—आह्वानयामि । सोऽग्निः देवाधीशमहे—देवदेवयज्ञे, सदा—सर्वदा, समुचितं—योग्यं, दीपादिकं—पूर्वोक्तद्रव्यसमूहं सम्मुदा—यज्ञांशार्थमाहूतत्वात्सम्यग्हर्षेण, गृह्णातु—स्वीकरोतु । यद्वा सदाशमिति सशयोरभेदात् पाठः, तत्र सदा आशा वाञ्छा यस्य दीपादेः, यद्वा सती शोभना योग्यत्वादाशा दिग्यस्येति, यतो दीपोऽग्निमान् दिगप्याग्नेयीति योग्यत्वमत एवादौ दीपपदोपादानं विहितम् । अथाह्वानमंत्रः—

ॐ पूर्वदक्षिणस्यां दिशि अग्निं देवमाह्वयामहे स्वाहा । पूजामंत्रास्तु पूर्ववत्सर्वत्र ।

अथ दक्षिणस्यां दिशि यमयजनमाह;—

आसीनं सितिवर्णभाजि महिषे वैवस्वतं च स्वयं
दूरोल्लासितदण्डमण्डितभुजान्तं दक्षिणस्यां दिशि ।
उग्रं व्यग्रपरिग्रहे निजनिजे कर्मण्यथाकारये
गृह्णात्स्वेष बली बलिं जिनपतेः स्नाने यमानोयुतः ॥१७॥

टीका—"सितिधवलमेचकौ" इत्यमरः । सितिवर्णं कृष्णवर्णं भजतीत्येतादृशो महिषे लुलाये, आसीनं—आरूढम् । तथा स्वयं—आत्मना । दूरमतिशयेनोल्लासितो नर्तित ऊर्ध्वं नीतो वा यो दण्डस्तेन मण्डितोऽलंकृतो भुजस्य बाहोरन्तः स्वरूपं यस्य "अन्तः प्रान्तेऽन्तिके नाशे स्वरूपे च

मनोहरे" इत्यन्तशब्दः स्वरूपवाच्यत्र ज्ञेयः, शार्दूलविक्रीडिते द्वादशयतिः स्यात् तदभावाद्यतिभङ्गत्वेन्न श्रीपूज्यपादपादैः समासेऽपि यतिकृता । विचारितं चैतदस्माभिर्वृत्तरत्नाकरटीकायां भावप्रकाशिन्यामित्यलम् । तथा निजनिजे-स्वेस्वे, कर्मणि—कार्ये "प्रकारे गुणस्य" इति द्वित्वम् । स्वयोऽनवस्थितचित्तो यः परिग्रहो दारादिस्तत्र, उग्रं-भयानकं, एवंभूतं यवस्वतं च—यममपि, चकार उक्तसमुच्चयार्थः । अथाम्याह्वानानन्तरं दक्षिणस्यां—अपाच्यां, दिशि-हरिति, आकारये—आह्वानयामि । एष आहूतो बलीबलोपेतः, यमानी—स्वभार्या तया युतः सन् । यमानीशब्द उपलक्षणार्थं वान्धवादीनामिह ज्ञेयः । जिनपतेः स्नाने—जिनेन्द्रस्याभिषवे, बलिं-पूजां, गृह्णातु-स्वीकरोतु । ननु यमानीति कथं प्रयोगः इन्द्रादिष्वपठितत्वात् सत्यं "सूर्यब्रह्मयसेभ्यश्चेति वाच्यं" इति शब्दभावप्रकाशेऽस्माभिर्लिखितम् । यद्वा यमस्य आणाः प्राणा यत्र स्त्रीत्वात्, सा यमानी नदादेराकृतिगणत्वादीप्रत्ययः । प्रयोगश्च गुणभद्रदेवकृतमहाभिषेकवाक्ये दृश्यते । यथा—

अलिमलिनजटालस्थूलजूटातिभीष्मं
स्फुरदुरगनिभूषं मापकल्माषवर्णम् ।
विधृतविपुलदण्डं स्वरदतुण्डायमानी—
पतिमभिषवविघ्नं निघ्नेन व्याहरामः ॥१॥ इति

अथाह्वानमन्त्रः—

ॐ दक्षिणस्यां दिशि यमं देवमाह्वानयामहे स्वाहा । पूजामंत्रास्तु पूर्ववत् ।

'अथ दक्षिणपश्चिमायां दिशि नैर्ऋत्यपूजनमाह'—

आशां दक्षिणपश्चिमां निजबलादाक्रम्य लोके स्थितं
नैर्ऋत्यं दृढमुद्गरप्रहरणं भीमं कलावृक्षगम् ।
अस्मिन् पुण्यमहोत्सवेऽहमशनैरामन्त्रये स क्षमा-
दादत्तामपमाद्यशेषकलितं पत्न्यादियुक्तश्चकम् ॥१८॥

टीका—दक्षिणस्याः पश्चिमायाश्च दिशोर्यदन्तरालं सा दक्षिणपश्चिमा तां, आशां—दिशं, निजबलात्—आत्मीयसामर्थ्यात्, आक्रम्य—व्याप्य, लोके-भुवने, स्थितं—तिष्ठन्तं, तथा दृढः परैरभेद्यो मुद्गरो घनः प्रहरणं आयुधं यस्य "द्रुघणो मुद्गरघनौ" इत्यमरः, अतएव कली—कलहे युद्ध इति यावत् भीमं-भयानकं तथा ऋक्षेण भल्लुकेन गच्छतीति तथा, अथ भल्लूके ऋक्षा-च्छभल्लभल्लुका इत्यमरः। ईदृशं नैऋत्यं दिक्पालं, अस्मिन् क्रियमाणे, देवदेवोद्देश्येन विधीयमानत्वात्पुण्ये पवित्रे महोत्सवेऽभिषवे, अहं अशनैः—शीघ्रं,क्रमात्-यद्देशानुरोधात्, आमन्त्रये-आकारयामि। सोऽयं—य आहूतः पत्न्यादिसंयुक्तोऽसौ आद्यः परमेश्वरस्तस्य शेषः पूजांशस्तेन कलितं युतं, चरुं-नैवेद्यं, आदत्तां स्वीकरोतामित्यर्थः। अथाह्वानमंत्रः—

ॐ दक्षिणपश्चिमायां दिशि नैऋत्यं देवमाह्वानयामहे स्वाहा। पूजामन्त्रास्तु पूर्ववत्।

अथ पश्चिमायां दिशि वरुणार्चनमाह;—

पद्मिन्याश्रितदन्तदन्तिमकरारूढं भुजङ्गायुधं
मुक्ताविद्रुमभूषणं च वरुणं काष्ठां प्रतीचीं श्रितम्।
भार्यासंयुतमाह्वयामि जगतामीशस्य पूजाक्षणे।
प्रीतः स्वीकुरुतामसावपि मयासम्पाद्य मर्घादिकम्॥

टीका—पद्मिन्यां कमलिन्यामाश्रितौ लग्नौ दन्तौ रदौ यस्य स दन्तिमकरः करिमकराख्यो जलचरजीवविशेषस्तत्रारूढं, भुजङ्गो नाग आयुधं यस्य, मुक्ता मुक्ताफलानि विद्रुमाः प्रवालाश्च भूषणं यस्य, प्रतीचीं-पश्चिमां, काष्ठां—दिशं, श्रितं—आश्रितं, भार्या वरुणानी तया संयुतं, वरुणं च—वरुणं दिक्पालमपि, जगतामीशस्य—भूर्भुवःस्वःस्वामिनो जिनेन्द्रस्य, पूजाक्षणे—अभिषेकावसरे, आह्वयामि आकारयामि, असावपि न केवलं नैऋत्यः किन्त्वयमाहूतो वरुणोऽपि, मया—पूजकेन, सम्पाद्यं-पूजाद्रव्यतया एकीकृतं, अर्घादिकं, आदिपदात्पाद्याचमनादि गृह्यते। स्वीकुरुतां—आदत्ताम्। आह्वानमंत्रः—

ॐ पश्चिमायां दिशि वरुणं देवमाह्वानयामये स्वाहा । पूजा-मन्त्राश्च पूर्ववत् ।

अथ वायव्यां पवनपूजनं प्रतिपाद्यते;—

एकस्यामपि पश्चिमोत्तरदिशि स्थाने सदा सर्वगं
वायुं तुङ्गकुरङ्गपृष्ठगमनं हस्तस्थवृक्षायुधम् ।
देवं संप्रवलच्छरीरघटनैरुदारैर्दारैः समं
सम्यक्सम्परिबोधयामि भवता पाद्यादिकं गृह्यताम् ॥

टीका—एकस्यामपि—केवलायामपि, पश्चिमोत्तरदिशि—वायव्यकाष्ठायां, स्थाने—निवासे सत्यपि, सदा—अनवरतं, सर्वस्मिश्च गच्छतीति स तथा । अयमर्थः—एकस्यां वायव्यां दिशि निवासे सत्यपि यः सदागतिः सर्वगश्च कथ्यते । तथा तुङ्ग उच्चो यः कुरङ्गो मृगस्तत्पृष्ठेन गमनं यस्य । तथा हस्तस्थं वृक्ष एवायुधं यस्य तं, एतादृशं वायुं देवं—पवनदिक्पालं, सम्प्रवलतो वक्तुमशक्यत्वाद् द्राधियत्तामकुर्वती शरीरस्य घटना निर्माणं येषां तैः, उदारैः—उत्कृष्टैः, दारैः—कलत्रैः, समं—सह, सम्यक्—जिनयज्ञांशानुकूलतया, सम्परिबोधयामि—जिनयज्ञोऽयमित्यवकल्पयामि, भवता—यः परिबोधितस्तेन, पाद्यादिकं—चरणोदकादिकं, गृह्यतां-स्वीक्रियताम् । अत्र भवतेति नामपदमत एव तेनेति व्याख्यातं नामत्वात्, अन्यथा त्वयेति व्याक्रियेत तदा सम्बोधनपदापेक्षा स्यात् । दृश्यते हि प्रकरणाभावाद्युष्मच्छब्दप्रयोगे सम्बोधनपदप्रयोगः यथा—"मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेदं" इत्यादि । अथाह्वानमन्त्रः;—

ॐ पश्चिमायां (पश्चिमोत्तरस्यां) दिशि पवनं देवमाह्वानयामहे स्वाहा । पूजामन्त्राश्च पूर्ववत् ।

अथोत्तरस्यां दिशि कुबेरार्चनमाह;—

हंसौघेन समुह्यमानमनघं प्रेङ्खद्विमानं ध्वजै-
रारूढं पृथु पुष्पकं धनपतिं प्रोच्चैरुदीच्यां दिशि ।

कान्तैरप्सरसां कुलैः परिगतं शक्रस्यायुधं बोधये
गन्धं बन्धुरधीः प्रतीच्छतुतरामत्रार्हतः पूजने ॥२१॥

टीका—हंसाः श्वेतच्छदास्तेषामोघेन समूहेन, समुह्यमानं—चाल्यमानं ध्रियमाणं वा, एतेनोत्तरस्यां दिशि कुबेरस्य मानसाख्यं सरोऽस्तीति सूचितं हंसानां तत्रोत्पत्तेरत एव हंसैर्ध्रियमाणे……, अनघं-निन्द्यपशुध्रियमाणादिदोषमुक्तं, तथा ध्वजैः—केतुभिः, प्रोद्धुरं—शोभमानं, पृथु—विस्तीर्णं, पुष्पकं-पुष्पकाख्यं, विमानं-व्योमयानं, आरूढं—स्थितं, "विमानं तु पुष्पकं" इत्यमरः। कान्तैः—कमनीयैः, अप्सरसां—सुरसुन्दरीणां, कुलैः—कदम्बैः, परिगतं—समन्तात्सेवितं। तथा शक्रस्यान्यमायुधं यस्य, एवंभूतं धनपतिं—धनदाधिपं, प्रोच्चैः—अतिशयेन, उदीच्यां—उत्तरस्यां, दिशि—आशायां, बोधये—अवबोधयामि, बन्धुरा जिनभक्तौ दृढा धीर्बुद्धिर्यस्यासौ धनपतिः, अत्रार्हतः पूजने—क्रियमाणे सर्वज्ञस्य स्नपने, गन्धं—गन्धादियज्ञभागं, प्रतीच्छतुतरां—अतिशयेन स्वीकुरुताम्। आह्वानमंत्रो यथा—

ॐ उत्तरस्यां दिशि कुबेरं देवमाह्वानयामहे स्वाहा। पूजामन्त्रास्तु पूर्ववत्।

अथैशान्यामीशानार्चनमाह :—

ईशानं वृषपृष्ठगं गणशतैराबद्धमूर्धाञ्जलिं
हस्तोद्दस्तकपालशूलमभयदं पूर्वोत्तरस्यां दिशि।
नागैराभरणैरलङ्कृतमलं काये ह्वयामि स्वकं
पात्रं द्राक् प्रतिगृह्यतामिह मखे पुष्पादिकाभ्यर्चनम्॥

टीका—वृषो बलीवर्दस्तस्य पृष्ठेन गच्छतीति वृषपृष्ठगस्तं, गणानां प्रथमादीनां शतैः शतसंख्यैः, आबद्धः स्थापितो मूर्ध्नि मस्तकेऽञ्जलिर्यस्य गमकत्वाद्व्यधिकरणेऽपि बहुव्रीहिः, तथा च वामनसूत्रं—"अबन्ध्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदे" इति, तथा हस्तयोः पाण्योरुद्दस्ते बद्धे स्थापिते वा ये कपालशूले कपालं नरशिरः शूलं त्रिशूलं ताभ्यां भयदं

भीतिप्रदं, तथा नागैः—सर्पैः, आभरणैः—कंकणाद्यलङ्कारैः, अलंकृतं-भूषितं, तथा काले—मृत्यौ, अलं—समर्थं, 'महेशः संहरतीति लोकोक्तेः' यद्वा अत्र प्रथमे काले अलं प्रयत्नं, एवं विधमीशानं—महादेवं, पूर्वोत्तरस्यां—ऐशान्यां, दिशि—आशायां, ह्वयामि—आकारयामि, तेन महेशेन पुष्पादिकमेवाभ्यर्चनं पूजाद्रव्यं, तदेव स्वकं—आत्मीयं, पात्रं-भोग्यं, द्राक्—शीघ्रेण, इह महे—अस्मिन्नभिषेके, प्रतिगृह्यतां—स्वीक्रियताम् । "भोग्यभाजनयोः पात्रं" इत्यमरः । यद्वा पुष्पादिकानि अभ्यर्चनानि पूजाद्रव्याणि यत्र तत्स्वकं पात्रमात्मीयं भाजनमिति । अथाह्वानमंत्रः—

ॐ पूर्वोत्तरस्यां दिशि ईशानं देवमाह्वानयामहे स्वाहा ।

पूजामन्त्रास्तु पूर्ववत् ।

अथाधरस्यां दिशि धरणेन्द्रार्चनमाह:—

तिष्ठन्तं कमठस्य निष्ठुरतरे पृष्ठेऽधराशाप्रभुं
नागेन्द्रं फणचक्रवालमणिभिर्ध्वस्तान्धकारोदयम् ।
आरक्तद्विसहस्रलोचनमुखं क्रूरं करोम्यग्रत-
स्तन्नाम्नैवमनुप्रियेण बहुधा गन्धेन सम्प्रीयताम् ॥२३॥

टीका—"कूर्मे कमठकच्छपौ" इत्यमरः, कमठस्य—कच्छपस्य, निष्ठुरतरे—वज्रवत्कठिने, पृष्ठे—पृष्ठभागे, तिष्ठन्तं—निवसन्तं, तथा-धराशाया अधोदिशः प्रभुं स्वामिनं, अधराशाप्रभमिति पाठे तु—अधराशायां प्रभा प्रभावो यस्य, तथा फणचक्रवाले फणामण्डले ये मणयस्तैर्ध्वस्तो निरस्तोऽन्धकारस्य तमस उदयः प्रकाशो येन, तथा द्वे सहस्रे यत्र तानि द्विसहस्राणि, आरक्तानि द्विसहस्राणि लोचनानि नयनानि यत्रैतादृशं मुखं वदनं यस्य, अत एवारक्तनेत्रत्वात्क्रूरं—क्रूरचेष्टं, नागेन्द्रं—धरणेन्द्रं, अग्रतः—पुरस्तात्, करोमि—विदधामि, लोकेऽपि क्रूरो भयात्प्रथम एव विधीयते । तस्य सर्पेन्द्रस्य नाम्नाभिधया, एवं—पञ्चाशतया, अनुप्रियेण—

सुप्रीतिनतेन नागन्द्रेण, बहुधा—नानाविधेन, गन्धेन—गन्धादिना सम्प्रीयतां—सुप्रीतीभूयताम्। यद्वा तन्नाम्ना—नागेन्द्रनाम्ना, एवमनुप्रियेण—संकल्पितेनेति योज्यम्। अत्र तत्पदे गन्धेन प्रीयतामिति। यद्वा मनःप्रियेणेति पाठस्तदा तन्नाम्ना सर्वज्ञनाम्ना बहुधा मनःप्रियेण गन्धेनेति योज्यम्। अत्र तत्पदेन प्रकरणात्सर्वज्ञ एव लभ्यते अत एवैवकारोपादानं कृतं सर्वज्ञनाम्नैव मनःप्रियत्वं गन्धस्य विघ्न्यादिनामा तु इष्टमपि न योग्यता स्यात् सदोषार्थप्रकल्पितत्वादिति। अथाह्वान मंत्रः—

ॐ अधरस्यां दिशि धरणेन्द्रं देवमाह्वानयामहे स्वाहा। पूजामंत्रास्तु पूर्ववत्।

अथोर्ध्वायां दिशि सोमसन्मानमाहः—

ॐ ऊर्ध्वायां दिशि सिंहवाहनमुडुव्रातानुजातं स्फुर-
त्कान्तिं कैरवदामरम्यवपुषं सोमं सचिन्या समम्।
अग्रण्यं ग्रहमण्डलस्य सकलव्योमैकचूडामणिं
पूजास्वागमये प्रतीच्छतुतरामेषोऽत्र गन्धादिकम्॥२४॥

टीका—सिंहो मृगेन्द्रो वाहनं यस्य, तथा उडुव्रातेन नक्षत्रसमूहेनानुजातमनुगतं, तथा स्फुरन्ती शोभमाना कान्तिर्देहदीप्तिर्यस्य, तथा कैरवदाम्नां कुमुदपंक्तीनां रम्यं विकाशहेतुत्वाद्रमणीयं वपुर्यस्य, तथा ग्रहमण्डलस्य—सूर्यादिग्रहसमूहस्य, अग्रण्यं—गतेर्बहुत्वादग्रगामिणं तथा सकलव्योम्न एतद्द्वीपापेक्षया सम्पूर्णाकाशस्य एकं मुख्यं चूडामणिं चूडारत्नं, एतादृशं सोमं—चन्द्रमसं, सचिन्या—रोहिण्या, समं—संयुक्तं, पूजासु—अर्चासु, व्यक्त्यपेक्षया बहुत्वं, आगमये—आह्वानयामि, एषः—य आहूतः सः, अत्र—यज्ञे, गन्धादिकं प्रतीच्छतुतरां—आदरात्स्वीकुरुताम्। अथाह्वानमन्त्रः—

ॐ ऊर्ध्वायां दिशि सोमं देवमाह्वानयामहे स्वाहा। पूजामंत्रास्तु पूर्ववत्।

अत्र केचन "इन्द्रेशं लोकपालाद्यैः" इत्यादि श्लोकद्वयं पठन्ति तदाम्नायसमाम्नायनिरस्ता सच्चरणा अस्मत्पितृचरणा न स्वीकुर्वन्ति यतो लोकपाला अष्टौ दिक्पाला दशेत्यागमे प्रसिद्धिः अत्र तु पूर्व-दिक्पालानामुद्देशो विहितो न लोकपालानामिति । यद्वेदं पद्यद्वयं श्रीवसुनन्दिदेवकृतप्रतिष्ठासारसंग्रहस्थं केनापि बालिशेन भ्रान्त्यात्र लिखितं नाभयनंदिदेवकृतमित्यलम् ।

अथ दिक्पालार्चनानन्तरं दृष्ट्यादिदोषनिवारणार्थं गोमयपिण्ड-कावतारणं कार्यमित्याह:—

सद्यस्तनप्रलघुगोमयपिण्डिकाभि—
र्यत्पारि वर्त्तकमिदं क्रियते जिनस्य ।
तत्स्नेहजृम्भितमहो न हि लौकिकेन
रक्षादिना किमपि साध्यमिहास्ति देवे ॥२५॥

टीका—सद्यस्तत्काले भवं सद्यस्तनं "सायंचिरंप्राह्णे प्रगेऽव्य-येभ्यस्तनट्" इति तनप्रत्ययेन भूम्यपतितत्वं सूचितं तथा चाशाधरसूरय आकरशुद्धिविषये "भूम्यप्राप्तपवित्रगोमय" इति पठन्ति स्म । प्रलघ्वी सकृत्प्रसूता अप्रसूता वा सा चासौ गौस्तत: "गो: पुरीषे" इत्यनेन तदन्त-विधेर्मयटि प्रत्यये प्रलघुगोमयमिति सिद्धं, अत्र लघुपदेनैव सिद्धेः प्रशब्दो वन्ध्यारोगार्त्तादिनिवारणार्थः । यतो वसन्तराजे—

अत्यन्तजीर्णदेहाया वन्ध्यायाश्च विशेषत: ।
रोगार्त्तनवसूताया न गोर्गोमयमाहरेत् ॥१॥

इति । आशाधरसूरयोऽप्यमुमेवार्थं पवित्रपदेन सूचितवन्त: । सद्यस्तनं च तत्प्रलघुगोमयं च तस्य पिण्डिकाभिस्तत्क्षिप्रारचितपिण्डाकार-वटिकाभिः बहुवचनाच्चतुःप्रभृतिभिर्यत्तज्जिनस्य—पुरः साक्षादिव स्थापि-तस्य सर्वज्ञबिम्बस्य, परिवर्त्तकं—परितः समन्तादुत्तंकमवतारणं तदेव पारिवर्त्तकं, क्रियते विधीयते, तत्स्नेहजृम्भितं—स्नेहस्य प्रेम्णो जृम्भितं

प्रभावो जनस्येति शेषः। अयं मामकीने यज्ञे स्थापितो जिनेन्द्रो दृष्ट्यादि-दोषाभिभूतो मा भवत्विति रक्षादिकं स्नेहाद्विदधाति एवं नावैति अस्य नामस्मरणादप्यन्यस्यापि दृष्ट्यादिदोषा अपसरन्ति अतएव जनस्याज्ञान-प्रभाव इत्यर्थः, अमुमेवार्थं द्रढयति—अहो—ननु, इह—साकारस्थापनायां लक्षीकृते देवे परमाराध्ये, लौकिकेन—लोकनिर्मितेन रक्षादिना, किमपि—किंचिदपि, साध्यं—प्रयोजनं नास्ति कृतकृत्यत्वात् परन्तु लोक एव स्वभक्त्यर्थं करोतीत्यर्थः।

गोमयपिण्डिकावतारणम्।

अतो भक्तपिण्डावतारणमपि कार्यमित्याह:—

सुस्निग्धकुन्दकलिकोज्ज्वलचारुभक्त-
पिण्डानखण्डगुणमण्डितविग्रहस्य।
अस्यादराज्जिनपतेरवतारयामि-
निर्वाणसंभवमहासुखलब्धयेऽहम् ॥२६॥

टीका—सुस्निग्धं साधुपाकाश्चिक्कणं कुन्दमाघ्यन्तस्य कलिका कोरकं तद्वदुज्ज्वलं निर्मलं, अतएव चारु सकललोकमनोहारित्वान्मनोज्ञं, ईदृशं यद्भक्तं भिस्सा ? तत्पिण्डान् कर्मतामापन्नान् बहुत्वाच्चतुःप्रभृतीन्, अखण्डा अनावरणत्वात्सम्पूर्णा गुणा अनन्तज्ञानादयस्तैर्मण्डितोऽलङ्कृतो विग्रहश्चरमदेहो यस्य तस्य जिनपतेः। आदरात्—भक्त्यतिशयात्, अहं अवतारयामि—अवतार्य पुरो निवेशयामीत्यर्थः, अत्र विग्रहोपादानं साकारस्यैवाभिषेकः स्यादिति सूचनार्थं। यतः—

स्नपनार्चास्तुतिजपान् साम्यार्थं प्रतिमार्पिते।
युञ्ज्याद्यथाम्नायमाद्याहते संकल्पितेऽर्हति ॥१॥

किमर्थं पिण्डावतारणमित्याह—निर्वाणं सकलकर्मविप्रमुक्तिस्ततः सम्भव उत्पत्तिर्यस्यैतादृशं यन्महासुखं अविनश्वरं शर्म तस्य लब्धिः

प्राप्तिस्तस्यै । निर्मलभक्तपिण्डावतारणेन निर्मलसुखमीप्स्यते इति भावः ।

भक्तपिण्डावतारणम् ।

अतो भस्मपिण्डावतारणमपि कार्यमित्याह;—

पूतेन्धनात्पतितशीतलभूतिपिण्डै-
श्चन्द्रांशुखण्डधवलैः करकुड्मलस्थैः ।
भस्मार्थमष्टविधकर्ममहेन्धनस्य
लोकेश्वरस्य परिवर्तनमातनोमि ॥२७॥

टीका—"चन्द्रः कर्पूरचन्द्रयोः" इत्यभिधानात्, चन्द्रस्य विधोः कर्पूरस्य वांशवः किरणास्तेषां खण्डानि शकलानि तद्वद्धवलैर्निर्मलैः, तथा करावेव कुड्मलं पात्रं तत्रस्थैः, एवंभूतैः पूतमन्तर्जन्त्वादिदोषमुक्तत्वेन पवित्रं, इन्धनं काष्ठादि तस्मात्पतिता प्रज्वाल्य निर्वर्तिता शीतला स्वतः शीता या भूतिर्भस्म "भूतिर्भस्मनि सम्पदि" इत्यमरः, तस्याः पिण्डैर्बहुत्वाच्चतुःप्रभृतिभिः । लोकेश्वरस्य—जिनेन्द्रस्य, परिवर्तनं—परितोऽवतारणं, आतनोमि—विस्तारयामि । किमर्थमित्याह—अष्टविधानि मूलप्रकृत्यपेक्षयाऽष्टप्रकाराणि कर्माणि ज्ञानावरणादीनि तान्येव महेन्धनं ज्वलनेन दग्धुमशक्यत्वान्महेन्धनराशिस्तस्य भस्मार्थं—तं भस्मसात्कर्तुमित्यर्थः । उत्तरोत्तरप्रकृत्यपेक्षया बहुत्वप्रतिपादनार्थं महच्छब्दोपादानं कृतम् ।

भस्मपिण्डावतारणम्

अतो नीराजनमपि कार्यमित्याह;—

हस्तद्वयाग्रकलितामलताम्रचूड—
कोटिस्थितेन शिखिना शुभदर्शनेन ।
निर्दग्धकर्मरजसो जिननायकस्य
नीराजनं झटिति दूरत एव कुर्वे ॥२८॥

टीका—हस्तयोर्द्वयं तस्याग्रे पुरतः कलितं स्थापितं यदमलं कार्यान्तरेऽनुपयुक्तत्वान्निर्मलं तार्णं तृणसमूहस्तस्य जूटो बद्धकेशकलापाकारो ग्रन्थिविशेषस्तस्य कोटावग्रे स्थितेन ज्वलितेन। तथा शुभं निर्धूमत्वान्मनोहरं दर्शनमवलोकनं यस्य तेन शिखिना—वह्निना कृत्वा, निर्दग्धं विशेषेण भस्मसात्कृतं कर्मरजः कर्मकलङ्को येन तस्य जिननायकस्य, झटिति—शीघ्रं, दूरत एव—यथा परमेश्वरस्तनुस्पर्शो न भवति तथैव, नीराजनं—निःशेषेणोत्तेजनं प्रकाशनमिति यावत्, कुर्वे—विदधे। निःपूर्वस्य राज दीप्तावित्यस्य युप्रत्ययस्यानादेशे प्रयोग इति। ननु "स्तनादीनां द्वित्वाविशिष्टा जातिः प्रायेण" इति वामनोक्त्वाद्धस्तादीनां द्वित्वं सिद्धमेव यथा—"दीर्घे कान्तविलोचने च पिहितुं पाणी च मे न क्षमौ" तथा "तव तन्वि! कुचावेतौ पतितौ केन हेतुना" तथा "पादौ रणन्मणिनूपुरौ" इत्यादि प्रयोगश्च, तत्किमिति हस्तद्वयमित्यत्र द्वयशब्दोपादानं कृतं, सत्यं—सकलं पूजाकर्मापसव्यपाणिना कार्यं नीराजनं तु सव्यापसव्याभ्यामिति, स्वैककार्यमिति नियमार्थमिति।

नीराजनावतारणम्।

अथैवं कृतविधिविशेषस्य जिनेन्द्रस्य स्नपनमारभ्यते तत्रादौ जलस्नपनमाहः—

प्रत्यग्रतारतरमौक्तिकचूर्णवर्णै-
र्भृङ्गारनालमुखनिर्गतचारुधारैः।
शीतैः सुगन्धिभिरतीव जलैर्जिनेन्द्र-
बिम्बोत्सवस्नपनमेष समारभेऽहम्॥२९॥

टीका—प्रत्यग्रं नवीनं तत्कालोद्भवत्वात् तथातिशयेन तारं शुद्धं तारतरं "मुक्तौ शुद्धौ च तारः स्यात्" इत्यमरः, एवंभूतं यन्मौक्तिकानां चूर्णं कल्कस्तस्य वर्ण इव वर्णो येषां, तथा भृङ्गारः स्वर्णालुः "भृङ्गारः कनकालुकः" इत्यमरः, तस्य नालं मुखातिरिक्तजलनिर्गमनसूक्ष्मतिर्यग्द्वारं तस्य

मुखान्निर्गता धारा सूक्ष्मत्वान्मनोहरा धारा येषां, तथा शीतैः—शीतलैः, तथा अतीव—कर्पूरादिमिश्रितत्वादतिशयेन शोभनो गन्धो येषां "गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः" इतीत्, तैरेतादृशैर्जलैः—पानीयैः, जिनेन्द्र-बिम्बस्य सर्वज्ञप्रतिमाया उत्सवस्नपनं मङ्गलाभिषेकं, एषोऽहं येन पूर्वोक्तविधिविशेषो विहितः सोऽहं, एतेन सकलस्नपनस्यैककर्तृत्वं सूचितम् । समारम्भे—प्रारम्भे ।

जलस्नपनम् ।

इदं पद्यं केचन पीठप्रक्षालनानन्तरं पठन्ति न एवं युक्तत्वात् तत्र जिनप्रतिमास्थापनाप्रागभावे किमनेन प्रयोजनं कस्य वा जलस्नपनं विधीयतेऽत्र च केन वाक्येन जलस्नपनं क्रियते इति ।

अथेक्षुरसाभिषेकमाह:—

भक्त्या ललाटतटदेशनिवेशितोच्चै-
र्हस्तैः स्तुता सुरवरासुरमर्त्यनाथैः ।
तत्कालपीलितमहेक्षुरसस्य धारा
सद्यः पुनातु जिनबिम्बगतैव युष्मान् ॥३०॥

टीका—भक्त्या—आदरेण, ललाटतटदेशे ललाटोर्ध्वप्रान्तस्थाने निवेशितौ स्थापितौ उच्चैरूर्ध्वमुखौ हस्तौ करौ यैस्तैरेतादृशैः, सुरवरा देवश्रेष्ठा असुरा असुरकुमारा मर्त्या मनुष्यास्तेषां नाथैः स्वामिभिरिन्द्र-धरणेन्द्रचक्रवर्तिभिरिति यावत्, स्तुता—यन्त्रनिष्पीडनसम्पादिताप्यनवद्या जिनाङ्गसङ्गममवाप्येयमस्मद्भाग्यादासीत्, वयं स्वतन्त्रा अपि न स्वरूपगतोऽपि शक्ता इति स्तुतिर्नीता, तत्काले पूजावसरे पीलितो यन्त्र निष्पीडनान्निष्पादितो यो महेक्षूणां पुंड्रेक्षूणां रसो द्रवस्तस्य धारा प्रवाहः, अत्र तत्कालपीलितपदेन पर्युषितनिषेधः सूचितः, सद्यः—नीरस्नानानन्तरसमये, जिनबिम्बगतैव—सर्वज्ञप्रतिमालग्नैव, हरिहरप्रभृतिप्रतिमालग्ना-तु द्रष्टुमपि न योग्या स्यादित्येवकारार्थः, युष्मान्—जिनस्नपना-

वलोकनानन्दनिर्भररसान् भव्यान्, पुनातु—पवित्रीकरोतु । सामान्येनाशीः स्वरूपनिरूपणेन युष्मच्छब्दो न सम्बोधनपदमपेक्षते । “च-वाहाहैवयुक्ते” इत्येवयोगादपि न वसादेशो विहित इति ।

इक्षुरसाभिषेकः ।

अतः स्नपनयोग्यत्वेन घृतधारां स्तौति:—

उत्कृष्टवर्णनवहेमरसाभिराम-
देहप्रभावलयसङ्गमलुप्तदीप्तिम् ।
धारां घृतस्य शुभगन्धगुणानुमेयां
वन्देऽर्हतः सरभसं स्नपनोपयुक्ताम् ॥३१॥

टीका—उत्कृष्टो द्वादशसंख्यावच्छिन्नो वर्णो वर्णको यस्य यद्वा उत्कृष्टो जनानुरञ्जको वर्णः स्वरूपं यस्य यद्वा उत्कृष्टः सर्वधातुष्वुत्तमो वर्णः स्तुतिर्यस्य “वर्णो द्विजादौ शुक्लादौ स्तुतौ वर्णं तु चाक्षरे” इत्यमरोक्तिः, तच्च तन्नवं दाहोत्तीर्णत्वान्नूतनतां प्राप्तं यद्धेम सुवर्णं तस्य रसो गुणो रागो द्रवो वा “शृंगारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः” इत्यमरः, तद्वदभिरामं मनोहरं तस्मादप्यभिरामं परमेश्वराङ्गसम्भवादुत्तमं देहस्य कायस्य प्रभाणां कान्तीनां यद्वलयं मण्डलं तत्सङ्गमेन तन्मेलनेन लुप्ता तिरस्कृता दीप्तिः शोभा यस्याः, अयमर्थः—परमेश्वरस्य कनत्कनककायकान्तेराधिक्याद् घृतस्य पीता कान्तिर्लुप्तासीत्, अतएव शुभेन कुङ्कुममिश्रितकर्पूरभ्रमजनकेन गन्धगुणेन सौरभ्यातिशयेन अनुमेयां अनुमानगम्यां, गन्धलिङ्गेन घृतास्तित्वं प्रतीयते धूमलिङ्गेन वह्नेरस्तित्ववत् यतः सुवर्णमगन्धं घृतं सगन्धमिति, अर्हतः—परमाराध्यपरमपूज्यश्रीसर्वज्ञदेवस्य, स्नपनेऽभिषेके उपयुक्तां नियुक्तामेतादृशीं घृतधारां सरभसं तत्काल एव, वन्दे—नौमि स्तौमि वा । अत्र घृतधारानमस्कारकरणेन परमेश्वराङ्गसंगादचेतनोऽपि नमस्कारार्हो भवति किं पुनः सचेतन इति सूचितम् ।

घृतस्नपनम् ।

अथ दुग्धस्नपनमाह ;—

सम्पूर्णशारदशशाङ्कमरीचिजाल-
स्यन्दैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः ।
क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमानाः
सम्पादयन्तु मम चित्तसमीहितानि ॥ ३२ ॥

टीका—सम्पूर्णोऽखण्डमण्डलो यः शारदशशाङ्कः शरत्कालीनश्चन्द्रः तस्य मरीचीनां किरणानां जालात्समुदायात् स्यन्दैश्च्युतैरिव, तथात्मयशसां निजकीर्तीनां, सुप्रवाहैरिव—शोभनौघैरिव, शुचितरैः—अतिशयेन निर्मलैः, क्षीरैः—दुग्धैः, अभिषिच्यमानाः—अभितः सिच्यमानाः, जिनाः—जिनप्रतिमाः, जिनजिनप्रतिमयोरभेदोपचारात् । मम—स्नपनकर्तुः, चित्तसमीहितानि—मनोवाञ्छितानि, सम्पादयन्तु—निष्पादयन्तु । अत्र प्रार्थनाद्वारेण क्षीरस्नपनफलकथनमिति भावः ।

दुग्धस्नपनम् ।

अथ दधिस्नपनमाह ;—

दुग्धाब्धिवीचिचयसंचितफेनराशि-
पाण्डुत्वकान्तिमवधीरयतामतीव ।
दध्नां गता जिनपतेः प्रतिमां सुधारा
सम्पद्यतां सपदि वाञ्छितसिद्धये वः ॥ ३३ ॥

टीका—दुग्धाब्धेर्दुग्धसमुद्रस्य वीचीनां तरङ्गाणां यश्चयः समूहस्तेन सञ्चित एकीकृतो यः फेनराशिः डिण्डीरपिण्डस्तस्य पाण्डुत्वकान्तिं शौक्ल्यशोभां, अतीव—अतिशयेन, अवधीरयतां—तिरस्कुर्वतां, दध्नां—द्रप्सानां, सुधारा—अविच्छिन्नौघः, जिनपतेः—सर्वज्ञस्य, प्रतिमां—अर्चां गता—प्राप्ता सती, सपदि—तत्कालं, वः—जिनेन्द्राभिषेकावलोकने बद्ध-

रागाणां युष्माकं सभ्यानां, वाञ्छितसिद्धये—प्रार्थितप्राप्तये, सम्पद्वती—जायताम् । अत्रापि पूर्ववत्फलनिवेदनमिति भावः ।

दधिस्नपनम् ।

अथैवं स्नापितस्यार्हत औषधिभिरुद्वर्तनं विधायैलादिमिश्रितपानीयपूरैरभिषेकः कार्य इत्याह;—

संस्नापितस्य घृतदुग्धदधीक्षुवाहैः
सर्वाभिरौषधिभिरर्हत उज्ज्वलाभिः ।
उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेला-
कालेयकुंकुमरसोत्कटवारिपूरैः ॥३४॥

टीका—"त्रिष्वप्सु च घृतामृते" इत्यमरः । घृतं च घृतं च घृते "सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ" इत्येकघृतपदलोपः, एकं घृतं जलवाचि द्वितीयं सर्पिर्वाचि, दुग्धदधिनी प्रसिद्धे, इक्षुशब्देन लक्षणयेक्षुरसो गृह्यते एषां पंचानां वाहाः प्रवाहा ओघा इति यावत् तैः संस्नापितस्य—सम्यक्कृतस्नानस्य तथोज्ज्वलाभिः—अकृतान्याङ्गस्पर्शाभिर्निर्मलाभिः, सर्वाभिः-प्रसिद्धाभिः, औषधिभिः-कक्कोल-लवङ्ग-ग्रन्थि-पर्णागुरुप्रभृतिभिः, उद्वर्तितस्य—विहितस्नेहापनोदस्य, अर्हतः—श्रीसर्वज्ञस्य, अभिषेकं—स्नपनं, एला प्रसिद्धा सूक्ष्मैला, कालीयं कालानुसार्यं सुगन्धिद्रव्यं "कालीयकं च कालानुसार्यं च" इत्यमरः "कालीयकं पित्तसारं पीतं नारायणप्रियं" इति निघण्टुरपि, कुङ्कुमं काश्मीरं, एषां रसो द्रवस्तेनोत्कटानि अधिकानि यानि वारीणि तीर्थोदकानि तेषां पूरैः प्रवाहैः, विदधामि—करोमि । ननु स्नानोपक्रमे जलस्नानानन्तरमिक्षुरसस्नानमकारि, उपसंहारे तु जलानन्तरं घृतग्रहणमुक्तं तदुपक्रमोपसंहारविरोधो दुरव[illegible] बाधते मे मनःप्रसत्तिं, सत्यं—वृद्धाचार्यैरादौ घृतपदोपादानमेकशेषार्थं लाघवाय कृतं न स्नपनक्रमार्थं तेन "शब्दक्रमादर्थक्रमो बलवान्" इति

न्यासोऽङ्गीकृतः, अर्थक्रमस्तु पूर्वाचार्योक्त एवोररीकर्तव्यः स यथा बृहद-भिषव्या—

शक्रपुरःसरानपि भजेऽर्घ्यांभोरसाज्यपयोदध्ना ।
स्नेहद्रवावतारणकुटैः गन्धोदकाद्यैश्च तं ॥१॥

इति, तथा धर्मोपदेशामृतश्रावकाध्ययनेऽपि—"नीराज्याम्बुरसाज्यदुग्धदधिभिः संस्नाप्य" इत्युक्तं । तथा श्रीगुणभद्रसूरिभिर्मूरिभिः प्रयो ? रेवमेवोक्तम् । यद्वा द्वन्द्वसमासे पूर्वनिपातप्रकरणे श्रीवर्धमानोपाध्यायैः "बहुष्वनियमः" इति सूत्रं पठितं तदनुरोधादुपक्रमपाठेऽपि क्रमव्याख्यैव कार्या । यथा—"प्रभवविरतिमध्यज्ञानशून्या" इत्यत्र प्रभवानंतरं मध्ये वाच्ये विरत्युपादानं कृतं व्याख्यासमयेषु "प्रभवमध्यविरतिज्ञानशून्या" इति वाच्यम् । अथवार्षमहापुराणे श्रीजिनसेनदेवैरसमासपदेऽपि व्युत्क्रमो दर्शितो वाग्देवतापूजावसरे यथा—

गन्धाढ्यैः स्वच्छतोयैर्मलतुषरहितैरक्षतैर्दिव्यगन्धैः
श्रीखण्डैः सत्प्रसूनैरलिकुलकलितैः सच्चिवेद्यैर्विचित्रैः ।
धूपैः सन्धूपिताशैर्वरफलसहितैर्भासुरैः सत्प्रदीपै—
र्वाग्देवीपूजिताऽलं दुरितविरहितं वांछितं नः प्रदेयात् ॥१॥

इति । तेनायमर्थः सिद्ध उद्देशोपक्रमयोर्व्युत्क्रमो न कार्यं, उपसंहारे तूद्देशानुरोधव्याख्यानार्थं व्युत्क्रमोऽपि न दोषायेत्येवमत्राप्युत्क्रमपाठेऽपि क्रमव्याख्यैव कार्येत्यलम् ।

सर्वौषधिस्नपनम् ।

अथ पूर्वस्थापितकलशचतुष्टयेन स्नानमाह—

इष्टैर्मनोरथशतैरिव भव्यपुंसां
पूर्णैः सुवर्णकलशैर्निखिलावसानम् ।
संसारसागरविलंघनहेतुसेतु-
माप्लावये त्रिभुवनैकपतिं जिनेन्द्रम् ॥१५॥

टीका—भव्यपुंसां—उत्पत्स्यमानकेवललब्धिमर्त्यानां, इष्टैः—वाञ्छितैः, मनोरथानां चित्तवाञ्छितार्थानां शतैरिव, अत्र शतशब्दो बहुपर्यायो यथा "सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयं" इत्यत्र। पूर्णैः—पूर्णभृतैः, शोभनो वर्णो रुचिर्येषां तैः कलशैः कुम्भैः, यद्वा सुवर्णादि-निर्मितैः कुम्भैः कृत्वा, निखिलं समस्तं अवसानं पर्यन्तं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणं रिक्तीकरणपर्यन्तमिति यावत्। संसार एव सागरः समुद्रस्तस्य विलंघनहेतौ पारगमनकारणे सेतुरिव सेतुः "वारिवारणं सेतु-रालौ पुमान् 'स्त्रियां'[1]" इत्यमरः। त्रिभुवनैकपतिं—त्रिजगदेकस्वामिनं जिनेन्द्रं, आसावये—स्नपयामीत्यर्थः। यद्वा निखिलमवसानं येषां तैरिति कलशविशेषणं कार्यं रिक्तीकरणपर्यन्तैरिति।

कलशस्नपनम्।

अथकलशाभिषेकानन्तरं कर्पूरादिमिश्रितेन तोयेनाप्यभिषेकः कार्य इत्याह;—

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुःसमाढ्यै-
रामोदवासितसमस्तदिगन्तरालैः।
मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुङ्गवानां
त्रैलोक्यपावनमहं स्नपनं करोमि ॥३६॥

टीका—अनल्पो बहुतरो घनसारः कर्पूरः "अथ कर्पूरमस्त्रियां घनसारश्चन्द्रसंज्ञः" इत्यमरः. तदादीनां चतुःसमो यक्षकर्दमस्तेनाढ्यै-रधिकैः कर्पूरादयश्चत्वारः पदार्था यत्रैकीक्रियन्ते स यक्षकर्दम इति। यथा "कर्पूरागुरुकस्तूरीकक्कोलैर्यक्षकर्दमः" इत्यमरः। अयमेव समानभागेन प्रयुक्तश्चतुःसम इत्युच्यते। यद्वा चतुःसमाद्यैरिति पाठस्तत्र चतुःसम आद्यो मुख्यो येषां तैः। अत्र चतुःसमेनैव घनसारो लब्धः पुनस्तदुपादानं

---

[1]—"पर्यन्तभूः परिसरः सेतुरालौ स्त्रियां पुमान्" इत्यमरकोषे पाठः।

वैद्यकशास्त्रोक्तचतुःसमपंचसमादिचूर्णनिराशार्थं। यद्वा अपद्रव्यात्कस्तूरीं परित्यज्य तत्स्थाने घनसार एव ग्राह्य इति सूचनार्थेति। तथा आमोदेन सौगन्ध्येन वासितं सुरभिकृतं समस्तदिशामन्तरालं यैरिति स्वरूपविशेषणं। यथा—"पायास्स वः कुमुदकुन्दमृणालगौरः शंखो हरेः करतलाम्बरपूर्णचन्द्र" इति तैः द्रव्यैरेलादिसुगन्धिवसुभिर्मिश्रीकृतेन—एकीकृतेन, पयसा—पानीयेन, जिनपुङ्गवानां—जिनेन्द्राणां, त्रैलोक्यपावनं—त्रिजगत्पवित्रं, स्नपनं—अभिषेकं, अहं करोमि—विदधामीत्यर्थः।

गन्धोदकस्नपनम्।

अथ कृतस्नपनस्याष्टविधमर्चनमपि कार्यमित्यादौ जलार्चनं चर्चयति;—

दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटि-
संलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रिम्।
प्रस्वेदतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टै-
र्भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाभिषिञ्चे ॥३७॥

टीका—दूरमतिशयेनावनम्रा समन्तत उन्नता ये सुरनाथाः शुक्रास्तेषां किरीटानां मुकुटानां "अथ मुकुटं किरीटं पुन्नपुंसकं" इत्यमरः, कोटिषु अग्रेषु संलग्नानि खचितानि यानि रत्नानि वज्रप्रभृतीनि तेषां किरणच्छविभिर्मयूखप्रकाशैर्धूसरौ विच्छुरितौ अंघ्री पादौ यस्य तं जिनपतिं, प्रकृष्टैः—तीर्थोद्भवत्वात्कर्पूरादिमिश्रितत्वाद्धोत्तमैः, जलैः—पानीयैः, भक्त्या—आदरेण, बहुधा—भूयोभूयः, अभिषिंचे—साभिषेकं करोमीत्यर्थः। यद्वा बहुधेति वारत्रयं। ननु प्रस्वेदादियुक्तस्य लोके जलाभिषेको दृश्यते तत्किं तद्वानयमिति नेत्याह जिनेन्द्रविशेषणं—प्रस्वेदः श्रमादुद्गतं शरीरजलं तापः सन्तापः मलो रज एतैर्मुक्तमपि रहितमपि,

यद्ह स्वर्थोऽभिषेक इति निराशार्थं भक्तिमहत्त्वं, प्रस्वेदाद्युपयुक्तोऽहं प्रस्वेदादिनाशाय प्रस्वेदयुक्तमभिषिञ्चे इत्यर्थः।

जलम्।

अथ चन्दनार्चनमभिधत्ते:—

काश्मीरपंकहरिचन्दनसारसान्द्र-
निष्यन्दनादिरचितेन विलेपनेन।
अव्याजसौरभ्यतनोः प्रतिमां जिनस्य
संचर्चयामि भवदुःखविनाशनाय ॥३८॥

टीका—काश्मीरस्य कुङ्कुमस्य पङ्को द्रवत्वात्कर्दमः हरिचन्दनं गोशीर्षं "तैलपर्णिकगोशीर्षे हरिचन्दनमस्त्रियाम्" इत्यमरः। तस्य सारः स्थिरांशः "सारो बले मज्जनिव स्थिरांशे" इति धरणिः। तस्य सान्द्रं निबिडं निष्यन्दनं घर्षणोत्पन्नत्वाद्द्रवस्ते आदिर्येषां कर्पूरादीनां तै रचितेन निर्मितेन, विलेपनेन लेपनद्रव्येण कृत्वा, अव्याजं सहजोत्पन्नत्वादकृत्रिमं सौरभ्यं सौगन्ध्यं यत्रैतादृशो तनुर्मूर्तिर्यस्य तस्य जिनस्य प्रतिमां—अर्चां, भवदुःखविनाशनाय—संसारसम्भवासातशान्त्यै, संचर्चयामि—सम्यग्विलेपयामीत्यर्थः।

चन्दनम्।

अथाक्षतपूजनमाह:—

तत्कालभक्तिसमुपार्जितसौख्यबीज—
पुण्यात्मरेणुनिकरैरिव संगलद्भिः।
पुंजैः कृतैः प्रतिदिनं कलमाक्षतौघैः
पूजां पुरो विरचयामि जिनाधिपानाम् ॥३९॥

टीका—तत्काले पूजावसरे या भक्तिरादरं तया समुपार्जितं सञ्चितं तथा सौख्यस्य शर्मणो बीजं कारणं "पापाद्दुःखं धर्मात्सुखं"

इत्युक्तेरेवंभूतं यत्पुण्यं सुकृतं तदेवात्मा स्वरूपं येषां ते च ते रेणवः पांशवः "रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांशुर्नामद्वयोरजः" इत्यमरस्तेषां निकरैरिव समूहैरिव, संगलद्भिः—समन्तात्पतद्भिः, कलमानां शालिभेदानामक्षतास्तेषामोघैः, कृतैर्विहितैः, पुंजैः—राशिभिः साधनभूतैः, जिनाधिपानां पुरो—अग्रे पूजां विरचयामि। पूजार्थं गृहीत्वा अक्षताः करसम्पुटात्पतन्तः सन्तस्तत्कालोपार्जितपुण्यपांशव इव लक्ष्यन्त इति शौक्ल्यवर्णातिशयः।

अक्षतम् ।

अथ पुष्पपूजनमाह;—

अम्भोजकुन्दबकुलोत्पलपारिजात—
मन्दारजातिविदलन्नवमालिकाभिः ।
देवेन्द्रमौलिविरजीकृतपादपीठं
भक्त्या जिनेश्वरमहं परिपूजयामि ॥४०॥

टीका—अम्भोजं राजीवं "बिसप्रसूनराजीवपुष्कराम्भोरुहाणि च" इत्यमरः, कुन्दो माघोत्पन्नपुष्पं, बकुलं केशरपुष्पं, "केशरो बकुलोऽस्त्रियां" इत्यमरः, उत्पलं कुवलयं, "स्यादुत्पलं कुवलयं" इत्यमरः, पारिजातमन्दारौ देववृक्षौ तन्नामौ ? भूमावपि प्रसिद्धौ, जातिर्मालती, "सुमना मालती जातिः" इत्यमरः, विदलन्ती विकसन्ती नवमालिका सप्तला "सप्तला नवमालिका" इत्यमरः, नवालीति प्रसिद्धिः, एषां द्वन्द्वे तथा ताभिः, एतैः पुष्पैरित्यर्थः। एषां पुष्पवाच्येऽपि स्त्रीलिङ्गता यतः—"पुष्पे जातिप्रभृतयः स्वलिङ्गा व्रीह्यः फले" इत्यमरः। देवानामिन्द्रा देवेन्द्राः, अत्रेन्द्रपदेनैव देवेन्द्रत्वसिद्धेः पुनर्देवपदोपादानं तत्साहचर्यार्थं तेन देवैः संयुक्ता इन्द्रा देवेन्द्रास्तेषां मौलयश्चूडाः किरीटानि वा संयताः केशा वा "चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः" इत्यमरः, तैः विरजीकृतं नमस्कारकरणाद्विधूलीकृतं पादपीठं यस्य तं जिनेश्वरं, भक्त्या—

आह्लेण, परिपूजयामि—विशेषेणार्चयामि । विरजीकृतमिति पदं अविरजो विरजः कृतं विरजीकृतं 'अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च" इति च्विप्रत्यये सकारलोपे कृते "च्वौ च" इति ईकारे कृते सिद्ध्यति । अत्र जिनेश्वरपादपीठे रजोराहित्याद्विरजीकृतमिति कथनं नमस्कारस्वरूपनिरूपणार्थमिति ।

पुष्पम् ।

अथ नैवेद्यनिवेदनमाह:—

अत्युज्ज्वलं सकललोचनहारि चारु-
नानाविधाकृतिनिवेद्यमनिन्द्यगन्धम् ।
बाष्पायमानमनणीयसि हेमपात्रे
संस्थापितं जिनवराय निवेदयामि ॥४१॥

टीका—अतिशयेनोज्ज्वलं निर्मलमत्युज्ज्वलं भक्षणार्थं विधीयमानादप्युज्ज्वलतरमित्यर्थः, अतएव सकलानामिन्द्रादीनां लोचनानि नेत्राणि हर्तुं शीलं यस्य मनोहरत्वात् । यद्वा सह कलाभिः सूपकारविद्याभिर्वर्तन्त इति सकलाः सूपकारशास्त्रनिष्णातास्तेषां लोचनानि हर्तुं शीलं यस्य, अतएव चारु-सकलभक्ष्यवस्तुषु विशिष्टं तथा नानाविधा बहुप्रकारा आकृतिः स्वरूपं यस्य, तथा अनिन्द्यं नासाप्रियत्वादिष्टो गन्धो यस्य, तथा बाष्पायमानं—तत्कालोत्पन्नत्वान्निस्सरद्धूमसमूहमिवाचरत् , तथा अतिशयेनाणुरणीयो न अणीयोऽनणीयो दीर्घं एतादृशे हेमपात्रे—सुवर्णभाजने, संस्थापितं—सम्यक्प्रकारेण यद्यत्र स्थापितुं योग्यं तत्तत्प्रकारेण निवेशितं, एवंभूतं निवेद्यं—मोदकभक्तापूपादिगद्यं, जिनवराय—सर्वज्ञाय जिनवरनिमित्तमित्यर्थस्तादर्थ्ये चतुर्थी, निवेदयामि—स्थापयामि ।

नैवेद्यम् ।

अथ दीपार्चनमाह;—

निष्कज्जलस्थिरशिखाकलिकाकलापै-
र्माणिक्यरश्मिशिखराणि विडम्बयद्भिः ।
सर्पिर्भिरुज्ज्वलविशालतरावलोके
दीपैर्जिनेन्द्रभवनानि यजे त्रिसन्ध्यम् ॥४२॥

टीका—कज्जलान्मलाभिर्गताः सम्पूर्णज्वलनाभिष्कज्जलाः कज्जलरहिताः "निरादयो निर्गमनाद्यर्थे पंचम्या" इति समासः, स्थिरा वातराहित्यादचञ्चलाः शिखा ज्वालास्ता एव कलिकाः कोरकाकारत्वात्तेषां कलापैः समूहैः । माणिक्यानां रत्नानां रश्मयः किरणास्तेषां शिखराण्यग्राणि । विडम्बयद्भिस्तिरस्कुर्वद्भिः । तथा सर्पिर्भिः—घृतैः, उज्ज्वलो निर्मलो विशालतरोऽतिशयेन विस्तीर्णोऽवलोकः प्रकाशो येषां तैः, दीपैः जिनेन्द्रभवनानि–सर्वज्ञगृहाणि, त्रिसन्ध्यं–सन्ध्यात्रये, यजे—पूजयामि । अत्र दीपानां बहुप्रदेशप्रकाशकत्वाद्भुवनपदोपादानं, स्वभावोक्तिः । त्रिसन्ध्यमित्यनेन पूजायाः कालत्रयकर्तृत्वं द्योतितम् ।

दीपम् ।

अथ धूपनिरूपणमाह;—

कर्पूरचन्दनतुरुष्कसुरेन्द्रदारु-
कृष्णागुरुप्रभृतिचूर्णविधानसिद्धम् ।
नासाक्षिकण्ठमनसां प्रियधूमवर्तिं
धूपं जिनेन्द्रमभितो बहुमुत्क्षिपेऽहम् ॥ ४३ ॥

टीका—कर्पूरः घनसारः, चन्दनं मलयजः, तुरुष्को यवनदेशोत्पन्नसुगन्धिद्रव्यभेदः तथा चामरः—"तुरुष्कः पिण्डकः सिल्हो यावनोऽपि," सुरेन्द्रदारु देवदारु, कृष्णागुरुः कालागुरुः, प्रभृतिग्रहणाल्लवङ्गमांस्यादीनि

तेषां चूर्णविधानेन कल्ककरणेन सिद्धं निष्पन्नं, तथा नासा प्रसिद्धा, अक्षिणी नेत्रे, कण्ठः प्रसिद्धः, मनश्चित्तं एषां प्रिया इष्टा धूमवर्तिर्भाविनैगमादुत्पत्तिर्यस्य तं धूपं जिनेन्द्रमभितः—जिनेन्द्रस्य समन्तात् "सर्वोभयाभिपरिभिस्तसन्तः" इति द्वितीया, बहुं—अधिकं, अहं उत्क्षिपे—वन्हौ निवेशयामि, यद्वा बह्वी अधिका मुत्प्रीतिर्यस्य सोऽहं क्षिपे इति पदच्छेदः कार्यः।

धूपम्।

अथ फलपूजनमाह;—

> वर्णेन यानि नयनोत्सवमावहन्ति
> यानि प्रियाणि मनसो रससम्पदा च।
> गन्धेन सुष्ठु रमयन्ति च यानि नासां
> तैस्तैः फलैर्जिनपतेर्विदधामि पूजाम् ॥४४॥

टीका—यानि—फलानि वर्णेन—रूपातिशयेन, नयनोत्सवं—नेत्रानन्दं, आवहन्ति—कुर्वन्ति, तथा यानि रससम्पदा च—स्वरससम्पत्त्या च, मनसः—चित्तस्य, प्रियाणि—इष्टानि, तथा यानि गन्धेन—सौरभ्यातिशयेन, नासां—नासिकां, सुष्ठु—अधिकं, रमयन्ति च—आघ्रातुं सोत्कण्ठां कुर्वन्ति च, तैस्तैः—विशेषणत्रयविशिष्टैः फलैः जिनपतेः पूजां विदधामि—करोमि। अत्र विशेषणत्रयेण पूजायोग्यानां फलानामुपादानं कृतं न तु वर्णोत्कटानामिन्द्रवारुणीप्रभृतिफलानां ग्रहणं, न वा वर्णादिरहितानां नालकेरादीनां निषेध इति भावः।

फलम्।

अथ सम्यक्स्नपनकर्तुः फलमभिधत्ते;—

> एवं यथाविधि मनागपि यः सपर्या—
> मर्हंस्तव स्तवपुरःसरमातनोति।
> कामं सुरेन्द्रनरनाथसुखानि भुक्त्वा
> मोक्षान्तमप्यभयनन्दिपदं स याति ॥४५॥

टीका—अत्र ध्यानेन साक्षादिव कृत्वा परमेश्वरं प्रति कविर्निवेदयति—भो अर्हन् !—जगत्त्रयपूज्य ! यो ब्राह्मणादिवर्णत्रयान्यतमः श्रावको यथाविधि—संहितोक्तविधिमनतिक्रम्य, मनागपि—सकृदपि दिनमध्ये पूर्वाह्णाद्यन्यतमकालेऽपि किं पुनः कालत्रये न तु सकलजन्ममध्ये सकृदपीति स्नपनस्य नित्यमहान्तर्भूतत्वात् । तव ध्यानेन साक्षात्कृतस्य सपर्या—पूजां, स्तवपुरःसरं—स्तवः स्तोत्रं पुरःसरोऽग्रेसरो यत्र कर्मणि तद्यथा भवति तथा आतनोति—विस्तारयति करोतीति यावत् । शास्त्रोक्तां पूजां विधाय स्तवं करोतीत्यर्थः । सः—स्नपनकर्ता, कामं—निरायासेन, सुरेन्द्रः इन्द्रो नरनाथश्चक्रवर्ती तयोः सुखानि शर्माणि, भुंक्त्वा—प्राप्य, अभयेन निर्भयतया नन्दितुं शीलं यस्य, तथा मोक्षोऽपवर्गोऽन्तः स्वरूपं यस्य तदपि पदं स्थानं याति प्राप्नोतीत्यर्थः । अत्राचार्येण स्नपनान्तेऽभयनन्दीत्यात्मनो नामापि निरूपितमिति । यद्वा मङ्गलार्थमभयनन्दिपदमपि प्रयुक्तम् ।

पूजाफलम् ।

टीकाकर्तुः परिचयः ।

श्रीपूज्यपादप्रमुखैः पुरुषैः पवित्रितः ।
योऽभूत्पुराण्वयस्तत्र पवित्रतरमानसः ॥१॥
प्रत्यर्थिवारणनिवारणपञ्चकास्यः
सत्यव्रतस्त्तलक्षणः किल वीरसिंहः ।
भूपस्ततोऽभवदनिन्द्यगुणैकधामा
नामानुसारिचरणो हरिपालनामा ॥२॥
तद्भामा सत्यभामेव विधोर्विधुसमानना ।
समाननामधेयासीन्माता चन्द्रमतिः सती ॥३॥
नष्टापायस्तत्तनुप्राप्तकायः
साक्षादिन्द्रः पुण्यपर्ण्यैकपूर्णः ।

आसीन्मान्यः साधुसङ्घ प्रदान्य—
श्चांचत्स्तेयः श्रीसुनक्षत्रदेवः ॥४॥
तत्कान्ता कान्तकान्तैकचित्तवित्ता विशुद्धधीः ।
नाम्ना माणिक्यदेवीति प्रभादेवीव भूतले ॥५॥
अनङ्गतुल्योऽपि सदङ्गसम्भवोऽ—
भवद्विभूतिप्रभवो भवोदयः ।
प्रभाकरग्रन्थसुतः प्रभाकरः
प्रबुद्धबुद्धयै विहितप्रबन्धधीः ॥६॥
भावशर्माऽभयचन्द्रार्यप्रभायाख्यातसत्तमः ।
तमःप्रभावावरतो मतः सौभाग्यवल्लभः ॥७॥
तेन पञ्चमहितेन हितेन प्रस्फुटा स्नपनकर्मणि टीका ।
स्वपरैर्व्यरचि चर्चितभावा भावतो भवभवा सुखशान्त्यै ॥८॥

इत्यभिषेकः सटीकः समाप्तः ।

श्री-गजांकुश-कवि-विरचितो

जैनाभिषेकः ।

(५)

श्रीप्रभाचन्द्रदेवविरचितटीकया समन्वितः ।

श्रीमन्मंदरसुन्दरे शुचिजलैर्धौते सदर्भोक्षते
पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितं तत्पादपुष्पस्रजा ।
इंद्रोऽहं निजभूषणार्थममलं यज्ञोपवीतं दधे
मुद्राकंकणशेखरानपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे[१] ॥ १ ॥

१—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भूः स्वाहा इति जिनाभिषेकप्रस्तावनपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । ॐ ह्रीं नमः सर्वज्ञाय सर्वलोकनाथाय धर्मतीर्थंकराय श्रीशान्तिनाथाय परमपवित्रेभ्यः शुद्धेभ्यः नमो भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा । इत्यनेन भूमिशोधनं । ॐ ह्रीं क्षीं अग्निं प्रज्वालयामि निर्मलाय स्वाहा, ॐ ह्रीं वह्निकुमाराय स्वाहा, ॐ ह्रीं ज्ञानोद्योताय नमः स्वाहा । इति अग्निज्वालनम् । ॐ ह्रीं श्रीं क्षीं भूः नागेभ्यः स्वाहा । इति नागतर्पणम् । ॐ ह्रीं क्रौं दर्पमथनाय नमः स्वाहा । इति ब्रह्मादिदशदिग्बलिः । ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा । ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा । ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्राय स्वाहा । ॐ ह्रीं इन्द्रोऽहं स्वाहा । यज्ञोपवीताभरणपवित्रेन्द्रमंत्राः । ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रौं नेत्राय संवौषट् कलशार्चनं करोमि स्वाहा । इति पुराकर्म ।

श्रीमदित्यादि,दधे धारयामि । किं तत् ? यज्ञोपवीतं, कर्थभूतममलं पवित्रं पापमलप्रणाशकं । तथा रचितं कृतं । कया ? तत्पादपुष्पस्रजा तस्य मुक्तिवरस्य पादयोः पुष्पस्रक् पुष्पमाला तया । न केवलं यज्ञोपवीतं दधे अपि तु मुद्राकंकणशेखरानपि—शेखरो मुकुटः । तथा तत्पादपुष्पस्रग्प्रचितप्रकारेण । किमर्थं दधे ? निजभूषणार्थं आत्मालंकारार्थं । कुत एतद्दधे ? अहमिंद्रो यतः । क्व एतद्दधे ? जैनाभिषेकोत्सवे जिनस्यायं जैनः स चासावभिषेकश्च स्नपनं तस्मिन्नुत्सवो मांगल्यं तस्मिन् । किं कृत्वा ? निधाय, कं ? मुक्तिवरं मुक्तेर्वरो भर्ता जिनस्तं । क्व ? पीठे स्नपनपीठे । किंविशिष्टे ? श्रीमन्मंदरसुन्दरे श्रीमांश्चासौ मंदरश्च मेरुस्तद्वत्सुन्दरे मनोज्ञे । तथा शुचिजलैर्धौते शुचिभिः निर्मलैः पवित्रैर्वा जलैः प्रक्षालिते तथा सदर्भाक्षते दर्भाक्षतयुक्ते ॥१॥

इंद्राग्न्यंतकनैर्ऋतोदधिमरुद्यक्षेशशेषोडुपा—
नाहूताब्जिजवाहनायुधवधूयुक्तान्सुसंस्थापितान् ।
अर्घ्यस्वस्तिकयज्ञभागचरुकैरोंभूर्भुवः स्वः स्वधा
स्वाहा चेत्यभिमंत्रितैः प्रतिदिशं संतर्पयामः क्रमात्१।२।

ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्मं ठठ श्रीपीठं स्थापयामि स्वाहा । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रजलेन श्रीपीठप्रक्षालनं करोमि स्वाहा । ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय स्वाहा । इति श्रीपीठमभ्यर्चयेत् । ॐ ह्रीं श्रीलेखनं करोमि स्वाहा । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं श्रीवर्णे प्रतिमा-स्थापनं करोमि स्वाहा । इति स्थापना ।

श्रीमंडपादिषु शक्रमंडपादिभावस्थापनार्थं जात्यकुंकुमालुलित-दर्भदूर्वापुष्पाक्षतं क्षिपेत् । इति सन्निधानपम् ।

१—ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिन्ह-सपरिवारा इन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवायुकुबेरेशानधरणेन्द्रसोमनामदश-लोकपाला आगच्छत आगच्छत संवौषट्, स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः,

इन्द्रेत्यादि। संतर्पयामः सम्यक्प्रीणयामः। क्रमात्क्रममाश्रित्य। कान्? तानिन्द्रादीन्। कैः कृत्वा? अर्घ्यस्वस्तिकयज्ञभागचरुकैः—अर्घ्यश्च स्वस्तिकश्च चतुष्कः यज्ञभागश्च बाकुलाद्यविशेषभागः चरुकश्च नैवेद्यः। तैः कथंभूतैः? अभिमंत्रितैः, कैः? ॐ भूर्भुवः स्वः स्वधा स्वाहा चेत्येतैर्मंत्रैर्ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा इत्यादिरूपतया अभिमंत्रितैः। किं कृत्वा संतर्पयामस्तान्? संस्थाप्य। कथं? प्रतिदिशं दिशं दिशं प्रति। स्वकीय-स्वकीया दिशोऽनतिक्रमेणेत्यर्थः। किं नामानस्तानित्याह इन्द्रेत्यादि इन्द्रश्च अग्निश्च अंतकश्च नैर्ऋत्यश्च उदधिश्च वरुणश्च मरुश्च यक्षश्च ईश्वरश्च शेषश्च धरणेन्द्र उडुपश्चन्द्रः। एते दशापि इन्द्रादयो यथाक्रमं पूर्वादिदिशां स्वामिनः प्रत्येतव्याः। किंविशिष्टानेतान्? आहूतानाकारितान्। कथं? निजवाहनायुधवधूयुक्तान्—वाहनानि च आयुधानि च वध्वश्च निजाश्च ता वाहनायुधवध्वश्च ताभिर्युक्तान् ॥२॥

आहूत्य स्नपनोचितोपकरणं द्रव्यदत्तार्घ्यर्चितान्
संस्थाप्योज्ज्वलवर्णपूर्णकलशान्कोणेषु सूत्रावृतान्।
तूर्याशीस्तुतिगीतमंगलरवेष्वध्येजेपस्तु ध्वनिं
सोत्साहं विधिपूर्वकं जिनपतेः स्नानं करोम्यादरात्[१]॥३॥

आहृत्येत्यादि। प्रस्तुवे प्रारभेऽहं। कां? स्नानक्रियां स्नपनकरणं। कस्य? जिनपतेः। किं कृत्वा? आहृत्य आनीय स्वसंनिधाने धृत्वा। किं तत्? स्नपनोचितोपकरणं स्नपने उचितं योग्यं तच्च तदुपकरणं च घंटाधू-

---

ममात्र सन्निहिता भवत भवत वषट्, इदमर्घ्यं पाद्यं गृहीध्वं गृहीध्वं ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा। इति इन्द्रादिदशलोकपालपरिवारदेवतार्चनम्।

ॐ ह्रीं क्रौं समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि दुरितमस्माकम-पहरतु भगवान् स्वाहा। इति सूत्स्नागोमयादिपवित्रद्रव्यैर्नीराजनम्।

१—ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा।

पद्दहनादि पश्चात्। कोणेषु स्नपनपीठचतुःकोणेषु। संस्थाप्य। कान्? उज्ज्वलवर्णपूर्णकलशान् श्वेतवर्णाः पूर्णकलशाश्च तान्। किंविशिष्टान्? दध्यक्षताद्यर्चितान्। तथा सूत्रावृतान् सूत्रवेष्टितान्। केषु सत्सु तान् प्रस्तुवे? पूर्वाशीःस्तुतिगीतमङ्गलरवेषु—पूर्वाणि चाशीरवश्च जय नंद, स्यादयः स्तुतयश्च गीतानि च मङ्गलानि च तेषां रवाः शब्दास्तेषु सत्सु। किंकुर्वत्सु? जयत्सु। कं? ध्वनिं। कस्य? अब्धेः समुद्रस्य। कथं प्रस्तुवे? सोत्साहं आलस्यरहितं यथा भवति तथा विधिपूर्वकमागमोक्तविध्यनतिक्रमेण ॥३॥

जलाभिषेकः।

श्रीमद्भिः सुरसैर्निसर्गविमलैः पुण्याशयाभ्याहृतैः
शीतैश्चारुघटाश्रितैरविरतैः संतापविच्छेदकैः।
तृष्णोद्रेकहरैरजःप्रशमनैः प्राणोपमैः प्राणिनां १-२
तोयैर्जैनवचोऽमृतातिशयिभिः संस्नापयामो जिनम्॥४॥

श्रीमदित्यादि। जिनं संस्नापयामः। कैः? तोयैः। किं विशिष्टैः? जैनवचोऽमृतातिशयिभिः जैनं च तद्वचश्च तदेवामृतं तदतिशायिभिः संतापापनोदकत्वेन तत्सदृशैः। तथा श्रीमद्भिः जिनवचनैस्तोयैश्च निजनिजलक्ष्मीयुक्तैः, तद्युक्तमेवोभयेषां दर्शयन्नाह—सुरसैरित्यादि। सुरसैर्मृष्टैर्विपाकमधुरैश्च। निसर्गविमलैः—निसर्गेण स्वभावेन निर्मलैः निर्दोषैश्च। पुण्याशयाभ्याहृतैः—पुण्योपार्जनार्थमाशयोऽभिप्रायस्तेनाभ्याहृतैरानीतैस्तोयैः, जैनवचनैस्तु धर्मध्यानाद्युपेतप्रशस्तचित्तसिद्ध्यर्थं अभ्याहृतैरुक्तैः। शीतैः

१—ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं हंहं संसं तंतं पंपं झंझं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रीं सत्त्रैलोक्यस्वामिनो जलाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा। इति जलाभिषेकः। २—जलाभिषेकादनन्तरं इक्षुरसाभिषेकस्य समूलटीकापाठः लिखितपुस्तकेऽपि नोपलब्धः।

शीतस्पर्शैरकर्कशैश्च। चारुघटाश्रितैस्तोयैः सुन्दरघटाश्रितैः। जैनवचनपक्षे तु सुन्दरा घटा घटना रचना उपपत्तिर्वा तामाश्रितैः। अवितथैर्वस्तुभूतैरविसंवादकैश्च। संतापविच्छेदकैः-शरीरसंतापस्फेटकैः संसारक्लेशनाशकैश्च तृष्णोद्रेकहरैस्तृष्णाया उद्रेकविनाशकैः विषयकांक्षोच्छेदकैश्च। रजःप्रशमनैः—पांशूपशमकैः पापप्रणाशकैश्च। प्राणोपमैर्जीवितहेतुतया प्राणसदृशैः तोयैः। जैनवचनैस्तु प्राणा उपमीयंते एकेन्द्रियादिजीवितसंबंधित्वेन प्रतिनियताः संख्यायंते यैस्तैः। केषां? प्राणिनाम्॥ ४॥

घृताभिषेकः—

दंडीभूततडिद्गुणप्रगुणया हेमद्रवस्निग्धया
चंचच्चंपकमालिकारुचिरया गोरोचनापिंगया।
हेमाद्रिस्थलसूक्ष्मरेणुविसरव्रातूलिकालीलया
द्राघीयोघृतधारया जिनपतेः स्नानं करोम्यादरात्[1]॥५॥

दंडीत्यादि, आदराज्जिनपतेः स्नानं करोमि। कया द्राघीयोघृतधारया—अतिशयेन दीर्घा द्राघीयसी सा चासौ घृतधारा च तया। किंविशिष्टया? दंडीभूततडिद्गुणप्रगुणया—तडिदेव गुणो रज्जुः प्रशस्ता वा तडित्तडिद्गुणः दंडीभूतो दंडरूपतां संप्राप्तः स चासौ तडिद्गुणश्च तेन प्रगुणा समाना तया। तथा हेमद्रवस्निग्धया—हेम्नः सुवर्णस्य द्रवो द्रुतिस्तद्वत् स्निग्धया अत्यंतपीतवर्णया। चंचच्चंपकमालिकारुचिरया—चंचती शोभमाना सा चासौ चंपकमालिका च तद्वद्रुचिरा तया विशिष्टपीतकांतियुक्तया। गोरोचनापिंगया—गोरोचनावत्पिंगया पीतवर्णया। हेमाद्रिस्थलसूक्ष्मरेणुविसरव्रातूलिकालीलया—हेमाद्रिर्मेरुस्तस्य स्थलमुच्चैःप्रदेशः तस्य सूक्ष्माश्च ते रेणवश्च तेषां विसरंती चासौ वातूलिका वातसमूहस्तस्य लीला शोभा यस्यां तया॥५॥

१—ॐ ह्रीं श्रीं..........त्रैलोक्यस्वामिनो घृताभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

दुग्धाभिषेकः—

माला तीर्थंकृतः स्वयंवरविधौ क्षिप्तापवर्गश्रिया
तस्येयं सुभगस्य हारलतिका प्रेम्णा तया प्रेषिता ।
वर्त्मन्यस्य समेष्यतो विनिहिता दुग्धेति शंका कृता
कुर्मः शर्मसमृद्धये भगवतः स्नानं पयोधारया[1] ॥६॥

मालेत्यादि, भगवतः स्नानं कुर्मः । कया ? पयोधारया । किंविशिष्टया ? इत्येवं शंकाकृता आशंकाजनिकया । कथमित्याह—मालेत्यादि, स्वयंवरविधौ—स्वयमेव आत्मनो भर्तृस्वीकारे अपवर्गश्रिया मोक्षलक्ष्म्या किं इयं माला क्षिप्ता । कस्य ? तीर्थंकृतः । किं वा हारलतिका इयं तया अपवर्गश्रिया प्रेषिता । कस्य ? तीर्थंकृतः, सुभगस्य—परमसौभाग्योपेतस्य । केन ? प्रेम्णा प्रियस्य भावः प्रेम तेन प्रेम्णा अतिस्नेहेन दुग्धा सुभगस्य । प्रेम्णेति च विशेषणद्वयं माला हारलतिका दुगित्यत्र प्रत्येकं सम्बन्ध्यते अस्य सुभगस्य प्रेम्णा तया दुग्धा विनिहिता प्रेषिता । क ? वर्त्मनि मुक्तिमार्गे । कथंभूतस्य ? समेष्यतः समागमिष्यतः ॥६॥

दध्यभिषेकः—

शुक्लध्यानमिदं समृद्धमथवा तस्यैव भर्तुर्यशो-
राशीभूतमिव स्वभावविशदं वाग्देवतायाः स्मितम् ।
आहोस्वित्सुरपुष्पवृष्टिरियमित्याकारमातन्वता
दध्नैनं हिमखंडपांडुररुचा संस्नापयामो जिनम्[2] ॥७॥

1—ॐ ह्रीं श्रीं·························त्रैलोक्यस्वामिनो दुग्धाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

2—ॐ ह्रीं श्रीं·························त्रैलोक्यस्वामिनो दधिस्नपनं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

शुक्लेत्यादि, एवं जिनं संस्नापयामः। केन? दध्ना। कथंभूतेन? हिमखंडपांडुररुचा—हिमखंडानामिव पांडुरा रुक् दीप्तिर्यस्य तत्तथोक्तं तेन। पुनरपि कथंभूतेन? इत्याकारमातन्वता—एवंविधामाशंकां विस्तारयता, तामेवाकाराशंकां दर्शयन् शुक्लध्यानेत्याद्याह—समृद्धं परमातिशयं प्राप्तं शुक्लध्यानमिदं किं? अथवा—किंवा, तस्यैव—जिनस्यैव भर्तुस्त्रिभुवनस्वामिनो यशो राशीभूतं पुंजीकृतं। उत—किंवा वाग्देवतायाः—सरस्वत्याः स्मितं ईषद्धसितं। किंविशिष्टं? स्वभावविशदं—निसर्गतः शुभ्रं। आहोस्वित्किंवा सुरपुष्पवृष्टिर्देवोपनीतपुष्पवृष्टिरियं ॥७॥

कलशाभिषेकः—

द्रव्योद्वर्तनकल्ककचूर्णनिवहैः स्नेहापनोदं तनो—
र्वर्णाढ्यैर्विविधैः फलैश्च सलिलैः कृत्वावतारक्रियां।
संपूर्णैः सकृदुद्धृतैर्जलधराकारैश्चतुर्भिर्घटै—
रंभःपूरितदिङ्मुखैरभिषवं कुर्मस्त्रिलोकीपतेः[१] ॥८॥

द्रव्येत्यादि,अभिषवं स्नपनं कुर्मः। कस्य? त्रिलोकीपतेः—त्रयाणां लोकानां समाहारास्त्रिलोकी तस्याः पतिरर्हन् तस्य। कैः? चतुर्भिः घटैः। कथंभूतैः? अंभःपूरितदिङ्मुखैः—अंभसा पूरितानि दिङ्मुखानि यैः। तथा संपूर्णैः समंततः परिपूर्णैः परिपूर्णावयवैर्जलपरिपूर्णैर्वा। सकृदुद्धृतैः—एकहेलया उत्क्षिप्तैः। जलधराकारैः—अम्भःपूरितदिङ्मु-

---

१—ॐ ह्रीं श्रीं·····················त्रैलोक्यस्वामिनः कल्कचूर्णैरुद्वर्तनं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

ॐ ह्रीं क्रों समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भगवान् स्वाहा।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमोऽर्हते भगवते मंगललोकोत्तमशरणाय कोणकलशजलाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

सत्वेन मेघसदृशैः। किं कृत्वा ? अवतारक्रियां कृत्वा—अवतारो अवतरणकं तस्य क्रिया भ्रमणं तां कृत्वा। कैः ? फलैः। किंविशिष्टैः ? विविधैर्नानाप्रकारैः। वर्णाढ्यैः—सुन्दररूपोपेतैः। न केवलं फलैरेवावतारक्रियां कृत्वा अपि तु सलिलैश्च तां कृत्वा। किं कृत्वा ? स्नेहापनोदं—स्नेहस्य घृतादिप्रभवस्निग्धत्वस्य अपनोदमपनयनं कृत्वा। कस्य ? तनोः—भगवदीयशरीरस्य। कैः ? हृद्योद्वर्तनकल्कचूर्णनिवहैः हृद्यानि—मनोज्ञानि तानि च तानि उद्वर्तनकल्कचूर्णानि उद्वर्तनं प्रसिद्धं, सुगंधिद्रव्याणि जलेन वर्तितानि कल्कः तान्येव शुष्कपिष्टानि चूर्णमेषां निवहैः संघातैः ॥ ८ ॥

गंधोदकाभिषेकः—

कर्पूरोल्वणसान्द्रचंदनरसप्राचुर्यशुभ्रत्विषा
सौरभ्याधिकगंधलुब्धमधुपश्रेणीसमाश्लिष्टया।
सद्यःसंगतगांगयामुनमहास्रोतोविलासस्पृशा
सद्गंधोदकधारया जिनपतेः स्नानं करोम्यादरात्[१]॥९॥

कर्पूरेत्यादि, जिनपतेः स्नानं करोम्यादरात्। कया ? सद्गंधोदकधारया—सत्प्रशस्तं तच्च सद्गंधेनोपलक्षितं च तदुदकं च तस्य धारा प्रवाहस्तया। कथंभूतयेत्याह कर्पूरेत्यादि—कर्पूरेणोल्वणः उत्कटः स चासौ सान्द्रश्च बहलश्चंदनरसश्च तस्य प्राचुर्यं तेन शुभ्रत्विषा शुभ्रा त्विट्

१—ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हन् अ सि आ उ सा नमः मम सर्वशान्तिं कुरु मम सर्वपुष्टिं कुरु स्वाहा स्वधा।

ॐ नमोऽर्हत्परमेष्ठिभ्यो मम सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा। इति स्वमस्तके गन्धोदकप्रक्षेपणम्।

दीप्तिर्यस्यास्तया। तथा सौरभ्याधिकगंधलुब्धमधुपश्रेणीसमाश्लिष्टया—सौरभ्यमत्यंतमधिकं यत्र स चासौ गन्धश्च तत्र लुब्धा लंपटास्ते च ते मधुपाश्च भ्रमरास्तेषां श्रेणयस्ताभिः समाश्लिष्टा आलिंगिता तया। तामित्थंभूतां सद्गंधोदकधारां उत्क्षेपते सद्य इत्यादि—सद्यस्तत्क्षण एव संगते मिलिते ते च ते गांगयामुनमहास्रोतसी च गंगाया इदं गांगं यमुनाया इदं यामुनं च ते महास्रोतसी च महाजलप्रवाहौ तयोर्विलासः शोभा तं स्फुरत्यनुकरोति या तया ॥९॥

स्नानानंतरमर्हतः स्वयमपि स्नानाम्बुसेकार्द्रितः
वार्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैर्दीपैः सुधूपैः फलैः।
कामोद्दामगजांकुशं जिनपतिं स्वभ्यर्च्य संस्तौति यः
स स्यादारविचंद्रमक्षयसुखः प्रख्यातकीर्तिध्वजः[१]।१०।

स्नानेत्यादि, जिनपतिं यः संस्तौति। कथंभूतं? कामोद्दामगजांकुशं—काम एव उद्दामगजो महान् गजः तस्य अंकुशं नियामकं रोधकं वा। कविपक्षे तु कामोऽभिलाषः उद्दामो महान्मोक्षविषयो यस्यासौ कामोद्दामः स चासौ गजांकुशश्च कविस्तं। कथंभूतं? जिनपतिं जिनः पतिर्यस्य। तत्किं कृत्वा यः संस्तौति? स्वभ्यर्च्य सुष्ठु अत्यंतभक्त्या अभ्यर्च्य प्रागुक्तविधिना पूजयित्वा। कैः? वार्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः। तथा दीपैः सुधूपैः फलैः। कदा? स्नानानंतरं। स्वयमप्यर्हतः स्नानाम्बुसेकार्द्रितः—अर्हत्स्नानजलेन तिमितगात्रः। यः इत्थं स्तौति—स स्यादक्षयसुखः सततं सौख्यभाजनः। कथं? आरविचंद्रमाचंद्रार्कं। किंविशिष्टः सन्? प्रख्यातकीर्तिध्वजः प्रख्यातः प्रसिद्धः कीर्तिरिव ध्वजो यस्य ॥१०॥

श्रीमत्पुण्यास्त्रवस्य स्तुतिरिति मलिनैर्मुच्यमानेव भृंगैः
गंधाघैरुद्भ्रमद्भिः सभयमभिहतेकच्छलच्छीकराणाम्।

१—ॐ ह्रीं ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा—पुष्पाञ्जलिः।

प्रत्युत्थानानुबंधादिव नखकिरणैरुल्लसद्भिः परीता
धारा गंधोदकानां पततु जिनपतेः पादपीठस्थलेऽस्मिन्॥११

श्रीमदित्यादि, धारा पततु। क्व ? पादपीठस्थले पादयोर्विनिवेश-स्थानं पीठं प्रशस्तं पीठं पीठस्थलं तत्र अस्मिन् अग्रे प्रत्यक्षतः प्रतीयमाने। कस्य पादपीठस्थले ? जिनपतेः। केषां धारा ? गंधोदकानां गंधैरुपलक्षि-तानि उदकानि गंधोदकानि तेषां। कथंभूतेव धारा ? मुच्यमानेव। कैः ? भृंगैः भ्रमरैः। किंविशिष्टैः ? मलिनैः पापरूपैः मलिनत्वादिव सा तैर्मु-च्यमानेत्यर्थः। यदि नाम मलिनास्ते तथापि कुतस्तैः सा मुच्यमानेत्याह श्रीमदित्यादि—श्रीमत्प्राणिनामभिमतफलसंपादकत्वलक्षणलक्ष्मीयुक्तं तच्च सत्पुण्यं च तस्यास्रव आस्रवणमागमनं तद्धेतुविशुद्धिविशेषो वा तस्य स्रुतिः प्रवाहः इति हेतोः सा तैर्मुच्यमाना। किंविशिष्टैर्भृंगैः ? गंधान्धै-र्गंधेनान्धैर्विकलीभूतैः। तथा उद्भ्रमद्भिः उपरि भ्रमद्भिः। कथं ? सभयं यथाभवत्येवं कुतः। अभिहतेः—अभिघातात्। केषां ? उच्छलच्छीकराणां—उच्छलन्तश्च ते शीकराश्च जलकणास्तेषां तैरभिहननादित्यर्थः। पुनरपि कथंभूता ? परीता—वेष्टिता। कैः ? नखकिरणैः। किंविशिष्टैः ? उल्लसद्भिः ऊर्ध्वं लसद्भिर्दीप्तैः उच्छलद्भिर्वा। कस्मादिव ? प्रत्युत्थानानुबंधादिव अभ्युत्थानानुग्रहादिव ॥११॥

जलधारा१

गंधैराकृष्टगंधद्विपकरटतटीलीनभृंगांगनौघैः—
रंहःसंघातवीचीर्विघटयितुमिव व्याप्नुवद्भिर्दिगंतान्।
रंगद्गंगातरंगैरिव भुवनकुटीकोटरं व्यश्नुवाने—
र्जैनीं संधीं यजामो बहलपरिमलैर्गंधवाहोपवाह्यैः।१२।

१—ॐ ह्रीं अर्हन्नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा-जलम्।

गंधैरित्यादि, जैनी अंघ्री पादौ यजामः । कैः ? गंधैः—श्रीखंडादिगंधद्रव्यैः । कथंभूतैः ? बहलपरिमलैः । प्रचुरामोदैः—अत एव आकृष्टगंधद्विपकरटतटीलीनभृंगांगनौघैः—गंधद्विपा गंधहस्तिनः तेषां करटानि कपोलानि तेषां तट्यः पाल्यः तत्र लीनाः संश्लिष्टास्ताश्च ता भृंगांगनाश्च भ्रमर्यः तासामोघाः संघाताः । आकृष्टा आत्माधीनतां नीता गंधद्विपकरटतटीलीनभृंगांगनौघा यैः । तथा व्याप्नुवद्भिः तैः । कान् ? दिगंतान्—दशादिक्पर्यंतान् । किं कर्तुमिव ? विघटयितुमिव । काः ? अंहःसंघातवीचीः—अंहसानां पापानां संघाताः तेषां वीच्यः कल्लोलाः वीथ्यो वा मार्गान् । किंविशिष्टैः सद्भिः तैः तान्व्याप्नुवद्भिः ? भुवनकुटीकोटरं व्यश्नुवानः—भुवनान्येव कुट्यः तासां कोटरं मध्यं व्यश्नुवानैः व्याप्नुवद्भिः । कैरिव ? रंगद्गंगातरंगैरिव—रंगंतः प्रसर्पंतस्ते च ते गंगातरंगास्च तैरिव । तथा गंधवाहोपवाह्यैः—गंधवाहो वायुस्तेनोपवाह्यैः नीयमानैः । यत एव ते गंधवाहोपवाह्यास्तत एव दिगंतादि व्याप्नुवद्भिः ॥१२॥

गन्धम्[1] ।

श्रीमद्भिर्गंधशालिप्रबलपरिमलोद्गारिभिर्भूरिशोभैः
पुंजैः सत्पुण्यपुंजैरिव धवलवपुर्धारिभिस्तंडुलानाम् ।
स्वर्गस्त्रीमंगलार्घैरिव शशिशकलाकल्पितैरर्घ्यपादौ
जैनेन्द्रावर्चयामो शशिविशदयशोराशिलीलां हसद्भिः १३

श्रीमद्भिरित्यादि—अर्चयामः । कौ ? अर्घ्यपादौ—अर्घं पूजामर्हत इति अर्घ्यौ तौ च तौ पादौ च । जैनेन्द्रौ जिनेन्द्रस्येमौ । कैः ? तंडुलानां पुंजैः—राशिभिः । कथंभूतैः ? श्रीमद्भिः—अखंडदीर्घत्वादिश्रीयुक्तैः । तथा गंधशालिप्रबलपरिमलोद्गारिभिः—गंधशालिः सुगंधशालिविशेषः तस्य प्रबलः प्रचुरः स चासौ परिमलश्चामोदः तमुद्गिरंति मुंचंति ये ते तथोक्ता-

---

1—ॐ ह्रीं अर्हन्नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा-गन्धम् ।

स्तैः। तथा धवलवपुर्धारिभिः—शुभ्रस्वरूपैः। कैरिव? सत्पुण्यपुंजैरिव। तथा भूरिशोभैः-प्रचुरशोभासंपन्नैः। कैरिव ? स्वर्गस्त्रीमंगलार्थैरिव-इंद्राणीभिर्मंगलार्थं प्रक्षिप्तार्थैरिव। किंविशिष्टैस्तैः ? शशिशकलकल्पितैः—शशिनश्चंद्रस्य शकलानि खण्डानि तैरासमन्तात् कल्पितैर्निर्मितैः। तथा शशिविशदयशोराशिलीलां हसद्भिः—शशिवद्विशदानि निर्मलानि यानि यशांसि तेषां राशयः तेषां लीलां शोभां हसद्भिः उपहसद्भिः तत्र आत्मनः उत्कृष्टत्वं मन्यमानैरित्यर्थः ॥१३॥

अक्षतान्[१]।

मंदारैः सिंदुवारैः सुरभिपरिमलैः पारिजातैः सुजातैः
नन्द्यावर्तैरनिन्द्यैः कुमुदकुवलयैरुत्पलैरुत्पलाशैः।
बंधूकैर्गंधवद्भिः प्रतिनवविकसत्केसरोद्भासिपद्मैः
सन्तानश्रीनमेरुप्रसवशबलितैः पूजयामो जिनांघ्री १४

मंदारैरित्यादि, जिनांघ्री पूजयामः। कैः ? मंदारैर्वृक्षविशेषपुष्पैः। सिंदुवारपुष्पैः। सुरभिपरिमलैः—सुगंधामोदैः। तथा पारिजातैः देववृक्षविशेषपुष्पैः। कथंभूतैस्तैः सर्वैः ? सुजातैः—अत्यंतनिष्पन्नैः। तथा नन्द्यावर्तैः—देववृक्षविशेषपुष्पैः। अनिन्द्यैः-प्रशस्तैः। तथा कुमुदकुवलयैः कुमुदानि रक्तवर्णानि कुवलयानि श्वेतवर्णानि। उत्पलैः—नीलोत्पलैः। उत्पलाशैः उत्कृष्टानि पलाशानि पत्राणि येषु। बंधूकैः—माध्यान्हिकैः। गंधवद्भिः—अत्यंतसुगंधैः। तथा प्रतिनवविकसत्केसरोद्भासिपद्मैः प्रतिनवानि च तानि विकसन्ति च तानि केसरोद्भासीनि च तानि पद्मानि च तैः। संतानश्रीनमेरुप्रसवशबलितैः—संतानाः श्रीनमेरवश्च देववृक्षविशेषाः तेषां प्रसवाः पुष्पाणि तैः शबलितैः मिश्रितैः एतैः सर्वैः पुष्पविशेषैः ॥१४॥

१—ॐ ह्रीं अर्हन्नमोऽनादिनिधनेभ्यः स्वाहा—अक्षतान्।

पुष्पम्[1]।

शालीयैरचतांगैः शिशुशशिविशदैस्तंडुलैः कुंददीर्घै-
र्लक्ष्मीबीजप्ररोहप्रतिकृतिभिरिव प्रोल्लसद्भिः सुगंधैः।
सिद्धं संशुद्धपात्रे निहितमभिसरद्घ्राणमूष्मायमाणं
सान्नाय्यं स्वर्निवासिप्रियममृतमिव प्रोत्क्षिपामो जिनेभ्यः॥

शालीयैरित्यादि—जिनेभ्यः प्रोत्क्षिपामः प्रयच्छामः। किं तत्? सान्नाय्यं नैवेद्यं। किंविशिष्टं? सिद्धं—निष्पन्नं। कैः? तंडुलैः। कथंभूतैः? शालीयैः शालीनामिमे शालीयाः 'वृद्धेश्छः' इति छः। 'व्रीहिशालेर्ढक्' इति ढक् न भवति शालीनां प्ररोहाणां चेत्रं इत्यस्मिन्नर्थे तस्य विधानात्। तथा अक्षतांगैः अखंडैः। तथा कुन्ददीर्घैः—कुन्दकलिकावद्दीर्घाः कुंददीर्घाः। तथा शिशुशशिविशदैः—शिशुशशी द्वितीयाचंद्रः तद्वद्विशदाः शुभ्राः। तानित्थंभूतान् तंडुलानुत्क्षेपणे। लक्ष्मीबीजप्ररोहप्रतिकृतिभिरिव—लक्ष्म्या बीजानि पुण्यानि तेषां प्ररोहा अंकुरास्तेषां प्रतिकृतिवन्मूर्तिविचित्रतुल्यैः इत्यर्थः। प्रतिकृतिरूपिभिरिति पाठे तु तत्प्रतिकृतिवद्रुचिर्दीप्तिर्येषां इत्यर्थः। तथा प्रोल्लसद्भिः प्रकर्षेणोल्लसद्भिरुपचितैरुपर्युपरि संचयरूपेण विलसद्भिर्वा। तथा सुगंधैः शोभनश्चासौ गंधश्च सोऽस्त्येषामिति सुगंधा मत्वर्थीयस्य 'गुणवचनादुर्विति' लोपः। संशुद्धपात्रे निहितं निर्मलपात्रे स्थापितं। अभिसरद्घ्राणमभिसरन्भिर्गच्छद्घ्राणं यस्मात्। ऊष्मायमाणं तद्वदूष्मायमाणं 'बाष्पोष्मफेनादुद्वमौ' इति क्यङ्। सोष्णमित्यर्थः। तथा स्वर्निवासिप्रियं—स्वर्निवासिनां देवानां प्रियं आल्हादजनकं। किमिव? अमृतमिव॥ १५॥

चरुम्[2]।

१—ॐ ह्रीं अर्हन्नमः सर्वनृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा—पुष्पम्।
२—ॐ ह्रीं अर्हन्नमोऽनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा—नैवेद्यम्।

यस्य प्रोत्तुंगबोधस्त्रिभुवनभवनाभोगभागावभासी
त्रैलोक्यक्रोडनीडं धवलयति यशोराजहंसो यदीयः ।
तस्याग्रे बोधितोऽसौ स्फुरिततरशिखो दीप्रदीपप्रभौघो
व्यामोहस्पंदितं नो व्यपनयतु हठत्केवलज्ञानदीप्त्या ॥ १६ ॥

यस्येत्यादि—व्यपनयतु स्फेटयतु । किं तत् ? व्यामोहस्पंदितं व्यामोहोऽज्ञानतमस्तस्य स्पंदितं विलसितं । केषां ? नोऽस्माकं । कोऽसौ ? दीप्रदीपप्रभौघः दीप्रा देदीप्यमाना ये दीपास्तेषां प्रभौघाः रश्मिसंघाताः । कया ? हठत्केवलज्ञानदीप्त्या हठंती देदीप्यमाना सा चासौ केवलज्ञानदीप्तिश्च तया केवलज्ञानमुत्पाद्य तद्व्यपनयतु इत्यर्थः । किंविशिष्टः ? स्फुरिततरशिखः स्फुरिततरा दीप्ता शिखा यस्य । पुनरपि कथंभूतः ? तस्याग्रे बोधितः ? तस्य भगवतोऽग्रे बोधित उज्ज्वालितः । तस्य कस्य ? यस्य प्रोत्तुंगबोधः प्रोत्तुंगोऽतिशयेन महान् बोधः केवलज्ञानं विद्यते यस्य । किंविशिष्टः सः ? इत्याह–त्रिभुवनेत्यादि–त्रिभुवनमेव भवनं गृहं तस्याभोगो विस्तारस्तस्य भागान् सूक्ष्मप्रदेशान् अवभासयतीत्येवंशीलः । तथा यदीयो यश एव राजहंसो धवलयति । किं तत् ? त्रैलोक्यक्रोडनीडं त्रैलोक्यस्य क्रोडं मध्यं तदेव नीडं पक्षिगृहम् ॥ १६ ॥

दीपम्[1] ।

लक्ष्मीमाक्रष्टुमिष्टां सुरभवनमभि प्रस्थितो वृत्तराजो
मन्त्रोविस्फूर्जदगर्मन्दुर्गरभसरसमुद्घाटने धूमराशिः ।
व्योमोद्यद्धूमकेतूद्गम इव दुरितारातिनिर्णाशहेतु–
र्धूपः संधूपितारिर्ग्लपयतु दुरितं नो जिनाभ्यर्चनोत्थः ॥ १७ ॥

१—ॐ ह्रीं अर्हन्नमोऽनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा—दीपम् ।

लक्ष्मीमित्यादि—नो दुरितं म्लपयतु क्षयं नयतु । कोसौ ? धूपः । कथंभूतः ? जिनाभ्यर्चने जिनपूजायां उत्था उत्थानं यस्य । तथा धूमराशिः धूमराशिरूपः । इत्थंभूतः सन् स दूतराज इव प्रस्थितश्चलितः । कथं ? सुरभवनमभि देवलोकं लक्षीकृत्य । किं 'कर्तुं' प्रस्थितः ? आकष्टुं आनेतुं । कां ? लक्ष्मीं । कथंभूतां ? इष्टां वांछितां । किंविशिष्टः स धूप इत्याह—मर्मेत्यादि । मर्माणि विध्यति इति मर्माविन् 'नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ' इत्यनेन पूर्वस्य दीर्घत्वम् । कर्माण्येव गर्मुतो मधुमक्षिकाणां गणः समूहः तस्य रभससमंशुकत्वेन तस्य समुच्चाटन इव धूमराशिः । तथा व्योमोपद्धूमकेतूद्गम इव—व्योम्नि उपन्नूर्ध्वं गच्छन् स चासौ धूमकेतुश्च तस्य उद्गम इव उदय इव । ननु धूमकेतुः प्रजाविनाशाय भवति धूपः पुनः कस्य विनाशहेतुः इत्याह—दुरितारातिनिर्णाशहेतुः दुरितानि पापानि तान्येवारातयः शत्रवस्तेषां निर्णाशहेतुः । तथा संधूपितारिः संधूपिता अरयो येन ॥ १७॥ धूपम्[४] ।

आम्रैः कम्रैर्विनम्रस्तवकविलसितैः सामिपक्वै-
र्जंबूभिः शुंभदंभोधरभरसमयारंभसंभूतिभाग्भिः ।
श्रीमद्भिर्मातुलिंगैः क्रमुककदलजैः प्रार्चितोऽयं जिनांघ्रिः
शोभां कल्पांघ्रिपस्योद्धरतु फलमयीं प्रार्थितार्थप्रदो नः १८

आम्रैरित्यादि——अयं जिनांघ्रिः उद्धरतु धरतु । कां ? शोभां । कस्य ? कल्पांघ्रिपस्य कल्पद्रुमस्य । किंविशिष्टां शोभां ? फलमयीं फलानि प्रचुराणि यस्यां । कथंभूतः ? प्रार्चितः । कैः ? आम्रैः—आम्रफलैः । किंविशिष्टैः ? कम्रैः कमनीयैः । विनम्रस्तवकविलसितैः स्तवकैर्गुच्छैर्विनम्राश्चासौ स्तवकाश्च तत्र विलसितानि शोभितानि अथवा विनम्राणि च तानि स्तवकविलसितानि च तैः । सामिपक्वैः—ईषत्पक्वैः केचित्सुपक्वैः—अत्यन्तपक्वैः । तथा जंबूभिः जंबूफलैः । कथंभूताभिरित्याह शुंभदित्यादि-शुंभत्

४—ॐ ह्रीं अर्हन्नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा—धूपम् ।

शोभमानः स चासौ अंभोधरश्च मेघस्तस्य भरः प्राचुर्यं तस्य समयो वर्षाकालः तस्यारंभः प्रथमप्रवेशः तत्र संभूतिरुत्पत्तिस्तां भजंति यास्ताभिः। तथा मातुलिंगैः बीजपूरकैः। एतैः सर्वैः किंविशिष्टैः? श्रीमद्रू-सुरूपसुगंधत्वादिश्रीयुक्तैः। तथा क्रमुकफलशतैः पूगफलशतैः। स एतैः प्रार्चितो जिनांघ्रिः कथंभूतो भवतु प्रार्थितार्थप्रदो नः वांछितप्रयोजनप्रदो, नोस्माकं भवतु ॥ १८॥ फलम्[1]।

वारां धारा रजांसि प्रशमयतु सुगंधेन सौगंध्यलक्ष्मी पुष्पेभ्यः सौमनस्यं द्रविणमपि सदास्त्वक्षयं चाक्षतेभ्यः। लक्ष्मीशत्वं हविर्भिर्भवतु निधिभुजां कांतिरस्तु प्रदीपै-र्धूपैः सौभाग्यसिद्धिः फलमपि च फलैः श्रीजिनांघ्रिप्रसादात्

वारामित्यादि—वारां धारा सदा प्रशमयतु। कानि? रजांसि पापानि। सुगंधेन शोभनगंधोपेतेन श्रीखंडादिद्रव्येण सौगंध्यलक्ष्मी पाकस्य शरीरगतस्य च सौगंध्यस्य संपत्तिः सदास्तु। पुष्पेभ्यः सौमनस्यं प्रसन्नचित्तता सदास्तु। अक्षतेभ्योऽपि द्रविणं द्रव्यमक्षयमविनश्वरं सदास्तु। हविर्भिर्नैवेद्यैर्लक्ष्मीशत्वं निधिभुजां संबंधिन्या लक्ष्म्याः सत्वं सद्भावः ईशत्वं वा स्वामित्वं सदा भवतु। प्रदीपः—कान्तिर्दीप्तिः सदा भवतु कान्तिर्लावण्यं दीप्तिस्तेजः। धूपैः सौभाग्यसिद्धिः सदा भवतु। फलैरपि फलं स्वर्गापवर्गादिलक्षणं भवतु। कस्मादेतत्सर्वं भवतु? श्रीजिनांघ्रिप्रसादात्। न ह्यष्टविधपूजा जिनपादप्रसादं विना प्रतिपादितप्रकारफलसंपादन-समर्था भवितुमर्हतीति। प्रसादः पुनः जिनांघ्रीणां प्रसन्नेन मनसा आराध्यमानत्वं रसायनवत्। न पुनस्तुष्टिर्वीतरागाणां तुष्टिलक्षणप्रसादा-संभवात् कोपासंभववत्। १९॥ अर्घम्[2]।

● इति जैनाभिषेकः सटीकः समाप्तः ●

[1]—ॐ ह्रीं अर्हन्नमोऽनन्तसौख्येभ्यः स्वाहा—फलम्।
[2]—ॐ ह्रीं अर्हन्नमः परमङ्गलेभ्यः स्वाहा—अर्घ्यम्।

नमः सिद्धेभ्यः ।

श्रीमत्पण्डिताशाधर-विरचितं
नित्य-महोद्योतम् ।

(६)

श्रीश्रुतसागरसूरिविरचितया टीकया समलङ्कृतम् ।

अथ श्री—पंडिताशाधर—महाकवि—विरचित—महाभिषेक—वृत्ति-प्रारम्भः ।

नत्वा श्रीमज्जिनान् सिद्धांस्त्रिधा साधूनथ श्रुतम् ।
वृ.च महाभिषेकस्य कुर्वे सर्वार्थकारिणीम् ॥१॥

श्रीमदाशाधरो महाकविर्जिनसूत्रानुसारेण महाभिषेकविधिं विधित्सुः सर्वविघ्नविनाशार्थं श्रीवर्धमानस्वामिनं नमस्कुर्वन्निदमाह—

नमस्कृत्य महावीरं नित्यपूजाप्रसिद्धये ।
ब्रुवे नित्यमहोद्योतं यथाम्नायमुपासकान् ॥१॥

वृत्तिः—ब्रुवे—व्यक्तं प्रतिपादयामि, अहमाशाधरमहाकविः । कं ? कर्मतापन्नं नित्यमहोद्योतं—नित्यपूजाप्रकाशकं शास्त्रं । उक्तं च चारित्रसारग्रन्थे—

इज्या सा च नित्यमहश्चतुर्मुखं कल्पवृक्षोऽष्टाह्निक ऐन्द्रध्वज इति । तत्र नित्यमहो—नित्यं यथाशक्ति जिनगृहेभ्यो निजगृहाद्गन्ध-पुष्पाक्षतादिनिवेदनं, चैत्यचैत्यालयं कृत्वा ग्रामक्षेत्रादीनां शासन-

दानं मुनिजनपूजनं च भवति (१) चतुर्मुखं—मुकुटबद्धैः क्रियमाणा पूजा सैव महामहः सर्वतोभद्र इति (२) कल्पवृक्षः—अर्थिनः प्रार्थितार्थैः सन्तर्प्य चक्रवर्तिभिः क्रियमाणो महः (३) अष्टाह्निकं—प्रतीतम् (४) ऐन्द्रध्वजः—इन्द्रादिभिः क्रियमाणो बलिस्नपनं संध्यात्रयेऽपि जगत्त्रयस्वामिनः पूजाभिषेककरणम् (५) पुनरप्येषां विकल्पा अन्येऽपि पूजाविशेषाः सन्तीति।

कथं ब्रुवे? यथाम्नायं-पूर्वाचार्यैर्विरचितजिनार्चनविधानशास्त्रसम्प्रदायमनतिक्रम्य। कान् ब्रुवे? उपासकान्-सम्यग्दृष्टिश्रावकान्। किं कृत्वा पूर्वं? महावीरं नमस्कृत्य-महावीरस्वामिनं तीर्थंकरसमुदायं वा प्रणिपत्य। विशिष्टां ईं लक्ष्मीं ईरयति प्रेरयति राति ददाति आददाति वा वीर इति निरुक्तेः। महान् इन्द्रादीनां पूज्यश्चासौ वीरो महावीरस्तं तथोक्तं। किमर्थं नमस्कृत्य? नित्यपूजाप्रसिद्धये-नित्यमनवरतं पूजाप्रसिद्धये पूज्यताप्राप्तये। अथवा नित्यं निःश्रेयसं, पूजा अभ्युदयः, तद्द्वयप्राप्तये। अर्चितत्वान्नित्यशब्दस्य पूर्वोपादानं। अथवा किमर्थं नित्यमहोद्योतं ब्रुवे? नित्यपूजाप्रसिद्धये-नित्यं सर्वकालं पूजाप्रसिद्धये स्नपनार्चनप्रभृतिजिनाराधनप्रवर्तनकृते इति भावः।

नित्यमहश्चाष्टाह्निकमहो महामह इह प्रविख्याताः।
कल्पतरुश्चैन्द्रध्वज इति पंचमहास्तु विज्ञेयाः॥ १॥

तत्रादौ तावन्महाभिषेकविधिमभिधास्यामः—

वृत्तिः—तत्र—तस्मिन् नित्यमहे, आदौ—प्रथमतः, तावत्—अनुक्रमेण, महाभिषेकविधिं—महाभिषेकस्य विधिं विधानं, अभिधास्यामः—कथयिष्यामो वयमिति।

सिद्धानाराध्य सद्भावस्थापनायां जिनेशिनः।
स्नपने विधिवद्विश्वहितार्थं वितनोम्यदम्॥ २॥

वृत्तिः—अहं, जिनेशिनः स्नपनं वितनोमि—विस्तारयामि विस्तरेण करोमि। कथं? विधिवत्—शास्त्रोक्तप्रकारेण। किमर्थं? विश्वहितार्थं—विश्वस्मै जगते हितार्थं अभ्युदयनिःश्रेयससौख्यनिमित्तम्। कस्यां सत्यां जिनेशिनः स्नपनं वितनोमि? सद्भावस्थापनायां—सन् समीचीनः समवशरणादिविभूतिमण्डिततीर्थंकरपरमदेवावस्थालक्षणोपलक्षितो योऽसौ भावः साक्षात्सयोगिकैवल्यावस्था सद्भावस्तस्य स्थापना सोयं जिन इति सङ्कल्पः सद्भावस्थापना तस्यां सद्भावस्थापनायां सत्यां स्नपनं वितनोमि। किं कृत्वा पूर्वं? सिद्धानाराध्य—तीर्थंकरपरमदेवान् नमस्कृत्य ॥२॥

प्रस्तुत्य स्नपनं विशोध्य तदिलां संस्थाप्य वेद्यां कुशान्
कुम्भान् पीठमिहैव तत्प्रतिकृतिं चावाहनाद्यैर्जिनम्।
भक्त्वा शक्रपुरःसरानपि भजेऽर्घाम्भोरसाज्यैः पयो-
दध्ना स्नेहहरावतारणकुटैर्गन्धोदकाद्यैश्च तम् ॥ ३ ॥

वृत्तिः—भजे—सेवे। कं? तं—जिनं। कथं? च—पुनर्द्वितीयं वारं। कैः कृत्वा भजे? अर्घाम्भोरसाज्यैः—अर्घश्च जलगन्धाक्षतादिदधिदूर्वानन्द्यावर्तस्वस्तिकादिभी रचितः पूजासमुदायः, अम्भश्च जलं रसश्च इक्षुरसादिः, आज्यं च घृतं तैः। तथा पयोदध्ना भजे-पयश्च दधि च पयोदधि तेन पयोदध्ना समाहारद्वन्द्वः,दुग्धेन दध्ना च भजे इत्यर्थः। तथा भजे,कैः? स्नेहहरावतारणकुटैः—स्नेहहरा च सर्वौषधिः, अवतारणं पंचवर्णाभपिण्डादिमंगलद्रव्याणां जिनोपरि भ्रामणं, कुटाश्च पूर्णकुम्भास्तैः स्नेहहरावतारणकुटैः। तथा भजे,कैः? गन्धोदकाद्यैः-गन्धेन कर्पूरादिना मिश्रमुदकं गन्धोदकं तदाद्यं येषां पुष्पादिद्रव्याणां तानि गन्धोदकाद्यानि तैः। किं कृत्वा पूर्वं? स्नपनं प्रस्तुत्य—जिनस्नपनप्रस्तावनां कृत्वा, जिनस्नपनविधानाल्पसावद्यभीतमिथ्यादृष्टिजनमनोदुर्घटनाविघटनायात्रेदं घटत इति सुखं प्रकारयेत्यर्थः। तथा भजे किं कृत्वा पूर्वं? तदिलां विशोध्य—वातमेघवह्निभिः स्नपनभूमिशोधनं विधाय। तथा भजे किं कृत्वा पूर्वं?

वेद्यां-वितर्दौ, कुशान्-दर्भान्, कुम्भान्-कलशान्, पीठं-सिंहासनं, संस्थाप्य-सम्यगारोप्य, मंत्रपूर्वमित्यर्थः। न केवलमेतान् पदार्थान् संस्थाप्य, तत्प्रतिकृतिं च-जिनप्रतिमां च। क्व? इहैव—अस्मिन्नेव पीठे। पुनश्च किं कृत्वा भजे! जिनं—सर्वज्ञवीतरागं, भक्त्वा-पूजयित्वा। कैः? आवाहनाद्यैः—आह्वानस्थापनसन्निधापनैः। न केवलं जिनं भक्त्वा जिनं भजे अपि तु शक्रपुरःसरानपि भक्त्वा—इन्द्रादिदिक्पालानपि पूजयित्वेत्यर्थः।

इति महाभिषेकविधिद्वारम्।

ॐ विधियज्ञप्रतिज्ञानाय वेद्यां जात्यकुंकुमालुलितदर्भदूर्वापुष्पाक्षतं क्षिपेत्।

वृत्तिः—विधिपूर्वो यज्ञो विधियज्ञस्तस्य प्रतिज्ञानं प्रतिज्ञाङ्गीकारस्तस्मै विधियज्ञप्रतिज्ञानाय, वेद्यां विषये, जात्यकुंकुमं काश्मीरकुंकुमं न तु हरिद्रादिकृतं कृत्रिमं नाम कुंकुमं, तेनालुलितं समन्तान्म्रक्षितं यद्दर्भदूर्वापुष्पाक्षतं दर्भाश्च दूर्वाश्च पुष्पाणि चाक्षताश्चेति दर्भदूर्वापुष्पाक्षतं समाहारद्वन्द्वः, तत् क्षिपेत्-प्रेरयेत् समन्ताद्विकिरेदित्यर्थः।

सौधर्मो यस्य नाकिप्रथितकलकलं मूर्ध्नि मेरोः पयोधे—
र्वीनां धारां जयेति प्रथममधिशिरः पातयत्युत्सवेन।
कल्पेन्द्रास्तद्घटौघैः स्नपनमनु समं कुर्वते गन्धतोयै—
स्तद्वच्चैशानमुख्याः कृततदवभृथस्नातयोऽन्येपि चार्चाम् ॥ ४ ॥

स्नानुस्नानचन्द्रोल्वणमलयरुहालेपभूषादुकूल—
श्रीश्लिष्टांगोऽर्हदिष्टिप्रमुखपरिकरस्कारितस्वान्तशुद्धिः।
सौधर्मीभूय वासःपिहितमुख इहोदङ्मुखः प्राङ्मुखं तं
तत्राद्यमंडपादिश्रियमयमुपपाद्यार्हदीशं भजेऽहम् ॥ ५ ॥

वृत्तिः—अयं—प्रत्यक्षीभूतः। अहं—विवक्षितभाक्तिकः। तं-त्रिभुवनप्रसिद्धं। अर्हदीशं—सर्वज्ञस्वामिनं। भजे-सेवे स्नपनपूजनादिवि-

भिना आराधयामि । कथंभूतोऽहं ? स्नानेत्यादि–स्नानं च पवित्रपानीयेन शरीरप्रक्षालनं, अनुस्नानं च मन्त्रस्नानं, चन्द्रोल्वणमलयरुहालेपश्च–चन्द्रेण कर्पूरेणोल्वणमुत्कटं यन्मलयरुहं चंदनं तस्यालेपः समन्ताद्विलेपनं चन्द्रोल्वणमलयरुहालेपः, भूषास्त्वाभरणानि, दुकूले च बहुमूल्य-वस्त्रद्वयं तेषां श्रीः शोभा तयाश्लिष्टमालिंगितमङ्गं शरीरं यस्य स तथोक्तः । पुनः कथंभूतोऽहं ? अर्हदित्यादि–अर्हतः सर्वज्ञवीतरागस्य इष्टि-प्रमुखः पूजाप्रभृतिकः परिकरो द्रव्यसमूहस्तेन स्फारिता प्रचुरीकृता स्वा-न्तशुद्धिर्मनोनिर्मलता यस्य स तथोक्तः । किं कृत्वा भजे ? सौधर्मीभूय–असौधर्मः सौधर्मो भूत्वा सौधर्मीभूय सोऽहं सौधर्मेन्द्र इति सङ्कल्पं विधा-य । कथंभूतोऽहं ? वासःपिहितमुखः—उत्तरीयवस्त्रप्रान्तेन झंपितवक्त्रः । उक्तं च—

"दन्तधावनशुद्धास्यो मुखवस्त्रोचिताननः ।
मौनसंयमसम्पन्नः सुधीर्देवानुपाचरेत् ॥ १ ॥"

पुनरपि कथंभूतः? इह–अस्मिन् यज्ञे उदङ्मुखः—उत्तराभिमुखः । कथंभूतं तं ? प्राङ्मुखं–पूर्वाभिमुखं । किं कृत्वा भजे ? तत्तादृग्मंडपादिश्रिय-मुपपाद्य–तस्यार्हदीशस्य सम्बन्धिनी तादृक् तादृशी अर्हदीशयोग्या मंड-पादिश्रीः मंडपवेदिरचनादिलक्ष्मीस्तां, उपपाद्य सम्पाद्य रचयित्वा । छ । तं कं ? तयोर्नित्यसम्बन्धत्वात्, यस्य–तीर्थंकरपरमदेवस्य, अधिशिरः–मस्तकमधिकृत्य । सौधर्मः–प्रथमस्वर्गाधिनाथः । मेरोः कनकाचलस्य । मूर्ध्नि-मस्तके । पयोधेः–क्षीरोदसागरस्य । वारां–जलानां । धारां–प्रसिद्धां । जयेति भणित्वा उत्सवेन–गीतवाद्यादिना आनन्देन । पातयति–मुञ्चति । कथं ? प्रथमं—पूर्वं । कथं पातयति ? नाकिप्रथितकलकलं—नाकिभिः देवैः प्रथितः प्रख्यातः कलकलः कोलाहलो यत्र पातनकर्मणि तद्यथोक्तं । न केवलं सौधर्मो धारां पातयति स्नपनं करोति, अपि तु तद्वत्–सौधर्मप्रकारे-णैव ऐशानमुख्याः–ऐशानो द्वितीयकल्पनाथो मुख्यो येषां सनत्कुमारमा-

देन्द्रब्रह्मलान्तवशुक्रशतारानतप्राणतारणाच्युतानां ते ऐशानमुख्या ऐशानप्रभृतयः । कल्पेन्द्राः—स्वर्गाणां स्वामिनः । तदुपटौकैः—निजनिजकलशसमूहैः कृत्वा । गन्धतोयैः—सत्परिमलजलैः । अनु—सौधर्मस्य पश्चात् । समं—युगपदेकहेलया । स्नपनं—महाभिषेकं । कुर्वते—रचयन्ति । न केवलमेते स्नपनं कुर्वते, अपि तु अन्येऽपि—सामानिकादयो भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्कादयश्च स्नपनं कुर्वते । एते सर्वेऽपि न केवलं स्नपनमेव कुर्वते अर्चां च—पूजां च कुर्वते । कथंभूताः सन्तोऽर्चां कुर्वते? कृततदवभृथस्नातयः—कृता विहिता तस्यार्हद्दीशस्यावभृथस्नातिर्यैःशान्तस्नानं यैस्ते कृततदवभृथस्नातयः । पूर्वोत्तरस्यां दिशि दिक्पालपूजनप्लावनचैत्यपंचगुरुशान्तिभक्तिविसर्जनस्थापनं कृत्वेति शेषः ॥ ४-५ ॥

लोकाकाशावकाशे समवयदमितो यावति क्वापि यस्मिन्
यद्रूपं भावि भूतं भवदपि विविधं यस्य कस्यापि जन्तोः ।
तद्वैतचद्विशेषोपहितमनवधि प्रेक्षतेऽनुक्षणं यः
स्वस्थो लोकं च तद्वद्विधिरिति सवनं श्रेयसे प्रस्तुवेऽस्य ॥६॥

वृत्तिः—अस्य—भगवतस्तीर्थंकरपरमदेवस्य । सवनं—अभिषेचनं विधिरिति आचारोऽयमिति कृत्वा । प्रस्तुवे—प्रस्तारमवतारयामि । कस्मै? श्रेयसे—परमोत्तमपुण्याय मोक्षाय वा । ननु भगवतो लोचनयोः समुत्कर्षाभावतया किं सवनं विधीयते इत्याशङ्कायामाह—अस्य कस्य यो भगवान् स्वस्थः स्वात्मस्थितोपि सन् परपरिणामापरिणतोऽपि सन् यस्य कस्यापि—संसारिणो मुक्तस्य वा सूक्ष्मस्य बादरस्य वा त्रसस्य स्थावरस्य वा पर्याप्तस्यापर्याप्तस्य वा । जन्तोः—जीवस्य तत्तद्रूपं—स्वरूपमाकारं च । प्रेक्षते—प्रकर्षेण केवलदर्शनलोचनद्वयेन चर्मचक्षुर्निरपेक्षतया पश्यति जानाति चेति । कथं प्रेक्षते? अनुक्षणं—समयं समयं प्रति, अविच्छिन्नमित्यर्थः । कथंभूतं रूपं? भावि आगाम्यनन्तकाले भविष्यदुत्पत्स्यमानं । तथा भूतं—अतीतानादिकाले प्रादुर्भूयगतं । तथा भवदपि रूपं

वर्तमानकाले संजायमानमपि स्वरूपं । कतिविधं रूपं ? विविधं—नरनारकादिद्रव्यपर्यायतयानेकप्रकारं । पुनरपि किं विशेषणाञ्चितं रूपं ? तद्विशेषोपहितं—ते ते केवलज्ञानदर्शनप्रत्यक्षीभूततया प्रसिद्धा ये विशेषा अल्पबहुदीर्घादयस्तैरुपहितं सहितं । पुनरपि कथंभूतं रूपं ? अनवधि-अनन्तानन्ततया अमर्यादीभूतं । तत् किं? यत् लोकाकाशावकाशे—लोकस्य घनवात-घनोदधिवात-तनुवातवातत्रयपर्यन्तस्य त्रिभुवनस्य सम्बन्धी योऽसावाकाशो लोकाकाशस्तस्यावकाशो वस्तुस्थानादिप्रदानलक्षणोऽवगाहस्तस्मिन् । अभितः—समन्तात् । समवयत्—आधाराधेयतया समवायं प्राप्नुवत् । कियत्प्रमाणे लोकाकाशावकाशे ? यावति—यत्प्रमाणे । भूयः किं विशिष्टे ? यस्मिन् क्वापि—यत्र कुत्रापीत्यर्थः । न केवलं जन्तोः स्वरूपमेव प्रेक्षते भगवानपि तु लोकं च—तदाधारभूतं त्रिभुवनं च चकारादलोकं चेति भावः । कथं प्रेक्षते ? दै—स्फुटकरकलितामलकफलवत्प्रत्यक्षीभूतमित्यभिप्रायः ॥ ६ ॥

नैर्मल्यादिगुणातिशायिवपुषो नैवापवर्त्यायुषो
दीप्त्यूर्जोबलशालिनस्त्रिजगतां पूज्यस्य मुक्तिश्रियाम् ।
नित्याशक्तधियः प्रभोः किमपि न स्नानेन साध्यं तथा-
प्युच्चैः श्रद्दधतो युनक्ति सुकृतैरित्येतदारभ्यते ॥ ७ ॥

वृत्तिः—नैर्मल्यादीत्यादि । इति—एतस्मात्कारणात् । एतत्—जिनस्नपनं । आरभ्यते—उपक्रम्यते । इतीति किं ? प्रभोः—त्रैलोक्यनाथस्य । तावत्स्नानेन न किमपि साध्यं—नैवैषदपि प्रयोजनं । तर्हि किमर्थमारभ्यते? तथापि—प्रभोरप्रयोजनप्रकारेणापि । उच्चैः—अतिशयेन । श्रद्दधतः—रोचमानान् पुरुषान् । सुकृतैः—तीर्थंकरपरमदेवादिपदप्रदायिविशिष्टपुण्यैः । युनक्ति—योजयतीति । तान्येव स्नानाप्रयोजनगर्भितानि विशेषणानि प्राह—कथंभूतस्य प्रभोः ? नैर्मल्यादिगुणातिशायिवपुषः—नैर्मल्यं मलमूत्राद्यभावस्तदादिर्येषां निःस्वेदत्वसौरभ्यादीनां ते नैर्मल्यादयस्ते च ते गुणास्तैर-

तिशायि अतिशययुक्तं वपुर्यस्य स नैर्मल्यादिगुणातिशायिवपुस्तस्य। नैवापवर्त्यायुषः—नैव न च वर्तते अपवर्त्यं विषशस्त्रादिसद्भावेऽपि [नैव] ह्रस्वमायुर्यस्य स तथोक्तस्तस्य। तथा दीप्त्यूर्जोबलशालिनः—दीप्तिश्च प्रभामंडलं, ऊर्जश्च उत्साहः, बलं च पराक्रमः, तैः शालते शोभत इत्येवं शीलो दीप्त्यूर्जोबलशाली तस्य दीप्त्यूर्जोबलशालिनो दीप्त्युत्साहबलशोभमानस्य। पुनः कथंभूतस्य प्रभोः? त्रिजगतां पूज्यस्य त्रिभुवनानां पूजितुं योग्यस्य। पुनरपि किं विशिष्टस्य? मुक्तिश्रियां नित्याशक्तिधियः—मुक्तिलक्ष्म्यां सदैवाशक्ता प्रवशिता तत्परा तन्निष्ठा धीर्बुद्धिर्यस्य स मुक्तिश्रियां नित्याशक्तधीस्तस्य तथोक्तस्य। स्नानेन वपुषो निर्मलता सुगन्धताऽऽयुष्यं दीप्तिरुत्साहो बलं पूज्यत्वं च भवति तच्च सर्वं भगवति स्वभावेनैवातिशयवद्वर्तते भोगाभिलाषस्तु मुक्तिकामिन्यामेवास्ति ततः स्नानप्रयोजनाभावे स्वश्रेयोनिमित्तं तद्विधिर्विधीयत इत्यभिप्रायः॥७॥

भावुकलोकश्रद्धानुबन्धविधानार्थमेतच्चतुष्टयं पठित्वा पूर्वविधिं विदध्यात्।

वृत्तिः—भावुकलोका भव्यजनास्तेषां श्रद्धा रुचिस्तस्या अनुबन्धः प्रकृतानुवर्तनं प्रारब्धानुवर्तनं तस्य विधानार्थं करणार्थं। एतत्-प्रत्यक्षीभूतं। चतुष्टयं-काव्यचतुष्कं। अथवा एतेषां काव्यानां चतुष्टयमेतच्चतुष्टयं। पठित्वा—व्यक्तमुक्त्वा, पूर्वविधिं विदध्यात्—जात्यकुंकुमालुलितदर्भदूर्वापुष्पाक्षतं क्षिपेदित्यर्थः॥

निर्ग्रन्थार्याः प्रसादं कुरुत पदमिहाधत्त सद्धर्मदीप्त्यै
देवाः सर्वेऽच्युतान्ता विकुरुत सुतनूः क्ष्मामिमामेत शान्त्यै।
क्षिप्त्वा कर्मारिचक्रं किमपि तदसमं स्फूर्जदावर्ज्य तेजः
सोऽद्यायं शासदीशस्त्रिजगदिह पशून् स्थाप्यतेऽनुगृहीतुम्॥८॥

वृत्तिः—निर्ग्रन्थानामार्याः स्वामिनो निर्ग्रन्थार्यास्तेषां सम्बोधनं क्रियते हे निर्ग्रन्थार्याः हे आचार्याः। प्रसादं कुरुत—प्रसन्ना भवत यूयं

काकण्यं कुरुध्वं यूयं । इह—अस्मिन् यज्ञमण्डपे । पदमाधत्त—पादन्यासं कुरुत पादं वा स्थापयत यूयं । किमर्थं ? सद्धर्मदीप्त्यै—महाभिषेकलक्षण-समीचीनजिनधर्मप्रभावनायै । अत्राह कश्चित्—अत्र महाभिषेकसमये किं निर्ग्रन्थार्या आचार्यवर्या एव समायान्ति अन्ये यतयो नायान्ति ? तन्न, न हि पर्यालोच्य पदन्यासचतुरचेतसः कवेराशाधरस्य कुतो कापि दूषणमस्ति कथमिति चेदुच्यते निर्ग्रन्थार्या इत्युक्ते सर्वेऽपि दिगम्बराः, आर्या देशव्रतिनः आर्यिकाश्च भवन्ति तेनायमर्थः निर्ग्रन्थाश्चार्याश्च निर्ग्रन्थार्यास्तेषां सम्बोधनं हे निर्ग्रन्थार्याः । हे अच्युतान्ताः—षोडश-कल्पपर्यन्ताः । सर्वे—समग्राः । देवाः—भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्क-कल्पवासिनश्चतुर्णिकायलक्षणोपलक्षिताः । यूयं सुतनूः विकुरुत—शोभन-मूर्तीर्विविधमुत्पादयत । इमां—प्रत्यक्षीभूतां । क्ष्मां—यज्ञभूमिं । एत—आगच्छत । किमर्थं ? शान्त्यै—सर्वकर्मप्रक्षयाय विघ्नविनाशाय च । किमर्थमागम्यतेऽस्माभिश्चेत् अद्य—इदानीमस्मिन्नहनि । सः—त्रिभुवन-प्रसिद्धः । अयं—प्रत्यक्षीभूतः । ईशः—त्रैलोक्यनाथस्तीर्थंकरपरमदेवः । इह—अस्मिन् यज्ञमण्डपवेदीस्थितपीठस्योपरि । स्थाप्यते निश्चली-क्रियते । किमर्थं स्थाप्यते ? पशून्—बहिरात्मप्राणिनः । अनुगृहीतुं—उपकर्तुं । अयमीशः किं कुर्वन् ? त्रिजगच्छासन्—चक्षुषि स्थितकज्जलमपि चक्षुरिति न्यायात् त्रिजगति स्थितभव्यप्राणिवर्गस्त्रिजगदुच्यते तच्छासत् संशिक्षयन् । किं कृत्वा पूर्वं ? तेजः—केवलज्ञानाख्यं मह आवर्ज्य—उत्पाद्य । कथंभूतं तेजः ? किमप्यपूर्वमासंसारमनासादितत्वात् तत्—सर्वजगत्प्रसिद्धं । असमं—अद्वितीयं अनुपमं असाधारणमिति स्फूर्जत्—महामुनीनामपि चित्तेषु चमत्कुर्वत् । किं कृत्वा पूर्वं तेजः समुत्पादितवान् भगवान् ? कर्मारिचक्रं छित्वा—मोहनीयज्ञानदर्शना-वरणान्तरायकर्मशत्रुसमूहं निःशेषतः क्षयं नीत्वा, लोकेऽपि यो नृपः अरिचक्रं शत्रुसैन्यं क्षयं नयति स तेजः प्रतापं प्राप्नोतीति भावः ॥८॥

प्रभावकसिद्धसान्निध्यविधानाय समन्तात्पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

वृत्तिः—प्रभावकसिंहाः—जिनशासनप्रभावनानां मुख्यास्तेषां सान्निध्यविधानाय—सन्निधीकरणाय निकटीकरणाय, समन्तात्-सर्वत्र यज्ञमंडपे, पुष्पाक्षतं क्षिपेत्—पुष्पैर्मिश्रितान् (अक्षतान्) विकिरेत्।

एते वर्षन्त्विहाशीरमृतमृषिगणाः साधु हुत्वाभिराद्धा
विश्वे देवाश्च सास्त्रव्रजनपरिजना घ्नन्तु विघ्नानि ते।
स्थानस्था एव चैनं सहसुरमुनयस्तेऽहमिन्द्राः स्तुवन्तु
श्रद्धत्तार्यां मयायं जिनयजनविधिः प्रस्तुतोऽधीत्य सिद्धान् ॥९॥

वृत्तिः—अयं—प्रत्यक्षीभूतः। जिनयजनविधिः—तीर्थंकरपरमदेवपूजनविधानं। मया—आशाधरेण महाकविना। प्रस्तुतः—उपैकान्तः प्रारब्धः। किं कृत्वा पूर्वं ? सिद्धान् अधीत्य—सिद्धत्वपर्यायान् ध्यात्वा "नमः सिद्धेभ्यः" इति भणित्वा। अत एते—प्रत्यक्षीभूताः। ऋषिगणाः—ऋद्धिप्राप्तमुनीनां समूहाः। इह—अस्मिन् यज्ञे। आशीरमृतं—आशीर्वचनपीयूषं। वर्षन्तु—किरन्तु उद्गिरन्तु। कथं ? साधु—सुमनस्कतया। कथंभूता एते ? हुत्वाभिराद्धाः—आकार्य आराधिताः। कथं आराद्धाः ? साधु—सुमनस्कतया यथायोग्यं पूजिताः। काकाक्षिगोलकन्यायेन साधुशब्दस्योभयत्र ग्रहणं। इह—अस्मिन् यज्ञे। एते—आगमचक्षुषां प्रत्यक्षीभूताः। विश्वे—समस्ताः। देवाः—भवनवनगगनकल्पवासिनोऽमराः। विघ्नान्—प्रत्यूहान् अन्तरायान् उत्पातान् अनन्या-(?)नीति यावत्। घ्नन्तु—स्फेटयन्तु शतचूर्णीकुर्वन्तु। कथंभूता विश्वे देवाः ? सास्त्रव्रजनपरिजनाः—अस्त्राणि आयुधानि, व्रजनानि च वाहनानि, परिजनाश्च पत्न्यादिपरिच्छदाः सहास्त्रव्रजनपरिजनैर्वर्तन्त इति सास्त्रव्रजनपरिजनाः। अथवा विश्वे देवा इत्यनेन कल्पवासिनो गृहीताः चकारेणात्र त्रिनिकायदेवाश्च। अथवा पुनरर्थेऽनुक्तसमुच्चये पादपूरणे वा चकारः। ते—जगत्प्रसिद्धाः। अहमिन्द्राः—अहमिन्द्रनामानो नवग्रैवेयक-नवानुदिश-पंचानुत्तरवासिनो देवाः। स्थानस्था एव—निजनिज-

विमानस्था एव । एनं—सर्वज्ञवीतरागं । स्तुवन्तु—स्तुतिविषयी-कुर्वन्तु । चकारः पूर्ववत् । किं विशिष्टा अहमिन्द्राः ? सहसुरमुनयः—लौकान्तिकामरसहिताः । हे आर्याः—ऋद्धिप्राप्ता अनृद्धिप्राप्ता जना यूयं । श्रद्धत्त—रोचिध्वं जिनयजनविधिमिति शेषः ॥६॥

त्रिभुवनसाधर्मिकाध्येषणाय समन्तात्पुष्पाक्षतं विकिरेत्।

वृत्तिः—त्रिभुवने ये साधर्मिकाः समानधर्मास्तेषामध्येषणाय—सत्कारपूर्वकव्यापाराय विनयपूर्वकयोगदानाय, समन्तात्सर्वत्र, पुष्पाक्षतं विकिरेत्—पुष्पाणि च अक्षताश्च पुष्पाक्षतं समाहारद्वन्द्वः, तद्विकिरेत् विविधं क्षिपेदित्यर्थः ।

प्रस्तावना—प्रस्तावनामुखं समाप्तमित्यर्थः ।

जिनसिद्धमहर्षीणामिष्टया स्वस्त्ययनस्य च ।
पाठेन विधियज्ञार्थं मनः पूर्वं प्रसादयेत् ॥१०॥

वृत्तिः—प्रसादयेत्—प्रसन्नीकुर्यात् । किं तत् ? कर्मतापन्नं मनः—चित्तमन्तरङ्गं । कथं ? पूर्वं—प्रथमं । किमर्थं ? विधियज्ञार्थं—विधानपूर्वकजिनयजनार्थं । कया कृत्वा मनः प्रसादयेत् ? जिनसिद्ध-महर्षीणामिष्टया—अर्हत्सिद्धजैनमुनीनां पूजया । न केवलमिष्टया स्वस्त्य-यनस्य च पाठेन—स्वस्तिअविनाशो भवतु मङ्गलं वास्तु इत्यस्यायनं कथनं स्वस्त्ययनं तस्य पाठेनाध्ययनेन ॥ १० ॥

मनःप्रसत्तिविधानसूचनार्थमर्चनापीठाग्रतः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

वृत्तिः—मनसः प्रसत्तिः प्रसन्नीकरणं तस्य विधानं विधिरनुक्रमः परिपाटिका तस्य सूचनार्थं ज्ञापनार्थं, अर्चनापीठाग्रतः—प्रतिमासनाग्रे, पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्—उभयपाणी मुञ्चेत् ।

सामोदैः स्वच्छतोयैरुपहिततुहिनैश्चन्दनैः स्वर्गलक्ष्मी-
लीलार्घैरक्षतौघैर्मिलदलिसुगमैरुद्गमैर्नित्यहृद्यैः ।

नैवेद्यैर्नव्यजाम्बूनदमदद्मकैर्दीपकैः काम्यधूम-
स्तूपैर्मनोक्षग्रहिभिरपि फलैरर्हतोऽर्चामि सार्घैः ॥११॥

वृत्तिः—अर्हतः—तीर्थंकरपरमदेवान् । अर्चामि—पूजयामि । कैः कृत्वार्चामि ? स्वच्छतोयैः—निर्मलजलैः । कथं भूतैर्जलैः ? सामोदैः—सह आमोदेन जनमनोहरातिदूरव्यापकगन्धेन वर्तन्त इति सामोदानि तैः । तथार्चामि कैः ? चन्दनैः—श्रीखण्डैः । कथंभूतैः ? उपहिततुहिनैः—मध्यगतकर्पूरैः । तथार्चामि कैः ? अक्षतौघैः—अक्षत-समूहैः तन्दुलपुंजैः । कथंभूतैः ? स्वर्गलक्ष्मीलीलार्घैः—स्वर्गसम्पद्विलास-मूल्यैः । एभिरक्षतसमूहैः स्वर्गलक्ष्मीसंभोगो लभ्यत इत्यर्थः । तथार्चामि कैः ? उद्गमैः—पुष्पैः । कथंभूतैः ? मिलदलिसुगमैः—आगच्छतां भ्रमराणां सुप्राप्यैरतिप्रचुरैरित्यर्थः । तथार्चामि कैः ? नैवेद्यैः—चरुभिः । कथंभूतैः ? नित्यहृद्यैः—सदामनोहरैः । तथार्चामि कैः ? दीपकैः । कथंभूतैः ? नव्यजाम्बूनदमदद्मकैः—नवीनकाञ्चनाहंकारस्फेटकैः । तथार्चामि कैः ? धूपैः । कथंभूतैः ? काम्यधूमस्तूपैः—मनोज्ञधूमसमूहसहितैः । तथार्चामि कैः ? फलैः । कथंभूतैः ? मनोक्षग्रहिभिः—मनश्चित्तं, अक्षाणि चेन्द्रियाणि तेषां ग्रहो ग्रहणं वशीकरणं विद्यते येषां तानि मनोऽक्षग्रहीणि तैः । पुनः कथंभूतैः फलैः ? सार्घैः—अर्घसहितैः । अपिशब्दाच्छत्रचामरादर्शप्रभृतिभिरिति ॥ ११ ॥

अर्हद्विधिः—जिनपूजा समाप्ता ।

प्रक्षीणे मणिवन्मले स्वमहसि स्वार्थप्रकाशात्मके
निर्मग्नाश्चिरुपाख्यमोघचिदचिन्मोक्षाब्धितीर्थैश्चिपः ।
कृत्वानाद्यपि जन्म सान्तममृतं साद्यप्यनन्तं श्रितान्
सद्दग्धीनयवृत्तसंयमतपःसिद्धा भजेऽर्घेण वः ॥ १२ ॥

वृत्तिः—सद्दक् च सम्यग्दर्शनं, सद्धीश्च सम्यग्ज्ञानं, सन्नयाश्च सर्वथैकान्तरहितत्वात् परस्परापेक्षत्वाच्च सन्तोऽबाधिता नयाः सन्नया

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूत इति नामानः, सद्वृत्तं च सम्यक्चारित्रं, सत्संयमश्च षडिन्द्रियनिरोधं षड्जीवनिकायरक्षणलक्षणः, सत्तपस्त्वेच्छानिरोधलक्षणं द्वादशविधं तैः सिद्धा आत्मोपलब्धिं प्राप्ता ये ते सद्दृग्धीनयवृत्तसंयमतपःसिद्धास्तेषां सम्बोधनं क्रियते हे सद्दृग्धीनयवृत्तसंयमतपःसिद्धाः! वः—युष्मान्। अर्घेण—अष्टविधार्चनसमुदायेन। भजे—अहमाराधयामि। कथंभूतान् वः? अमृतं श्रितान्—मोक्षं प्राप्तान्, अविद्यमानं मृतं मरणं यत्रेत्यमृतमिति निरुक्तेः। कथंभूतममृतं? साद्यपि, अपिशब्दादनाद्यपि द्रव्यापेक्षयेत्यर्थः, अनन्तं—पर्यन्तरहितम्। किं कृत्वा पूर्वं? जन्म संसारं। सान्तं—सावसानं। कृत्वा—विधाय। कथंभूतं जन्म? अनाद्यपि—आदिरहितमपि। कथंभूतान् वः? स्वमहसि—आत्मतेजसि केवलज्ञानस्वरूपे महसि, निर्मग्नान्—ब्रुडितान् तन्मयानित्यर्थः। कस्मिन् सति? मले—कर्मकलङ्के। प्रक्षीणे—निःशेषतः क्षयं याते सति। किंवत्? मणिवत्—रत्नवत्, यथा मले कालिमादौ प्रक्षीणे सति मणिः स्वतेजसि निमज्जति। उक्तं च—

"स्वभावान्तरसम्भूतिर्यत्र तत्र मलक्षयः।
कर्तुं शक्यः स्वहेतुभ्यो मणिमुक्ताफलेष्विव॥ १॥"

कथंभूते स्वमहसि? स्वार्थप्रकाशात्मके—स्वः स्वकीयात्मा, अर्थाः जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालादिपदार्थाः, स्वश्चार्थाश्च स्वार्थास्तेषां प्रकाशो यथावत्स्वरूपपरिज्ञानं स्वार्थप्रकाश आत्मा स्वभावो यस्येति स्वार्थप्रकाशात्मकं तस्मिन् तथोक्ते। पुनरपि कथंभूतान् वः? निरुपाख्यमोघचिदचिन्मोक्षार्थितीर्थक्षिपः—निर्गता उपाख्या आदरो यस्येति निरुपाख्यो निःस्वभावः, मोघा निष्फला चिच्चेतना यत्रेति मोघचित्, अविद्यमाना चिच्चेतना यत्रेत्यचित्, निरुपाख्यश्चासौ मोघचिच्चाचिच्च निरुपाख्यचिदचित् स चासौ मोक्षो निरुपाख्यमोघचिदचिन्मोक्षस्तमर्थयन्ते याचन्ते मन्यन्त इत्येवं धर्मा ये ते निरुपाख्यमोघचिदचिन्मोक्षा-

र्थिनस्तेषां तीर्थानि मतानि क्षिपन्ति निराकुर्वन्ति तथोक्तास्तांस्तथोक्तान् । प्रदीपनिर्वाणसदृशतया निरुपाख्यमोक्षो बौद्धमते, ज्ञेयाकारपरिच्छेद-पराङ्मुखचैतन्यस्वरूपावस्थानस्वभावतया सोपचिन्मोक्षः सांख्यशासने, बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्कारप्रकारगुणोत्पत्तिविच्छित्तिल-क्षणतया अचिन्मोक्षः काणादानां योगानामित्यर्थः । उक्तंच—

बहिः शरीराद्यद्रूपमात्मनः प्रतिपद्यते ।
उक्तं तदेव मुक्तस्य मुनिना कणभोजिना ॥ १ ॥

इति । यद्येते सिद्धा ज्ञाने निर्मग्ना वर्तन्त एव तर्हि प्रदीपनिर्वाण-कल्पो मोक्षो न संगच्छते, यदि च स्वार्थप्रकाशात्मके महसि निर्मग्नास्तर्हि सोपचिन्मोक्षः कथं घटते, अत एवाचिन्मोक्षोऽपि न संभवतीति भावार्थः ॥ १२ ॥

जिनाग्रे सिद्धार्घः—जिनानामग्रे सिद्धानामर्घो दीयत इत्यर्थः ।

निर्ग्रन्थाः शुद्धमूलोत्तरगुणमणिभिर्येऽनगारा इतीयुः
संज्ञां ब्रह्मादिधर्मैर्ऋषय इति च ये बुद्धिलब्ध्यादिसिद्धैः ।
श्रेण्योश्चारोहणैर्ये यतय इति समग्रेतराध्यक्षबोधै-
र्ये मुन्याख्यां च सर्वान् प्रणुमह इह तानर्घयामो मुमुक्षून् ॥१३॥

वृत्तिः—तान्—प्रसिद्धान् । सर्वान्—समस्तान् । मुमुक्षून्—मोक्तुमिच्छून् भिक्षून् । इह—अस्मिन् । प्रणुमहे—त्रैलोक्यनाथयज्ञे वयं अर्घयामः—अर्घेण पूजयामः । तान् कान् ? ये निर्ग्रन्थाः—ये दिगम्बरा अनगारा इति—ईदृशीं । संज्ञां—आख्यां । ईयुः—प्राप्ताः । कैः कृत्वानगारसंज्ञामीयुः ? शुद्धमूलोत्तरगुणमणिभिः—मूलगुणाः पंच महाव्रतानि, पंच समितयः, पंचेन्द्रियरोधाः, लोचः, षडावश्यकानि, अचेलत्वं, स्नानाभावः, भूमिशयनं, दन्तानामघर्षणं, उद्भोजनं, एकभक्तं चेत्यष्टाविंशतिः, उत्तरगुणाः दश धर्माः, तिस्रो गुप्तयः, अष्टदश शीलसहस्राणि, द्वाविंशतिःपरीषहजयाश्चेति बहुविधाः । मूलगुणाश्च उत्तरगुणाश्च मूलोत्तरगुणाः, शुद्धा

निरतिचाराश्च ते मूलोत्तरगुणाश्च शुद्धमूलोत्तरगुणास्त एव मणयो रत्नानि मुनीनां मण्डनहेतुत्वात्तैः शुद्धमूलोत्तरगुणमणिभिः। ये च निर्ग्रन्था ऋषय इति संज्ञामीयुः। कैः? ब्रह्मादिधर्मैः ब्रह्मा इत्यादिस्वभावैः, आदिशब्दाद्राजा देवः परमश्चेति। कथंभूतैः ब्रह्मादिधर्मैः? बुद्धिलब्ध्यादिसिद्धैः—बुद्धिलब्ध्यादिभिः सिद्धाः प्रसिद्धिं गताः बुद्धिलब्ध्यादिसिद्धास्तैस्तथोक्तैः। तथाहि—बुद्धिलब्ध्या औषधिलब्ध्या च ब्रह्मर्षिः, विक्रियालब्ध्या अक्षीणमहानसालयलब्ध्या च राजर्षिः, वियदयनलब्ध्या देवर्षिः, केवलज्ञानवान् परमर्षिरिति। ये निर्ग्रन्था यतय इति च संज्ञामीयुः। कैः? श्रेण्योरुपशमकक्षपकनाम्नोः, आरोहणैः—आलम्बनैः। ये च निर्ग्रन्था मुन्याख्यां—मुनिनामत्वमीयुः। कैः? समग्रेतराध्यक्षबोधैः—समग्राध्यक्षबोधः सर्वप्रत्यक्षज्ञानं, इतराध्यक्षबोधौ देशप्रत्यक्षज्ञाने अवधिमनःपर्ययौ। समग्राध्यक्षश्चेतराध्यक्षौ च समग्रेतराध्यक्षास्ते च ते बोधा ज्ञानानि तैः। उक्तं च—

देशप्रत्यक्षवित्केवलभृदिह मुनिः स्यादृषि.........

रुद्धश्रेणियुग्मोऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुरुक्तः।

राजा ब्रह्मा च देवः परम इति ऋषिर्विक्रियाक्षीणशक्ति-

प्राप्तो बुद्ध्यौषधीशो वियदयनपटुर्विश्ववेदी क्रमेण ॥१॥

जिनानुत्तरेण महर्षीणामर्घः—जिनान्—सर्वज्ञान् तीर्थंकरपरमदेवान्, उत्तरेण—वामपार्श्वे, महर्षीणां—साधूनां, अर्घो भवति तात्पर्यार्थः।

श्रद्धानबोधनविशुद्धिविवर्धमान—

वृत्तामृतानुभवसंभवसम्मदौघाः।

स्फूर्जत्तपःस्फुरितलब्धगणाधिपत्याः

स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥ १-१४ ॥

वृत्तिः—परमाश्च ते ऋषयश्च परमर्षयः—परमदिगम्बरा न तु माग्या जैनाभासाश्च। नः—अस्माकं। असकृत्—निरन्तरं। स्वस्ति—कल्याणं

क्रियासुः—कुर्वन्तु । कथंभूतास्ते परमर्षयः ? श्रद्धानेत्यादि—श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं बोधनं सम्यग्ज्ञानं तयोर्विशुद्धिर्नैर्मल्यं निरतिचारता तथा विवर्धमानं विशेषेणोपचयं प्राप्नुवन्तं यद्वृत्तं चारित्रं तदेवामृतं पीयूषमजरत्वामरत्वकारित्वात्तस्यानुभव आस्वादनं तस्मात्संभव उत्पत्तिर्यस्य स चासौ सम्मदः परमप्रहर्षस्तस्यौघः समूहो येषां ते तथोक्ताः । सम्यग्दर्शनमन्तरेण ज्ञानमज्ञानमेव, ज्ञानमन्तरेण चारित्रं नोत्पद्यते । तथा चोक्तम्

"मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः ।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ १ ॥"

इति । भूयोऽपि किंविशेषणविशिष्टाः ? स्फूर्जदित्यादि—स्फूर्जत्स्वेष्टकर्मणि प्रवर्तमानं यत्तप इच्छानिरोधलक्षणं द्विविधं द्वादशविधं च तस्य स्फुरितं नर-खचर-सुरनिकरमनस्कारेषु चमत्कृतं, चमत्कारः कथमनेन भगवतेदृशं घोरतरंतपस्तप्यते इति विस्मयसद्भावस्तेन लब्धं प्राप्तं गणस्य चातुर्वर्ण्यश्रमणसंघस्याधिपत्यं यैस्ते तथोक्ताः ॥ १४ ॥

एकान्तसंशयतमोभिनिवेशमूल—
दृङ्मोहनिग्रहविकस्वरचित्स्वरूपाः ।
स्याद्वादसंविदमृतप्लवमानभावाः
स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥२–१५॥

वृत्तिः—एकान्तः सौगतसत्कार्यचार्वाकौलूक्यभैमभाट्टमतानि, संशयः गोपुच्छिक-श्वेतपट-द्राविड-यापनीय-निष्पिच्छाभिधानजैनाभासशासनानि, एकान्तश्च संशयश्चैकान्तसंशयौ तावेव तमोऽन्धकारं यथावद्वस्तुपरिज्ञानप्रतिबन्धकत्वात् एकान्तसंशयतमस्तस्याभिनिवेशः प्र (वा) वेशः स एव मूलं कारणं यस्य स एकान्तसंशयतमोभिनिवेशमूलः स चासौ दृग्मोहो दर्शनमोहनीयकर्म सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयरूपस्तस्य निग्रहः स्फेटनं तेन विकस्वरमानन्दरूपं चित्स्वरूपमात्मस्वभावो येषां ते तथोक्ताः सम्यग्दृष्टयो महर्षय इत्यर्थः । तथा चोक्तम्—

"सम्मं चेव य भावे मिच्छाभावे तहेव बोद्धव्वा।
चइऊण मिच्छभावे सम्मम्मि उवट्ठिदे वंदे ॥ १ ॥"

पुनरपि कथंभूतास्ते महर्षयः? स्याद्वादसंविदमृतप्लवमानभावाः- मुख्यतया विवक्षितस्य पर्यायस्य गुणस्य द्रव्यस्य वा गौणभूतस्यान्यतमस्यानिषेधकः स्याच्छब्दस्तेनोपलक्षितो वादः स्याद्वादः सर्वथैकान्तरहितवाद इत्यर्थः। स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति नास्ति, स्यादवाच्यं, स्यादस्ति चावक्तव्यं, स्यान्नास्ति चावक्तव्यं, स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यमित्यादिरूपः, स्याद्वादेनोपलक्षिता संवित् सम्यग्ज्ञानं सैवामृतं पीयूषमजरत्वामरत्वकारित्वात्तत्र प्लवमानो निमज्जन् तन्मयीभवन् भाव आत्मा येषां ते स्याद्वादसंविदमृतप्लवमानभावाः ॥ १६ ॥

अथेदानीं सम्यग्दर्शनज्ञानोपेतत्वं प्रदर्श्य सम्यक्चारित्रमंडितत्वं महर्षीणामाह;—

उद्यद्दयारसलिहः प्रियपथ्यवाचः
प्रत्तोपयोग्यवग्रहा हतमारदर्पाः।
मूर्छाछिदो रजनि भोजनवर्जिनश्च
स्वति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥ ३-१६ ॥

वृत्तिः—उद्यत् उत्पद्यमानः संजायमानो योऽसौ दयारसः करुणामृतरसः सर्वप्राणिनामाल्हादहेतुत्वात्संजीवकारणत्वाच्च, उद्यद्दयारसं लिहन्ति आस्वादयन्तीत्युद्यद्दयारसलिहः। प्रियपथ्यवाचः—प्रियाः कर्णामृतभूताः पथ्या इहामुत्र सुखदायिका वाचो वचनानि येषां ते प्रियपथ्यवाचः। प्रत्तोपयोग्यवग्रहाः—प्रत्तं प्रदत्तं उपयोगि प्रयोजनवद्वस्तु भोजन-पिच्छ-कमण्डलु-पुस्तकादिकं योग्यं चावगृह्णन्तीति समन्तादाददतीति प्रत्तोपयोग्यवग्रहाः। हतमारदर्पाः-हतो विध्वस्तो मारस्य कन्दर्पस्य दर्पोऽहङ्कारो यैस्ते हतमारदर्पाः। मूर्छाच्छिदः—मूर्छां परिचित्तपरिग्रहं छिदन्तीति मूर्छाच्छिदः। रजनिभोजनवर्जिनश्च—रजनि भोजनं रात्रि-

भोजनं वर्जयन्तीत्येवं धर्मास्ते रात्रिभोजनवर्जिनः । इत्येवं विशेषणषट्केनानुक्रमेण प्राणातिपात मृषावादस्तेयाब्रह्मपरिग्रहपरिहाररूपाणि पंचमहाव्रतानि रात्रिभोजनवर्जनाभिधानाणुव्रतषष्ठानि प्रतिपादितानि भवन्तीति भावः ॥ १६ ॥

सूत्रानुसारिगमनालपनाशनात्म-
धर्माङ्गसंग्रहविसर्गवपुर्मलोज्झाः ।
याथात्म्यदर्शनखलीनयतेन्द्रियाश्वाः
स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥ ४-१७ ॥

वृत्तिः—गमनं चालपनं चाशनं चात्मधर्माङ्गसंग्रहविसर्गौ च वपुर्मलोज्झा च गमनालपनाशनात्मधर्माङ्गसंग्रहविसर्गवपुर्मलोज्झाः सूत्रानुसारिण्यः सिद्धान्ताविरोधिका गमनालपनाशनात्मधर्माङ्गसंग्रहविसर्गवपुर्मलोज्झा येषां ते सूत्रानुसारिगमनालपनाशनात्मधर्माङ्गसंग्रहविसर्गवपुर्मलोज्झाः । तथा हि—दिवाकरकरस्पष्टलोकातिवाहितचलत्पाषाणादिवर्जितमार्गे हस्तचतुष्टयावलोकनपूर्वकमप्राणिपीडाकरं शनैः शनैर्यत्नेन गमनं सूत्रानुसारिगमनं, कर्कशत्वादिदोषरहितमीषद्भाषणं सूत्रानुसार्यालपनं, कृतादिदोषरहितं योग्यं शुद्धं प्रासुकं विधिना योग्येन दायकेन दत्तं पुनःपुनरवलोकितमश्वग्रासगर्तापूराग्निशमनगोचरादिवत् संयमयात्राप्रयोजनसाधकमशनं सूत्रानुसार्यशनं, आत्मधर्मो जैनधर्मश्चारित्रं तस्याङ्गं साधनं मयूरपिच्छं परमागमादिपुस्तकं कमंडलु चेत्यादिकं तस्य प्रत्यवेक्षितप्रतिलेखितपूर्वकौ संग्रहविसर्गौ आदाननिक्षेपौ सूत्रानुसार्यात्मधर्माङ्गसंग्रहविसर्गौ, निर्जन्तुकनिश्छिद्रनिर्जननिरपवादस्थाने शरीरमलविसर्जनं विण्मूत्रश्लेष्मादित्यजनं सूत्रानुसारिवपुर्मलोज्झा । इत्येवमीर्याभाषैषणादाननिक्षेपणाप्रतिष्ठापननामानः पंचसमितयो वर्णिता भवन्तीति भावः । याथात्म्यदर्शनखलीनयतेन्द्रियाश्वाः—यथावद्वस्तुस्वरूपपरिज्ञानं याथात्म्यदर्शनं तदेव खलीनं खेलालुनितीनं

कविकाबलोकि यावत् याथात्म्यदर्शनस्वलीनेन यत्ना बद्धा यथेष्टं पर्यटतो निवारिता इन्द्रियाश्वा इन्द्रियाण्येवाश्वा निजनिजविषयेषु वेगेन व्यापकत्वादिन्द्रियाश्वा यैस्ते तथोक्ताः । इत्यनेन सम्यग्ज्ञानपूर्वकं तेषां चारित्रं सूचितं भवतीति भावः ॥ १७ ॥

चारित्राधिकारे व्रतसमितीन्द्रियरोधान् संसूच्येदानीं षडावश्यकगुणस्तवनेन स्तुवन्नाह:—

सामायिक-स्तवन-वन्दन-पापनामा—

धुदुगा-प्रतिक्रमण-कायविसर्जनेषु ।

द्रव्यादिषट्कनिहितात्मसु जागरूकाः

स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥५–१८॥

वृत्तिः—जागरूकाः—सावधानमनसः । केषु ? सामायिकेत्यादिषु—सामायिकं च सगुणनिर्गुण-शत्रुमित्र-तृणस्त्रैण-लाभालाभ-जीवितमरणादिषु समत्वपरिणामः, स्तवनं च चतुर्विंशतितीर्थंकरपरमदेवगुणकीर्तनं, वन्दनं च एकतीर्थंकरपरमदेवगुणवर्णनं प्रणतिर्वा, पापनामादुधुदगा च पापस्यागामिदोषस्य नामादेरुद्गा परिहारः पापनामाधुदुगा प्रत्याख्यानमित्यर्थः, प्रतिक्रमणं चातीतदोषनिवारणं, कायविसर्जनं च शरीरममत्वपरिहारः कायोत्सर्ग इत्यर्थः, तेषु तथोक्तेषु । द्रव्यादिषट्कनिहितात्मसु—द्रव्यादीनां द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-नाम-स्थापनानां षट्कं द्रव्यादिषट्कं तत्र निहितं आरोपितं आत्मस्वरूपं येषां तानि तथोक्तेषु ॥१८॥

अस्नानभूशयनलोचविचेलतैक—

भक्तेष्वदन्तधवने स्थितिभोजने च ।

सक्ताः परीषहसहाः सहितास्तपोभिः

स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥६–१९॥

वृत्तिः—कथंभूताः परमर्षयः ? सक्ताः समर्थाः । केषु ? अस्नाने-त्यादिषु—अस्नानं च दुर्जनकपालरजस्वलादीनां स्पर्शे कदाचिद्दण्डवद्दोष-दपमर्षणान्तं स्नानमस्नानं, भूशयनं च केवलभूमौ काष्ठफलकादौ वा श्रमापनयनायैकपार्श्वे मुहूर्तं शयनं भूशयनं, लोचश्च शिरःश्मश्रुकेशानां लुञ्चनं नाशापुटबाहुमूलाधःकेशानां च रक्षणं, विचेलता च यथाजात-लिङ्गधारिता अथवा ताशब्दः प्रत्येकं प्रयुज्यते तेनास्नानता च भूशयनता च लोचता च विचेलता च, एकभक्तं च दिनमध्ये एकवारभोजनं तेषु तथोक्तेषु । न केवलमेतेषु सक्ता अपि तु अदन्तधवने—दन्तघर्षणाभावे । तथा स्थितिभोजने ऊर्ध्वाहारे च सक्ताः । अथोत्तरगुणानाह—परीषहसहाः—परीषहान् क्षुत्पिपासादीन् द्वाविंशतिं सहन्ते परीषहसहाः । भूयोऽपि किं विशेषणविशिष्टाः ? तपोभिः—अनशनादिभिर्द्वादशविधैः । सहिताः—मंडिता इति ॥१६॥

क्षान्त्यार्जवमृदिमसंयमसत्यशौच-
त्यागैरकिञ्चनतया तपसामलेन ।
ब्रह्मव्रतेन च दशात्मवृषेण भान्तः
स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥७-२०॥

वृत्तिः—किंभूताः परमर्षयः ? भान्तः—शोभमाना दैदीप्यमानाः । केन ? दशात्मवृषेण—दशप्रकारधर्मेण । के ते दशप्रकाराः ? क्षान्ती-त्यादि—क्षान्तिश्च सति सामर्थ्ये जडजनकृतदुर्वचनादिवामर्षणं । उक्तं च क्षान्तेर्लक्षणं—

आकृष्टोऽहं हतो नैव हतो वा न द्विधा कृतः ।
मारितो न हतो धर्मो मदीयोऽनेन बन्धुना ॥ १ ॥

इति । आर्जवं च ऋजुत्वं परवंचनालक्षणमायित्वरहितत्वं, मृदिमा च मृदुत्वं मार्दवं मानपरिहारः, संयमश्च प्राणिरक्षणेन्द्रियजयलक्षणः, सत्यं च परपीडाकरवचनपरिहारः, शौचं चान्तर्मलक्षालनसमर्थलोभ-

परित्यागो जिनवन्दनाद्यर्थं प्रासुकजलेन हस्तपादादिप्रक्षालनं चोपचारात् । त्यागश्च ज्ञानसंयमशौचोपकरणदानं तैस्तथोक्तैः । न केवलमेतैः कृत्वा कृषेण भान्तोऽपि तु अकिंचनतया—सर्वसङ्गपरित्यागतया । न केवलं तथापि तु तपसा—इच्छानिरोधलक्षणेनोपवासादिना द्वादशविधेन । कथंभूतेन तपसा ? अमलेन मायामिथ्यानिदानरहितेन निर्मलेन । न केवलमेतेन ? च-पुनः ब्रह्मव्रतेन—आत्मभावनामाश्रित्य सर्वस्त्रीसङ्गपरित्यागेन । काकाक्षिगोलकन्यायेनामलशब्दस्योभयत्र ग्रहणं तेनायमर्थः कथंभूतेन ब्रह्मव्रतेन ? अमलेन—निरतिचारेणेत्यर्थः ॥ २१ ॥

शुद्ध्यष्टकेन विनयाङ्गवचोहृदीर्या—
व्युत्सर्गभैक्ष्यशयनासनगोचरेण ।
रोचिष्णवः सदुपयोगदृढाभियोगाः
स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥ २१ ॥

वृत्तिः—पुनरपि कथंभूतास्ते महर्षयः ? शुद्ध्यष्टकेन रोचिष्णवः—दैदीप्यमानाः । शुद्ध्यष्टकपरिज्ञानार्थं विनयेत्याद्याह । कथंभूतेन शुद्ध्यष्टकेन ? विनयेत्यादि—विनयश्च विनयशुद्धिः गुणाधिकेऽभ्युत्थान-करयोटन—शिरोनमनासनादिदानसुवचनादिविधानं, अङ्गं च अङ्गशुद्धिः परिपूर्णाङ्गता आदेयता, वचश्च वचःशुद्धिरकर्कशादिभाषणं, हृच्च हृदयशुद्धिर्दुर्ध्यानपरिहरणं, ईर्या चेर्याशुद्धिर्युगान्तरावलोकनपूर्वं गमनं, व्युत्सर्गश्च कायोत्सर्गशुद्धिः दंशमशकादीनामनपनयनं, भैक्ष्यं च भैक्ष्यशुद्धिरालोकितान्नपानभोजनं, शयनासनशुद्धिरदृष्टशयनासनाश्रयणं स्त्रीनपुंसकपशुविवर्जितस्थाने च शयनासनानि, गोचरा विषया यस्य शुद्ध्यष्टकस्य तत्तथोक्तं तेन । पुनः किंविशिष्टाः ? सदुपयोगदृढाभियोगाः—सन् समीचीनः प्रत्यक्षानुमानप्रमाणद्वयनिश्चित उपयोगो ज्ञानदर्शनं च तत्र दृढः सततमलिनपरिणामरहितोऽभियोग उद्यमो येषां ते

तथा । अथवा सदुपयोगे विद्यमानज्ञानदर्शनोपयोगे निजात्मनि अभि-समन्तात् भयरहितोऽभिमुखीकृत्य वा योगो निर्विकल्पसमाधिलक्षणं ध्यानं येषां ते तथोक्ताः ॥ २२ ॥

स्वस्य प्रदेशचलिपुद्गलपाकिदेह-
नामोदयात्ततनुवाङ्मनसस्य वीर्यम् ।
कर्मागमागमपवर्गधिया रुपन्तः
स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥ २२ ॥

वृत्तिः—किं कुर्वन्तस्ते महर्षयः? कर्मागमागं-कर्मागमनवृक्षं, रुपन्तः-समूलमुन्मूलयन्तः । कया ? अपवर्गधिया—सर्वकर्मक्षयलक्षणोपलक्षित-मोक्षफलप्राप्तीच्छया । कथं यथा भवति ? स्वस्य—आत्मनः, वीर्यं-सामर्थ्यं यथा भवति । कथंभूतस्य स्वस्य ? प्रदेशेत्यादि-तनुश्च शरीरं वाक् च वचनं मनश्च चित्तं तनुवाङ्मनसं, प्रदेशेषु जीवप्रदे-शेषु चलन्त्यागच्छन्तीत्येवंशीलाः प्रदेशचलिनस्ते च ते पुद्गलाः कर्मयो-ग्याणवस्तेषां पाक उदयोऽस्यास्तीति प्रदेशचलिपुद्गलपाकि तच्च तद्देहनाम च शरीरनामकर्म तस्योदये विपाके फलदानकाले आत्तं गृहीतं तनुवाङ्मनसं येन स तथा तस्य ॥ २३ ॥

साम्ये प्रतिक्रमपरे परिहारशुद्धौ
लोभाणुकुष्टिकलुषे कलुषे च वृत्ते ।
नित्योद्यता मुहुरधिष्ठितधर्म्यशुक्लाः
स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥ २३ ॥

वृत्तिः—पुनरपि कथंभूतास्ते महर्षयः? वृत्ते-चारित्रे, नित्योद्यताः-अनवरतोद्यमपराः । किंविशिष्टे वृत्ते ? साम्ये-शत्रुमित्रादौ समः सदृशस्तत्र भवं साम्यं सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणोपलक्षिते सामयिके । भूयः कथंभूते वृत्ते ? प्रतिक्रमपरे-प्रतिक्रमेण कृतदोषनिरा-

करणलक्षणेन परमुत्कृष्टं प्रतिक्रमपरं तस्मिन्, प्रतिक्रमे वा परमनन्यवृत्ति प्रतिक्रमपरं तस्मिन्छेदोपस्थापनायामित्यर्थः। पुनः कथंभूते ? परिहारशुद्धौ-परिहारस्य प्राणिवधनिवृत्तिरूपस्य शुद्धिर्विशिष्टा विशुद्धिर्यत्र तत्र परिहारशुद्धिस्तस्मिन् तथोक्ते, त्रिंशद्वर्षजातस्य प्रचुरकालतीर्थकरचरणाश्रयिणः नवमपूर्वश्रुतोक्ताचारविचारज्ञस्य निष्प्रमादस्य सुदुष्करचरणाचारिणः तिस्रः सन्ध्यास्त्यक्त्वा गव्यूतिद्वयविहारिणः परिहारविशुद्धिचारित्रमुत्पद्यते। पुनः कथंभूते वृत्ते ? लोभाणुकृष्टिकलुषे-लोभाणोः सूक्ष्मलोभस्य कृष्टिराकर्षणं तेन कलुषं मनाङ्मलिनं तस्मिन्, सूक्ष्मसाम्पराय इत्यर्थस्तच्च दशमगुणस्थाने भवति । पुनः कथंभूते वृत्ते ? अकलुषे-निःशेषस्य मोहस्योपशमे क्षये वा संजातत्वादकलुषममलिनं तस्मिन्, यथाख्याते इत्यर्थः। पुनरपि कथंभूता महर्षयः ? मुहुरधिष्ठितधर्म्यशुक्लाः—धर्मादनपेतं धर्मादपरिच्युतं धर्म्यमतिविशुद्धपरिणामत्वाच्छुक्लं,धर्म्यं च शुक्लं च धर्म्यशुक्ले मुहुर्वारंवारं अधिष्ठिते आत्मन्यारोपिते धर्म्यशुक्ले द्वे ध्याने यैस्ते मुहुरधिष्ठितधर्म्यशुक्लाः॥ २४॥

दृग्बोधसंवलितसंज्वलनाकषाय—

तीव्रेतरोदयशमापगमक्रमान्तैः।

योगित्वयोगविगमाचरविप्रकाराः

स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः॥२५॥

वृत्तिः—कथंभूताः परमर्षयः ? चरविप्रकाराः-समयेनैकेन लोकाग्रगामुकत्वाच्चराः, तीर्थकरेतरादिभिर्भेदैर्विप्रकारा विविधप्रकारा अनेकभेदाः । अथवानन्तज्ञानादिभिर्गुणैरेकस्वभावतया विगतभेदा विप्रकाराः, चराश्च ते विप्रकाराः। चरविप्रकारत्वमपि तेषां कस्मात् ? योगित्वात् सयोगकेवलित्वादनन्तरं योगविगमात्मनोवाक्कायकर्मपरित्यागात्। अथवा धर्मोपदेशाय विहारकालाद्यपेक्षया योगित्वात्त्रयोदशगुणस्थानवर्तित्वाच्चराः योगविगमाच्चतुर्दशगुणस्थानवर्तित्वाद्वि-

प्रकारा निष्कलसिद्धसदृशाः । अथवा चरविप्रकाराः–चराश्चलाः पंचेन्द्रियविषयलम्पटा ये विप्रा ब्राह्मणाश्चरविप्रास्तेषां कारा बन्दिगृह-सदृशास्तन्मतप्रवृत्तिप्रतिबन्धकत्वात् । अथवा चराणां निजनिजप्रमाणेषु स्थिराणां विप्रकाराणां कुत्सितब्राह्मणानामुपलक्षणत्वादन्येषामपि पूर्वापर-विरोधसद्भावभाषितसिद्धान्तानां मिथ्यादृष्टीनामाराः स्वप्रमाणपीडनपर-त्वाच्चर्मप्रभेदिनीप्रायाश्चरविप्रकाराः । अथवा चकारः पुनरर्थे, प्रतिबन्धकवार्दलपटलविघटनकाले रविप्रकाराः केवलज्ञानेन भास्करस-दृशाः । योगित्वयोगविगमोऽपि कैरमूषेषामित्याह दृग्बोधेत्यादि–संयमो ज्वलति दीप्तिमान् भवति येषु विद्यमानेष्वपि ते संज्वलनाः क्रोधादयश्चत्वारः कषायाः, अकषाया ईषत्कषाया हास्यादयो नव, संज्वलनाश्चाकषायाश्च संज्वलनाकषायाः, दृग्बोधाभ्यां दर्शनज्ञानाभ्यां संवलिता सम्मिश्रिता दृग्बोधसंवलिताः, दृग्बोधसंवलितारच ते संज्वलना-कषायाश्च दृग्बोधसंवलितसंज्वलनाकषायास्तेषां तीव्रो नितान्त इतरो मन्दः स चासावुदयः प्रादुर्भावः फलदानकालस्तस्य समापगमौ उपशमक्षयौ तयोः क्रमान्ता अनुक्रमस्वभावाः परिपाटिका रीतयस्तैस्तथोक्तैः । इति ग्रन्थगौरवभयाद्विस्तरेण व्याकर्तुमलम् ॥ २४ ॥

स्वाध्यायदिव्यदृगनित्यपुरःसरानु—
प्रेक्षासमीक्षणवशीकृतचित्तदैत्याः ।
एकत्वसत्त्वसुतपोधृतिभावनेशाः
स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥२५॥

वृत्तिः—शोभिनोऽधीतो ध्यायः स्वाध्यायो वाचनापृच्छनानु-प्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशभेदेन पंचप्रकारस्वाध्यायः स एव दिव्यदृक्-विशुद्धलोचनं सूक्ष्मान्तरितदूरस्थपदार्थपरिज्ञानहेतुत्वात्स्वाध्यायदिव्यदृक् तया अनित्यपुरःसराणां अनित्यप्रभृतीनामनित्याशरणसंसारैकत्वान्य-त्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्माभिधानानां समीक्षयां

समीचनबुद्ध्यावलोकनं विमर्षणं पुनःपुनश्चिन्तनं तेन परीक्षितदैत्यो हृदयग्रुकारिण्यो यैस्ते तथा। एतेन पंचसु भावनासु मध्ये श्रुतभावना प्रयोक्ता । अन्यभावनाचतुष्कपरिभाषणार्थमाह—एकत्वेत्यादि—एकस्य भाव एकत्वं अहमेकोऽस्मि नान्यः कश्चिन्मे सहाय इत्यभिप्राय एकत्वभावना, सत्त्वं शीलवत्वं तस्य भावना स्वीकारमनस्कारः सत्त्वभावना, शोभनं ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षानिदानबन्धादिरहितं तपः सुतपस्तस्य भावना स्वीकारमनस्कारः सुतपोभावना, धृतिरन्नपानादीनामप्राप्तौ स्वल्पप्राप्तौ अनिष्टप्राप्तौ वा अमनोभङ्गः, एकत्वसत्त्वसुतपोधृतयश्च ता भावनास्तासामीशाः स्वामिनस्तासु वा ईशाः समर्था एकत्वसत्त्वसुतपोधृतिभावनेशाः ॥ २६ ॥

जाग्रज्जिनेन्द्रसमयाः समशत्रुमित्र—
बुद्ध्यादिलब्धिमहिमानुगृहीतविश्वाः ।
प्रेयोरसाकुलितसिद्धगजादिसेव्याः
स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥२६॥

वृत्तिः—जाग्रत् अनेकनयप्रमाणसंकीर्णोऽपि करकलितामलकफलवद्विस्फुरद्रूपो जिनेन्द्रसमयः श्रीसर्वज्ञवीतरागशासनं येषां ते जाग्रज्जिनेन्द्रसमयाः। समशत्रुमित्रबुद्ध्यादिलब्धिमहिमानुगृहीतविश्वाः—शत्रवश्च विद्वेषकारिणो मित्राणि चानुग्रहविधायिन उपकारकर्तारः समानि सदृशानि न न्यूनानि नाप्यधिकानि ज्ञानदर्शनोपयोगितया येषां ते समशत्रुमित्राः, बुद्ध्यादिलब्धीनां महिम्ना माहात्म्येनानुगृहीतमुपकृतं विश्वं त्रिभुवनस्थितभाणिवृन्दं यैस्ते बुद्ध्यादिलब्धिमहिमानुगृहीतविश्वाः समशत्रुमित्राश्च ते बुद्ध्यादिलब्धिमहिमानुगृहीतविश्वाश्च ते तथोक्ताः।

तथा चोक्तम्—

बुद्धि तवो वि य लद्धी विउव्वणलद्धी तहेव ओसहिया ।
रसबलअक्खीणा वि य लद्धीणं सामिणो वंदे ॥ १ ॥

तथा च—

बुद्ध्यौषधीबलतपोरसविक्रियर्द्धि—
क्षेत्रक्रियर्द्धिकलितान् स्तुमहे महर्षीन् ॥

प्रेयोरसाकुलितसिंहगजादिसेव्याः—प्रेयोरसेन प्रियतमानुरागेण आकुलिता विह्वलीभूता ये सिंहगजादयः आदिशब्दादहिनकुलमयूरसर्पगोव्याघ्रोलूककाकसिंहसरभादयस्तेषां सेव्याः सेवितुं योग्यास्ते तथोक्ताः ॥ २७ ॥

सूत्रे पुलाकबकुशाः प्रथिताः कुशीला
निर्ग्रन्थनामकलिताः सकलावबोधाः ।
ये स्नातकास्त इह पंचतयेऽप्यसङ्गाः
स्वस्ति क्रियासुरसकृत्परमर्षयो नः ॥ २७ ॥

वृत्तिः—इह–अस्मिन् यज्ञे । ते पंचतयेऽपि—पंचप्रकारा अपि । असङ्गाः—निर्ग्रन्था महर्षयः स्वस्ति क्रियासुः कल्याणं कुर्वन्त्विति क्रियाकारकसम्बन्धः । ते के ? ये सूत्रे—जैनसिद्धान्ते । प्रथिताः—विख्याता वर्तन्ते । किंनामानः ? पुलाकबकुशाः—पुलाकाश्च बकुशाश्च पुलाकबकुशाः । तथा कुशीलाः—कुशीलनामानः । तथा निर्ग्रन्थनामकलिताः—निर्ग्रन्थ इत्याख्यया सहिताः । तथा स्नातकाः । कथंभूताः स्नातकाः ? सकलावबोधाः—परिपूर्णकेवलज्ञानिनः, इति क्रियाकारकसम्बन्धः । पुलाकादीनां तरङ्गमुच्यते । तथा हि । उत्तरगुणरहिता व्रतेष्वपि कचित्कदाचिदपरिपूर्णाः पुलाकाः । अखण्डितव्रता वपुःसंस्कारैरवर्थपराःसौख्यविभूतिवाञ्छासहिता बकुशाः । कुशीला द्विविधाः प्रतिसेवनाकुशीलाः कषायकुशीलाश्चेति । तत्र प्रतिसेवनाकुशीला अविविक्तपरिग्रहाः सम्पूर्णमूलोत्तरगुणाः कथंचिदुत्तरगुणविराधका भवन्ति । कषायकुशीला वशीकृतापरकषायाः संज्वलनमात्रपरिग्रहाः स्युः । यथा जले दण्डरेखा सद्यो विलीयते तथा अस्फुटोदयकर्माणो मुहूर्तात्परं

संजायमानकेवलज्ञानदर्शना निर्ग्रन्था भवन्ति । स्नातकानां लक्षणं तु प्रागेवोक्तम् ॥ २८ ॥

यत्र क्वचिन्मनुजलोक इहोपसर्ग—
संसर्गिणः स्थिरधियोऽनुपसर्गिणो वा ।
शुद्धात्मसंविदमुदारमुदो भजन्तः
स्वस्ति क्रियासुरमकृत्पमर्षयो नः ॥ २८ ॥

वृत्तिः—यत्र क्वचित्—यत्र कुत्रापि क्षेत्रे। इह—अस्मिन्। मनुजलोके—पंचचत्वारिंशद्योजनलक्षविस्तीर्णे मनुष्यक्षेत्रे । उपसर्गसंसर्गिणः—सोपसर्गा वर्तन्ते। वा—अथवा। अनुपसर्गिणः—अनुपसर्गाः सन्ति। कथंभूतास्ते उभयेऽपि ? स्थिरधियः—निश्चलमतयः। किं कुर्वन्तः ? शुद्धात्मसंविदं—रागद्वेषमोहादिरहितनिजात्मसंवेदनं, भजन्तः—आश्रयन्तोऽनुभवन्तः। कथंभूता महर्षयः ? उदारमुदः—उदारा अतिरमणीया मुद् आनन्दो येषां ते उदारमुदः उपलक्षणं अनन्तसौख्याश्चिदानन्दमया इत्यर्थः ॥ २६ ॥

एवंविधस्वस्त्ययनादपास्त—
संक्लेशभावोऽधिकशुद्धभावः ।
जिनाभिषेकादिविधीन् विधत्ते
यः सोऽश्नुते धर्मयशोऽर्थशर्म ॥ २९ ॥

वृत्तिः—यः-पुमान्। एवंविधस्वस्त्ययनात्—ईदृक्प्रकारकल्याणकरणात्। अपास्तसंक्लेशभावः-दूरीकृतार्तरौद्रपरिणामः। अधिकशुद्धिभावः-तद्द्वयाभावाद्विशेषेण निर्मलपरिणामः सन्। उक्तं चाष्टसहस्र्याम्—

"आर्तरौद्रध्यानपरिणामः संक्लेशस्तदभावो विशुद्धिरात्मनः स्वात्मन्यवस्थानमिति।"

जिनाभिषेकादिविधीन्–जिनस्नपनादिविधानानि। विधत्ते–करोति। सः–पुमान्। अश्नुते–भुंक्ते। किमश्नुते? धर्मयशोऽर्थशर्म–धर्मश्च सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्रलक्षणोपलक्षितं पुण्यं यशश्च शौण्डीर्यौदार्यगाम्भीर्यधैर्यवीर्यादिपुण्यगुणकीर्तनं, अर्थश्च धनमासात्प्रागेव रत्नवृष्ट्यादिसम्पत् तेषां तेभ्यो वा शर्म सुखमित्यर्थः ॥२०॥

इति स्वस्त्ययनमनःप्रसादनविधानम्।

वृत्ति—सुगमम्।

इन्द्रोऽहमुद्धरचरज्जिनपुङ्गवाङ्ग—
सौरभ्यसौहृदसुगन्धितमामपीमाम्।
सद्यस्कसेन्दुमलयोत्थरसैस्तदंघ्रि—
सेवावशस्त्रिषु यतः स्वतनुं विलिम्पे ॥२०॥

वृत्तिः—अहं इन्द्रः—स्थापनासौधर्मशक्रः याजकाचार्य इत्यर्थः। इमां–प्रत्यक्षीभूतां। स्वतनुं–निजकायमात्मीयशरीरं। सद्यस्कसेन्दुमलयोत्थरसैः–तात्कालिककर्पूरचन्दनोद्भूतद्रवैः। विलिम्पे–समालभेऽहं। कथंभूतामिमां स्वतनुं उद्धरचरज्जिनपुङ्गवाङ्गसौरभ्यसौहृदसुगन्धितमामपि-उद्धरः उत्कटो बहुल इति यावत्, चरन् सर्वत्र प्रसरन् यत् जिनपुङ्गवाङ्गसौरभ्यं तीर्थंकरपरमदेवशरीरसौगन्ध्यं तस्य सौहृदेन परिचयेन संगत्या सुगन्धितमा अतिशयेन सुगन्धिस्तां तथोक्तामप्यहं विलिम्पे। ननु स्वतनुविलेपनेन किं प्रयोजनमिति चेज्जिनपूजनस्य प्रसाध्यत्वादित्याशङ्कायामाह–तदंघ्रिसेवावशस्त्रिषु यतः–यस्मात्कारणात् अहं तदंघ्रिसेवावशः–जिनपुङ्गवचरणपूजनाधीनः। केषु त्रिषु? मनोवचनकायेषु ॥२१॥

श्रीचन्दनानुलेपनम्[1]।

१—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः वं मं हं सं तं पं अ सि आ उ सा अर्हं मम सर्वाङ्गशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा। चन्दनानुलेपनम्।

वृत्तिः—सुगमम् ।

शुम्भत्पुष्पतिकादशे शुचिरुची भ्राजिष्णुमैत्रीभरं
सच्छालापतिना गुणैर्नवबिसोद्गीर्णैरिवासूत्रिते ।
एकद्रव्यवदार्षदृग्भिरपि चोद्दृश्ये प्रवेश्ये नख-
च्छिद्रेऽपीह महे प्रभोरहमिमे दिव्ये दधे वाससी॥२१॥

वृत्तिः—इह—अस्मिन् । प्रभोर्महे—त्रैलोक्यनाथस्य यज्ञे अहं, इमे—प्रत्यक्षीभूते वाससी—द्वे वस्त्रे परिधानोत्तरीयलक्षणे । दधे—धारयामि परिदधामि उपदधामि च । कथंभूते वाससी ? शुम्भत्पुष्पतिकादशे—शुम्भत्पुष्पतिकाभिः शोभमानपट्टसूत्रपुत्तलिकाभिरुपलाञ्छिता दशाः प्रान्ता ययोस्ते शुम्भत्पुष्पतिकादशे । पुनः कथंभूते वाससी ? शुचिरुची—शुचयः शुक्लाः रुचो दीप्तयो ययोस्ते शुचिरुची । पुनरपि किं विशिष्टे ? सच्छालापतिना—आर्हततन्तुवायाधीशेन जैनलोकप्रसिद्धविन्दप्रधानेन, गुणैः—तन्तुभिः, आसूत्रिते—आयामपरिणाहयोः सन्तते स्यूते समन्तादतिचुम्बिते कथमासूत्रिते? भ्राजिष्णुमैत्रीभरं—भ्राजिष्णुर्दीप्यमानो मैत्रीभरः सश्लिष्टावियोगी यस्मिन्नासूत्रणकर्मणि तद्यथोक्तं, रचनायामतिप्रवीणत्वसूचनार्थमिदं विशेषणं । कथंभूतैर्गुणैः ? नवबिसोद्गीर्णैरिव—छिन्ननवीनपद्मिनीकन्दप्रान्तैरिव, कौशल्यगुणकथनार्थमिदं विशेषणं । पुनरपि कथंभूते वाससी ? च—पुनः, आर्षदृग्भिरपि—परमागमलोचनैरपि पुरुषैः, उद्दृश्ये—उत्प्रेक्षणीये उपमातुं योग्ये इत्यर्थः । किंवत् ? एकद्रव्यवत्—धर्माधर्माकाशवत्, अतिसघनत्वसूचनार्थमेतद्विशेषणम् । भूयोऽपि कथंभूते ? नखच्छिद्रेऽपि प्रवेश्ये—संकलिते सति आस्तां तावन्मुष्ट्यादिके नखस्य नखशुक्तिकायाश्छिद्रेऽपि मध्येऽपि प्रवेश्ये समापनीये । पुनश्च कथंभूते ? दिव्ये—अतिमनोहरे ।।२२।।

देवाङ्गवस्त्रपरिग्रह[१]: ।

वृत्तिः—देवानामंगेन सहोत्पद्यते यद्वस्त्रं तद्देवाङ्गवस्त्रं तस्य परिग्रहः स्वीकारः ॥ २ ॥

निःशंकादितथोपगूहनमुखोद्यच्छुद्धि यद्दर्शनं
ज्ञानं विभ्रममोहसंशयमथाष्टाचारवर्धिष्णु यत् ।
यच्छुद्धं विनयेन वृत्तमुदयद्रत्नत्रयं तत्स्मरन्
कंठे निर्मलवृत्तमौक्तिकमयं यज्ञोपवीतं दधे ॥२२॥

वृत्तिः—दधे-धारयामि । किं ? यज्ञोपवीतं—उपवीतं यज्ञसूत्रं । क दधे ? कण्ठे गले । कथंभूतं ? निर्मलवृत्तमौक्तिकमयं—निर्मलानि उज्ज्वलानि, वृत्तानि वर्तुलानि यानि मौक्तिकानि मुक्ताफलानि तेन निर्वृत्तं निष्पन्नं निर्मलवृत्तमौक्तिकमयं । अहं किं कुर्वन् ? रत्नत्रयं स्मरन्—इदं यज्ञोपवीतं रत्नत्रयमिदमिति संकल्पं कुर्वन् । तत् किं ? एकं रत्नं तावत् यद्दर्शनं—सम्यक्त्वं । कथंभूतं दर्शनं ? निःशंकादितथोपगूहनमुखोद्यच्छुद्धि—निर्गता शंका संदेहो भयं वा यस्मात् स निःशंकः स आदिर्येषां निष्कांक्षितनिर्विचिकित्सामूढदृष्टिगुणानां ते निःशंकादयः, तथा सत्यभूतं यदुपगूहनं मुखाहोच्छादनं मुखमादिर्येषां स्थितीकरणवात्सल्यप्रभावनानां ते तथोपगूहनमुखाः, निःशङ्कादयश्च तथोपगूहनमुखाश्च तैरुत्पन्ना उत्पद्यमाना शुद्धिर्नैर्मल्यं यस्य तन्निःशंकादितथोपगूहनमुखोद्यच्छुद्धि । पुनश्चात्र किं ? अथ—अनन्तरं । यज्ज्ञानं । कथंभूतं ज्ञानं ? विभ्रममोहसंशयं—शुक्तिर्वा रजतं वेति संदेहोऽस्ति यत्राभासे भ्रमो विभ्रमः, सर्पो वा शृंखलो वेति गच्छत्तृणस्पर्शबुद्धिमोहो मोहः, स्तंभो वा

१—ॐ ह्रीं दिगम्बराय धौतवस्त्राय नमः । अन्तरीयोत्तरीयवस्त्रद्वयधारणम् ।

पुरुषो वेति चलितप्रतिपत्तिः संशयः, निर्गता भ्रममोहसंशया यस्मादिति विभ्रममोहसंशयं । पुनः कथंभूतं ज्ञानं ? अष्टाचारवर्द्धिष्णु—अष्टभिराचारैर्वर्धते इत्येवं शीलमष्टाचारवर्द्धिष्णु । के ते अष्टावाचाराः ? व्यञ्जनमर्थस्तदुभयं काल उपधानं विनयोऽनपह्नवो बहुमानश्चेति । पुनः किं तत् ? वृद्धं च चारित्रं । कथंभूतं ? शुद्धं—निरतिचारं । वृत्तं किं कुर्वन् ? उदयन्—उदये प्राप्नुवत् वृद्धिं गच्छत् । केन ? विनयेन परमधर्मानुरागेण यथायोग्यनमस्कारादिना ॥ २३ ॥

इति यज्ञोपवीतधारणं—सुगमम् ॥३॥

या निर्मला सिद्धिवधूकटाक्षच्छटेव दिव्यै रचिता लतान्तैः ।
तां चारुचर्येतिधिया जिनांघ्रिद्वयोपदां शेखरयामि मालाम् ॥२३॥

वृत्तिः—तां मालां, अहं शेखरयामि—मस्तके धारयामि । कया ? इमा(?) माला न भवति किं तर्हि चारुचर्या—सम्यक्चारित्रमिदं, इति धिया—इत्यभिप्रायेण । तां का ? या निर्मला—उज्ज्वला निरतिचारा च । केव ? सिद्धिवधूकटाक्षच्छटेव—सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः सैव वधूर्मुनीनां मनोबन्धहेतुत्वात्तस्याः कटाक्षच्छटा अपाङ्गदर्शनधारा तद्वत् । पुनः कथंभूता या ? दिव्यैः—अतिमनोहरैः, लतान्तैः—पुष्पैः, रचिता—गुम्फिता । कथंभूतां मालां ? जिनाङ्घ्रिद्वयोपदां—अर्हत्पदयुग्मप्राभृतीकृतां ॥२४॥

शेखरसंयमनम्[1]—मालाबन्धनम् ॥४॥

दाहोत्तीर्णस्वर्णसद्रत्नरोचिर्वक्रैस्तन्वच्चित्रमाशामुखेषु ।
मत्वा तत्त्वज्ञानमारब्धलोकप्रीणे पाणौ कंकणं धारयामि ॥२४॥

वृत्तिः—अहं पाणौ—हस्ते । कंकणं—करभूषणं । धारयामि—आरोपयामि । किं कृत्वा पूर्वं ? तत्त्वज्ञानं मत्वा इदं कंकणं न भवति (किं) तर्हि

१—ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय नमः । यज्ञोपवीतधारणम् ।
२—ॐ ह्रीं चारित्राय नमः । मालाबन्धनम् ।

तत्त्वज्ञानं सम्यग्ज्ञानमिति संकल्पं कृत्वा। कथंभूते पाणौ ? आरब्धलोकप्रीणे—आरब्धलोकान् जिनाभिषेकप्रारंभकभव्यजनान् प्रीणयती सन्तर्पयतीति आरब्धलोकप्रीणस्तस्मिन्नारब्धलोकप्रीणे। कंकणं किं कुर्वन् ? आरामुखेषु—दिग्वदनेषु, चित्रं—पत्रवल्लीं, तन्वन्—विस्तारयन्। कैः कृत्वा ? दाहोत्तीर्णस्वर्णसद्रत्नरोचिश्चक्रैः—दाहोत्तीर्णं तीव्राग्निना शोधितं यत्स्वर्णं कांचनं दाहोत्तीर्णस्वर्णं, समीचीनानि रत्नानि पंचविधमाणिक्यानि सद्रत्नानि दाहोत्तीर्णस्वर्णं च सद्रत्नानि च दाहोत्तीर्णस्वर्णसद्रत्नानि तेषां रोचींषि दीप्तयस्तेषां चक्राणि समूहास्तैस्तथोक्तैरिति ॥३४॥

कंकणप्रबंधने—करभूषणकल्पनम् ॥४॥

कराम्बुजे पल्लवमुल्लिखन्तीं, रत्नांशुभिर्निश्चयदृष्टिबुद्धया।

विवाहमुद्रामिव मुक्तिलक्ष्म्या, मुद्रां करोम्यङ्गुलिपर्वमूले ॥३५॥

वृत्तिः—अहं, अंगुलिपर्वमूले—अङ्गुलिग्रन्थिमूले। मुद्रां करोमि—अंगुलीयकं धारयामि। कया ? निश्चयदृष्टिबुद्धया—इयं निश्चयसम्यक्त्वमिति मत्वा। किं कुर्वन्तीं मुद्रां ? रत्नांशुभिः—मणिकिरणैः कृत्वा, कराम्बुजे—हस्तकमले, पल्लवं—कुम्पलं, उल्लिखन्तीं। कथंभूतां मुद्रां ? मुक्तिलक्ष्म्याः विवाहमुद्रामिव—मुक्तिश्रियः परिणयननिर्धारणे सत्यकरोमिका-मिव(?)॥३६॥

मुद्रिकास्वीकारः। सुगमम् ॥६॥

इन्द्रस्थापने—सुगमम्।

क्षेत्रपालाय यज्ञेऽस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे।

बलिं दिशामि दिश्यग्नेर्वेद्यां विघ्नविघातिने ॥३६॥

वृत्तिः—अस्मिन्—प्रत्यक्षीभूते। यज्ञे—सर्वज्ञमहाभिषेके। क्षेत्रपालाय बलिं दिशामि—पूजां वितरामि। कस्यां ? वेद्यां। तत्रापि कस्यां ?

१—ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय नमः। कंकणधारणम्।

२—ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्राय नमः। मुद्रिकाधारणम्।

अग्नेर्दिशि-पूर्वदक्षिणदिक्कोणे । कथंभूताय क्षेत्रपालाय ? एतत्क्षेत्राधिरक्षिणे-एतत्क्षेत्रमेतत्स्थानमधिरक्षति अधिष्ठातृतया प्रतिपालयतीत्येवंशील एतत्क्षेत्राधिरक्षी तस्मै एतत्क्षेत्राधिरक्षिणे । पुनरपि कथंभूताय क्षेत्रपालाय ? विघ्नविघातिने-विघ्नान् क्षुद्रोपद्रवान् विशेषेण हन्ति विध्वंसयत्येवंशीलो विघ्नविघाती तस्मै विघ्नविघातिने ॥३७-१॥

ॐ आँ क्रों ह्रीं अत्रस्थक्षेत्रपाल ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट्, इदं जलाद्यर्चनं गृहाण गृहाण स्वाहा।

क्षेत्रपालार्चनविधानम्—पाठान्तरेण क्षेत्रपालपूजा ॥१॥

विश्वम्भरामम्बुकुशानलाभ्यां
संशोध्य सन्तर्प्य फणीन् सुधाभिः ।
निक्षिप्य दर्भान्निखिलासु दिक्षु
श्रीक्षेत्रपालाय बलिं ददामि ॥३७॥

वृत्तिः—ददामि-अर्पयामि । कं ? बलिं मापान्नार्धस्वित्रलवणोपलक्षितं । कस्मै ? क्षेत्रपालाय-क्षेत्रं पालयतीति क्षेत्रपालस्तस्मै । किं कृत्वा? अम्बुकुशानलाभ्यां-कुशास्य दर्भस्यानलः पावकः कुशानलः, अम्बु च कुशानलश्चाम्बुकुशानलौ ताभ्यां, विश्वम्भरां-पृथिवीं, संशोध्य-निर्मलीकृत्य । पुनः किं कृत्वा ? सुधाभिः-जलैः, फणीन्-नागान्, सन्तर्प्य-प्रीणयित्वा । पुनः किं कृत्वा ? निखिलासु-समस्तासु दिक्षु-दिशासु विदिक्षु च चकारः सोपस्कार्यः, दर्भान्—कुशान्, निक्षिप्य-संस्थाप्य । इति क्रियाकारकसम्बन्धः ॥३८—२॥

आगामिनि काव्ये क्षेत्रपालस्य लक्षणं सूचयन्नाह:—

तमालतरुकान्तिभाक् प्रकटिताट्टहासास्यवान्
दयागुणसमन्वितो भुजगभूषणैर्भीषणः ।

कनत्कनककिंकणीकलितनूपुरारावचान्
दिगम्बरवपुर्मया जिनगृहेऽर्च्यते क्षेत्रपः ॥२८॥

वृत्तिः—अर्च्यते—पूज्यते। कः ? क्षेत्रपः—क्षेत्रं पाति पालयतीति क्षेत्रपः। कस्मिन् ? जिनगृहे—जिनस्य सर्वकर्मक्षयोपलक्षितस्य गृहं मंदिरं स्थानं वा जिनगृहं तस्मिन्। केन पूज्यते ? मया—इन्द्रेण। कथंभूतः क्षेत्रपालः ? तमालतरुकान्तिभाक्—तमालस्य तमालपत्रस्य तरुर्वृक्षस्तस्य कान्तिं भजतीति। पुनः क्षेत्रपः—प्रकटिताट्टहासास्यवान्—प्रकटितमट्टहासं येन आस्येन तत् प्रकटिताट्टहासास्यं तद्विद्यते यस्यासौ प्रकटिताट्टहासास्यवान्। भूयोऽपि कथंभूतः ? दयागुणसमन्वितः—दया एव गुणो दयागुणस्तेन समन्वितः सहितो दयागुणसमन्वितः। अपरं कथंभूतः ? भुजाभ्यां गच्छन्तीति भुजगाः भुजगा एव भूषणानि भुजगभूषणानि तैर्भीषणो भयानकः। अपरं कथंभूतः क्षेत्रपः ? कनत्कनककिंकणीकलितनूपुरारावचान्—कनकस्य सुवर्णस्य किंकणी क्षुद्रघण्टिका कनककिंकणी कनच्छोभमाना कनकिंकणी कनत्कनककिंकणी तया कलितो व्याप्तो नूपुरस्यारावः शब्दः कनत्कनककिंकणीकलितनूपुरारावः स विद्यते यस्य। अपरं कथंभूतः क्षेत्रपः ? दिगम्बरवपुः। इति सु सं० ॥ २६-२ ॥

क्षेत्रपालस्य स्नपनमाह;—

सद्यस्केन सुगन्धेन स्वच्छेन बहलेन च।
स्नपनं क्षेत्रपालस्य तैलेन प्रकरोम्यहम् ॥ २९ ॥

वृत्तिः—अहं—इन्द्रः प्रकरोमि। किं तत् ? स्नपनं। कस्य ? श्रीसर्वज्ञवीतरागसम्बन्धिक्षेत्रपालस्य। केन ? तैलेन—तिले भवं तैलं तेन तैलेन। कथंभूतेन तैलेन ? सद्यस्केन—तात्कालिकेन। पुनः किंविशिष्टेन ? शोभनो गन्धो यस्य तत्सुगन्धं तेन सुगन्धेन। भूयोऽपि

कथंभूतेन ? स्वच्छेन—निर्मलेन । अपरं कथंभूतेन ? बहलेन—प्रचुरेण ॥ ४०-४ ॥

सिन्दूरैरारुणाकारैः पीतवर्णैः सुसंभवैः ।
चर्चनं क्षेत्रपालस्य सिंदूरैः प्रकरोम्यहम् ॥ ४० ॥

वृत्तिः—अहं—इन्द्रः । क्षेत्रपालस्य चर्चनं पूजां प्रकरोमि । कैः कृत्वा ? सिन्दूरैः अहिजन्मभिः । पुनः कैः कृत्वा ? सिन्दूरैः—पुष्पविशेषैः । कथंभूतैः ? आरुणाकारैः—आ ईषत् अरुण आकारो येषां तानि आरुणाकाराणि तैरारुणाकारैः कषायैरित्यर्थः । पुनः किंविशिष्टैः ? पीतवर्णैः—पीतो वर्णो येषां तानि पीतवर्णानि तैः । सुष्ठु शोभनतया संभव उत्पत्तिर्येषां तानि सुभवानि तैः ॥ ४१-५ ॥

भोः क्षेत्रपाल ! जिनपप्रतिमाङ्कभाल
दंष्ट्राकराल जिनशासनवैरिकाल ।
तैलाहिजन्मगुडचन्दनपुष्पधूपै—
र्भोगं प्रतीच्छ जगदीश्वरयज्ञकाले ॥ ४१ ॥

वृत्तिः—क्षेत्रं पालयतीति क्षेत्रपालस्तस्य सम्बोधनं क्रियते भोः क्षेत्रपाल ! आमन्त्रणाभिव्यक्तये अहोहेभोःशब्दाः प्राक् प्रयुज्यन्ते । हे जिनपप्रतिमाङ्कभाल—जिनान् पान्तीति जिनपास्तेषां प्रतिमा प्रतिच्छन्दी सा अङ्कं चिह्नं भाले ललाटे यस्य स तस्य सम्बोधनं क्रियते भो जिनपप्रतिमाङ्कभाल । दंष्ट्राकराल—दंष्ट्रया करालः रौद्रो दंष्ट्राकरालस्तस्य संबोधनम् । जिनशासनवैरिकाल—जिनस्य शासनं मार्गो जिनशासनं तत्र ये वैरिणस्तेषां कालो जिनशासनवैरिकालस्तस्य सम्बोधनं क्रियते भो जिनशासनवैरिकाल ! भोरेवंविधक्षेत्रपाल ! भोगं प्रतीच्छ—तव योग्यं वस्तु गृहाण । कैः कृत्वा ? तैलाहिजन्मगुडचन्दनपुष्पधूपैः—तैलं चाहिजन्म च सिन्दूरं, गुड इक्षुविकारः, चन्दनं च मलयजं, पुष्पाणि

जलादीनि, धूपं च, तानि नैलाद्दिजन्मगुडचन्दनपुष्पधूपानि तैः । कस्मिन् सति ? जगदीश्वरयज्ञकाले—जगतामीश्वरो जगदीश्वरस्तस्य यज्ञस्य पूजनस्य कालो जगदीश्वरयज्ञकालस्तस्मिन् जगदीश्वरयज्ञकाले ॥ ४२-६ ॥

इदं जलादिकमर्चनं गृहाण गृहाण ॐ भूर्भुवःस्वः स्वधा स्वाहा इति क्षेत्रपालार्चनम् ।

उत्खातपूरितसमीकृतसंस्कृतायां
पुण्यात्मनीह भगवन्मखमण्डपोर्व्याम् ।
वास्त्वर्चनादिविधिलब्धमखादिभागं
वेद्यां यजामि शशिभृद्दिशि वास्तुदेवम् ॥४२॥

वृत्तिः—यजामि—पूजयामि । कं ? वास्तुदेवं—वास्तुरेव देवो वास्तुदेवस्तं वास्तुदेवं । कस्मिन् ? इह—जिनयज्ञे जिनपूजायां । कथंभूते जिनयज्ञे ? पुण्यात्मनि—पुण्यः पवित्र आत्मा स्वभावो यस्य जिनयज्ञस्य स पुण्यात्मा तस्मिन् पुण्यात्मनि । कस्यां ? भगवन्मखमण्डपोर्व्यां—भगं ज्ञानं विद्यते यस्यासौ भगवान् तस्य मखः। पूजनं तस्य मण्डपस्तस्योर्वी भगवन्मखमण्डपोर्वी तस्यां भगवन्मखमण्डपोर्व्याम्। कथंभूतायां? उत्खातपूरितसमीकृतसंस्कृतायां—पूर्वमुत्खाता पश्चात्पूरिता तदनन्तरं समीकृता सैव संस्कृता उत्खातपूरितसमीकृतसंस्कृता तस्यां । वेद्यां—वितर्दौ । शशिभृद्दिशि—ईशान्यां । किं विशिष्टं वास्तुदेवं ? वास्त्वर्चनादिविधिलब्धमखादिभागं—वास्तोर्वास्त्वधिकारस्यार्चनादिविधिर्वास्त्वर्चनादिविधिस्तेन लब्धः प्राप्तो मखादिभागः पूजनादिभागो येनासौ वास्त्वर्चनादिविधिलब्धमखादिभागस्तं तथाभूतम् ॥ ४२-१ ॥

ऐशान्यां दिशि पुष्पाञ्जलिः ।

श्रीवास्तुदेव ! वास्तूनामधिष्ठातृतयानिशम् ।
कुर्वन्ननुग्रहं कस्य मान्यो नासीति मान्यसे ॥४४॥

वृत्तिः—हे श्रीवास्तुदेव–वास्तुरेव देवो वास्तुदेवः श्रिया शोभयोपलक्षितो वास्तुदेवः श्रीवास्तुदेवस्तस्य सम्बोधनं क्रियते हे श्रीवास्तुदेव हे श्रीवास्तुकुमार। वास्तूनां वस्तुकर्मणां काष्ठपाषाणोपलक्षितानां शिल्पिनामधिष्ठातृतयाधिकारितया । अनिशं निरन्तरं । अनुग्रहं—कृपां कुर्वन् । कस्य—वास्तुकारकस्य । न मान्योऽसि—न माननीयो भवसि अपि तु भवसि। अतःकारणात्त्वं मया मान्यसे ॥ ४४–२ ॥

ॐ ह्रीं वास्तुदेवाय इदमर्घ्यं पाद्यं० ।

ॐ आयात भो वातकुमारदेवा ! प्रभोर्विहारावसराप्तसेवाः ।
यज्ञांशमभ्येत सुगन्धिशीतमृद्वात्मना शोधयताध्वरोर्वीम् ॥४५॥

वृत्तिः—भो वातकुमारदेवाः ! यूयमायात—आगच्छत। न केवलमायात, अपि तु यज्ञांशं–भगवत्पूजाभागं । अभ्येत—स्वीकुरुत । तथाध्वरोर्वीं—यज्ञभूमिं । शोधयत—सम्मार्जयत । केन कृत्वा ? सुगन्धिशीतमृद्वात्मना–सुगन्धिः सुरभिः स चासौ शीतः शिशिरः सुगन्धिशीतः स चासौ मृदुः कोमलो मयूरबर्हभेदी सुगन्धिशीतमृदुः स चासावात्मा स्वभावस्तेन तथोक्तेन। कथंभूता यूयं ? प्रभोः–त्रैलोक्यनाथस्य, विहारावसराप्तसेवाः—विहारावसरे धर्मोपदेशाय पर्यटनकाले, आप्ता प्राप्ता, सेवा पृष्ठतो गमनतया धूलिकण्टकतृणकीटकशर्करोपलानामग्रेऽग्रे योजनान्निराकरणतया च सम्यगाराधनं यैस्ते तथोक्ताः ॥ ४५–१ ॥

ॐ ह्रीं वातकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा, प्राचीमैशानीं चान्तरा बलिं वितीर्य दर्भपूलेन भूमिं सम्मार्जयेत् ।

पूर्वस्या ऐशान्याश्च मध्ये इत्यर्थः ।

ॐ आयात भो मेघकुमारदेवाः ! प्रभोर्विहारावसरात्तसेवाः ।
गृह्णीत यज्ञांशमुदीर्णशम्या गन्धोदकैः प्रोक्षत यज्ञभूमिम् ॥४६॥

वृत्तिः—भो मेघकुमारदेवाः ! यूयं आयात । यज्ञांशं-भगवत्पूजाभागं गृह्णीत—स्वीकुरुत । उदीर्णशम्याः—प्रकटितविद्युतः सन्तः । गन्धोदकैर्यज्ञभूमिं प्रोक्षत—सिंचत यूयं । कथम्भूता यूयं ? प्रभोर्विहारावसरात्तसेवाः—वायुभिः सम्मार्जिते विहारमार्गे सति गन्धोदकवृष्टेर्विधातार इत्यर्थः ॥ ४६–२ ॥

ॐ ह्रीं अर्हं मेघकुमाराय धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अं हं सं वं झं ठं पः क्षः फट् स्वाहा । तद्वत्काञ्चनादिगर्भतीर्थोदककुम्भेन भूतलं प्लावयेत् । निमज्जयेदित्यर्थः ।

ॐ आयात भो वह्निकुमारदेवा ! आधानविध्यादिविधेयसेवाः ।
भजध्वमिज्यांशमिमां मखोर्वीं ज्वालाकलापेन परं पुनीत ॥४७॥

वृत्तिः—भो वह्निकुमारदेवाः !—अग्निकुमारदेवा यूयं आयात । इज्यांशं—भगवत्पूजाभागं । भजध्वं—स्वीकुरुध्वं । इमां—प्रत्यक्षीभूतां । मखोर्वीं—यज्ञभूमिं । ज्वालाकलापेन—कालजालेन । परं—केवलं । पुनीत पवित्रयत पवित्रीकुरुत न तु ज्वालयतेत्यर्थः । कथंभूता यूयं ? आधानविध्यादिविधेयसेवाः—आधानविधिर्गर्भाधानक्रिया, आदिशब्दात्प्रीतिसुप्रीत्यादयस्तेषु विधेया कर्तव्या सेवा यैस्ते तथोक्ताः ॥४७–३॥

तद्वज्ज्वलद्दर्भपूलानलेन भूमिं ज्वालयेत् । भूमिशोधनम् ।

नर्तक्रियाक्रीडाप्रियत्वाद्भावकुमारादीनां कुमारत्वमुपचर्यते ।

ॐ उद्भात भोः षष्टिसहस्रनागाः क्ष्माकामचारस्फुटवीर्यदर्पाः ।
प्रतृप्यतानेन जिनाध्वरोर्वीसेकात्सुधागर्वमृजामृतेन ॥४८॥

वृत्तिः—भोः षष्टिसहस्रनागाः । यूयं उद्भात—उच्चैर्दीप्यध्वं । न

केवलमुद्भास अपि त्वनेन-प्रत्यक्षीभूतेन, अमृतेन-जलेन। प्रत्यूषस-श्रीयाव्यं च। कथंभूतेनामृतेन ? सुधागर्वसृजा-पीयूषमदविदारणेन। कस्मात् ? जिनाभ्यर्चनोर्वीसिञ्चनात्—सर्वज्ञयज्ञभूमिसेचनात्। कथंभूता यूयं ? क्ष्माकामचारस्फुटवीर्यदर्पाः—क्ष्मायां पृथिव्यां कामचारेण यथेष्ट-चेष्टनेन स्फुटः प्रकटीभूतौ वीर्यदर्पौ शक्तिमदौ येषां ते तथोक्ताः॥४६-४॥

ऐशान्यां दिशि जलाञ्जलिः। नागतर्पणम्।

ब्रह्मस्थाने मघोनः ककुभि हुतभुजो धर्मराजस्य रक्षो—
राजस्याहीन्द्रपाणेरवनिरुहभृतः शम्भुमित्रस्य शम्भोः।
नागेन्द्रस्यामृतांशोरपि सदकलसत्पुष्पदूर्वादिगर्भान्
दर्भान् वेद्यां न्यसामि न्यसितुमिह जिनाद्यासनानि क्रमेण॥५०॥

वृत्तिः—वेद्यां-वितर्दौ। दर्भान्-कुशान्। न्यसामि-स्थापयामि। किं कर्तुं ? इह-एषु दर्भेषु। जिनाद्यासनानि-जिनादीनामेकादशानां देव-तानां, आसनानि पीठानि। न्यसितुं—स्थापितुं। कथं ? क्रमेण—परिपाट्या। कथंभूतान् दर्भान् ? सदकलसत्पुष्पदूर्वादिगर्भान्-सदका अक्षता लसन्ति शोभमानानि पुष्पाणि कुसुमानि दूर्वा हरिता आदि-शब्दाच्चन्दनोदकस्वस्तिकयवसिद्धार्थादीनां ग्रहणं, सदकलसत्पुष्पदूर्वा-द्यो गर्भेषु मध्येषु येषां ते सदकलसत्पुष्पदूर्वादिगर्भास्तांस्तथोक्तान्। कुत्र कुत्र दर्भान् न्यसामि ? ब्रह्मस्थाने-परमब्रह्मस्थाने वेदिकागर्भे। तथा मघोनः ककुभि—इन्द्रस्य दिशि। न केवलं मघोनः ? अपि तु हुत-भुजः—अग्नेः। धर्मराजस्य-यमस्य। रक्षोराजस्य—नैर्ऋत्यस्य। अहीन्द्र-पाणेः-वरुणस्य। अवनिरुहभृतः—वायोः। शंभुमित्रस्य—कुबेरस्य। शम्भोः—ईशानस्य। नागेन्द्रस्य—धरणेन्द्रस्य। अमृतांशोरपि—चन्द्र-स्यापीति शेषः॥ ५२॥

दर्भन्यासविधानम् ।

*ब्रह्मकाण्डं समादाय विश्वविघ्नौघखण्डनम् ।
क्षिपामि ब्रह्मणः स्थाने भक्त्या ब्राह्मे महामहे ॥१॥
ॐ दर्पमथनाय नमः ब्रह्मदर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

ॐ ब्रह्म-दर्भः ।

ॐ मघोनः ककुभ्भागे दर्भं निर्भग्नविघ्नकम् ।
भागैश्वर्यादिवृद्ध्यर्थं क्षिपामि क्षिप्तकल्मषम् ॥२॥
ॐ ब्रह्मणे नमः पूर्वदिङ्मुखे दर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

ॐ इन्द्रदर्भः ।

ॐ सन्तापापनोदार्थं प्राणिनां प्रक्षिपाम्यहम् ।
दर्भं हुताशनाशायां सर्वज्ञस्नपनोत्सवे ॥३॥
ॐ ब्रह्मपतये नमः आग्नेयां दिशि दर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

ॐ वह्निदर्भः ।

ॐ तीक्ष्णं दक्षिणाशायां दर्भं लक्ष्म्या सुलक्षितम् ।
क्षिपाम्यभिषवारम्भे यमारंभविभित्सया ॥४॥
ॐ जिनाय नमः दक्षिणस्यां दिशि दर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

ॐ यमदर्भः ।

ॐ नरारोहणदिग्भागे निःशेषक्लेशनाशनम् ।
विदधे दर्भमारब्धुं जिनेन्द्राभिषवक्रियाम् ॥५॥
ॐ जिनोत्तमाय नमः नैऋत्यां दिशि दर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

---

* पुष्पमध्यगतः पाठः मूलपुस्तकस्थः ।

ॐ नैर्ऋत्यदर्भः ।

ॐ त्रैलोक्यस्य नाथाय नमस्कृत्य जिनेशिने ।
वरुणस्य हरिद्भागे स्थापये दर्भमद्भुतम् ॥६॥

ॐ ह्रीं अनन्तज्ञानाय नमः अपरस्यां दिशि दर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

ॐ वरुणदर्भः ।

ॐ मातरिश्वहरिद्भागे विश्वविश्वम्भराप्रभोः ।
अभिषेकसमारम्भे दर्भकल्पं प्रकल्पये ॥७॥

ॐ पंचमहाकल्याणसम्पूर्णाय नमः वायव्यां दिशि दर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

ॐ अनिलदर्भः ।

ॐ यक्षरक्षितक्षेत्रेऽस्मिन् क्षिपाम्यक्षुण्णवीक्षणम् ।
यागदीक्षाक्षणे क्षेमं विधिवद्दर्भमद्भुतम् ॥८॥

ॐ अनन्तसुखाय नमः उत्तरस्यां दिशि दर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

ॐ धनददर्भः ।

ॐ सर्वस्य शान्तये शान्तं नत्वा श्रीवृक्षलक्षितम् ।
वर्धमानेशमैशानीं विदधे दर्भिणीं दिशम् ॥९॥

ॐ नवकेवललब्धिसमन्विताय नमः ऐशान्यां दिशि दर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

ॐ ईशानदर्भः ।

ॐ स्फूर्जत्फणामणिपुतोरगवृन्दवन्द्य
संसेव्यमानकमलेक्षणनागराज ! ।
अस्मिन् जरामरणनाशमहोत्सवेऽहं

दर्भं ददामि सजलाक्षतचन्दनाद्यैः ॥१०॥

ॐ अनन्तवीर्याय नमः अपरस्यां दिशि दर्भमवस्थापयामि स्वाहा ।

ॐ धरणेन्द्रदर्भः ।

ॐ जैवातृकेयमहिशीतलसिद्ध्यान
लोकप्रदीपवररोहिणिसौख्यधाम ।
यक्षे शशाङ्कविभूषणसूर्यधाम
दर्भं ददामि हरिचन्दनसाक्षतं ते ॥११॥

ॐ सोमदर्भः ।

इति दर्भन्यासविधानम् ।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्यैः ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै-
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरर्चामि भूमिम् ॥५१॥

वृत्तिः—अर्चामि—पूजयामि । कां ? भूमिं—यज्ञभुवं । काभिः ? अद्भिः—जलैः । कथंभूताभिरद्भिः ? आभिः—प्रत्यक्षीभूताभिः न तु मंत्रमात्रकल्पनाभिरित्यभिप्रायः । पुनरपि कथंभूताभिरद्भिः ? पुण्याभिः—चर्मादिसंसर्गविवर्जिततया पवित्राभिः पुण्योपार्जनहेतुभूताभिश्च । तथा अमुना—प्रत्यक्षीभूतेन चन्दनेन—श्रीखण्डेन । कथंभूतेन चन्दनेन ? परिमलबहुलेन—कर्पूरादिमिश्रतयातिसुगन्धेन । तथा शुचिसदकचयैः—अत्युज्वलाक्षतपुञ्जैः पंचभिरिति शेषः । कथंभूतैः शुचिसदकचयैः ? श्रीदृक्पेयैः—लक्ष्मीलोचनावलोकनीयैः । पुनरपि कथंभूतैः ? अमीभिः—अध्यक्षतां गतैः । तथा उद्गमैः—पुष्पैः । कथंभूतैः ? एभिः—प्रत्यक्षतामायातैः । पुनरपि किं विशिष्टैः ? उद्यैः—जातिचम्पकादितया प्रशस्तैः । तथा निवेद्यैः—चरुभिः ।

कथंभूतैर्निवेद्यैः ? हृद्यैः—मनोहरैः । एभिः—लोचनगोचरतां गतैः । तथा प्रदीपैः—दीपैः । किं कुर्वद्भिः प्रदीपैः ? मलभवनं—यागमण्डपं, दीपयद्भिः प्रद्योतयद्भिः । कथंभूतैः प्रदीपैः ? इमैः—प्रत्यक्षीभूतैः । तथा धूपैः । कथंभूतैः ? प्रेयोभिः—नेत्रादीनां प्रियतमैः । एभिः—प्रत्यक्षीभूतैः । तथा फलैः । कथंभूतैः ? पृथुभिरपि—महद्भिरपि । अपिशब्दाज्जघन्यमध्यमजघन्यैरपि । पुनरपि कथंभूतैः फलैः ? एभिः—प्रत्यक्षीभूतैरिति ॥५१॥

भूम्यर्चनम् । भूमिशुद्धिः ।

दर्भस्वस्तिकशालिशालिनिकरास्तीर्णेषु वेद्यां प्रभोः
कोणेष्वास्यफलप्रवालकमलान् कण्ठावलम्बिस्रजः ।
रैरत्नोद्गमगन्धगर्भसुपयःपूर्णान् सुसूत्रावृतान्
श्रीखण्डाक्षतचर्चितांश्च चतुरः कुम्भान् शुभान् स्थापये ॥५२॥

वृत्तिः—प्रभोः—जगत्त्रयीनाथस्य । वेद्यां, कुम्भान्—कलशान् । अहं स्थापये—स्थापयामि । तत्रापि केषु ? कोणेषु—चतुर्षु वेदिकैकदेशेषु । दर्भेत्यादि—दर्भाश्च स्वस्तिकानि च दर्भस्वस्तिकानि तैः शालन्ते शोभन्ते इत्येवंशीला दर्भस्वस्तिकशालिनस्ते च ते शालिनिकरा व्रीहिराशयस्तैरास्तीर्णाः प्रस्तीर्णास्तेषु तथोक्तेषु । कथंभूतान् कुम्भान् ? आस्यफलप्रवालकमलान्—आस्येषु मुखेषु फलानि प्रवालानि पल्लवाः कमलानि पद्मानि, येषां ते आस्यफलप्रवालकमलास्तान् । भूयोऽपि किंविशिष्टान् कुम्भान् ? कण्ठावलम्बिस्रजः—कण्ठेषु गलप्रदेशेषु अवलम्बन्त इत्येवंशीलाः कण्ठावलम्बिन्यः, कण्ठावलम्बिन्यः स्रजो माला येषां ते कण्ठावलम्बिस्रजस्तान् । पुनः कथंभूतान् कुम्भान् ? रैरत्नोद्गमगन्धगर्भसुपयःपूर्णान्—रायो द्रव्याणि माणिक्यानि, रत्नानि मणिमुक्ताफलप्रवालवैडूर्यहीरकाणि, उद्गमाः पुष्पाणि, गन्धश्चन्दन-

---

१ ॐ ह्रीं श्रीं क्ष्वीं भूः शुद्ध्यतु स्वाहा । भूमिशोधनम् ।

कर्पूरागुर्वादिः, रैरत्नोद्गमगन्धा गर्भे मध्ये येषां तानि रैरत्नोद्गमगन्धगर्भाणि तानि च तानि शुचयांसी चर्मादिस्पर्शरहितानि जलानि तैः पूर्णां आकर्णं भृतास्ते तथोक्तास्तान् । पुनः कथंभूतान् ? सुसूत्राभूतान्—पवित्रत्रिगुणसूत्रवेष्टितान् । पुनः कथंभूतान् कुम्भान् ? श्रीखण्डाक्षतचर्चितान्-चन्दनाक्षतपूजितान् । चकार उक्तसमुच्चयार्थस्तेन पुष्पदधिदूर्वादिभिरपि चर्चितान् । कतिसंख्योपेतान् ? चतुरः—चतुःसंख्यान् । शुभान्—पुण्योपार्जनहेतुभूतान् ॥ ५४ ॥

ॐ ह्रीं स्वस्तिके कलशस्थापनं करोमि स्वाहा ।

कलशस्थापनम् ।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै-
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरर्चामि कुम्भान् ॥५३॥

कलशार्चनम् । पुराकर्म ।

सत्पक्षदर्भे शुचिवेदिगर्भे जिष्णोर्मृजापीठमिदं न्यसामि ।
प्रक्षाल्य तीर्थाम्बुघटैरथैनं नदत्सु वाद्येषु पुनामि दर्भैः ॥ ५४ ॥

वृत्तिः—जिष्णोः—जिनस्वामिनः सन्निबन्धित्वेन, मृजापीठं—पवित्रपीठं । इदं—एतत् । न्यसामि—स्थापयामि । क ? वेदिगर्भे—वेदिकामध्ये । कथंभूते वेदिगर्भे ? सत्पक्षदर्भे—परजक्षदर्भसहिते । अथ—न्यसनानन्तरं । तीर्थाम्बुघटैः—पवित्रजलकलशैः, प्रक्षाल्य—प्रकर्षेण धौत्वा । एनं—एतत्पीठं । दर्भैः पुनामि कुशैः, पवित्रयामि, तदुपरि दर्भान् स्थापयामीत्यर्थः । केषु सत्सु ? वाद्येषु सत्सु । किंकुर्वत्सु वाद्येषु ? नदत्सु—शब्दायमानेषु ॥ ५६ ॥

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै—
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरर्चामि पीठम् ॥५५॥

पीठार्चनम्।

लिखाम्यथेह श्रुतबीजसज्जं—
श्रीवर्णमुद्धैः सदकैर्दकार्द्रैः।
श्रीगन्धकुट्याः स्नपनीयमर्ह—
द्बिम्बं मुदानीय निवेशयेऽस्मिन् ॥५६॥

वृत्तिः—अथ—पीठार्चनानन्तरं। इह—अस्मिन् पीठे। श्रीवर्णं लिखामि—श्रीकारं विन्यसामि। कैः कृत्वा लिखामि? सदकैः—अक्षतैः, न तु चन्दनादिना। कथंभूतैः सदकैः? उद्धैः—अतिसुप्रशस्तैः। पुनरपि कथंभूतैः? दकार्द्रैः—जलेन क्लिन्नैः। कथंभूतं श्रीवर्णं? श्रुतबीजसज्जं—श्रुतबीजेषु सरस्वतीमंत्राक्षरेषु "ॐ ह्रीं श्रीं वद वद वाग्वादिनि सरस्वति ह्रीं नमः" इत्युक्तलक्षणद्वाविंशतिवर्णेषु सज्जं प्रगुणं प्रकृष्टगुणदायकं लक्ष्मीश्रुतागमनहेतुत्वात्, श्रुतबीजसज्जं। अस्मिन्—श्रीवर्णे। अर्हद्बिम्बं निवेशये—तीर्थंकरपरमदेवप्रतिच्छन्दं स्थापयामि। कथंभूतमर्हद्बिम्बं? स्नपनीयं—स्नपनयोग्यं, स्नपनाय विवक्षितं वा, ऋषभमजितं संभवमभिनन्दनमित्यादिकं। किं कृत्वा पूर्वं? श्रीगन्धकुट्याः—चैत्यालयगर्भगृहात्। आनीय—प्रापय्य। कया? मुदा—आनन्देन गीतवादित्रादिसमुद्भूतहर्षभरनिर्भरहृदयेनेति तात्पर्यार्थः ॥५६॥

१—ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्मं ठः ठः श्रीपीठस्थापनं करोमीति स्वाहा। पीठस्थापनम्। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन पीठप्रक्षालनं करोमीति स्वाहा। पीठप्रक्षालनम्। ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय स्वाहा।

२—ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्रीलेखनं करोमि स्वाहा।

अथ प्रतिमानयनम्ः—

तथाद्यमाप्तमाप्तानां देवानामधिदैवतम् ।
प्रक्षीणघातिकर्माणं प्राप्तानन्तचतुष्टयम् ॥५७॥

दूरमुत्सृज्य भूभागं नभस्तलमधिष्ठितम् ।
परमौदारिकस्वाङ्गप्रभाभर्त्सितभास्करम् ॥५८॥

चतुस्त्रिंशन्महाश्चर्यैः प्रातिहार्यैर्विभूषितम् ।
मुनितिर्यङ्नरस्वर्गिसभाभिः सन्निषेवितम् ॥५९॥

जन्माभिषेकप्रमुखप्राप्तपूजातिशायिनम् ।
केवलज्ञाननिर्णीतविश्वतत्त्वोपदेशकम् ॥६०॥

प्रशस्तलक्षणाकीर्णसम्पूर्णोदग्रविग्रहम् ।
आकाशस्फटिकान्तःस्थज्वलज्ज्वालानलोज्ज्वलम् ॥६१॥

तेजसामुत्तमं तेजो ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् ।
परमात्मनमर्हन्तं ध्यायेन्निःश्रेयसाप्तये ॥६२॥

—षड्भिः कुलकम् ।

वृत्तिः—तथेत्यादि—तथा-तेनैव पीठस्थापनप्रक्षालनार्चनप्रकारेण । अर्हन्तं—तीर्थंकरपरमदेवं । ध्यायेत्—गन्धकुटीमध्ये गत्वा प्रतिमायै स्थित्वा परमं जिनाधीश्वरं ध्यायेत् स्मरेदिति क्रियाकारकसम्बन्धः। कथम्भूतमर्हन्तं ? आप्तानां—पंचपरमेष्ठिनां मध्ये आद्यं-प्रथमं, आप्तं-गुरुं । देवानां—इन्द्रादीनां, अधिदैवतं—अधिकं दैवतं । प्रक्षीणघातिकर्माणं—प्रकर्षेण क्षयं गतं मोहनीयज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मचतुष्टयं । प्राप्तानन्तचतुष्टयं—प्राप्तं लब्धमनन्तचतुष्टयमनन्तज्ञानानन्तदर्शनानन्तवीर्यानन्तसौख्यचतुष्कं येन स प्राप्तानन्तचतुष्टयस्तं । पुनरपि कथंभूतमर्हन्तं ? नभस्तलं—आकाशतलं, अधिष्ठितं—संस्थितं । किं कृत्वा पूर्वं ? भूभागं—भूमिप्रदेशं, दूरं—अतिविप्रकृष्टं, उत्सृज्य—परित्यज्य । परमे-

त्वादि—परमुत्कृष्टलक्ष्माकं औदारिकं उदारं स्थूलं चक्षुरादीन्द्रियग्रहणयोग्यं, उदारमेवौदारिकं, परमं च तदौदारिकं च परमौदारिकं देवेन्द्रमानवेन्द्रादीनामपि दुर्लभत्वात्, परमौदारिकं च तत्स्वाङ्गं च निजशरीरं परमौदारिकस्वाङ्गं तस्य प्रभाभिस्तेजोभिर्भर्त्सिताः तिरस्कृता भास्कराः कोटिसूर्या येन स परमौदारिकस्वाङ्गप्रभाभर्त्सितभास्करस्तं तथोक्तं । पुनः कथंभूतमर्हन्तं ? चतुस्त्रिंशन्महाश्चर्यैः—चतुस्त्रिंशता महातिशयैः, अष्टभिः प्रातिहार्यैश्च विभूषितं—मण्डितं । तथा हि—निःस्वेदत्वं १ विण्मूत्रादिमलरहितता २ शुचिसुगन्धगोक्षीरधवलरुधिरत्वं ३ समचतुरस्रसंस्थानं ४ वज्रर्षभनाराचसंहननं ५ सुरूपता ६ शरीरेऽतिसुगन्धता ७ अष्टोत्तरशतशुभलक्षण-नवशतव्यञ्जनता ८ । उक्तं च—

लक्षणं जन्मसम्बद्धमाजीवाद्वीति निश्चितम् ।
पश्चाद्व्यक्ति व्रजेद्यत्तु तद्व्यञ्जनमिति स्मृतम् ॥ १ ॥

अतिशयवद्वीर्यता ९ । तथाहि—श्वापदवनचरगणबलं हस्तिनः, सहस्रहस्तिबलं सिंहस्य, सिंहशतबलमष्टापदस्य, अष्टापदसहस्रबलं बलभद्रस्य, बलभद्रद्वयबलमर्धचक्रिणः, अर्धचक्रिद्वयबलं सकलचक्रिणः, सहस्रसकलचक्रिबलं देवेन्द्रस्य, देवेन्द्रसहस्रबलं तीर्थंकरपरमदेवस्य । हितप्रियवादित्वं चेति १० अतिशयाः सहजाः । दश घातिक्षयजाः । तथा हि—

गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षता १ गगनगमनं २ अप्राणिवधः ३ कवलाहाराभावः ४ उपसर्गाभावः ५ चतुर्मुखत्वं ६ सर्वविद्याप्रभुत्वं ७ अच्छायत्वं ८ नेत्रमेषोन्मेषरहितता ९ नखकेशाभिवृद्धिस्थिततत्वं १० । चतुर्दश देवकृताः । तथा हि—

सर्वार्धमागधीयाभाषा १ सर्वप्राणिमित्रत्वं २ सर्वर्तुफलपुष्पपल्लवता ३ दर्पणतलसदृशरत्नमयभूमिता ४ शुद्धो वायुता ५ सर्वजनपरमानन्दः ६ योजनैकमध्येऽपि मरुत्प्रमार्जनता ७ गन्धोदकवर्षणं ८ पद्मरागमणिमञ्जरीणि हेममयानि सपद्मानि योजनप्रमाणानि पृष्ठतः सप्त अग्रे सप्त

पादाधश्चैकं प्रत्येकं चतुर्दश वस्तुरत्नाव ६ सर्वधान्यमहानिष्पत्तिः १० सर्व-दिक्प्रसन्नता ११ देवकृतदेवाह्वानं १२ अग्रेऽग्रे व्योम्नि धर्मचक्रं १३ अष्टौ मंगलानि च १४। तदुक्तम्—

> भृङ्गारतालकलशध्वजसुप्रतीक—
>
> श्वेतातपत्रवरदर्पणचामराणि।
>
> प्रत्येकमष्टशतकानि विभान्ति यस्य
>
> तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय ॥ १ ॥

प्रातिहार्याण्यष्टौ भवन्ति। तदप्युक्तम्—

> अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टि—
>
> र्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च।
>
> भामंडलं दुन्दुभिरातपत्रं—
>
> सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥ १ ॥

पुनरपि कथंभूतमर्हन्तं? मुनितिर्यङ्नरस्वर्गिसभाभिः सन्निषेवितं—मुनयो निर्ग्रन्थाः, तिर्यञ्चः संज्ञिपंचेन्द्रियपशुपक्ष्यादयः, नरा मनुष्याः स्त्रीपुरुषभेदभिन्नाः, स्वर्गिणश्चतुर्निकायदेवास्तेषां सभाभिः सज्जनैः परमधर्मानुरागतया सम्यक्प्रकारेण न्यतिशयेन सेवितमाराधितं। तदुक्तम्—

> निर्ग्रन्थकल्पवनिताव्रतिकामभौम—
>
> नागस्त्रियो भवनभौमभकल्पदेवाः।
>
> कोष्ठस्थिता नृपशवोऽपि नमन्ति यस्य
>
> तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय ॥ १ ॥

भूयोऽपि कथम्भूतमर्हन्तं? जन्माभिषेकप्रमुखप्राप्तपूजातिशायिनं—जन्माभिषेकप्रमुखो जन्माभिषेकादिकः प्राप्तो लब्धो योऽसौ पूजाया अतिशयोऽतिशयोऽनन्यसम्भवित्वात् जन्माभिषेकप्रमुखप्राप्तपूजातिशायः सोऽस्यास्तीति जन्माभिषेकप्रमुखप्राप्तपूजातिशायी तं तथोक्तम्। पुनः

कथम्भूतमर्हन्तं ? केवलज्ञाननिर्णीतविश्वतत्त्वोपदेशकं—केवलज्ञानेन क्षायिकैकज्ञानेन, निर्णीतानि निश्चितानि, विश्वानि समस्तानि, तत्त्वानि जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षलक्षणोपलक्षितानि तेषामुपदेशकं हेयोपादेयरूपतया यथावत्कथकम् । तत्त्वानीत्युपलक्षणं तेन षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय-नवपदार्थानामप्युपदेशकम् । पुनरपि कथंभूतमर्हन्तं ? प्रशस्तलक्षणाकीर्णसम्पूर्णोदग्रविग्रहं—प्रशस्तानि महामुनीनामपि स्तुतियोग्यानि तानि च तानि लक्षणानि कमलकलशकुलिशकल्पद्रुमकान्ति—मत्कर्मसाचारादीनि तैराकीर्णः प्रशस्तलक्षणाकीर्णः स चासौ सम्पूर्णः न हीनो नाप्यधिको मानोन्मानसहितः प्रशस्तलक्षणाकीर्णसम्पूर्णः उदग्रः अतिश्रेष्ठो विग्रहः शरीरं यस्य स तथा तं । पुनः कथम्भूतमर्हन्तं ? आकाशस्फटिकान्तःस्थज्वलज्ज्वालानलोज्ज्वलं—आकाशस्फटिकोऽतिनिर्मलस्फटिकस्तस्यान्तर्मध्ये तिष्ठतीति आकाशस्फटिकान्तःस्थः ज्वलन्तः प्रज्वलन्तो ज्वाला यस्येति ज्वलज्ज्वाला स चासावनलो वैश्वानरो ज्वलज्ज्वालानल आकाशस्फटिकान्तःस्थश्चासौ ज्वलज्ज्वालानलश्चाकाशस्फटिकान्तःस्थज्वलज्ज्वालानलस्तद्वदुज्ज्वलो देदीप्यमानस्तथोक्तस्तं । पुनः कथंभूतमर्हन्तं ? तेजसामुत्तमं तेजः—तेजसां तेजोयुक्तानां मध्ये उत्तममत्युत्कृष्टं तेजस्तेजोमण्डितोऽपि तेजस्तत् । ज्योतिषां ज्योतिर्मण्डितानां मध्ये उत्तममत्युत्कृष्टं ज्योतिः ज्योतिर्मण्डितोऽपि ज्योतिस्तत् केवलज्ञानलोचनविराजमानत्वात् । पुनरपि कथंभूतमर्हन्तं ? परमात्मानं—परम उत्कृष्ट आत्मा स्वभावो यस्येति परमात्मा तं परमात्मानं सिद्धस्वरूपमित्यर्थः । ईदृशमर्हन्तं किमर्थं ध्यायेत् ? निःश्रेयसाप्तये—परमनिर्वाणप्राप्तये । अभ्युदयाय कथं न ध्यायेदिति चेत्तस्य प्रासङ्गिकफलत्वात् । तथा चोक्तम्—

इति स्तुतिं देव ! विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षितोऽसि ।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥१॥

पूर्वोक्तलक्षणस्यार्हद्ध्यानस्य फलमाह;—

वीतरागोऽप्ययं देवो ध्यायमानो मुमुक्षुभिः ।
स्वर्गापवर्गफलदः शक्तिस्तस्य हि तादृशी ॥ ६३ ॥

वृत्तिः—अयं-अर्हन् । देवः-परमाराध्यः । वीतरागोऽपि सन् रोषतोषरहितोऽपि सन् । मुमुक्षुभिः-मोक्तुमिच्छुभिः पुरुषैः । ध्यायमानः—चिन्त्यमानः सन् । स्वर्गापवर्गफलदः-स्वर्गमोक्षसौख्यदायको भवति । कथं प्रीतिलक्षणरागरहितोऽपि तद्द्वयदायक इत्याशङ्कायामाह-शक्तिस्तस्य हि तादृशी-तस्य भगवतः श्रीमदर्हद्देवस्य, तादृशी तद्द्वयप्रदानदक्षा शक्तिः सामर्थ्यं, वस्तुस्वभावादित्यर्थः । कथं हि स्फुटमिति शेषः ॥ ६३ ॥

ॐ ह्रीं धात्रे वषट् प्रतिमास्पर्शं करोमीति स्वाहा ।

यः श्रीमदैरावणवाहनेन निवेशितोऽङ्के विधृतातपत्रः ।
ईशानशक्रेण सनत्कुमारमाहेन्द्रसच्चामरवीज्यमानः ॥ ६४ ॥
शच्यादिभिः श्यादिभिरप्युदारं देवीभिराप्तोज्ज्वलमंगलाभिः ।
पुरस्सरन्तीभिरिवाप्सरोभिरग्रे नटन्तीभिरुपास्यमानः ॥६५॥
शेषैस्तु शक्रैर्जय जीव नन्द प्रसीद शश्वत्त्रतप क्षपारीन् ।
इत्यादिवागुल्वणितप्रमोदैर्मुहुः प्रसूनैरुपहार्यमाणः ॥६६॥
सुरैः स्फुटास्फोटितगीतनृत्यवादित्रहास्योत्प्लुतवल्गितानि ।
समंगलाशीर्धवलस्तुतीनि स्वैरं सृजद्भिः परिचार्यमाणः ॥६७॥
अहो प्रभावस्तपसां सुदूरमपि व्रजित्वा प्रतिमास्वपीक्ष्यः ।
यः सैष साक्षाद्ध्रुवमीक्षितोऽर्हन्नभेयनादिः स्वयमात्मबन्धः॥६८॥
सविस्मयानन्दमिति ब्रुवाणैरालोक्यमानोऽभिमुखागतैः खे ।
देवर्षिभिः स्पर्धितदेवयुग्मनभोगयुग्मैरपि सेव्यमानः ॥६९॥
प्रदक्षिणाध्वव्रजनेन नीत्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि मेरुमूर्ध्नम् ।
निवेश्य तत्रस्थ शिलोपपीठे क्षीरोदनीरैः स्नपितः सुरेन्द्रैः ॥७०॥
त देवदेवं जिनमद्यजातमध्यास्थितं लोकपितामहत्वम् ।
इमं निवेश्योत्तरवेदिपीठे प्राग्वत्क्रमस्मिन् विधिनाभिषिञ्चे ॥७१॥
—अष्टभिः कुलकम् ।

वृत्तिः—तं—त्रिभुवनप्रसिद्धं । इमं—प्रत्यक्षीभूतं । जिनं—अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहेतुभूतकर्मशत्रुजयनशीलं सर्वज्ञवीतरागं । विधिना शास्त्रोक्तप्रकारेण । अभिषिञ्चे—अहं स्नापयामि । कथंभूतं तं ? देवदेवं—देवानामिन्द्रादीनां देवं परमाराध्यं । भूयोऽपि कथंभूतं जिनं ? अप्रजातमपि अधुनोत्पन्नमपि । लोकपितामहत्वमास्थितं—लोकानां पितृपितृत्वे स्थितं । किं कृत्वा पूर्वं ? अस्मिन्—प्रत्यक्षीभूते । उत्तरवेदिपीठे—ईशानकोणेषुपरिस्थापितसिंहासने । प्राग्वक्त्रं—पूर्वाभिमुखं, निवेश्य—स्थापयित्वा । महाभिषेकविध्यपेक्षया तूत्तरवेदिः प्रवरवेदिरिति भावः ॥६०॥ तं कमभिषिञ्चे ? यः—भगवान्, श्रीमदैरावणवाहनेन—सौधर्मेण, अङ्के—उत्संगे, निवेशितः—आरोपितः । पुनरपि तं कं ? यो भगवान्, ईशानशक्रेण—द्वितीयस्वर्गाधिपतिना, विधृतातपत्रः—विशेषेणारोपितश्वेतच्छत्रः । यः कथंभूतः ? सनत्कुमारमाहेन्द्रसचामरवीज्यमानः—सनत्कुमारस्तृतीयस्वर्गनाथः, माहेन्द्रश्चतुर्थत्रिदशालयाधीशः, ताभ्यां कर्तृभूताभ्यां, सचामराभ्यां समीचीनचमरीरुहाभ्यां करणभूताभ्यां, वीज्यमानः उत्क्षिप्यमाणः ॥६१॥ यो भगवान्, शेषैस्तु—ब्रह्मलान्तवशुक्रशतारानतप्राणतारणाच्युतप्रमुखैः शक्रैः—देवेन्द्रैः मुहुः—वारंवारं । प्रसूनैः—पारिजातादिभिः पुष्पैः, उपहार्यमाणः—प्रकीर्यमाणः । कथंभूतैः शेषैः शक्रैः ? इत्यादिवाग्गुल्फितप्रमोदैः—इतिप्रभृतिवचनाभिव्यञ्जितपरमानन्दैः । इतीति किं ? हे भगवन् तीर्थंकरपरमदेव ! त्वं शश्वत्—निरन्तरं, जय—सर्वोत्कर्षेण प्रवृत्तस्व तुभ्यमस्माकं नमस्कारोऽस्त्वित्यर्थः । हे भगवन् ! त्वं जीव—दीर्घायुर्भव । हे भगवन् ! त्वं नन्द—धनधान्यसाम्राज्यसम्पत्समृद्धो भव । हे भगवन् ! त्वं प्रसीद प्रसन्नो भव, प्रसन्नेष्वस्माकं चित्तेषु साक्षादिव चमत्कुरु । हे भगवन् ! त्वं प्रतप—प्रकृष्टैश्वर्यवान् भव । हे भगवन् ! त्वं अरीन् बाह्याभ्यन्तरशत्रून्, क्षिप क्षयं नय ॥६२॥ यो भगवान्, सुरैः—सामानिकादिभिर्देवैः, परिचार्यमाणः—समन्तात्सेव्यमानः । सुरैः किं कुर्वद्भिः ? शृङ्गारस्फोटितगीतनृत्यवादित्रहास्योल्लुतवल्गितानि सृजद्भिः—कुर्वद्भिः,

आस्फोटितं करतालः, गीतं गानं, नृत्यं अङ्गविक्षेपलक्षणं नर्तनं, वादित्रं ततविततघनसुषिरभेदेन चतुर्विधवाद्यं, हास्यं परस्परनर्मभाषणं, उत्प्लुतं ऊर्ध्वमुच्छलनं, वल्गितं ऊर्ध्वमितस्ततो चलनं, स्फुटानि प्रकटानि तानि च तानि आस्फोटितादीनि चेति विग्रहः। कथंभूतानि आस्फोटितादीनि ? समंगलाशीर्धवलस्तुतीनि-मंगलानि स्वस्ति-कल्याण-जैवातृक इत्यादिवचनानि। अथवा मंगलैः-बीजपूरनालिकेरपूगीफलनागवल्लीपत्रादिभिरुपलक्षिता आशिष आशीर्वचनानि मंगलाशिषो धवला गानविशेषा मंगलाशिषश्च धवलाश्च मङ्गलाशीर्धवलाः सह मंगलाशीर्धवलैः वर्तन्त इति समङ्गलाशीर्धवलाः (ता एव स्तुतयो यत्र) तानि। कथं यथा भवति स्वैरं—यथेष्टम् ॥६४॥ कथंभूतो यः ? देवर्षिभिः—आकाशचारणैः, आलोक्यमानः—समन्ताल्लोचनगोचरीक्रियमाणः। कथंभूतैर्देवर्षिभिः ? खे—आकाशे, अभिमुखागतैः—सम्मुखमायातैः। किं कुर्वाणैर्देवर्षिभिः ? इति—पूर्वोक्तप्रकारेण, ब्रुवाणैः—भाषमाणैः। कथं यथा भवति ? सविस्मयानन्दं—विस्मयश्चाश्चर्यं, आनन्दश्च परमसौख्यं विस्मयानन्दौ सह विस्मयानन्दाभ्यां वर्तते यद्वचनकर्म तत्तथोक्तम्। इतीति किं ? सः—जगत्प्रसिद्धः। एषः—प्रत्यक्षीभूतः। अर्हन् तीर्थंकरपरमदेवः। ध्रुवमिति निश्चितं। साक्षात्प्रत्यक्षेण। ईक्षितः—विलोकितः दृष्टः। तेन भगवता तीर्थंकरपरमदेवेन ईक्षितेन सता किं जातं ? आत्मबन्धः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशलक्षणकर्मजीवप्रदेशान्योन्यप्रवेशः, अभेदि स्वयमेव विघटितः। कथंभूतो बन्धः ? अनादिः—बीजांकुरन्यायेन सातत्यवर्तमानः। कथं ? स्वयं—आत्मना स्वभावेनेत्यर्थः। स कः ? यः—भगवान्। प्रतिमास्वपि—पाषाणादिघटितप्रतिच्छन्देष्वपि। ईक्ष्यः—ईक्षितुं योग्यः। किं कृत्वा पूर्वं ? सुदूरमपि व्रजित्वा—अतिविप्रकृष्टमपि सम्मेदाचलादौ गत्वा। अहो—आश्चर्यं। तपसां—पूर्वभवप्रतिपालितनिरतिचारव्रतानां। प्रभावः—अचिन्त्यशक्तिविशेष इति। यो भगवान् स्पर्धितदेवयुम्मन-

भोगयुग्मैरपि सेव्यमानः—आराध्यमानः । स्पर्धितानि स्फुटास्फोटितादिविधानैरनुकृतानि, देवयुग्मानि देवदेवीद्वन्द्वानि यैस्तानि स्पर्धितदेवयुग्मानि तानि च तानि नभोगयुग्मानि विद्याधरविद्याधरीयुगलानि स्पर्धितदेवयुग्मनभोगयुग्मानि तैस्तथोक्तैः ॥६५–६६॥ यो भगवान् जिनः सुरेन्द्रैः स्नपितः—अभिषिक्तः । कैः कृत्वा ? क्षीरोदनीरैः—क्षीरसागरजलैः । किं कृत्वा पूर्वं ? पूर्वोत्तरस्यां दिशि—ऐशान्यां ककुभि । मेरुशृङ्गं—हेमाद्रिशिखरं । नीत्वा—प्रापय्य । केन ? प्रदक्षिणाध्वव्रजनेन—मेरुं दक्षिणहस्तपार्श्वे कृत्वा व्योममार्गगमनेन । पुनश्च किं कृत्वा स्नपितः ? तत्रत्यशिलोपपीठे निवेश्य—स्थापयित्वा तत्र तस्मिन् मेरुशृङ्गे भवा शाश्वतरूपेण संजाता तत्रत्या, तत्रत्या चासौ शिला च पाण्डुकशिला तत्रत्यशिला तस्यामुपमुच्चैस्तरं पंचशतधनुःप्रमाणं, अथवोच्चं प्रशस्तं पंचविधमाणिक्यजटितहाटकमयत्वात्, अथवोच्चं प्रधानमिन्द्रपीठद्वयमध्यवर्तित्वात्, तच्च तत्पीठं च सिंहविष्टरमुपपीठं तस्मिंस्तत्रत्यशिलोपपीठे ॥ ६७[1] ॥ ६१–६८ ॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीं धर्मतीर्थाधिनाथभगवन्निह पाण्डुकशिलापीठे तिष्ठ तिष्ठेति स्वाहा । श्रीवर्णे प्रतिमानिवेशनं स्थापनम् ।

सैषा मेरुतटी जिनालयपुरःक्षोणी तदेतन्मृजा—
पीठं पाण्डुशिलासनं प्रतिनिधिः सोऽर्हन्नसार्वोहतः ।
इन्द्रः सोऽहमुपासकाः क्रतुभुजस्तेऽमी स्वकृत्योद्यताः
सा चैषाभिषवाङ्गसम्पदखिलं तत्सिद्धमिष्टं हि नः ॥७२॥

वृत्तिः—एषा—प्रत्यक्षीभूता । जिनालयपुरःक्षोणी—जिनचैत्यालयाग्रभूमिः, सा—जगत्प्रसिद्धा, मेरुतटी वर्तते । एतत्—प्रत्यक्षीभूतं, मृजापीठं—शुद्धपीठं, तत्—जगत्प्रसिद्धं, पाण्डुशिलासनं—पांडुकशिलासिंहासनं वर्तते । असौ—प्रत्यक्षीभूतः, प्रतिनिधिः—प्रतिमा, सः—जग-

१—छापाङ्कितमस्य श्लोकस्य व्याख्या पुस्तकाच्च्युता ।

त्प्रसिद्धः, अर्हन्—तीर्थंकरपरमदेवो वर्तते। अहं—प्रत्यक्षीभूतः आर्हतः—जैनः, सः—जगत्प्रसिद्धः, इन्द्रः सौधर्मेन्द्रो वर्तते। अमी—प्रत्यक्षीभूताः, उपासकाः—ते—जगत्प्रसिद्धाः, क्रतुभुजः—देवा वर्तन्ते। कथम्भूता उपासकाः? स्वकृत्योद्यताः—आत्मीयधर्मैककर्मनिरताः। एषा—प्रत्यक्षीभूता, अभिषवाङ्गसम्पत्—अभिषेकसामग्रीसमृद्धिः, सा—जगत्प्रसिद्धा, अभिषवाङ्गसम्पद्वर्तते। तत्—तस्मात्कारणात्। अखिलं—समस्तं। इष्टं—यज्ञयोग्यसामग्र्यं। नः—अस्माकं। सिद्धं—उपपन्नं प्राप्तिमायातं। कथं? हि—स्फुटमिति शेषः॥ ७२॥

श्रीमण्डपादिषु शक्रमण्डपादिभावस्थापनार्थमाद्यविधिं विदध्यात्।

वृत्तिः—श्रीमण्डपादिषु—मण्डपपीठप्रतिमोपासकस्नपनार्चनसामग्र्यादिषु, आद्यविधिं विदध्यात्—उत्पन्नकुसुमालुलितदर्भदूर्वापुष्पाक्षतं क्षिपेदित्यर्थः। किमर्थं? शक्रमण्डपादिभावस्थापनार्थं—शक्रो हि मेरुमस्तके त्रैलोक्यलोकावकाशदानसमर्थं महान्तं मणिमण्डपं रचयति (सः) शक्रमण्डपः, शक्रमण्डप आदिर्येषां पीठादीनां ते शक्रमण्डपादयस्तेषां भावस्थापनं यथावद्वस्तुसंकल्पः शक्रमण्डपादिभावस्थापनं शक्रमण्डपादिभावस्थापनाय शक्रमण्डपादिभावस्थापनार्थम्।

यज्ञाङ्गसन्निधापनम्।

उक्तं च—

प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापनम्।
पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम्॥ १॥

अथातः पूजाविधानम्:—

आह्वाननस्थापनसन्निधापनै—
र्जिनं सपाद्याचमनावतारणैः।

भक्त्या जलाद्यैरधिवास्य दिक्पतीन्
प्रसाद्य नाद्याद्यधिमुत् सुनोमि तम् ॥ ७३ ॥

वृत्तिः—तं—जिनं, सुनोमि—अभिषिञ्चामि अहं। किंकृत्वा पूर्वं ? जिनं—तीर्थंकरपरमदेवं, अधिवास्य—स्नपनविलेपनधूपनादिभिराराध्य। कैः कृत्वाधिवास्य ? आह्वाननस्थापनसन्निधापनैः—आह्वान्यतेऽनेन आह्वाननं, स्थाप्यतेऽनेन स्थापनं, सन्निधाप्यतेऽनेन सन्निधापनं तैस्त्रयोभैः। कथंभूतस्तैः ? सपाद्याचमनावतारणैः—पाद्यं च पादप्रक्षालनोदकं, आचमनं चेषज्जलपानं, अवतारणानि च पुष्पाक्षतादीनि, सह पाद्याचमनवतारणैर्वर्तन्ते इति सपाद्याचमनावतारणानि तैः। न केवलमेतैरधिवास्य अपि तु जलाद्यैः—जलचन्दनाक्षतादिभिश्चाधिवास्य। कया ? भक्त्या—परमधर्मानुरागेण। पुनश्च किं कृत्वा पूर्वं ? दिक्पतीन्—इन्द्रादिदिक्पालान्। प्रसाद्य—प्रसन्नीकृत्य पूजयित्वेत्यर्थः। कथंभूतोऽहं ? नाद्याद्यधिमुत्—नाद्यादिभिर्नृत्यगीतवादित्रादिभिरधिका मुत्प्रहर्षो यस्येति नाद्याद्यधिमुत् ॥ ७३ ॥

स्वान्ते भान्तमपि स्फुटं श्रुतबलादाह्वानयामीह य—
द्यच्छुद्धात्मनि सुप्रतिष्ठितमपि त्वां स्थापयामीश ! यत्।
कुर्वे सर्वगमप्युपान्तगमपि त्यक्तं विकारैः सदा
पाद्याद्यैश्च पुनामि यद्विधिरसावित्येव तत्रोत्तरम् ॥७४॥

वृत्तिः—हे ईश ! —त्रैलोक्यनाथ ! । त्वां—भवन्तं । इह—अस्मिन् यज्ञे । यदहमाह्वानयामि—आकारयामि । कथंभूतं त्वां ? स्वान्ते—मम मनसि, भान्तमपि—स्फुरन्तमपि चमत्कुर्वन्तमपि। कथं ? स्फुटं—करकलितामलकतया प्रकटं यथा भवति। कस्मात्स्वान्ते भान्तं ? श्रुतबलात्—पूर्वापरविरोधरहितशास्त्रसामर्थ्यात्। हे ईश ! हे स्वामिन् ! यदहं त्वां स्थापयामि। कथंभूतं त्वां ? शुद्धात्मनि—कर्मकलङ्करहितात्मनि सुप्रतिष्ठितमपि—अतिनिश्चलतया संस्थितमपि। हे ईश ! यदहं त्वामु-

पान्तनं कुर्वे सन्निहितं करोमि। कथंभूतं त्वां ? सर्वगमपि—केवलज्ञानापेक्षया लोकालोकव्यापिनमपि। हे ईश ! यदहं त्वां पुनामि—पवित्रयामि। कैः कृत्वा ? पाद्यार्घैः—पादप्रक्षालाचमनादिभिः। कथंभूतं त्वां ? सदा—सर्वकालं, विकारैस्त्यक्तमपि अष्टादशदोषै रहितमपि। तत्रेत्येव—नान्यदुत्तरं—प्रतिवचनं। इतीति किं ? असौ विधिः—अयमनुक्रमो रीतिरित्यर्थः॥ ७४॥

प्रकृतकर्मविध्यभिधानाय प्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

वृत्तिः—प्रकृतकर्मविध्यभिधानाय—प्रारब्धयज्ञकर्मानुक्रमकथनाय। अन्यत्सुगमम्।

भगवन् ! प्रसीद सपरिवार इहेहेहि परमकारुणिक।
विष्टरमिदमधितिष्ठाधितिष्ठ कुरु कुरु दृशा प्रसादं मे॥७५॥

वृत्तिः—भगवन्नित्यादि आचार्या (?)।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इति स्मृतम्॥ १॥

इत्युक्तलक्षणो भगो विद्यते यस्य स भवति भगवांस्तस्य सम्बोधनं क्रियते हे भगवन्। हे परमकारुणिक—परम उत्कृष्टः कारुणिकः करुणया सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तैकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्तप्राणिनां दयया चरति गच्छतीति कारुणिकस्तस्य सम्बोधनं क्रियते हे परमकारुणिक ! त्वं प्रसीद प्रसन्नो भव। इह—अस्मिन् प्रतिबिम्बे स्थाने वा एहि एहि आगच्छागच्छ। कथंभूतः सन्नेहि ? सपरिवारः—सपरिच्छदः। न केवलमेहि, अपि तु, इदं—प्रत्यक्षीभूतं, विष्टरं—सिंहासनं, अधितिष्ठाधितिष्ठ—एतद्विष्टरमधिकृत्याधिकृत्य तिष्ठ तिष्ठ स्थिरीभव स्थिरीभव। दृशा—दृष्ट्या, मे—मम, प्रसादं—कारुण्यं, कुरु कुरु—विधेहि विधेहि॥ ७५॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं पूर्वैरेहि,:तिष्ठ तिष्ठ।

मम सन्निहितो भव भव संवौषट् ठः ठः वषडिति क्रोडैः ॥७६॥
मंत्रैर्नमोऽर्हते स्वाहेत्यन्तैरर्हतोऽम्बुधौतांह्रेः ।
वार्गन्धाक्षतपुष्पैर्विदधाम्यावाहनादिविधीन् ॥७७॥
—युग्मम् ।

वृत्तिः—अर्हतः—तीर्थंकरपरमदेवस्य । आवाहनादिविधीन्—आह्वान-स्थापना-सन्निधिकरणविधानानि । अहं विदधामि— करोमि । कथंभूतस्यार्हतः ? अम्बुधौतांह्रेः —जलप्रक्षालितपादस्य । कैः कृत्वा ? मंत्रैः—गुरुभाषकैः । कथंभूतैर्मंत्रैः ? ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हंपूर्वैः—त्रिष्वपि मंत्रेष्वेतानि षड्बीजानि प्रथमं भवन्ति । पुनः कथंभूतैर्मंत्रैः ? एह्येहि—तिष्ठ तिष्ठ—मम सन्निहितो भव भव —संवौषट् ठः ठः वषडिति-क्रोडैः—इति एतानि पदानि क्रोडेषु मध्येषु येषां इति क्रोडास्तैः । इतीति कि ? एहि एहि संवौषट् इत्यावाहनस्य मध्यपदं, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनमंत्रस्य मध्यपदं, मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधापन-मंत्रस्य मध्यपदं । पुनः कथंभूतैर्मंत्रैः ? इत्यन्तैः—एतानि पदान्यन्तेषु येषां मन्त्राणां ते इत्यन्तास्तैः । इतीति किं ? नमोऽर्हते स्वाहा । कैः कृत्वा ? पुनरावाहनादिविधीन् विदधामि ? वार्गन्धाक्षतपुष्पैः—जलचन्दन-तन्दुलकुसुमैर्मिश्रीकृतैरिति शेषः ॥ ७६–७७ ॥

अथ तानेव मंत्रान् स्पष्टतया कथयति—

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं एहि एहि संवौषट् नमोऽर्हते स्वाहा ।

आह्वानमंत्रः ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः नमोऽर्हते स्वाहा ।

स्थापनमंत्रः ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं मम सन्निहितो भव भव वषट् नमोऽर्हते स्वाहा ।

सन्निधापनमंत्रः ।

सार्धैकोनविंशतिरक्षराणि पूर्वस्य, अष्टादशवर्णा द्वितीस्य, सार्धचतुर्विंशतिरक्षराणि तृतीयस्य मंत्रस्य ।

एभिस्त्रिभिर्मंत्रैः किं क्रियत इत्यतः प्राह;—

तीर्थोदकैर्जिनपादौ प्रक्षाल्य तदग्रे पृथग्मंत्रानुच्चारयन् पुष्पांजलिं प्रयुञ्जीत ।

वृत्तिः—तीर्थोदकैः—निर्मलजलैः, जिनपादौ—तीर्थंकरपरमदेवचरणौ, प्रक्षाल्य—प्रधाव्य प्रकर्षेण धौत्वा, तदग्रे—जिनाग्रे, पृथक्—भिन्नं भिन्नं, मंत्रानुच्चारयन्—शनैः शनैः पठन् । पुष्पाञ्जलिं जलचन्दनाक्षतपुष्पचतुष्टयाञ्जलिं प्रयुञ्जीत—हस्तं निकटीकृत्य स्थापयेत् ।

जिनपादाब्जयोर्जन्मज्वरनाशत्ययोः पुरः ।
सर्वविघ्नापहां पंचगुरुमुद्रां करोम्यहम् ॥ ७८ ॥

वृत्तिः—जिनपादाब्जयोः—तीर्थंकरपरमदेवचरणकमलयोः । पुरः—अग्रे । अहं, पंचगुरुमुद्रां—पंचपरमेष्ठिमुद्रां । करोमि—विदधामि । कथंभूतयोर्जिनपादाब्जयोः ? जन्मज्वरनाशत्ययोः—जन्म संसारस्तदेव ज्वरः सन्तापरोगः शरीरमानसदुःखहेतुत्वात्, जन्मज्वरस्तस्य विनाशने नाशत्यौ स्वर्गे वैद्यौ जन्मज्वरनाशत्यौ तयोः भवसन्तापचिकित्सायां स्वर्गवैद्यसदृशयोरित्यर्थः । कथंभूतां पंचगुरुमुद्रां ? सर्वविघ्नापहां—समस्तक्षुद्रोपद्रवविनाशिकाम् । रूपकालङ्कारोऽतिशयश्च । पंचगुरुमुद्रालक्षणं यथा—

अङ्गुष्ठाभ्यां कनीयस्योस्तर्जनीभ्यामनामिके ।
मध्या च मध्यया युक्त्या योजयेच्च परस्परम् ॥ १ ॥

पंचगुरुमुद्राबन्धनम् ।

अर्वाग्दृशां जिन ! भवद्वचनैकगम्यै—
यज्ञोत्सवग्रहवशाद्बहिरुल्लसद्भिः ।
स्वस्मिन् प्रदेशपटलैः प्रभवन् करोमि
त्वां स्वस्य सन्निहितमर्पितमंत्र ! यष्टुम् ॥७९॥

वृत्तिः—हे जिन ! जितघातिकर्मन् । हे अर्पितमंत्र ! उपन्यस्ताह्वाहनादिमंत्र । त्वां–भवन्तं । स्वस्य–आत्मनः । सन्निहितं–निकटवर्तिनं । करोमि–विदधाम्यहं । किं कुर्वन् ? प्रदेशपटलैः—आत्मप्रदेशसमूहैः कृत्वा । स्वस्मिन् आत्मनि । प्रभवन्–समर्थो भवन् । कथंभूतैः ? प्रदेशपटलैः ? अर्वाग्दृशां–अवरदृशां परादन्यदृशां निश्चयाद्भिन्नमतीनां केवलदर्शनरहितानां व्यवहारदृष्टीनां पुरुषाणां, भवद्वचनैकगम्यैः-भवतस्तव वचनेन, एकेनाद्वितीयेन गम्याः शक्या दृष्ट (?) भवद्वचनैकगम्यास्तैः । किं कुर्वद्भिः प्रदेशपटलैः ? बहिः—शरीराद्बाह्ये, उल्लसद्भिः–उद्गच्छद्भिः निःसरद्भिः । कस्मात् ? यज्ञोत्सवग्रहवशात्—जन्माभिषेकमहोत्सवाक्षेपवशात् ॥ ७६ ॥

ॐ उसहाय दिव्वदेहाय सज्जोजादाय महापण्णाय अणंतचउट्ठयाय परमसुहपइट्ठियाय णिम्मलाय सयंभुवे अजरामरपदपत्ताय चउम्मुहपरमेट्ठिणे अरहंताय तिलोयणाहाय तिलोयपुज्जाय अट्ठदिव्वदेहाय देवपरिपुज्जिदाय परमपदपत्ताय मम इत्थवि सन्निहिदाय स्वाहा ।

वृत्तिः—उसहाय–वृषभाय वृषेण धर्मेण भातीति वृषभस्तस्मै । दिव्वदेहाय–दिव्यदेहाय मलमूत्रादिरहितत्वात्प्रभापरिकराद्युपेतत्वान्म-

नोक्षशरीराय । सद्योजादाय–तत्कालजन्मप्राप्ताय । तथापि महापण्णाय
महती लोकालोकस्वरूपप्रकाशिका केवलज्ञानदर्शनस्वरूपिणी ज्ञानत्रय-
लक्षणा वा प्रज्ञा यस्य स महाप्रज्ञस्तस्मै । अणंतचउट्ठियाय–अनन्तज्ञा-
नानन्तदर्शनानन्तवीर्यानन्तसुखलक्षणानन्तचतुष्टयाय । परमसुहपइ-
ट्ठियाय–अतीन्द्रियपरमसुखप्रतिष्ठिताय यदि वा परमशुभप्रतिष्ठिताय
सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्रसहितायेत्यर्थः । णिम्मलाय–रागद्वेषरहिताय कर्म-
मलकलङ्कवर्जिताय वा । सयंभुवे–परोपदेशमन्तरेण विज्ञाविधेयवस्तवे
इत्यर्थः । अजरामरपदपत्ताय–जरामरणरहितस्थानगताय । चउम्मु-
हपरमेट्ठिणे–परमे इन्द्रादीनां पूज्ये पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी चतुर्मुखश्चासौ
परमेष्ठी चतुर्मुखपरमेष्ठी तस्मै । अरहंताय–अरिर्मोहो रजो ज्ञानदर्शनाव-
रणद्वयं रहस्यमन्तरायस्तान् हत्वा इन्द्रादिकृतामनन्यसंभविनीमर्हणा
मर्हतीत्यर्हंस्तस्मै अर्हते इति । तिलोयणाहाय—त्रिभुवनस्वामिने । तिलोय-
पुज्जाय—त्रिभुवनस्थितभव्यजनपूज्याय । अट्ठदिव्वदेहाय—"णलया
बाहू य तहा णियंबपुट्ठी उरो य सीसं च । अट्ठ व हु अंगाइं सेसउवंगाइं
देहस्स ॥ १ ॥ इति गाथाकथितक्रमेण द्वे जंघे द्वे भुजे पंचमो नितम्बः
षष्ठं पृष्ठं सप्तममुरोऽष्टमं शीर्षं, अष्टौ दिव्यमानुषीप्रकृतेरतिक्रान्ता देहा
अंगानि यस्य स तस्मै, उपलक्षणं चैतदुपाङ्गानां भगवतः सर्वाङ्गेषु
सुन्दरत्वात् । देवपरिपुज्जिदाय–अदेवा हरिहरहिरण्यगर्भादयः, कुदेवा
व्यन्तरादयः, देवाः कल्पवास्यादयः, एतेषां त्रिविधानामपि देवानां परि
समन्तात्पूजितो देवपूजितो देवाधिदेव इत्यर्थस्तस्मै । परमपदपत्ताय
परमपदप्राप्ताय परिज्ञातात्मस्वरूपायेत्यर्थः । मम इत्थवि सण्णिहिदाय-
परमपदं प्राप्तोऽपि त्रिजगदूर्ध्वं गतोऽपि भगवानत्र मम सन्निहितो निकट-
वर्ती वर्तत एवेति वस्तुमाहात्म्यमादरणम् ।

इदमुच्चारयन् प्रतिमां परामृशेत्—दक्षिण करेण स्पृशेदित्यर्थः ।

आह्वाननादिविधानम् ।

सिद्धिं बुद्धिं विशुद्धिं धृतिमघविधुतिं बन्धुतां वृद्धिमृद्धिं
कान्तिं शान्तिं प्रसत्तिं रिपुशतविजितिं पुत्रपौत्रादिततिम् ।
सौभाग्यं भाग्यमाज्ञां सुचरितमरुजं शौर्यमौदार्यमोज—
स्तेजो विद्यां यशश्च प्रथयतु भवतां स्थापितोऽत्रायमर्हन् ।८०।

वृत्तिः—अत्र-अस्मिन् स्नपनपीठे । अयं-प्रत्यक्षीभूतोऽर्हन् तीर्थंकरपरमदेवः, स्थापितः सन् भवतां—युष्माकं सिद्धि-वाङ्मनोदैव-लक्षणां प्राप्तिं प्रथयतु-स्फीतीकरोतु । तथा बुद्धिं—प्रज्ञां । विशुद्धिं—परिणामनिर्मलतां । धृतिं—सन्तोषं । अघविधुतिं—दुरितविनाशं । बन्धुतां—ज्ञातिसमूहं । वृद्धिं—विवाहादिमाङ्गल्यं । ऋद्धिं—धनधान्यादिकं । कान्तिं—लावण्यं । शान्तिं—विघ्नोपशमनं । प्रसत्तिं—प्रसन्नतां । उज्ज्वलत्वमित्यर्थः । रिपुशतविजितिं—रिपूणां शतानि सहस्राणि तेषां विजितिं पराभूतिं । पुत्रपौत्रादिततिं—पुत्राश्च पौत्राश्च, आदिशब्दान्मित्राणि च तेषां ततिं विस्तारं । सौभाग्यं-सुभगत्वं आदेयमूर्तितां । भाग्यं पुण्यं । आज्ञां-आदेशं । सुचरितं-निरतिचारचारित्रं । अरुजं न रुगरुक् तामरुजमारोग्यं । शौर्यं-सौभाग्यं (?) । औदार्यं—सारल्यं दातृत्वं दानशीलत्वमिति यावत् । ओजः—उत्साहं । तेजः—शरीरदीप्तिं प्रतापं वा । विद्यां-शब्दागम-युक्त्यागम—परमागमप्रावीण्यं । यशः पुण्यगुणकीर्तनं । चकारादन्यदपि यदिष्टं वस्तु तत्सर्वं प्रथयतु । समुच्चयालङ्कारः ॥ ८० ॥

इत्याशीर्वादः ।

नीत्वा सूतिगृहात् सुराद्रिशिखरं संस्थाप्य सिंहासने
यः पाद्याद्युपचारमाप्यत कृतप्राक्कर्मणा वज्रिणा ।
तस्याहं विदधे सधर्ममणिवार्धारां प्रयुज्य क्रम—
द्वन्द्वे पाणितले च पाद्यविधिमाचामक्रियां च क्रमात् ॥८१॥

वृत्तिः—तस्य—तीर्थंकरपरमदेवस्य। अहं पाद्यविधिं—पादप्रक्षालनोदकविधानं। आचामक्रियां च—ईषज्जलपानविधानं। क्रमात्—अनुक्रमेण। विदधे—कुर्वे। किं कृत्वा पूर्वं? क्रमद्वन्द्वे—चरणयुगले। पाणितले च—दक्षिणकरस्योपरि, सधर्ममणिवार्धारां—सुवर्णमणिमुक्ताफलादिसहितजलधारां प्रयुज्य—संयुज्य। तस्य कस्य? यः—भगवांस्तीर्थंकरपरमदेवः कर्मतापन्नः। वज्रिणा—इन्द्रेण कर्तृभूतेन। पाद्याद्युपचारं—पाद्याचमनादिव्यवहारं। आप्यत-प्रापितः। कथंभूतेन वज्रिणा? कृतप्राक्कर्मणा—कृतं विहितमनुष्ठितं प्राक्कर्म पुराकर्म कलशस्थापनान्तं कर्म येन स कृतप्राक्कर्मा तेन कृतप्राक्कर्मणा। किं कृत्वा पूर्वं? सूतिगृहात्—जन्मस्थानात्, सुराद्रिशिखरं—मेरुमस्तकं, नीत्वा-प्रापय्य। पुनश्च किं कृत्वा पूर्वं? सिंहासने—शाश्वतहरिविष्टरे, संस्थाप्य—सम्यङ्मंत्रपूर्वं स्थापयित्वा॥ ८१॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमोऽर्हते स्वाहा।

पाद्यमंत्रः—जिनपादप्रक्षालनमंत्र इत्यर्थः।

ॐ ह्रीं श्रीं झ्वीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः स्वाहा।

आचमनमंत्रः—ईषज्जलपानमंत्रः।

पाद्याचमनविधानम्।

पुष्पाक्षतगोमयभस्मभक्तसद्दूगन्धवर्धमानकदीपैः।
जलफलमृत्पिण्डकृशानलैश्च नीराजये जिनेशमहं त्रिः॥८२॥

वृत्तिः—अहं जिनेशं—जिनराजं। नीराजये—नीरस्य शान्त्युदकस्याजनमाजः क्षेपोऽत्रेति नीराजः, अथवा निःशेषेण राजनं नीराजः, नीराजं करोमीति नीराजये द्रव्याण्यक्षतद्रव्याणि जिनस्य परितोऽवतारयामीत्यर्थः। कथं? त्रिः—त्रीन् वारान्। कैः कृत्वा जिनेशं नीराजये? पुष्पाक्षतेत्यादि—पुष्पैरुपलक्षिता अक्षताः पुष्पाक्षताः, अथवा पुष्पाणि चाक्षताश्च पुष्पाक्षतं पुष्पाक्षतं च गोमयं च गोविट् भस्म च रक्षा भक्तं च

श्रूरः सद्गन्धवर्धमानकाश्च सुरभिसरावा दीपाश्च मङ्गलप्रदीपास्तथा तैः । जलं च शान्त्युदकं फलानि च मृत्पिण्डाश्च प्रशस्तमृत्तिकापिण्डाः कुशानलाश्च—दर्भाग्निस्ते तथा तैः । चकार उक्तसमुच्चयार्थस्तेन तन्मण्डनदूर्वादीनां यथासम्भवं ग्रहणम् ॥ ८२ ॥

एतान्येव दशमङ्गलद्रव्याणि वृत्तत्रयेण विशेषतो व्यञ्जयति देव इत्यादि;—

देवोऽस्माकं जिनोऽयं करकनकमयामत्रगैरक्षताढ्यै-
रेभिश्चित्रैः प्रसूनै रुचिमतिचरितान्यक्षतान्यातनोतु ।
दूर्वारक्षोमभूपैः क्षिपतु दुरितं गोमयोद्यस्य पिण्डैः
पुष्पाग्निप्लुष्टतज्जोज्ज्वलभसितकृतैर्भस्मपत्त्वष्टकर्मा ॥८३॥
पुष्पाक्षेमं सुभिक्षं सुरभिशशिकलास्पर्धिशाल्यन्नपिण्डै—
र्लक्ष्मीं धूपोद्गमोपस्कृतसुरभिरजःपंचकवर्धमानैः ।
चिद्रूपं दीप्यमानोद्धुरहिममधुरैर्दीपयत्वाशु दीपैः
सद्ध्यानं चम्पकादिप्रसवशशिरजःसिक्तवीपैस्तनोतु ॥८४॥
चोचाद्यैः सद्भिराशाकलमलघु फलैः पूरयत्वक्षकाम्यै-
र्दूर्वासिद्धार्थलाजाचितशिखरपरैः साधु मृद्वर्धमानैः ।
आधत्तामूर्ध्वैरैश्यं दहतु भवघनं दर्भपूलोमयाग्र-
ज्वालोल्लासैश्च वाद्यध्वनिवधरितदिक्चक्रमुत्तार्यमाणैः ॥८५॥

वृत्तिः—देवोऽस्माकमित्यादि । अयं—प्रत्यक्षीभूतो जिनः—अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहेतुकर्मशत्रुजयनशीलः । देवः—परमानन्दपदक्रीडासक्तः । एभिः—प्रत्यक्षीभूतैः । प्रसूनैः—पुष्पैः कृत्वा । रुचिमतिचरितानि—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि । अस्माकं—जिनभाक्तिकानां । आतनोतु—समन्ताद्विस्तारयतु । कथंभूतानि ? अक्षतानि—अखण्डितानि निरतिचाराणि । कथंभूतैः प्रसूनैः ? करकनकमयामत्रगैः—करयोर्हस्तयोः कनकमयं सुवर्णनिर्वृत्तं यदमत्रं भाजनं करकनकमयामत्रं

गच्छन्तीति करकनकमयामत्रगानि तैस्तथोक्तः। उभयहस्तोद्धृतहाटकभाजनस्थितैरित्यर्थः। पुनः कथंभूतैः प्रसूनैः ? अक्षताढ्यैः—तन्दुलमिश्रैः। पुनरपि कथंभूतैः प्रसूनैः ? चित्रैः—नानाविधैरनेकप्रकारैः। अथवा चित्रैः-ईषदुन्मिषितजातीचम्पकाद्युत्तमपुष्पतयाश्चर्यकारकैः, अरण्यार्कधत्तूरपलाशादिरहितैरित्यर्थः। तथा अयं जिनो देवोऽस्माकं दुरितं—पापं दुर्निमित्तं वा क्षिपतु—क्षयं नयतु। कैः कृत्वा ? गोमयोत्थस्य पिण्डैः—अरण्यचरगोकृत्पन्नमभूमिपतितं प्रशस्तं गोमयं गोमयोत्थपलस्य गोमयोत्थस्य पिण्डैः लड्डु (लड्डु) कैः। कथंभूतैर्गोमयोत्थस्य पिण्डैः ? दूर्वारचोप्रभूषैः—दूर्वा च हरिता रचोघ्नाश्च श्वेतसर्षपा, दूर्वारचोघ्ना भूषा मण्डनं येषां ते दूर्वारचोघ्नभूषास्तैस्तथोक्तैः। तथा करकनकमयामत्रगैरित्यपि विशेषणं सर्वत्र योजनीयम्। अयं जिनो देवोऽस्माकमष्टकर्मी—अष्टौ कर्माणि ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायनामानि समाहृतान्यष्टकर्मी तामष्टकर्मी। भस्मयतु—निर्दहतु। कैः कृत्वा ? पिण्डैरिति पूर्वोक्तमेवमाह्य। कथंभूतैः पिण्डैः ? पुण्याग्निप्लुष्टतज्जोज्ज्वलभसितकृतैः—पुण्यः पवित्रो दर्भजातो योऽसावग्निर्वैश्वानरस्तेन प्लुष्टं भस्मीकृतं, तज्जं गोमयोत्पन्नं, उज्ज्वलमतिनिर्मलं यद्भसितं भस्म तेन कृता निर्मितास्ते पुण्याग्निप्लुष्टतज्जोज्ज्वलभसितकृतास्तैस्तथोक्तैः ॥८३॥

पुष्यादित्यादि। तथायं जिनो देवोऽस्माकं क्षेमं—शिवं भद्रं कल्याणं शुभं मङ्गलमिति यावत्। पुष्यात्—पुष्टिं नयतु, न केवलं क्षेमं पुष्यात् अपि तु सुभिक्षं—रसधान्यवस्त्रादिसमर्घ्यता च पुष्यात्। कैः कृत्वा ? सुरभिशशिकलास्पर्धिशाल्यन्नपिण्डैः—सुरभि सुगन्धं शशिकलास्पर्धि प्रतिपच्चन्द्ररेखासदृशं यच्छाल्यन्नं कलमशालिभक्तं तस्य पिण्डैः। तथायं जिनो देवोऽस्माकं लक्ष्मीं—सम्पदं पुष्यादिति क्रियापदं पूर्वोक्तमेव ग्राह्यं। कैः कृत्वा लक्ष्मीं पुष्यात् ? धूपोद्गमोपस्कृतसुरभिरजःपंचकवर्धमानैः—धूपेन उद्गमैः पुष्पैश्चोपस्कृतं प्रतिवासितं यद्रजो मृत्तिका तस्य पंचकवः पंचवर्णां ये वर्धमानाः शरावास्तैः सम्पुटीकृतैः चतुःसंख्योपेतै-

रिति शेषः । तथायं जिनो देवोऽस्माकं चिद्रूपं—चैतन्यस्वभावं रागद्वेषमोहादिरहितमात्मानं । दीपयतु—चमत्कारयतु साक्षादिव दर्शयतु । कैः कृत्वा ? दीपैः । कथंभूतैर्दीपैः ? दीप्यमानोद्धुरहिममधुरैः—दीप्यमानेन जाज्वल्यमानेन, उद्धुरेणोत्कटेन, हिमेन कर्पूरेण, मधुरैरतिमनोहरैः । चिद्रूपं कथं दीपयतु ? आशु—शीघ्रं अनन्तभवभ्रमणं छेदयित्वेदानीमेवात्मानं प्रकटयत्वित्यर्थः । तथायं जिनो देवोऽस्माकं सद्ध्यानं—धर्म्यशुक्लध्यानं । तनोतु विस्तारयतु । कैः कृत्वा ? चम्पकादिप्रसवशशिरजःसिक्ततोयैः—चम्पकमादिर्येषां कमलकुवलयकेतकादीनां ते चम्पकादयस्ते च ते प्रसवाः पुष्पाणि चम्पकादिप्रसवाश्च शशिरजांसि च कर्पूरेणवस्तैः सिक्तानि मिश्रितानि प्रतिवासितानि भावितानि यानि तोयानि उदकानि तानि तथोक्तानि तैः ॥ ८४ ॥

तथायं जिनो देवोऽस्माकं आशाफलं—वाञ्छितलाभं । पूरयतु परिपूर्णं करोतु । कथंभूतमाशाफलं ? अलघु—स्वर्गमोक्षलक्षणं बृहत् । कैः कृत्वा ? फलैः । कथंभूतैः फलैः ? चोचाद्यैः—चोचानि नालिकेराणि, आद्यानि मुख्यानि येषां नारङ्गपूगजम्बीरबीजपूराम्रकदलीफलादीनां तानि चोचाद्यानि तैः । कथंभूतैः फलैः ? सद्भिः—वर्णगन्धरसाद्याढ्यतया, अत एवाक्षकाम्यैः—मनोनयननासिकादीन्द्रियप्रियैर्मनोहरैः । तथायं जिनो देवोऽस्माकं उर्वैश्वर्यं—षट्खण्डमण्डितमेदिनीराज्यं त्रैलोक्यराज्यं वाऽऽधत्तां कुरुतां । कथंभूतमुर्वैश्वर्यं ? साधु—येन राज्येनात्मा दुर्गतौ न पतति स्वर्गमोक्षौ च साधयति तत्साधु । अथवा साध्विति क्रियाविशेषणं तेनायमर्थः । उर्वैश्वर्यं कथं धत्तां ? साधु—नरकादिपातनिवारणतया हितं यथा भवति । कैः कृत्वोर्वैश्वर्यमाधत्तां ? मृद्वर्धमानैः—मृत्तिकापिण्डैः । अथवा साधुमृद्वर्धमानैरित्येकमेव पदं तेनायमर्थः साधुः समीचीना मलादिस्पर्शदोषरहिता स्वभावसुगन्धिश्च या मृन्मृत्तिका तस्या वर्धमानैश्चतुर्मानैरिति शेषः । कथंभूतैर्वर्धमानैः ? दूर्वासिद्धार्थलाजाञ्चितशिराखर्परैः—दूर्वा च प्रसिद्धैव, सिद्धार्थाश्च श्वेतसर्षपाः, लाजाश्चार्द्रतन्दुला

दूर्वासिद्धार्थलाजास्तैरञ्चितानि पूजितानि यानि शिखराग्रप्रभागास्तैः परा श्रेष्ठास्तैस्तथोक्तैः। तथायं जिनो देवोऽस्माकं भववनं—संसारकाननं। दहतु—भस्मीकरोतु। कैः कृत्वा? दर्भपूलोभयाग्रज्वालोल्लासैः—दर्भपूलस्योभयाग्रयोर्द्विपार्श्वयोर्ये ज्वालानामग्निकीलानामुल्लासा ऊर्ध्वक्रीडितानि तैस्तथोक्तैः। एतैर्दशभिरपि मङ्गलद्रव्यैः किं क्रियमाणैः? उत्तार्यमाणैः—अवतार्यमाणैस्त्रीन् वारान् तीर्थंकरपरमदेवस्योपरि परिभ्राम्यमाणैः। कथं भ्राम्यमाणैः? वाद्यध्वनिबधिरितदिक्चक्रं—वाद्यानां ततवितत्वघनसुषिरचतुर्विधवादित्राणां ध्वनिभिः शब्दैर्बधिरितानि दिक्चक्राणि दिङ्मण्डले स्थितलोककर्णच्छिद्राणि यस्मिन्नुत्तारणकर्मणि तथोक्तं। चकारः पुनरर्थे पादपूरणाय वा उक्तसमुच्चयार्थे बोद्धव्यः ॥८५॥

एतानि दशमङ्गलद्रव्याणि व्यस्तानि हस्ताभ्यामुद्धृत्य समस्तानि वा हेमादिपात्रे व्यवस्थाप्यावतारयेत्।

वृत्तिः—एतानि पूर्वोक्तलक्षणानि दशसंख्योपेतानि मङ्गलद्रव्याणि भव्यानां पापगालनसुखप्रदानि वस्तूनि व्यस्तानि पृथक्पृथग्भूतानि हस्ताभ्यां—कराभ्यां, उद्धृत्योच्चाल्य, समस्तानि वा एकहेलया हेमादिपात्रे सुवर्णरूप्यकांस्यादिभाजने, व्यवस्थाप्य—आरोप्य, अवतारयेत्—समन्तादुत्तारयेदित्यर्थः।

नीराजनविधानम्—नीरस्य शान्त्युदकस्याजनं क्षेपोऽत्रेति नीराजनं, अथवा निःशेषेण राजनं शोभनं कान्तीकरणं नीराजनं तस्य विधानं विधिरनुक्रमो रीतिः परिपाटिकेत्यर्थः।

जातीजपाबकुलचम्पकपद्ममल्ली—
कंकेल्लिकेतककुरण्टकपाटलाद्यैः।
कर्पूरहृद्यं प्रथमिको स्नपतोऽर्चतोऽर्हन्।
पुष्पाञ्जलिर्जिनपदोरुपधीक्रियेत ॥८६॥

वृत्तिः—जिनपदोः—जिनचरणयोर्विषये सम्बन्धित्वेन वा। पुष्पाञ्जलिः—कुसुमकरसम्पुटः। उपधीक्रियेत—उपढौक्येत क्षिप्येत

याजकाचार्येणेत्यर्थः । पुष्पाञ्जलिः किंकुर्वन् ? अलीन् भ्रमरान्, कर्षन्-आह्वयन् प्रसन्नतां नयन् । किं कुर्वतोऽलीन् ? अव्रतः—यथेष्टं यत्र कुत्रापि गच्छतः । पुनश्च किंकुर्वतः कर्षन् ? अहं प्रथमिको स्वनतः—अहं प्रथमं अहं प्रथमं गच्छामीति शब्दान् कुर्वतः । पुष्पाञ्जलिः कैः कृत्वा कर्षन् ? जातीत्यादि—जातयश्च मालतीपुष्पाणि, जपाश्च—रूद्रपुष्पाणि जासुवनकुसुमानीति देश्यान्, बकुलानि च बकुलतरु-पुष्पाणि वर्णोत्पलकुसुमानीति देश्यान् बकुलश्रीरिति यावत्, चम्पकानि च हेमपुष्पाणि राजचम्पकानि, पद्मानि च कमलानि, मल्लयश्च नालिकाचेल-कुसुमानि, कंकेल्लयश्चाशोकपुष्पाणि, केतकानि च केतकीपुष्पाणि, कुरंटकानि च पीताम्लानतरुपुष्पाणि, उक्तं च—"अम्लानस्तु महासहा तत्र शोणे:करवकस्तत्र पीते कुरण्टकः" पाटलाश्च ताम्रपुष्पीपुष्पाणि ता आद्या येषां वार्षिककुमुदकुन्दकुब्जकसप्तलायूथिकादीनां तानि यथोक्तानि तैस्तथोक्तैः ॥८६॥

पुष्पाञ्जलिः—जिनपूजनप्रतिज्ञानायेति शेषः ।

चंचद्रत्नमरीचिकाञ्चनकनद्भृङ्गारनालस्रुत—
श्रीखण्डस्फटिकादिवासितमहातीर्थाम्बुधाराश्रिया ।
हंतुं दुष्कृतमेतया स्वसमयाभ्यासोद्यतैराश्रितां
सत्कुर्वीय मुदा पुराणपुरुष ! त्वत्पादपीठस्थलीम् ॥८७॥

वृत्तिः—हे पुराणपुरुष!—पुराणश्चिरन्तनोऽनादिकालीनः पुरुषः पुराणपुरुषः, पुरौ महति नरेन्द्रनागेन्द्रदेवेन्द्रमुनीन्द्रपूजिते पदे शेते तिष्ठतीति पुरुषः वैश्रसिकाभिव्यक्तज्ञानचेतनासवेदकः, अथवा पुरा-णोऽनादिसिद्धान्ते प्रसिद्धः पुरुषः पुराणपुरुषः, अथवा पुराणि

सूक्ष्मबादरशरीराणि अणति विचारपूर्वं कथयतीति पुराणः पुराणश्चासौ पुरुषः पुराणपुरुषस्तस्यामन्त्रणं प्रणीयते हे पुराणपुरुष ! । त्वत्पादपीठ-स्थली-तव चरणासनाग्रभूमिम् । अहं सत्कुर्वीय-सम्मानयेयं । "विध्यादिषु सप्तमी च" इति वचनाद्विधौ सप्तमी । कया सत्कुर्वीय ? एतया-प्रत्यक्षीभूतया । चञ्चद्रत्नमरीचिकाञ्चनकनद्भृङ्गारनालस्रुतश्रीखण्डस्फुटिकादिवासितमहातीर्थाम्बुधाराश्रिया-चञ्चन्तश्चलन्तः प्रेङ्खन्तो रत्नमरीचयो यथाशोभं जटितहीरकमुक्ताफलादिरत्नमयो यस्मिन्निति चञ्चद्रत्नमरीचिः, काञ्चनेन स्वशरीरभूतेन सुवर्णेन कनत् दैदीप्यमानः काञ्चनकनत् एवं विशेषणद्वय-विशिष्टश्चासौ भृङ्गारः कनकालुकस्तस्य नालोऽधस्तनमुखं चञ्चद्रत्न-मरीचिकाञ्चनकनद्भृङ्गारनालस्तस्मात् स्रुतं निर्गतं, श्रीखण्डं चन्दनं स्फुटिकं कर्पूरं श्रीखण्डस्फुटिके आदिर्येषां मलकुवलयकेतकोकालेयलील-वंगैलादीनां श्रीखण्डस्फुटिकादयस्तैर्वासितं मिश्रितं भावितं श्रीखण्ड-स्फुटिकादिवासितं महतां क्षीरोदवियद्गंगादीनां तीर्थानामम्बु जलं महातीर्थाम्बु, चञ्चद्रत्नमरीचिकाञ्चनकनद्भृङ्गारनालस्रुतं च तत् श्रीखण्डस्फुटिकादिवासितं च तन्महातीर्थाम्बु च चञ्चद्रत्नमरीचिकाञ्च-कनद्भृङ्गारनालस्रुतश्रीखण्डस्फुटिकादिवासितमहातीर्थाम्बु तस्य धारा प्रवाहस्तस्य श्रीः सम्पत्तिर्वृद्धिः-धारात्रयीत्यर्थः, तया तथोक्तया । पुनश्च कया सत्कुर्वीय ? मुदा-हर्षेण परमधर्मानुरागेण । किमर्थं सत्कुर्वीय ? दुष्कृतं-दुराचाराचरितपापं दुर्निमित्तं, हन्तुं विनाशयितुं ज्ञानदर्शनाव-रणद्वयक्षयं नेतुमित्यर्थः । कथंभूतां त्वत्पादपीठस्थलीं ? आश्रितां-समन्ताच्छ्रितां शरणतया स्वीकृता-प्रारम्भिता-कार्यसिद्धियोग्यायोग्य-प्रह्वीभावेनाध्यासितामित्यर्थः । कैराश्रितां ? स्वसमयाभ्यासोद्यतैः-स्वसमयशुद्धस्वात्मानुभवस्तस्याभ्यासः पुनः पुनर्भावना तत्रोद्यतैकधर्मं प्राप्तैः नारकादिदुःखभीतैरिति शेषः ॥ २१ ॥

नीरधारा ।

इमैः सन्तापार्चिःसपदिजयदक्षैः परिमल-
प्रथामूर्च्छद्घ्राणैरनिमिषदृगंशुव्यतिकरात् ।
स्फुरत्पीतच्छायैरिव शमनिधे ! चन्दनरसै-
र्विलिम्पेयं पेयं शतमखदृशां त्वत्पदयुगम् ॥ ८८ ॥

वृत्तिः—हे शमनिधे!—हे परमोदासीनतानिधानतीर्थंकर परमदेव ! । इमैः—प्रत्यक्षीभूतैः । चन्दनरसैः—श्रीखण्डद्रवैः । अहं विलिम्पेयं—समालभेयं विलिप्तं विदध्यां । कथंभूतैश्चन्दनरसैः ? सन्तापार्चिःसपदिजयदक्षैः—सन्तापः संज्वरः स एवार्चिरग्निज्वाला तस्य सपदिजयस्तत्कालतिरस्कारस्तेन दक्षैर्गर्वितैः । भूयः किंविशिष्टैः ? परिमलप्रथामूर्च्छद्घ्राणैः—परिमलः सम्मर्दसंजातजनमनोहारिगन्धस्तस्य प्रथा प्रसरस्तस्यां मूर्च्छन्ति मुह्यन्ति गन्धान्तरानभिज्ञानि भवन्ति घ्राणानि लोकानां नासिकेन्द्रियाणि येषां ते परिमलप्रथामूर्च्छद्घ्राणास्तैस्तथोक्तैः । पुनः कथंभूतैश्चन्दनरसैः ? स्फुरत्पीतच्छायैः—स्फुरन्ती जननयनमनःसु चमत्कुर्वन्ती पीतच्छाया कनककान्तिर्येषां ते स्फुरत्पीतच्छायास्तैस्तथोक्तैः । कस्मादुत्प्रेक्षते ? अनिमिषदृगंशुव्यतिकरादिव—अनिमिषा देवास्तेषां दृशश्चक्षूंषि तेषां व्यतिकरः प्रघट्टकः संघट्टः सम्पर्क इति यावत् तस्मादनिमिषदृगंशुव्यतिकरात्, देवलोचनकिरणसंयोगादिव चन्दनरसानां पीतच्छाया जातेत्यर्थः । यदुलूक्यशासने चक्षुस्तैजसत्वमङ्गीक्रियते तैजसास्तु रश्मयः पीता भवन्ति ते तु देवानां दृष्टिरश्मयो भगवत्पादावलोकनकाले चन्दनरसेषु लग्ना अत एव स्वभावपीतच्छाया अपि चन्दनरसा उत्प्रेक्षिताः । उलूक्यशासनमिति कोऽर्थो वैशेषिकमतम् । तथा चोक्तं श्लोकद्वयम्—

मीमांसाका जैमिनीये वेदान्ती ब्रह्मवादिनि ।
वैशेषिके स्यादौलूक्यः सौगतः शून्यवादिनि ॥१॥
नैयायिकस्त्वक्षपादः स्यात्स्याद्वादिक आर्हतः ।
चार्वाकलोकायतिकौ सत्कार्ये सांख्यकापिलौ ॥२॥

कं विलिम्पेयं ? त्वत्पद्युगं—तव चरणद्वयं । कथंभूतं त्वत्पद्युगं ? शतमखदृशां—शक्रलोचनानां पेयं—अत्यादरेणावलोकनीयम् । तथा चोक्तम्—

तव रूपस्य सौंदर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान् ।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥१॥

चन्दनम् ।

—

सुगन्धिमधुरोज्ज्वलाशकलतन्दुलछद्मना
सुभक्तिसलिलोक्षितैरिव निरीय पुण्याङ्कुरैः ।
सुपुञ्जरचनाञ्चितप्रणयपंचकल्याणके—
भवान्तक ! भवत्क्रमावुपहरेयमेभिः श्रिये ॥ ८९ ॥

टीका—हे भवान्तक !—भवस्य शारीरमानसादिदुःखहेतु-भूतस्य संसारस्यान्तको यमः संसारपर्यटनविनाशक इत्यर्थः, तस्य सम्बोधनं क्रियते हे भवान्तक ! हे संसारदुःखविनाशक ! भवत्क्रमौ—त्वत्पादौ । एभिः—प्रत्यक्षीभूतैः । पुण्याङ्कुरैः—सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्रलक्षणोपलक्षितपुण्यस्याङ्कुरैर्नवोद्भिद्भिः (?) । अहमुपहरेयं—उपढौकयेयं । पुण्याङ्कुरैः । किं कृत्वा पूर्वं ? निरीय—निर्गत्य बाह्यलोचनगोचरतया प्रादुर्भूय । केन प्रादुर्भूय ? सुगन्धिमधुरोज्ज्वलाशकलतन्दुलछद्मना—सुगन्धयः कलमशालिकाद्युत्तमव्रीहिजातित्वादतिसुरभयः, घ्राणेन्द्रियप्रिया इत्यर्थः, मधुरा अमृतरसप्राया जिह्वेन्द्रियप्रिया, उज्ज्वला शुभ्रा दीप्तिमन्तो वा नेत्रप्रिया इत्यर्थः, अशकला अखण्डा अचूर्णीकृतास्ते च ते तन्दुला अक्षतास्तेषां छद्म मिषस्तेन तथोक्तेन । कथंभूतैः पुण्याङ्कुरैरुक्षितैः ? सुभक्तिसलिलोक्षितैरिव—शोभना कुदेवकुगुरुप्रशंसास्तवादिभिर्दोषमलैरकलङ्किता भक्तिः परमधर्मानुरागः सुभक्तिः सैव सलिलं जलं अनन्तभवश्रेणिसमुपार्जितपापपङ्कप्रक्षालनहेतुत्वात् पुण्यजीवनप्रदानकारित्वाच्च । तथा चोक्तम्—

एकैव समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम् ।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ॥ १ ॥

सुभक्तिसलिलेनोक्षिताः सिक्ताः सुभक्तिसलिलोक्षितास्तैस्तथोक्तैः । पुनरपि कथंभूतैः पुण्याङ्कुरैः ? सुपुंजरचनाञ्चितप्रणयपंचकल्याणकैः—सुपुञ्जरचनया मनोहरकूटविच्छित्याञ्चितो व्यक्तीकृतः प्रणयः प्रेमपरिचयो येषां तानि सुपुञ्जरचनाञ्चितप्रणयानि सुपुञ्जरचनाञ्चितप्रणयानि पंच-कल्याणकानि गर्भावतार–जन्माभिषेक–निष्क्रमण–ज्ञान–निर्वाणलक्षणा महोत्सवा येषां ते तथोक्तास्तैः । यो भगवत्पादौ यथोक्तगुणतन्दुलपुञ्ज-विच्छित्या पूजयति स पंचकल्याणप्रापकं पुण्यराशिमासादयतीत्याशा-धरमहाकवेरभिप्रायः । कस्मै उपहरेयं ? श्रियै—त्रिवर्गसम्पत्तये धर्मस्या-र्थस्य कामस्य त्रिवर्गः, अथवा क्षयस्य स्थानं च वृद्धिश्च त्रिवर्गो नीति-वेदिनां तत्र क्षयः पापक्षयस्य स्थानं स्वर्गादिप्राप्तिः वृद्धिरवधिज्ञानादि-गौणातिशयः ॥ ८९ ॥

अक्षताः ।

हृदयकमलमचन्नद्भिरामोदयोगा—
द्रसविसरविलासाल्लोचनाब्जे हसद्भिः ।
विशदिमजितबोधैर्बुद्ध ! भावत्कमेत-
च्चरणयुगमनूनैः प्रार्चयेयं प्रसूनैः ॥ ९० ॥

वृत्तिः—हे बुद्ध ! —हे परमज्ञानसम्पन्न ! एतैः—प्रत्यक्षीभूतैः । प्रसूनैः—पुष्पैः । भावत्कं—त्वदीयं । चरणयुगं—पादयुगलं । अहं प्रार्चयेयं—प्रकर्षेण पूजयेयं । प्रसूनैः । किं कुर्वद्भिः ? हृदयकमलं—मम मनोनलिनं, अचन्नद्भिः—अनुगच्छद्भिः स्वसदृशीकुर्वद्भिरित्यर्थः । कस्मात् ? आमोद-योगात्— प्रसूनपक्षे आमोदोऽतिव्यापिपरिमलः, हृदयकमलपक्षे आमोद आनन्दस्तेन योगात् । पुनश्च किं कुर्वद्भिः ? लोचनाब्जे—नेत्रकमले, हसद्भिरनुकुर्वद्भिः । कस्मात् ? रसविसरविलासात्—प्रसूनपक्षे रसो

मकरन्दः, लोचनपक्षे रस आनन्दाश्रुलक्षविसरः पूरस्तस्य विलास इतस्ततः प्रवृत्तिस्तस्मात्। पुनरपि कथंभूतैः प्रसूनैः? विशदिमजितबोधैः– प्रसूनपक्षे विशदिमा शुक्लत्वं, बोधपक्षे विशदिमा संशयविमोहविभ्रमरहितत्वं विशदिम्ना जितोऽनुकृतो बोधो यैस्तानि वचोरूपाणि तैः। पुनरपि कथंभूतैः प्रसूनैः? वचोर्थविशेषणविशिष्टैरनूनैः—प्रचुरैः, अथवा सौरभ्यविकाशादिधर्मसम्पूर्णैः ॥ ९० ॥

पुष्पम्।

सुस्पर्शद्युतिरसगन्धशुद्धिभंगी—
वैचित्रीहृतहृदयेन्द्रियैरमीभिः।
भूतार्थक्रतुपुरुष! त्वदङ्घ्रियुग्मं
साम्नायैरमृतसखैर्यजेय मुख्यैः ॥ ९१ ॥

वृत्तिः—हे भूतार्थक्रतुपुरुष! —भूतः सत्योऽर्थोऽभिधेयोऽस्येति भूतार्थः क्रियते क्रतुर्यज्ञः क्रतुना पूज्यः पुरुषः क्रतुपुरुषः शाकपार्थिवादिदर्शनान्मध्यपदलोपी समासः, भूतार्थश्चासौ क्रतुपुरुषो भूतार्थक्रतुपुरुषस्तस्यामंत्रणं हे भूतार्थक्रतुपुरुष! हे परमार्थयज्ञपूज्यात्मन्! अमीभिः–प्रत्यक्षीभूतैः। साम्नायैः—विशिष्टैरेव नैवेद्यैः। त्वदंह्रियुग्मं–भवच्चरणयुगलं। यजेय–अहं पूजयेयं। कथंभूतैः साम्नायैः–सुस्पर्शद्युतिरसगन्धशुद्धिभंगीवैचित्रीहृतहृदयेन्द्रियैः–सुशब्दः प्रत्येकं प्रयुज्यते तेनायमर्थः सुस्पर्शः कोमलत्वमसृणत्वादिस्वभावः, सुद्युतिः शोभनवर्णप्रभा, सुरसः शोभनतिक्तकटुकषायाम्लमधुररसः, सुगन्धः शोभननासिकोपादेयगन्धः, सुशुद्धिः शोभनद्रव्यक्षेत्रादिसामग्र्यविहितानवद्यता, सुभंगी तद्विधानमदक्षतानामगम्यविधेयत्वेन चिन्तनीयो रचनाविशेषः, सुस्पर्शद्युतिरसगन्धशुद्धिभंग्यस्तासां वैचित्री प्रक्रियानानात्वमुत्पादनानेकध्वं विस्मयनीयभावस्तथा हृतान्यनुरञ्जितानि रसिकजनानां हृदयानि चित्तानि इन्द्रियाणि स्पर्शनादीनि यैस्तानि तथोक्तानि तैस्तथोक्तैः। पुनः कथंभूतैः साम्नायैः?

अमृतसदृशैः-देवानामपि मनोऽनुरञ्जकत्वेन पीयूषसदृशैः । पुनरपि कथंभूतैः साम्नायैः ? मुख्यैः-अनपरोपदेशेन निष्पन्नत्वात्प्रधानैः स्वयमभ्यस्ततया निष्पादितत्वाद्वरेण्यैरित्यर्थः ॥ ६१ ॥

नैवेद्यम् ।

जाड्याधायित्ववैरादिव शशिनमपि स्नेहयुक्तं दहद्भिः
सोदर्यस्वर्णयोगात्पटुतररुचिभिः सोदरत्वादिवाक्ष्णाम् ।
प्रेयोभिस्तत्प्रतापापहतिमिरहरैर्विश्वलोकैकदीप !
श्राद्धश्चञ्चद्भिरेभिस्तव पदकमले दीपयेयं प्रदीपैः ॥९२॥

वृत्तिः—विश्वः समस्तोलोकस्त्रिभुवनं विश्वलोकः, विश्वलोकस्थितवस्तुजातमित्यर्थः, विश्वलोकस्यैकोऽद्वितीयो दीपः प्रकाशहेतुर्विश्वलोकैकदीपस्तस्य सम्बोधनं क्रियते हे विश्वलोकैकदीप ! समस्तवस्तुविस्तारविषयविज्ञानोत्पादक ! एभिः—प्रत्यक्षीभूतैः प्रदीपैः तव पदकमले—भवतः पादपद्मे द्वे अहं दीपयेयं—उद्योतयेयं । कथंभूतोऽहं ? श्राद्धः—श्रद्धातिशयसम्पन्नः । किं कुर्वद्भिः प्रदीपैः ? शशिनं—कर्पूरं, दहद्भिः—भस्मीकुर्वद्भिः । कथंभूतमपि ? स्नेहयुक्तमपि—स्निग्धगुणोपेतमपि । कस्मात् ? उत्प्रेक्ष्यते जाड्याधायित्ववैरादिव—शैत्यकारित्वविरोधादिव, अन्योऽपि यः स्नेहयुक्तोऽपि प्रेमवानपि जाड्याधायी अज्ञानकारी स्यादसौ वैरित्वाद्दह्यते एवेत्यर्थः । पुनरपि कथंभूतैः प्रदीपैः ? पटुतररुचिभिः—स्फुटतरदीप्तिभिः । कस्मात् ? उत्प्रेक्ष्यते, सोदर्यस्वर्णयोगादिव—सोदर्यो बन्धुः स च तत्सुवर्णं च कनकं सोदर्यसुवर्णं तेन योगात्संगात्, कनकादिकाश्रयत्वाद्दीपानां "अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यं" इति श्रुतेः सोदर्यः स्वर्णो वैश्वानरस्य, अन्योऽपि लोके बन्धुवर्गेण सह योगे सति रुचिमान् भवतीति भावः । भूयः कथंभूतैः प्रदीपैः ? अक्ष्णां—लोचनानां, प्रेयोभिः—अतिप्रियैः । कस्मात् ? उत्प्रेक्ष्यते, सोदरत्वादिव—चक्षुस्तैजसमिति वैशेषिकमताश्रयणादमुकैकार्थ (?) विशेषेण विशेषण-

द्वारेण प्रद्योतयति। कथंभूतैः प्रदीपैः ? तत्प्रतापापहतिमिरहरैः—तेषामस्मां प्रतापं स्वविषयपरिच्छित्तिपाटवमपहन्तीति तत्प्रतापापहं च तिमिरं चान्धकारं तत्प्रतापापहतिमिरं तद्धरन्ति स्फेटयन्तीति ये ते तत्प्रतापापहतिमिरहरास्तैस्तथोक्तैः। किं कुर्वद्भिः प्रदीपैः चंचद्भिः—देदीप्यमानैः, मनाक्कम्पमानैरप्येत्यर्थः ॥ ६२ ॥

दीपम्।

धूपानिमानसकृदुद्यदुदारधूम—
स्तोमोल्लसद्भुवनहृद्गलनेत्रनासान्।
दुष्कर्मगर्मुदचिरोद्धृतये धुताघ !
त्वत्पादपद्मयुगमभ्यहमुत्क्षिपेयम् ॥९३॥

वृत्तिः—हे धुताघ !—हे स्फेटितत्रिषष्टिपापप्रकृते ! इमान्—प्रत्यक्षीभूतान्। धूपान्—कर्पूरकृष्णागुर्वादिसद्द्रव्यविशेषान्। त्वत्पादयुगं—भवच्चरणकमलयुगलं। अभिलक्षीकृत्य। अहं—आशाधरो महाकविर्विवक्षितभक्तजनो वा। उत्क्षिपेयं—ऊर्ध्वं प्रेरयेयं। किमर्थं ? दुष्कर्मगर्मुदचिरोद्धृतये—दुष्टानि कर्माणि दुष्कर्माणि पापकर्माणीत्यर्थः, तान्येव गर्मुतो मधुमक्षिकाः शरीरमानसदुःखदायित्वेन मर्मव्यथकत्वात्, दुष्कर्माणि दुःखहेतुसंसारकारणतयाष्टकर्माणि च तान्येव गर्मुतस्तासामचिरोद्धृतये स्तोककालेनोच्चाटनाय निःशेषकर्मक्षयायेत्यर्थः। कथंभूतान् धूपान् ? असकृदुद्यदुदारधूमस्तोमोल्लसद्भुवनहृद्गलनेत्रनासान्—असकृद्वारंवारं, उद्यन्त उद्गच्छन्तः उदारा अतिरमणीया ये धूमास्तेषां स्तोमाः समूहा असकृदुद्यदुदारधूमस्तोमा हृंदि च हृदयानि, गलाश्च कण्ठाः, नेत्राणि च लोचनानि, नासाश्च घ्राणानि हृद्गलनेत्रनासाः, भुवनस्य भुवनस्थितप्राणिवर्गस्य हृद्गलनेत्रनासा भुवनहृद्गलनेत्रनासा असकृदुद्यदुदारधूमस्तोमैरुल्लसन्त्यः

प्रमदभरनिर्भरा भवन्त्यो भुवनद्वयगलनेत्रनासा येषां धूपानां ते तथोक्तास्तां-स्तथोक्तानिति । अतिशयरूपकहेतुत्वात्संकरालङ्कारः ॥ ९३ ॥

धूपम् ।

शाखापाकप्रणयविलसद्वर्णगन्धर्द्धिसिद्ध—
ध्वस्तद्रव्यान्तरमदरसास्वादरज्यद्रसज्ञैः ।
एभिश्चोचक्रमुकरुचकश्रीफलाम्रातकाम्र—
प्रेष्ठैः श्रेयःसुखफल ! फलैः पूजयेयं त्वदंह्री ॥ ९४ ॥

वृत्तिः—श्रेयसा भोगाकांक्षानिदानबन्धादिरहितत्तया विशिष्टेन पुण्येन साध्योऽभ्युदयोऽपि श्रेयः निःश्रेयसं च सुखे शर्मणी द्वे फलति निष्पादयति भव्यानामिति श्रेयःसुखफलस्तस्य सम्बोधनं क्रियते हे श्रेयःसुखफल !—हे निःश्रेयसाभ्युदयशर्मनिष्पादक ! । एभिः—प्रत्यक्षी-भूतैः । फलैः—व्युष्टिभिः । त्वदंह्री—भवच्चरणौ । अहं पूजयेयं—आराधयेयं । कथंभूतैः फलैः ? शाखेत्यादि—शाखायां निजोत्पत्तिस्थाने लतायां पाकः परिणतिः शाखापाकस्तेन प्रणयः परिचयः शाखापाक-प्रणयस्तेन विलसन्तौ चक्षुर्घ्राणद्वारेण जनानां चित्तेषूच्चैर्जयन्तौ तौ च तौ वर्णगन्धौ च शाखापाकप्रणयविलसद्वर्णगन्धौ तयोर्ऋद्धिरतिशयस्तया सिद्धो निर्णीतस्तथा ध्वस्तो निराकृतो द्रव्यान्तराणां सजातीयानां मूर्तवस्तूनां मदः स्वस्य सौरभ्यातिशयसम्भावना यः स ध्वस्तद्रव्यान्तर-मदः शाखापाकप्रणयविलसद्वर्णगन्धर्द्धिसिद्धश्चासौ ध्वस्तद्रव्यान्तरमदः स चासौ रसो मधुरादिगुणस्तस्यास्वादेऽनुभवे रज्यन्तः प्रीतिमनुगच्छ-न्तो रसज्ञा मधुरादिरसाभिज्ञलोका रसज्ञा जिव्हा वा येषां तानि तथो-क्तानीति । पुनरपि कथंभूतैः फलैः ? चोचेत्यादि—चोचानि च नालिके-राणि, क्रमुकाणि—पूगानि, रुचकानि च बीजपूराणि, श्रीफलानि च बिल्वानि, आम्रातकानि च मधुराम्रफलविशेषाः तुद्राम्राणि अमोईं

इति ऐरवां, आम्राणि च सहकाराणि, चोचक्रमुकरुचकश्रीफलाम्रातकाम्राणि तानि प्रेयाणि तुल्यानि येषां मोचलकुचकंटकिफलकूष्माण्डकर्परालजातीफलजम्बूजम्बीरनारङ्गसप्तपर्णदर्दरीकद्राक्षखर्जूरराजादनत्रैपुषराबुजबाजामिहोमसदाफलसिन्धिचिर्भटदधिफलाटीनां तानि तथोक्तानि तैस्तथोक्तैः । नन्वेभिरमीभिरेतैरित्यादिपदानां पुनः पुनर्ग्रहणं किमिति चेत् ये केचिज्जैनाभासा गृहाश्रमिणोऽपि सन्तो दानपूजादिकं कर्म स्वर्गापवर्गसाधकमपि न कुर्वन्ति पूजादिमात्रेणैवात्मानं कृतार्थं मन्यन्ते तेषां प्रत्यवत्वप्रदर्शनार्थमिति तात्पर्यम् । तथा चोक्तम्—

देवपूजामनिर्माय मुनीननुपचर्य च ।
यो भुञ्जीत गृहस्थः सन् स भुञ्जीत परं तमः ॥१॥

इति ॥ ९४ ॥

फलम् ।

अधिवासनाविधानम्—स्नपनविलेपनधूपनादिकरणम् ।

सौधर्मप्रमुखैः पुरा शतमखैर्मेरावुपेत्य क्रमा—
द्भक्त्यास्माभिरिहाभिषेक्तुमधुना संस्थाप्य सम्पूजितः ।
मुक्तिं भुक्तिमिवाप्रमेयमहिमा कर्तुं प्रभुर्यो नृणां
देवोऽयं जिनपुंगवस्त्रिजगतां श्रेयांसि सृज्यात्सदा ॥९५॥

वृत्तिः—अयं प्रत्यक्षीभूतः । जिनपुङ्गवः—गणधरदेवमुण्डकेवलयादीनां मुख्यः । देवः—परमाराध्यः । त्रिजगतां—त्रैलोक्यस्थितप्राणिगणानां । श्रेयांसि—परमकल्याणानि । सृज्यात्—क्रियात् । उक्तं च—

सृजति करोति प्रणयति घटयति निर्माति निर्मिमीते च ।
अनुतिष्ठति विदधाति च रचयति कल्पयति चेति करणार्थे ॥१॥

श्रेयांसि कथं सृज्यात्? सदा वर्तमानभविष्यत्सर्वस्मिन् काले । किं कृतः सन्नयं देवः? अस्माभिः सम्पूजितः—सम्पूर्णाष्टविधपूजाद्रव्यैः सम्मानितः । कस्मात्? क्रमात्—परिपाटिकया । कया? भक्त्या—

परमधर्मानुरागेण। किं कर्तुं पूजितः? अभिषेक्तुं—अभिषेकाय। किं कृत्वा पूर्वं? इह—अस्मिन्पीठे, संस्थाप्य—सम्यग्मंत्रपूर्वकतया निश्चलीकृत्य। कदा संस्थाप्य पूजितः? अधुना—इदानीमेव। अस्माभिः कैरिव? शतमखैरिव—इन्द्रैर्यथा। कथंभूतैः शतमखैः? सौधर्मप्रमुखैः—चतुर्णिकायदेवमण्डितसौधर्मेन्द्रैशानेन्द्रादिभिः। अधुना किमिव? पुरेव—पूर्वमिव। इह पीठे कस्मिन्निव? मेराविव—रत्नसानाविव। शतमखैः किं कृत्वा पूजितः? एत्य—ऊर्ध्वस्वर्गात्पातालस्वर्गात्तिर्यग्लोकादन्तराल-स्वर्गाच्चागत्य; क्रमाद्भक्त्या सम्पूजित इत्यर्थः। जिनपुंगवः कथंभूतः? भव्यानां—याजकाचार्यादीनां, मुक्तिं सर्वकर्मप्रक्षयलक्षणोपलक्षितं मोक्षं, कर्तुं—विधातुं, प्रभुः—समर्थः। मुक्तिं कामिव? भुक्तिमिव—यथा भुक्तिं कृतवान् करोति चेति। पुनरपि कथंभूतो जिनपुङ्गवः? अप्रमेय-महिमा—रागद्वेषरहितोऽपि निग्रहानुग्रहकारकत्वादचिन्तनीयमाहात्म्य इति भावः ॥९३॥

आशीर्वादः। इति शेषः।

अथ दिक्पालार्चनम्;—

क्रियत इति गम्यत एव।

इन्द्राग्नियाद्धदेवाशरपतिवरुणाधाररैदेशनागेद्—
धिष्ण्येशा दिक्षु येयास्त्रिजगदधिपतेः प्राक्षरक्षाधिकाराः।
तद्यज्ञेऽस्मिन्नवात्मप्रयति विहरतामेत्य पत्न्यादियुक्ता
विघ्नान् घ्नन्तो यथास्वं वितनुत समयोद्योतमौचित्यकृत्याः॥९४॥

वृत्तिः—इन्द्रश्च शक्रः, अग्निश्च वैश्वानरः, श्राद्धदेवश्च यमः, आशरपतिश्च राक्षसेन्द्रः, वरुणश्च पाशी, आधारश्च वायुः, रैदश्च धनदः, ईशश्चेशानः, नागेट् च धरणेन्द्रः, धिष्ण्येशश्च नक्षत्रनाथश्चन्द्रः, ते तथोक्ताः।

यूयं औचित्यकृत्याः—योग्योपचाररचनया प्रसन्ना भूत्वा । समयोद्योतं—जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशं । वितनुत—विस्तारयत । कथं ? यथास्वं—निजनिजदिग्विभागानतिक्रमेण । किं कृत्वा पूर्वं ? एत्य—आगत्य । कथंभूता यूयं ? त्रिजगधिपतेः—त्रैलोक्यनाथस्य, येषां सम्बन्धित्वेन, दिक्षु काष्ठासु, प्राप्तरक्षाधिकाराः—लब्धप्रतिपालननियोगाः । किं कुर्वन्तो यूयं ? अस्मिन्—प्रत्यक्षीभूते, तथाग्रे—त्रिजगदधिपतेः क्रतौ, विहरतां—चेष्टमानानां भव्यप्राणिनां, विघ्नान्—अन्तरायानुपसर्गान् क्षुद्रोपद्रवानिति यावत्, घ्नन्तः—मूलादुन्मूलयन्तः । कथं विहरतां ? नवात्मप्रयति—नवात्मा नवप्रकारः प्रयतिर्मनोवचनकायकृतकारितानुमतलक्षणः प्रयत्नो यत्र विहरणकर्मणि तत्तथोक्तं यथा भवति । कथंभूता यूयं ? पत्न्यादियुक्ताः—पत्नी पाणिगृहीता देवाङ्गना आदिर्येषां वाहनचिह्नपरिवारादीनां ते पत्न्यादयस्तैर्युक्ता मण्डितास्ते तथोक्ताः ॥९४॥

इन्द्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरःसराध्येषणाय समस्तहव्यद्रव्यपूर्णपात्रं परमपुरुषचरणकमलयोरवतार्य पार्श्वतो निवेशयेत् ।

इन्द्रादिदिक्पालानां—शक्रप्रभृतिककुब्रक्षकाणां, आवाहनादिपुरस्सराध्येषणाय—आह्वानस्थापनसन्निधापनप्रभृतिभिः सत्कारपूर्वव्यापाराय, समस्तहव्यद्रव्यपूर्णपात्रं—समग्रदातव्यवस्तुभृतभाजनं परमपुरुषचरणकमलयोरवतार्य—अर्हत्पादपद्मयोरुपरि भ्रामयित्वा, पार्श्वतः—एकस्मिन् पार्श्वे, निवेशयेत्—स्थापयेदित्यर्थः ।

अथ पृथगिष्टिः;—

अथानन्तरं, पृथगिष्टिः—भिन्नपूजनं क्रियत इति शेषः ।

दिगीशाः ! शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः ।
अत्रोपविशतैतान्वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥९५॥

वृत्तिः—हे दिगीशाः—हे दिशां स्वामिनः । अहं युष्मान्—भवतः । शब्दये—आह्वानयामि यूयं सपरिच्छदाः—सपरिवाराः । आयात—

समागच्छत । इत्यनेनाह्वानं कृतं भवति । न केवलमायात अपितु, अत्र—निजनिजस्थानेषु । उपविशत—तिष्ठत यूयं इत्यनेन स्थापनमुपोदितं । एतान्—प्रत्यक्षीभूतान् । वः—युष्मान् । अहं यजे—पूजयामि । इति सन्निधिकरणं सूचितम् । अथ यजे प्रत्येकं—एकमेकं प्रति प्रत्येकं पृथक् पृथक् । कस्मात् ? आदरात्—समानधर्मविनयादित्यर्थः ॥९५॥

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

आह्वाननमावाहनं तदादिर्येषां स्थापनसन्निधापनादीनां ते आवाहनादयस्ते पुरस्सरा मुख्या यस्याः सा आवाहनादिपुरस्सरा सा चासौ प्रत्येकपूजा पृथक्पृथक्पूजनं यस्याः प्रतिज्ञानाय नियमाय, दिक्षु—दशसु दिशासु, पुष्पाक्षतं—कुसुममिश्रिततन्दुलसमुदायं, क्षिपेत्—प्रेरयेदित्यर्थः ।

रूप्याद्रिस्पर्धिघंटायुगपटुटङ्कारभग्नारिशुम्भ—
द्भूषासख्यातिचित्रोज्ज्वलकुथविलसल्लक्ष्मवर्ष्मद्विपस्थम् ।
इष्यत्सामानिकादित्रिदशपरिवृतं रूच्यशच्यादिदेवी—
लोलाक्षं वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं प्रागिहेन्द्रं यजेऽहम् ॥९६॥

वृत्तिः—इह—अस्मिंस्त्रिजगदधिपतियज्ञे । प्राक्—पूर्वस्यां दिशि । इन्द्रं—शक्रं । अहं—आशाधरो महाकविः । यजे—पूजयामि । कथंभूतमिन्द्रं ? रूप्यादीत्यादि—रूप्याद्रिणा रजताचलेन विजयार्धगिरिणा सह अत्युन्नततया कुन्दावदातद्युतितया च स्पर्धते ईर्ष्यते इत्येवंशीलो रूप्याद्रिस्पर्धी घंटयोर्नादिन्योर्युगस्य युग्मस्योभयपार्श्वावलम्बितस्य पटुना स्पष्टतरेण कटुना कर्णहृदयकदर्थकेन टङ्कारेण शब्देन भग्नाः पलायिता अरयः शत्रवः शत्रुगजाश्च येनेति घंटायुगपटुटङ्कारभग्नारिः, शुम्भन्त्यः शोभमाना भूषा आभरणानि तासां सख्येन परिचयेन अतिचित्रोऽतिशयेनाश्चर्यकारी उज्ज्वलोऽत्युज्ज्वलोऽतीव दैदीप्यमानः कुथः करिकम्बलो

यस्येति शुम्भद्भूषासल्याविचित्रोज्ज्वलकुचः, विलसन्ति विविधमुल्लसन्ति लक्ष्माणि लक्षणव्यञ्जनानि यस्येति विलसल्लक्ष्म वर्ष्म शरीरं यस्येति विलसल्लक्ष्मवर्ष्मा एवं विशेषणचतुष्टयविशिष्टो योऽसौ द्विप ऐरावणाभिधानो गजस्तस्मिंस्तिष्ठतीति स तथोक्तस्तं तथोक्तम्। पुनरपि कथंभूतमिन्द्रं ? हृष्यत्सामानिकादित्रिदशपरिवृतं—हृष्यन्तो हर्षनिर्भरा ये सामानिकादयः पितृमहत्तरोपाध्यायसदृशप्रभृतयो मनोनयनत्रिदशा देवास्तैः परिवृतः समन्ताद्वेष्टितस्तं। पुनरपि कथम्भूतमिन्द्रं ? रुच्यशच्यादिदेवीलोलाक्षं—रुच्याः प्रिया अतिवल्लभा याः शच्यादयः पुलोमजाप्रभृतयो देव्योऽप्सरसस्तासु लोलानि चपलानि लम्पटानि अक्षाणि पञ्चेन्द्रियाणि यस्येति तथोक्तस्तं। भूयोऽपि कथंभूतमिन्द्रं ? वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं—वज्राणां हीरकाणां सम्बन्धिन्यो भूषा आभरणानि ताभिरुद्भटा अपरतेजोविलोपिनी सुभगा सर्वजनमनोनयनाल्हादिनी रुक् दीप्तिर्यस्येति वज्रभूषोद्भटसुभगरुक्तं तथोक्तम् ॥८६॥

ॐ ह्रीं क्रों इन्द्र ! आगच्छ आगच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् इन्द्राय स्वाहा। इन्द्रपरिजनाय स्वाहा, इन्द्रानुचराय स्वाहा, इन्द्रमहत्तराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सोमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वःस्वाहा, ॐ इन्द्रदेवाय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गन्धं पुष्पं धूपं दीपं चरुं बलिं अक्षतं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थे क्रियते कर्म स प्रीतो नित्यमस्तु मे।

१—इन्द्रदिक्पालाह्वानम्।

———

रुक्माकल्पघुर्घुरस्रग्गलचटुलपृथुप्रोथभृङ्गाभतुङ्ग-
च्छागस्थं रौद्रपिङ्गेक्षणयुगममलब्रह्मसूत्रं शिखास्त्रम्।
कुण्डीं वामप्रकोष्ठे दधतमितरपाण्याप्तपुण्याक्षसूत्रं
स्वाहान्वितं धिनोमि श्रुतिमुखरसभं प्राच्यपाच्यन्तरेऽग्निम् ॥९७॥

वृत्तिः—अहमग्निं धिनोमि—प्रीणयामि। कस्मिन्? प्राच्यपाच्यन्तरे—प्राची च पूर्वादिक् अपाची च दक्षिणादिक् तयोरन्तरे अन्तराले। कथंभूतमग्निं! रुक्मेत्यादि—रुक्मेण सुवर्णेन आसमन्तात्रोचते शोभते रुक्मारुक् सुवर्णेनारोचमाना सा चासौ घुर्घुरस्रक् घुर्घुरमालिका रुक्मारुग्घुर्घुरस्रक् गले कण्ठे यस्येति रुक्मारुग्घुर्घुरस्रग्गलः, चटुलश्चपलतरः पवनमनोवेगः, पृथुर्विस्तीर्णः प्रोथो घोणाग्रं यस्येति प्रथुप्रोथः, भृङ्गस्येव कृष्णरासभस्येव आभा समन्तात्प्रभा यस्येति भृङ्गाभः, तुङ्ग उच्चैस्तरः, एवं विशेषणपंचविशिष्टः स चासौ छागो बर्करस्तस्मिंस्तिष्ठतीति रुक्मारुग्घुरस्रग्गलचटुलप्रथुप्रोथभृङ्गाभतुङ्गच्छागस्थस्तं तथोक्तं। पुनः कथंभूतं? रौद्रपिङ्गेक्षणयुगं—रौद्रयोरतिभयानकयोः पिङ्गयोर्गोरोचनावर्णयोरीक्षणयोर्नेत्रयोर्युगं यस्येति रौद्रपिङ्गेक्षणयुगस्तं। पुनरपि कथंभूतमग्निं? अमलब्रह्मसूत्रं—अमलं निर्मलं ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीतं यस्येत्यमलब्रह्मसूत्रस्तं। पुनरपि कथंभूतमग्निं? शिखास्त्रं—अग्निज्वालायुधं। किं कुर्वन्तमग्निं? वामप्रकोष्ठे—सव्यकरमणिबन्धे, कुण्डीं—कमण्डलुं, दधतं—धारयन्तं। पुनः कथंभूतमग्निं? इतरपाण्याप्तपुण्याक्षसूत्रं—दक्षिणकरगृहीतपवित्रजपमालं। उक्तं च—

पुष्पैः पर्वभिरम्बुजस्वर्णार्ककान्तरत्नैर्वा।
निष्कम्पिताक्षवलयः पर्यङ्कस्थो जपं कुर्यात् ॥१॥

पुनरपि कथंभूतमग्निं? स्वाहान्वितं—स्वाहया नामनिजभार्यया समन्वितं। पुनः कथंभूतमग्निं? श्रुतिमुखरसभं—वेदवाचालसभ्यं ॥९७॥

ॐ ह्रीं क्रौं अग्ने ! आगच्छ आगच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् अग्नये स्वाहा । अग्निपरिजनाय स्वाहा, अग्न्यनुचराय स्वाहा, अग्निमहत्तराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा । शेषं पूर्ववत् ।

कल्पान्ताब्दौघजेतृत्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहितग्रैवघण्टा–
टङ्कारात्युग्रशृङ्गक्रमहतभधरव्रातरक्ताश्वसंस्थम् ।
चण्डार्चिःकाण्डदण्डोड्डमरकरमतिक्रूरदारादिलोकं
काण्र्योद्रेकं नृशंसप्रथममथ यमं दिश्यपाच्यां यजामि ॥९८॥

वृत्तिः—अथ—अनन्तरं । अपाच्यां दिशि—दक्षिणस्यां ककुभि । यमं यजामि—कृतान्तं पूजयामि । कथंभूतं यमं? कल्पान्तेत्यादि—कल्पान्तः प्रलयकालस्तस्य सम्बन्धिनो येऽब्दौघा वार्दलसमूहास्तान् जयत्यभिभवत्यनुकरोत्येवंशीलः कल्पान्ताब्दौघजेता, त्रिगुणास्त्रिसराः फणिनः सर्पास्त एव गुणो रज्जुस्तेनोद्ग्राहिता बद्धास्त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहिताः, ग्रीवाया इमा ग्रैवा ग्रैवाश्च घंटाश्च ग्रैवघण्टा शिरोऽधरानादिन्यः, त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहिताश्च ता ग्रैवघण्टाश्च त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहितग्रैवघण्टास्तासां सम्बन्धिनष्टङ्काराः शब्दा यस्येति त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहितग्रैवघण्टाटङ्कारः, शृङ्गे च विषाणे क्रमाश्च पादाः शृङ्गक्रमा अत्युग्रा अतिशयेनोत्कटा ये शृङ्गक्रमा अत्युग्रशृङ्गक्रमास्तैर्हता ताडिता भधरव्राता नक्षत्रपर्वतसंघाता येन सोऽत्युग्रशृङ्गक्रमहतभधरव्रातः, शृङ्गाभ्यां नक्षत्रव्रातांस्ताडयति पादैश्च पर्वतसमूहान् चूर्णीकरोतीत्यर्थः । कल्पान्ताब्दौघजेता चासौ त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहितग्रैवघण्टाटङ्कारश्चासौ अत्युग्रशृङ्गक्रमहतभधरव्रातश्चासौ रक्ताश्वो महिषस्तस्मिन् सन्तष्ठते सम्यगुपविशतीति तथोक्तस्तं । पुनः कथंभूतं यमं ? चण्डार्चिःकाण्डदण्डोड्डमरकरं—चण्डः प्रचण्डोऽर्चिषामग्निज्वालानां काण्डः संघातो

यस्येति यमशार्चिःकाण्डः स चासौ दण्डो यष्टिस्तेनोड्डमरोऽतिभयङ्करः करः पाणिर्यस्येति यमशार्चिःकाण्डदण्डोड्डमरकरस्तं तथोक्तं । भूयः कथंभूतं यमं ? अतिक्रूरदारादिलोकं—अतिक्रूरोऽतिरौद्रो दारादिलोकः भार्यादि (?) जनो यस्येति अतिक्रूरदारादिलोकस्तं । पुनरपि कथंभूतं यमं ? कार्ष्ण्योद्रेकं—अत्यन्तकृष्णवर्णं । पुनरपि कथंभूतं यमं ? नृशंसप्रथमं—नृशंसानां क्रूरकर्मकृतां मध्ये प्रथमोऽग्रणीः नृशंसप्रथमस्तं तथोक्तम् ॥ ९८ ॥

ॐ ह्रीं क्रों यम ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् यमाय स्वाहा । यमपरिजनाय स्वाहा । यमानुचराय स्वाहा । यममहत्तराय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । शेषं पूर्ववत् ।

आरूढं धूम्रधूम्रायतशिरसिरुहास्ताम्रदृग्रूक्षसूक्ष्मा-
लक्ष्याक्षाराविशिष्टास्फुटरुदितकलायोद्गमाभाङ्गमृक्षम् ।
क्रूरकव्यात्परीतं तिमिरचयरुचं मुद्गरक्षुण्णरौद्र-
क्षुद्रौघं श्रावयाम्यापरदृशितमहं नैर्ऋतं तर्पयामि ॥९९॥

वृत्तिः—अहं-आशाधरो महाकविः, नैर्ऋतं-विधुरं । तर्पयामि-प्रीणामि । कथंभूतं नैर्ऋतं ? ऋक्षं-भल्लुकं अच्छभल्लं भालूकमिति यावत् । आरूढं-चटितं । कथंभूतं ऋक्षं ? धूम्रधूम्रायतशिरसिरुहास्ताम्रदृग्रूक्षसूक्ष्मालक्ष्याक्षाराविशिष्टास्फुटरुदितकलायोद्गमाभाङ्गं—धूम्रवद्धूम्राः कृष्णलोहिता धूम्रधूम्राः, धूम्रधूम्राश्च ते आयता दीर्घा धूम्रधूम्रायता धूम्रधूम्रायताश्च ते शिरसिरुहा मस्तककेशा धूम्रधूम्रायतशिरसिरुहास्तैरस्ता निरस्ता अपहृत् पुरोहितैर्वैयोस्ते धूम्रधूम्रायतशिरसिरुहास्ताम्रदृशी, रूक्षेऽस्निग्धे परुषे वा सूक्ष्मैरत्यासाकथयैरपि पुरुषैरलक्ष्ये लक्षयितुमशक्ये ईषल्लक्ष्ये अक्षणी लोचने यस्य स धूम्रधूम्रायतशिरसिरुहास्ताम्रदृग्रूक्षसूक्ष्मालक्ष्याक्षः, अथवा—धूम्रधूम्रा आयता विकटाः करालाः, सटाः

स्कन्धकेशा यस्येति धूमधूम्रायतविकटसरः, तथा श्लाघ्यरश्मी सामर्थ्यात् स्थिरःकेशानिरुद्धपुरोदष्ट्रिनी रूचे सूक्ष्मालक्ष्ये श्लक्ष्णी-नेत्रे यस्येति श्लाघ्यसूक्ष्मलक्ष्यमालक्ष्यावः, आरावेण शब्देन शिष्टं शिथिलमनुकूलं अस्फुटकदितं मनाग्व्यक्तरोदनध्वनिर्यस्य येन वा आरावशिष्टास्फुटकदितः, कलायोद्गमाभं वकुलकपुष्पवर्णं अङ्गं शरीरमस्येति कलायोद्गमाभाङ्गस्तं तथोक्तं। त्रिभिश्चतुर्भिर्वा विशेषणैर्विशिष्टं। पुनरपि कथंभूतं नैऋतं ? क्रूरकव्यात्परीतं – क्रूरैर्घोरमूर्तिभिः क्रव्याद्भी राक्षसैः परीतं समन्ताद्वेष्टितं क्रूरकव्यात्परीतं। पुनरपि कथंभूतं नैऋतं ? तिमिरचयरुचं–अन्धकार-समूहवर्णं। पुनरपि कथंभूतं नैऋतं ? मुद्गरक्षुण्णरौद्रक्षुद्रौघं—मुद्गरेण निजायुधेन लोहघनेन क्षुण्णश्चूर्णीकृता रौद्राणां क्रूराणां क्षुद्राणां जिनशासनस्यासहिष्णूनां जिनशासनोपद्रवकारिणामोघाः समूहा येनेति मुद्गरक्षुण्णरौद्रक्षुद्रौघस्तं। पुनरपि कथंभूतं नैऋतं ? त्रातयाम्यापरहरितं यमस्येयं याम्या याम्याया दक्षिणस्याश्चापरस्याश्च पश्चिमायाश्च दिशोर्यं-दन्तरालं सा याम्यपरा याम्यापरा चासौ हरिच्च याम्यापरहरित् दक्षिण-पश्चिमादिक्, त्राता रक्षिता याम्यापरहरिद्येन स त्रातयाम्यापरहरित् तं त्रातयाम्यापरहरितम् ॥ ९९ ॥

ॐ ह्रीं क्रौं नैऋत्य ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् नैऋत्याय स्वाहा। नैऋत्य-परिजनाय स्वाहा। नैऋत्यानुचराय स्वाहा। नैऋत्यमहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। शेषं पूर्ववत् ॥४॥

नित्याम्भःकेलिपाण्डुस्फटकपिलविशच्छेदसौदर्यदन्त-
प्रोत्फुल्लत्पक्षखेलत्करकरिमकरव्योमयानाधिरूढम्।
प्रेङ्खन्मुक्ताप्रवालाभरणभरमुपस्थाप्युदाराद्दताध्यं-
स्फूर्जच्छ्रीमादिपाशं वरुणमपरदिग्रक्षणं प्रीणयामि ॥१००॥

वृत्तिः—अहं वरुणं-प्रचेतसं । प्रीणयामि-सन्तर्पयामि । कथंभूतं वरुणं ? नित्याम्भःकेलिपाण्डूत्कटकपिलशिराच्छेदसोदर्यदन्तप्रोत्फुल्लाब्जखेलत्करकरिमकरव्योमयानाधिरूढं—नित्यमनवरतमम्भःकेलिना जलक्रीडया पाण्डूत्कटः शुभ्रवर्णप्रधानः कपिलो गोरचनावर्णो यस्य स नित्याम्भःकेलिपाण्डूत्कटकपिलः, शिराच्छेदसोदर्यौ पद्मिनीकन्दखण्डसदृशौ दन्तौ दशनमुशलौ यस्येति शिराच्छेदसोदर्यदन्तः, प्रोत्फुल्लन्ति प्रकर्षेणोत्कर्षेण विकसन्ति यानि पद्मानि कमलानि तैः खेलन् क्रीडन् करः शुण्डादण्डो यस्येति प्रोत्फुल्लपद्मखेलत्करः, स चासौ करिमकरो जलगजेन्द्रः स चासौ व्योमयानं विमानस्तदधिरूढ आरूढस्तथोक्तं । पुनरपि कथंभूतं वरुणं ? प्रेङ्खन्मुक्ताप्रवालाभरणभरं—मुक्ताश्च मौक्तिकानि प्रवालाश्च विद्रुमाणि मुक्ताप्रवालास्तेषामाभरणानि अलङ्करणानि मुक्ताप्रवालाभरणानि प्रेङ्खन्ति प्रचलन्ति यानि मुक्ताप्रवालाभरणानि प्रेङ्खन्मुक्ताप्रवालाभरणानि तेषां भरोऽतिशयो यस्येति तथोक्तस्तं । पुनरपि कथंभूतं वरुणं ? उपस्थातृदाराद्दृताक्षं—उपतिष्ठन्तीति उपस्थातार उपसुराः सेवकदेवा दाराश्च कलत्राणि तेभ्यादृते प्रीतिप्रेमपरे अक्षिणी लोचने यस्येति उपस्थातृदाराद्दृताक्षस्तं तथोक्तं । पुनः कथंभूतं वरुणं ? स्फूर्जद्भीमाहिपाशं—स्फूर्जन् विस्फुरन् स्वकार्येऽप्रतिहतं प्रवर्तमानो भीमोऽतिभयानकोऽहिपाशो नागपाशो यस्येति स्फूर्जद्भीमाहिपाशस्तं तथोक्तं । पुनरपि कथंभूतं वरुणं ? अपरदिग्रक्षिणं—अपरदिशं पश्चिमदिशां रक्षतीत्येवं शीलस्तमपरदिग्रक्षी तं तथोक्तम् ॥ १०० ॥

ॐ ह्रीं क्रों वरुण ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् वरुणाय स्वाहा । वरुणपरिजनाय स्वाहा । वरुणानुचराय स्वाहा । वरुणमहत्तराय स्वाहा । अग्नये स्वाहा, शेषं पूर्ववत् ॥ ५ ॥

वल्गच्छृङ्गाग्रभिन्नाम्बुदपटलगलत्तोयपातश्रमाभ्र—
प्लुत्यस्तस्वान्तरंहःखुरकपितकुलग्रावसारङ्गयुग्यम् ।
व्यालोलद्दृग्गात्रयन्त्रं त्रिजगदसुधृतिव्यग्रमुग्रद्रुमास्त्रं
सर्वार्थानर्थसर्गप्रभुमनिलमुदक्प्रत्यगन्तः प्रणामि ॥१०१॥

वृत्तिः—अहमनिलं—वायुदेवं प्रणामि—स्तुवामि अनुकूलयामि । क्व ? उदक्प्रत्यगन्तः—उत्तरपश्चिमदिशोरन्तर्मध्ये अन्तराले इत्यर्थः । कथंभूतमनिलं ? वल्गदित्यादि—वल्गन्ती ऊर्ध्वमुच्छलन्ती ये शृङ्गे विषाणे तयोरग्राभ्यां प्रान्ताभ्यां भिन्नानि जर्जरितानि यानि अम्बुदपटलानि वार्दलवृन्दानि तेभ्यो गलन्ति अधःपतन्ति यानि तोयानि उदकानि तैः पातो विनाशितः श्रम आकाशगमनखेदो यस्येति वल्गच्छृङ्गाग्रभिन्नाम्बुदपटलगलत्तोयपातश्रमः, अभ्रप्लुतिराकाशादतिशीघ्रगमनं तयास्तं विध्वस्तं तिरस्कृतं स्वान्तरंहो मनोवेगो येनेति अभ्रप्लुत्यस्तस्वान्तरंहाः, खुरैः शफैः पादाग्रैः कपिताश्चूर्णीकृताः कुलग्रावाणः कुलपर्वता येनेति खुरकपितकुलग्रावा स चासौ सारङ्गो मृगः युग्यं वाहनमस्येति तथोक्तस्तं तथोक्तं । पुनः कथंभूतमनिलं ? व्यालोलद्दृग्गात्रयन्त्रं—व्यालोलत् विविधमासमन्ताच्चलद्दृग्गात्रं शरीरमेव यंत्रं कृत्रिमयंत्रं यस्येति व्यालोलद्दृग्गात्रयंत्रस्तं तथोक्तं । पुनरपि कथंभूतमनिलं ? त्रिजगदसुधृतिव्यग्रं—त्रिजगतां त्रिजगति स्थितप्राणिनामसूनां प्राणानां धृतिः प्राणधारणं त्रिजगदसुधृतिः जन्तूनामुच्छ्वासाधीनजीवितत्वात् , तत्र व्यग्रो व्यापृतस्त्रिजगदसुधृतिव्यग्रस्तं तथोक्तं । पुनरपि कथंभूतमनिलं ? उग्रद्रुमास्त्रं—उग्रमुत्कटं द्रुमास्त्रं वृक्षायुधं यस्येति उग्रद्रुमास्त्रस्तं तथोक्तं । भूयोऽपि कथंभूतमनिलं ? सर्वार्थानर्थसर्गप्रभुं—सर्वे च तेऽर्थाः प्रयोजनानि अनर्था अप्रयोजनानि तेषां सर्गः सृष्टिर्निपातिस्तत्र प्रभुः समर्थः सर्वार्थानर्थसर्गप्रभुस्तं तथोक्तं, जीवितमरणादिदानसमर्थमित्यर्थः । तथा चोक्तम्—

सर्वार्थानर्थकरणे विश्वस्यास्यैककारणम् ।
अदृष्टदुष्टपवनः शरीरस्य विशेषतः ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं क्रौं पवन ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् पवनाय स्वाहा । पवनपरिजनाय स्वाहा । पवनानुचराय स्वाहा । पवनमहत्तराय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । शेषं पूर्ववत् ॥ ६ ॥

हंसौघेनोह्यमानं पवननरिनृतत्केतुपंक्ति विमानं
स्वारूढः पुष्पकाख्यं क्रमसखरसनादाममुक्ताकलापः ।
अग्राम्योद्दामवेषः सुललितधनदेव्यादिवक्त्राब्जभृङ्गः
शक्तिभिन्नारिमर्मा भजतु बलिमुदग्भुक्तिवीरः कुबेरः ॥१०२॥

वृत्तिः—कुबेरः—धनदः; बलि—पूजां, भजतु—स्वीकरोतु । कथंभूतः कुबेरः ? पुष्पकनामानं विमानं व्योमयानं स्वारूढः—अतिशयेन चटितः । कथंभूतं विमानं ? हंसौघेन श्वेतगरुत्पक्षिसमूहेनोह्यमानं—यथेष्टं नीयमानं । पुनः कथंभूतं विमानं ? पवननरिनृतत्केतुपङ्क्तिं—पवनेन वातेन नरिनृतन्त्यो भृशं पुनः पुनर्वा नृत्यन्त्यः केतुपंक्तयो ध्वजश्रेण्यो यस्य यत्रेति वा स पवननरिनृतत्केतुपंक्तिस्तं तथोक्तं । पुनः किं विशिष्टः कुबेरः ? क्रमसखरसनादाममुक्ताकलापः—क्रमसखः पादाग्रस्पर्शी रसनादाम्नः शृङ्खलामालायाः सम्बन्धी मुक्ताकलापः मौक्तिकसमूहो यस्येति तथोक्तः । पुनः किंविशिष्टः कुबेरः ? अग्राम्योद्दामवेषः—अग्राम्यो नागर उद्दाम उदारो वेष आकल्पो यस्येति तथोक्तः । पुनः किंविशिष्टः कुबेरः ? सुललितधनदेव्यादिवक्त्राब्जभृङ्गः—सुललिता अतिशयेनेप्सिता अतिमृद्वङ्ग्यो मालतीमाला इव कोमलाङ्ग्य इतस्ततो नमनशीलशरीरयष्टयो धनदेव्यादयो धनदेवीनामप्रभृतयो देव्यस्तासां वक्त्राणि मुखान्येवाब्जानि कमलानि सुरूपत्वसुरभित्ववर्तुलत्वादिगुणविराजमानत्वात्, तत्र तेषां वा भृङ्गो मकरंदपर्यायः स तथोक्तः । पुनः कथंभूतः कुबेरः ? शक्तिभिन्नारिमर्मा—शक्त्या आयुधविशेषेण भिन्नानि विदारितानि अरीणां जिनशासनशत्रूणां मर्माणि जीवस्थानानि येनेति तथोक्तः । पुनः कथंभूतः

कुबेरः ? यथोक्तविशेषणविशिष्टः उदग्भुक्विवीरः—उत्तरदिग्भोगसुभट इति शेषः ॥१०२॥

ॐ ह्रीं क्रौं धनद ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् धनदाय स्वाहा । धनदपरिजनाय स्वाहा । धनदानुचराय स्वाहा । धनदमहत्तराय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । शेषं पूर्ववत् ॥७॥

सास्नावाचालकिंकिण्यनणुरणझणत्कारमञ्जीरसिञ्जा—
रम्योपघ्नशृंगहेलाविहरदुरुशरच्चन्द्रशुभ्रोक्षपृष्ठस्थम् ।
भास्वद्भूषाभुजंगं भुजगसितजटाकेतकार्द्धेन्दुचूलं
दध्रिं शूलं कपालं सगणशिवमिहार्चामि पूर्वोत्तरेशम् ॥१०३॥

वृत्तिः—इह—अस्मिन्सर्वंज्ञयज्ञे, पूर्वोत्तरेशं—पूर्वस्याश्चोत्तरस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा पूर्वोत्तरादिक् तस्या ईशं स्वामिनमीशानदेवं अहमर्चामि—पूजयामि । कथंभूतं पूर्वोत्तरेशं ? सास्नेत्यादि—सास्नायां गलकम्बले वाचाला बहुलापिन्यो याः किङ्किण्यः क्षुद्रघण्टिकास्तासामनणवो महान्तो रणझणत्कारा रणदिति झणदिति शब्दा यस्येति स सास्नावाचालकिङ्किण्यनणुरणझणत्कारः, मञ्जीराणां नूपुराणां सिञ्जाभिरव्यक्तशब्दैः रम्यो मनोहरो मञ्जीरसिञ्जारम्यः, उपघ्नयोरुद्गच्छतोः शृङ्गयोर्विषाणयोर्हेलया विदग्धचेष्टया विहरन्नव्याहतं यथेष्टं चेष्टमानः उरुर्महान् कैलाशगिरिवत्पुष्टतरशरीरः, शरच्चन्द्रशुभ्रः आश्विनकार्तिकसम्बन्धिशशाङ्कमण्डलावदातः, एवंविशेषणपंचकविशिष्टो योऽसावुक्षभो वृषभः परमेश्वरस्तस्मिंस्तिष्ठतीति यः स तथोक्तस्तं तथोक्तं । पुनरपि कथंभूतं पूर्वोत्तरेशं ? भास्वद्भूषाभुजङ्गं—भास्वन्तो दीप्तिमन्तो भूषाभुजङ्गा आभरणनागा यस्येति तथोक्तस्तं तथोक्तं । भूयोऽपि कथंभूतं पूर्वोत्तरेशं ? भुजगसितजटाकेतकार्धेन्दुचूलं—जटाश्च लम्बकचाः केतकानि च केतकीपुष्पाणि अर्धेन्दुश्च खण्डचन्द्रः भुजगैर्नागैः सिता बद्धा जटाकेत-

कार्धेन्दुचन्द्रचूलायां शिखायां येनेति भुजगसितजटाकेतकार्धेन्दुचूलस्तं तथोक्तं । पुनः कथंभूतं पूर्वोत्तरेशं ? दध्रि—धरतीत्येवंशीलो दध्रिस्तं दध्रि धरणमित्यर्थः । किंतत्कर्मतापन्नं ? शूलं—रौद्रशस्त्रास्त्रविशेषं न केवलं शूलं दध्रिमपि तु कपालं—नरशिरःकरोटिं । पुनरपि किंविशिष्टं पूर्वोत्तरेशं ? सगणशिवं—सह गणैर्नन्दिदण्डिवामनादिभिः शिवया पार्वत्या च वर्तते इति सगणशिवस्तं तथोक्तम् ॥१०३॥

ॐ ह्रीं क्रों ईशान ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् ईशानाय स्वाहा । ईशानपरिजनाय स्वाहा । ईशानानुचराय स्वाहा । ईशानमहत्तराय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । शेषं पूर्ववत् ॥८॥

वज्रौजस्तर्जिपृष्ठश्वसनसमतरःकूर्मराजाधिरूढं
क्षुद्रर्षीवेभकुम्भाक्रमणचणशृणिस्फुरणव्यग्रपाणिम् ।
संश्लिष्यद्दक्सहस्राङ्कितवपुषिकणारत्नकक्ष्मप्रवाल-
शुम्भौषापीडमर्हच्छ्रितमहिपमधोऽर्चामि पद्मासमेतद् ॥१०४॥

वृत्तिः—अहमहिपं—धरणेन्द्रं, अर्चामि—पूजयामि । क ? अधः—अधरस्यां दिशि इन्द्रेशानयोर्मध्यभागे इत्यर्थः । कथंभूतमहिपं ? वज्रौजस्तर्जिपृष्ठश्वसनसमतरःकूर्मराजाधिरूढं—वज्रस्य पवेरोज उत्साहं तेजो वा तर्जयति भर्त्संयति तिरस्करोतीत्येवंशीलं वज्रौजस्तर्जि वज्रवद्-दृढकठोरमित्यर्थः, तादृशं पृष्ठं तनुचरमभागो यस्येति वज्रौजस्तर्जिपृष्ठः, श्वसनेन वायुना समं सदृशं तरसी वेगवलं यस्येति श्वसनसमतरा एवं विशेषणद्वयविशिष्टो योऽसौ कूर्मराजः कच्छपेन्द्रस्तमधिरूढआटितस्तं तथोक्तं । पुनरपि कथंभूतमहिपं ? क्षुद्रर्षीवेभकुम्भाक्रमणचणशृणिस्फारणव्यग्रपाणिं—क्षुद्राः शत्रवस्तेषां वीवेभा मत्तगजास्तेषां कुम्भाक्रमणे शिरःपिण्डकदर्थने प्रवीणः क्षुद्रर्षीवेभकुंभाक्रमणचणः "वित्तं चञ्चुचणौ" इति वचनात्, शृणेरङ्कुशस्य स्फारणे व्यापरणे व्यग्रो व्यापृतः शृणि-

स्कारयाव्यम:, एवं विशेषणद्वयविशिष्टः पार्श्वदक्षिणकरो यस्येति तथोक्तस्तं तथोक्तं। भूयोऽपि कथंभूतमहिपं ? संश्लिष्यद्दृक्सहस्त्रद्वितय-घृणिफणारत्नकस्त्रप्तबालघ्नौघापीडं—संश्लिष्यन्त्यः परस्परं मिलन्त्यो दृशां नेत्राणां सहस्रद्वितीयस्य विंशतिशत्या घृणयो ये किरणाः फणारत्न-रुचश्च दर्वी (?) सहस्रमणिदीप्तयस्ताभिः क्लृप्तः समर्थितो रचितो बाल-घृणौघापीडः सद्यस्तनभास्करसमूहमयशेखरो यस्येति स तथोक्तस्तं तथोक्तं। पुनरपि किं विशिष्टमहिपं ? अर्हद्भिक्तं—तीर्थंकरपरमदेवभक्ति-तत्परमित्यर्थः। अपरं किं विशिष्टमहिपं ? पद्मासमेतं—पद्मा पद्मावती स्वकीयकान्ता पत्न्यादिविभूतिर्वा तया समेतं संयुक्तमिति शेषः ॥१०४॥

ॐ ह्रीं क्रों धरणेन्द्र ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् धरणेन्द्राय स्वाहा। धरणेन्द्रपरिजनाय स्वाहा। धरणेन्द्रानुचराय स्वाहा। धरणेन्द्र-महत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। शेषं पूर्ववत् ॥ ९ ॥

वैरिस्तम्बेरमास्रोल्लसदरुणसटाटोपशुभ्राङ्गभीरु—
बालेन्दुस्पर्धिदंष्ट्रोत्कमखरनखरारक्तहर्यक्षसंस्थम्।
कुन्तास्त्रं रोहिणीशं कुवलयसुमनःस्रक्श्रितांसं भयुक्तं
ज्योत्स्नापीयूषवर्षं जिनयजनपरं सोममूर्ध्वे महामि ॥१०५॥

वृत्तिः—अहं सोमं—चन्द्रमसं, महामि—पूजयामि। किं प्रति ? ऊर्ध्वे—ऊर्ध्वायां दिशि नैर्ऋत्यवरुणयोर्मध्ये इत्यर्थः। उक्तं च "शेषसो-मासने शक्रपाश्विदक्षिणपार्श्वयोः"। कथंभूतं सोमं ? वैरीत्यादि—वैरिणां शत्रूणां स्तम्बेरमाः करिणस्तेषामस्रेण रुधिरेणोल्लसदरुणाः प्रादुर्भव-दव्यक्तरागा याः सटाः स्कन्धकेशराणि तासामाटो भयङ्करसम्भारो यस्येति वैरिस्तम्बेरमास्रोल्लसदरुणसटाटोपः, शुभ्रं शुक्लमङ्गं शरीरं यस्येति शुभ्राङ्गः, भीरुणो भयङ्करा बालेन्दुस्पर्धिन्यः शुक्लतावक्रताभ्यां

द्वितीयाचन्द्रतिरस्कारिण्यौ दंष्ट्रा आस्ये यस्येति भीक्ष्णबालेन्दुस्पर्धिदंष्ट्रः, उत्क्रमः उद्दामपराक्रमः खरनखरः वज्रटंकिका इव कठोरतर-कामांकुशः, आरक्तदृक् समन्ताद्रक्तनेत्रः, एवं पड्विशेषणविशिष्टो योऽसौ सिंहः पंचवक्त्रस्तस्मिन् सन्तिष्ठते उपविशतीति स तथो-क्तस्तं तथोक्तं। पुनः कथंभूतं सोमं ? कुन्ताङ्कं— प्रासायुधं। पुनः कथंभूतं सोमं ? रोहिणीष्टं—रोहिणी चतुर्थनक्षत्रं इष्टा अग्रमहीषी यस्येति रोहिणीष्टस्तं रोहिणीष्टं। पुनरपि किंविशेषणाश्रितं सोमं ? कुवलयसुमनःस्रक्श्रितांसं—कुवलयानि च कुमुदानि कैरवाणि श्वेतोत्पलानि सुमनसश्च मालतीपुष्पाणि तेषां स्रजा मालया श्रितौ आश्रि-तावंसौ स्कन्धप्रदेशौ यस्येति कुवलयसुमनःस्रक्श्रितांसस्तं तथोक्तं सितोत्पलमालतीमालावन्वितस्कन्धप्रदेशमित्यर्थः। पुनरपि कथंभूतं सोमं ? भयुक्तं—नक्षत्रैर्मण्डितं पंचविधज्योतिर्गणसमेतमित्यर्थः भूयः किंविशिष्टं सोमं ? ज्योत्स्नापीयूषवर्षं—ज्योत्स्ना कौमुदीचन्द्रिका पीयूष-ममृतं वर्षतीति ज्योत्स्नापीयूषवर्षः, अथवा ज्योत्स्नेव पीयूषं ज्योत्स्नाया पीयूषमिति वा वर्षतीति तं तथोक्तं। अपरं किंविशिष्टं सोमं ? जिनयजनपरं—तीर्थंकरपरमदेवपूजनतत्परम् ॥१०५॥

ॐ ह्रीं क्रौं सोम ! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् सोमाय स्वाहा। सोमपरिज-नाय स्वाहा। सोमानुचराय स्वाहा। सोममहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। शेषं पूर्ववत् ॥ १० ॥

इत्यर्हन्महसामवाचिकतयाह्वानादियोग्यक्रमै—
दिक्पालाः कृततुष्टयः परिजनोत्कृष्टश्रियोऽमूनिमे।
दृष्टुं कामदमर्हदध्वरमरं दिक्चक्रमाक्रामतो
भव्यान् सन्दधतः शुभैः सह भजन्त्वेतर्हि पूर्णाहुतिम् ॥१०६॥

वृत्तिः—इमे—प्रत्यक्षीभूताः, दिक्पालाः—ककुभां रक्षकाः, एतर्हि—इदानीं, अर्घं—प्रत्यक्षीभूतां, पूर्णाहुतिं—पूर्णार्घं, भजन्तु—स्वीकुर्वन्तु। कथं? सह—युगपत् समकालं। कथंभूता दिक्पालाः? इति—पूर्वोक्तप्रकारेण। कृततुष्टयः—विहितानुकूलनाः। कथा? अर्हन्मखसामवायिकतया—जिनयज्ञसहकारितया। कैः—कृत्वा कृततुष्टयः? आह्वानादियोग्यकर्मैः—आह्वाननस्थापनसन्निधिकरणपूजनादिभिरुचितपरिपाटिकाभिः। कथंभूता दिक्पालाः? परिजनोत्कृष्टश्रियः—परिजनैः परिच्छदैः परिवारैरुत्कृष्टाः परमप्रकर्षं प्राप्ताः श्रियः सम्पत्तयः शोभा वा येषां ते तथोक्ताः। दिक्पालाः किं कुर्वन्तः? भव्यान्—मुक्तिगामिनो जीवान्, शुभैः—परमकल्याणैः, सन्दधतः—संयोजयन्तः। भव्यान् किं कुर्वन्तः? दिग्चक्रं—दिक्मण्डलं, आक्रामतः—इतस्ततो व्याप्नुवतः। कथं? खरं—अतिशयेन। किं कर्तुमाक्रामतः? अर्हदध्वरं—सर्वज्ञयज्ञं, द्रष्टुं—अवलोकयितुं। कथंभूतमर्हदध्वरं? कामदं—मनोवाञ्छितवस्तुप्रदायकं। कथं? खरं—अतिशयेनेति। तथा चोक्तम्—

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥१॥
अर्हच्चरणसपर्या महानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥२॥

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवाराः सर्वे देवाः! आगच्छतागच्छत संवौषट्, तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, मम सन्निहिता भवत भवत वषट् इदं जलादिकमर्चनं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं ॐ भूर्भुवः स्वः स्वधा स्वाहा।

पूर्णाहुतिः।

——

एवं सत्कृत्य दिक्पालानेभ्यो मन्त्रैः पुनर्ददे।
अप्कुण्डे सप्तशः सप्तधान्यमुष्टिभिराहुतिम् ॥१०७॥

वृत्तिः—एवं—अमुना प्रकारेण, दिक्पालान् सत्कृत्य—सम्मान्य, पुनः—भूयोऽपि, मंत्रैः—वक्ष्यमाणलक्षणोपलक्षितैर्बीजाक्षरादिसमुदायैः, एभ्यः—दिक्पालेभ्यः, आहुतिं ददे—होमं प्रयच्छामि । कस्मिन् ? अप्कुण्डे—जलकुण्डे । कैः ? सप्तधान्यमुष्टिभिः । कथं ? सप्तशः—सप्तभिरिति शस् कारकात् । तथा चोक्तम् ;—

तुवर्यश्चणका माषमुद्गगोधूमशालयः ।
यवाश्च मिश्रिताः सप्तधान्यमित्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं इन्द्राय स्वाहा, अनेन जलपूर्णकुण्डे सप्तभिः सप्तधान्यकमुष्टिभिरिन्द्रायाहुतिं दद्यात् । एवमग्न्यादिभ्योऽपि ।

दिक्पालाः ! प्रतिसेवनाकुलजगद्दोषार्हदण्डोद्भटाः
साधर्म्यप्रणयेन बद्धभगवत्सेवानियोगेन वा ।
पूजापात्रकराग्रतःसरमुपेत्योपात्तबल्यर्चनाः
प्रत्यूहान्निखिलान्निरस्यत जिनस्नानोत्सवोत्साहिनाम् ॥१०८॥

वृत्तिः—हे दिक्पालाः—ककुब्रक्षकाः । जिनस्नानोत्सवोत्साहिनां—सर्वज्ञाभिषेकोत्सवोद्यमिनां भव्यप्राणिनां । निखिलान्—समस्तान् । प्रत्यूहान्—विघ्नान् । निरस्यत—विनाशयत यूयं । किं कृत्वा पूर्वं ? उपेत्य—आगत्य । कथमुपेत्य ? पूजापात्रकराग्रतःसरं—पूजापात्राणि करेषु येषां ते पूजापात्रकरास्ते अग्रतःसराः पुरोगामिनो यस्मिन्नुपायनकर्मणि तत्तथोक्तं । केन कारणेन प्रत्यूहान् निराकुरुत ? साधर्म्यप्रणयेन—समानधर्मतास्नेहेन । वा—अथवा । बद्धभगवत्सेवानियोगेन—अंगीकृतसर्वज्ञसेवाधिकारेण । कथंभूता यूयं ? प्रतिसेवनाकुलजगद्दोषार्हदण्डोद्भटाः—प्रतिसेवनायां धर्मकर्मविराधनायामाकुलं व्यग्रमार्तरौद्रध्यानेनाव्यस्तीकृतं यज्जगल्लोकस्तस्य दोषार्हदण्डे विराधनानुसारदण्डनिपातने उद्भटा उत्कर्षेण समर्थास्ते यूयं तथोक्ताः । भूयः किंविशिष्टा यूयं ? उपात्त-

बल्यर्चनाः—उपात्तं गृहीतं बल्यर्चनं पूजोपहारपूजनं यैस्ते उपात्तबल्यर्चना अभ्येषणार्थः सत्कारपूर्वकव्यापारार्थ इत्यर्थः ॥१०८॥

इति दिक्पालार्चनविधानम् ।

एतस्मादन्यमिथ्यादृष्टिकल्पितमपूर्वं दिक्पालार्चनविधानं न प्रमाणमित्यर्थः । एवं मंत्रसमासेनिदर्शने भावार्थो ज्ञातव्यः ।

अथाभिषेकः—

सानन्दं श्रुतिमुद्धरन्तु मधुरं गायन्तु मन्द्रस्वने—
रातोद्यानि कृतार्थयन्तु निगदन्त्वाशीःस्तवं मङ्गलैः ।
नृत्यन्तु स्फुटभावमादधतु वा सेवां यथास्वं समे
पुण्योऽयं जिनराजमज्जनविधावर्थो मयाभ्युद्धृतः ॥१०९॥

वृत्तिः—अयं—प्रत्यक्षीभूतोऽर्थः—जलगन्धाक्षतादिसमुदायः, मया—आशाधरेण महाकविना, अभ्युद्धृतः—सर्वज्ञमभिमुखीकृत्योच्चलितः । क ? जिनराजमज्जनविधौ—जिनानां राजा जिनराजः मुण्डकेवलिगणधरदेवादीनां प्रभुः, अथवा जिन एव राजा केवलज्ञानसाम्राज्यभोक्तृत्वात्, इन्द्रादीनां मध्येऽतिशयेन राजनत्वाच, जिनराजस्य मज्जनविधिर्विधानं जिनराजमज्जनविधिस्तस्मिन् । कथंभूतोऽयमर्थः ? पुण्यः—पवित्रः पुण्योपार्जनहेतुभूतश्च । यदि त्वयार्थोऽभ्युद्धृतस्तर्हि अन्ये लोकाः किं कुर्वन्तु ? अन्ये समे—सर्वेऽपि भव्यजनाः, यथास्वं—आत्माधिकारमनतिक्रम्य यथायोग्यं केचिच्छ्रुतिमुद्धरन्तु—निषादर्षभगान्धारषड्जधैवतमध्यमपंचमसंज्ञकानां रागाणामारभिकाणामनुतिष्ठन्तु । उक्तं च—

निषादर्षभगान्धारषड्जधैवतमध्यमाः ।
पंचमश्चेति सप्तैते तंत्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥१॥

श्रुतिमुद्धरन्तु कथं ? यथा भवति सानन्दं—सहानन्देन हर्षेण वर्तते यदुद्धरणकर्म तत्सानन्दं साल्हादं यथा भवति तथा आलपन्ति

कुर्वन्त्वित्यर्थः । तथा केचित् गायन्तु-गानं कुर्वन्तु । कथं गायन्तु ? मधुरं-मृष्टं कर्णामृतभूतमित्यर्थः । तथा केचित् आतोद्यानि ततविततघनसुषिर-संज्ञकानि चतुर्विधानिवादित्राणि, कृतार्थयन्तु-सफलीकुर्वन्तु । कैः कृत्वा कृतार्थयन्तु ? मन्द्रस्वनैः-गंभीरशब्दैः । तथा केचित् आशीःस्तवं-जय जीव नन्द वर्धस्वेत्याद्याशीर्वादरूपं स्तोत्रं निगदन्तु-अविरामेण व्यक्तं वदन्तु । कैः सह ? मङ्गलैः-छत्रचामरध्वजादर्शादिकल्याणैः । तथा केचित् नृत्यन्तु-नर्तनं कुर्वन्तु । कथं नृत्यन्तु ? स्फुटभावं-स्फुटा व्यक्ता रतिहासोत्साहक्रोधशोकाद्य एकोनपंचाशद्भावाः शृङ्गारादिनवरसकारणानि यस्मिन् नर्तनकर्मणि तद्भवति स्फुटभावं । उक्तं च वाग्भटेन—

शृङ्गारवीरकरुणाहास्याद्भुतभयानकाः ।
रौद्रबीभत्सशान्ताश्च नवैते निश्चिता बुधैः ॥ २ ॥

तथा केचित् वा-अथवा, सेवां-हस्तमोटनशिरोनमनसन्मुखावलोकनादिका पर्युपासनां, आदधतु-आचरन्तु ॥ १०९ ॥

अर्घोद्धरणम् ।

जलगन्धाक्षतप्रसूनचरुदीपकधूपफलोत्तमै—
दंधिदूर्वादिमङ्गलयुतैः पृथुकाञ्चनभाजनार्पितैः ।
रचितमिमं विचित्रतीर्थत्रिककीर्तनजयजयस्वन—
स्वस्त्ययनेद्धसभ्यमुदमर्घमनर्घ्य ! परिक्षिपेय ते ॥११०॥

वृत्तिः—हे अनर्घ्य ! हे अनन्तज्ञानादिभिर्गुणैरमूल्य ! ते तव । इमं-प्रत्यक्षीभूतं । अर्घं परिक्षिपेय-समन्तादुत्तारयेऽहं । किं विशिष्टमर्घं ? रचितं-सज्जीकृतं । कैः ? जलेत्यादि-उत्तमशब्दः प्रत्येकं प्रयुज्यते तेनायमर्थः जलोत्तमैः-कर्पूरवासितस्वच्छस्वादुशीतगुणश्लाघ्यतोयैः पानीयैः, गन्धोत्तमैः कर्पूरागुरुकाश्मीरादिमिश्रितचन्दनैः, अक्षतोत्तमैः कलमशालितन्दुलैः, प्रसूनोत्तमैर्जातीचम्पकादिपुष्पैः, चरूत्तमैः सोमालिकादिसत्य-

कान्तादिभिः, दीपकोत्तमैः कर्पूरादिनिर्मितत्वात्, धूपोत्तमैः कृष्णागुर्वादिजत्वात्। फलोत्तमैः—नालिकेरबीजपूरादिभिः। कथंभूतैर्जलादिभिरुद्रव्यैः? दधिदूर्वादिमङ्गलयुतैः—दधिदूर्वे आदिर्येषां सिद्धार्थस्वस्तिकनन्द्यावर्तादीनां तानि दधिदूर्वादीनि तानि च तानि मंगलानि कल्याणहेतुभूतवस्तूनि तैर्युतैः संयुक्तैः। पुनः किंविशिष्टैर्जलादिभिर्द्रव्यैः? पृथुकाञ्चनभाजनार्पितैः—विस्तीर्णसुवर्णवपनारोपितैः। किं विशेषणाक्रिममर्च? विचित्रेत्यादि—विचित्रशब्दः प्रत्येकं प्रयुज्यते विचित्राणि नानाप्रकाराणि आश्चर्यकारीणि च तौर्यत्रिकाणि गीतनृत्यवादित्राणि, विचित्राणि कीर्तनानि पुण्यगुणस्तवनानि विचित्रा नाना जयजनितस्वरभेदत्वात् जयजयस्वनाः जय जय जीव जीव नन्द नन्द वर्धस्व वर्धस्वेत्यादिशब्दाः, विचित्राणि स्वस्त्ययनानि अविनाशिविशुद्धिकारितया चतुरचित्तचमत्कारकारीणि स्वस्त्ययनानि कल्याणकरणानि तैरिद्धा परमातिशयं प्राप्ता सभ्यानां सभास्तार (?) नराणां मुद् परमानन्दो येनेति तथोक्तस्तं तथोक्तं ॥ ११० ॥

अर्घावतारणम्।

पूर्वोक्तपृत्तोद्भूतस्यार्घस्यानेन वृत्तेनोत्तरणं कुर्यादित्यर्थः।

ॐ स्वस्तये कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा। इति मन्त्रः।

कुम्भोद्धरणम्।

ॐ परमपवित्रसरित्सरसीसरस्तडागवापीकूपपुष्करिणीदीर्घिकाप्रभृतिपृथुतरतीर्थेषु निजां स्वातन्त्र्यवृत्तिं परिहृत्य जिनाभिषवाङ्गपुरोगभावेनात्मनो जडव्यपदेशमपाकर्तुकामैरिव कलधौतकलशान्तःप्रवेशेन स्वीकृतपारतन्त्र्यशुचिभिः स्पर्शमात्रेण शैत्यातिरेकात् सद्यःसर्वाङ्गीणरोमाञ्चमाविष्कुर्वाणैरव्यक्तरसत्वेऽपि कयापि मृष्टतया जिह्वायालाम्पट्यमुद्दादयद्भिः स्वाभाविकपरमनिर्मलत्वेन परमावगाढसम्य-

स्त्वमनुस्मरयद्भिः सुरतरिणीनीरपीतनीरदोद्गारसाधारणोऽपि पुण्याशयवैचित्रीवशादुपात्तनानात्वैरपि दिव्याम्बुविभ्रममाविभ्रणैः सुमनसामपि मनःसु सहसाऽदृष्टिपथस्थापितया हंसं क्षीरनीरशङ्काचमत्कारमवतारयद्भिरम्भोभिः—

ह्रदाद्यैर्बन्धुसङ्गैरिव जिनमतवज्जीवनैस्तर्कशास्त्र—
प्रख्यैर्धीवृद्धिदक्षैः प्रमुदितपतिसन्मानवत्तृप्तिकृद्भिः।
हृद्यैर्मैत्र्यादिभावैरिव हिमगुकरव्रातवद्घातिशीतै—
रेभिः पीयूषजिद्भिः सुरसरिदुदकैः स्नापयामो जिनेशम्।११२।

वृत्तिः—एभिः—प्रत्यक्षीभूतैः। अम्भोभिः—जलैः। जिनेशं—गणधरदेवादीनां स्वामिनं। वयं स्नापयामः—अभिषेचयामः। किंविशिष्टैरम्भोभिः? कलधौतकलशान्तःप्रवेशेन—स्वर्णकुम्भमध्यसञ्चरणेन, स्वीकृतपारतन्त्र्यवृत्तिभिः—अङ्गीकृतपारवश्यप्रवृत्तिभिः। पुनः कथंभूतैरम्भोभिः? उत्प्रेक्षते, आत्मनः—स्वस्य, जडव्यपदेशं—मूर्खत्वकरणं, अपाकर्तुकामैरिव—निराकर्तुमिच्छुभिरिव। केन कृत्वा? जिनाभिषवाङ्गपुरोगभावेन—जिनस्याभिषवाङ्गानि पञ्चामृतानि तेषां पुरोगभावेन प्रथमाङ्गतया। किं कृत्वा पूर्वमपाकर्तुकामैः? निजां—स्वकीयां, स्वातन्त्र्यवृत्तिं—स्वाधीनताप्रवृत्तिं, परिहृत्य—परित्यज्य। केषु परिहृत्य? परमेत्यादि—सरितश्च नद्यः सरस्यश्च महासरांसि, सरांसि च सरोवराणि तडागानि पद्माकराणि वाप्यश्च पद्गम्यजलकूपाः, कूपाश्च प्रहय उदपानानि अन्धव इति यावत् पुष्करिण्यश्च पुष्कराणि जलानि पद्मानि वा विद्यन्ते यास्विति पुष्करिण्यः खातानि चतुरस्राणि सरांसीति केचित्, दीर्घिकाश्चायतवापिकास्ताः प्रभृतयो मुख्या येषां ह्रदादेखातादीनां तानि सरित्सरसीसरस्तडागवापीकूपपुष्करिणीदीर्घिकाप्रभृतीनि पृथुलानि अतिशयेन विस्तीर्णानि गभीराणि च तानि च तानि तीर्थानि नावादिभिस्तरणयोग्यजलाशयाः,

परमपवित्राणि अतिशयेन पूतानि मामाद्यपवित्रजलयोगविगतत्वात्, तानि च तानि सरित्सरस्सीसरस्तडागवापीकूपपुष्करिणीदीर्घिकाप्रभृति-पृथुतरतीर्थानि च तानि तथोक्तानि तेषु तथोक्तेषु। अन्योऽपि यः परं केवलं निश्चितं वा अपवित्रेषु मिथ्यात्वमलकलङ्कोत्पादनहेतुत्वात्तेषु सरिदादि-गंगागोदावरीकालिन्दीसरयूसरस्वतीरेवातापिकादिषु धर्मार्थस्नानादिकस्वे-च्छाचारं त्यजन्ति तथा पृथुतरतीर्थेषु पशुयागाद्यवतारश्रीरजोमयेषु च स्वेच्छाचारं परिहरति जिनानामभिषवाङ्गेषु अभिषेकाभ्युपायेषु, अथवा जिनाभिषवेषु च अङ्गेषु च द्वादशाङ्गशास्त्रेषु पुरोगोऽग्रेसरो भवति तथा कलधौता मधुरध्वनयो मुनयः कर्कशकटुकाद्यभाषितत्वात्, कलमजीर्णं चेति स्यन्ति तनूकुर्वन्ति ये ते कलशाः अवमोदर्याहारिणो ब्रह्मचर्यधारि-णश्चेष्टशानां महामुनीनां पदार्चनाहारादिदानतयान्तर्मनसि च प्रविशति, आराधकतया कृतपारतन्त्र्यस्तेषां वशवर्ती च स्यात् स जडः कथं व्यपदि-श्यते मिथ्यादृष्टिरिव मूर्खः कथं कथ्यते न कथमपीत्यर्थः। भूयः किंवि-शिष्टैरम्भोभिः ? स्पर्शमात्रेण—ईषदपि स्पर्शनतया, शैत्यातिरेकात्—शिशिरत्वाधिक्यात्, सद्यः—तत्कालं, सर्वाङ्गीणरोमाञ्चं—समस्तशरीर-सम्बन्धि रोमहर्षणं, आविष्कुर्वाणैः—प्रकटं विदधानैः। अन्योऽपि यः स्पर्शमात्रेणाहारादिदानमात्रेण शैत्यातिरेकाद्विनयविवेकादिसद्भावे सौख्या-धिक्यात्सद्यस्तत्कालं सर्वाङ्गीणानां सर्वप्राणिहितानां दिगम्बरगुरूणां रोमाञ्चमाविष्करोति आनन्दमुत्पादयति सोऽपि जडः कथं व्यपदिश्यते। भूयोऽपि कथंभूतैरम्भोभिः ? अव्यक्तरसत्वे कयापि—विवक्षिततया, मृष्टया—मधुरतया, जिह्वाया—रसज्ञाया, लाम्पट्यं—लोलुपि अबोधि-तत्वाल्लब्धस्वादत्वेऽपि भजतां, उद्घाटयद्भिः—प्रकटयद्भिः। अन्योऽपि यः कश्चिदव्यक्तरसत्वेऽप्यप्रकटरागत्वेऽपि कयाप्यपूर्वया मृष्टया कर्णा-मृतवर्षिहृदयकमलोल्लासिमृदुवचनभाषितया जिह्वाया लाम्पट्यमुद्घा-टयति ग्रन्थार्थाकर्णनार्थितया गुरून् वाचालयति सोऽपि कथं जड इति कथं व्यपदिश्यते अत्र श्लेषोत्प्रेक्षालंकारः। किंकारयद्भिरम्भोभिः ? स्वा-

भाविकेन निसर्गजेन न तु कतकादिफलयोगोत्पन्नेन परमनिर्मलत्वेनो-त्कृष्टस्वच्छतया परमावगाढसम्यक्त्वं—केवलदर्शनावलोकितपदार्थसार्थ-नयोत्पन्नं सम्यग्दर्शनं, अनुस्मरयद्भिः—अनुकुर्वद्भिः । परमावगाढ-सम्यक्त्वं स्वाभाविकपरमनिर्मलत्वेन पारिणामिकप्रकृष्टकर्मलकलङ्करहि-तत्वेनोपलक्षितं भवति । तथा चोक्तं—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् ।
विस्तारार्थाभ्यां भवमवपरमावादिगाढं च ॥१॥

एतदार्याकथितदशप्रकारसम्यक्त्वविवरणार्थमाहुर्वृत्तत्रयं श्रीमन्तो गुणभद्राचार्याः । तथा हि—

आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुत विरुचितं वीतरागाज्ञयैव
त्यक्तग्रन्थप्रपंचं शिवममृतपथं श्रद्दधन्मोहशान्ते ।
मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता
या संज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशदृष्टिः ॥१॥
आकर्ण्याचारसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्दधानः
सूक्तासौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः ।
कैश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद्बीजदृष्टिः पदार्थान्
संक्षेपेणैव बुद्ध्वा रुचिमुपगतवान् साधु संक्षेपदृष्टिः ॥२॥
यः श्रुत्वा द्वादशाङ्गीं कृतरुचिरथ तं विद्धि विस्तारदृष्टिं
संजातार्थात्कुतश्चित्प्रवचनवचनान्यन्तरेणार्थदृष्टिः ।
दृष्टिः साङ्गाङ्गबाह्यप्रवचनमनगाह्योत्थिता यावगाढा
कैवल्यालोकितार्थे रुचिरिह परमावादिगाढेति रूढा ॥३॥

किं कुर्वाणैरम्भोभिः ? सुरतीरगिणीनीरपीतैः स्वर्गनदीजलपानं येषां ते सुरतीरगिणीनीरपीताः "अर्शआदित्वादः" यथा अर्शोहर्षाल्याधिर्विद्यते यस्यासौ अर्शसलेप्यात्रापि अप्रत्ययो ज्ञातव्यः । तथा चोक्तं कात्यायनेन—

कथं मुक्ताविमाः पीतागावः तपोगादर्श आदित्वाद्वेति ।

सुरक्षीरखांनीरपीताश्च ते नीरदाश्च मेघाः सुरक्षीरखीनीरपीतनीरदास्तेषामुद्गारसाधारणेऽपि वर्णसमानत्वेऽपि, पुण्याशयवैचित्र्यवशात्—पवित्रजलाधारनानात्वापराधीन्यात्, उपात्तनानात्वैरपि गृहीतानेकप्रकारत्वैरपि, दिव्याम्बुविभ्रमं—स्वर्गजलभ्रान्तिं, बिभ्राणैः—आदधानैः । ननु यानि स्वर्गाम्बुविभ्रममाबिभ्रते तानि कथमुपात्तनानात्वानि भवन्तीति विरोधः परिह्रियते-दिव्याम्बुवीनां स्वर्गजलपक्षिणां भ्रमं भ्रान्तिं धरमाणैः, अतस्तत्साधारण्येऽपि तस्मात्कारणविशेषान्नानात्वं तेषां घटते पक्षिणामपि नानात्वसद्भावात् । पुनश्च किं कारयद्भिरम्भोभिः ? आस्तां तावदन्ये मनुष्याः सुमनसामपि मनःसु—देवानामपि चित्तेषु, क्षणं मुहूर्तमेकं, क्षीरनीरधिनीरशंकाचमत्कारं—क्षीरोदसागरजलभ्रान्तिस्फुरणं, अवतारयद्भिः—प्रवेशयद्भिः । कया ? दृष्टिपथप्रस्थापितया—लोचनमार्गप्रयापितया । कथं ? सहसा—शीघ्रमिति । पुनः कथंभूतैरम्भोभिः ? ह्लादार्द्रैः—आनंदाम्बुपायैः । कैरिव ? बन्धुसङ्गैरिव—इष्टवर्गप्रथममेलापकैर्यथा । पुनः किं विशिष्टैरम्भोभिः ? जीवनैः—जीवसम्यक्दानदक्षैः । किंवत् ? जिनमतवत्—जैनशासनमिव । यथा जिनमतं सगुणेषु निर्गुणेष्वपि जन्तुषु जीवितं प्रददाति तथैतान्यपि । पुनः किं विशिष्टैरम्भोभिः ? धीवृद्धिदक्षैः—विद्यमानायामुत्कर्षकरणसमर्थैः, अतएव तर्कशास्त्रग्रन्थैः—देवागमालङ्कृतिप्रमेयकमलमार्तण्डादिप्रमाणग्रन्थसदृशैः । यथा तानि शास्त्राणि बुद्धिवर्धनसमर्थानि भवन्ति । भूयः किंगुणैरम्भोभिः ? तर्षिकद्भिः—आकांक्षाजनकैः । पानीये पीते सति क्षणमात्रादावप्याकांक्षा नोत्पद्यते । किंवत् ? प्रमुदितपतिसन्मानवत्—प्रहर्षप्राप्तनरेन्द्रपूजनवत् । भूयः किंविशिष्टैरम्भोभिः ? हृद्यैः—मनोहरैः । कैरिव ? मैत्र्यादिभावैरिव—सत्त्वप्रथमप्रीतिपरिणामैरिव । भूयः किंगुणैरम्भोभिः ? अतिशीतैः—अतिशयेन शीतलैः । किंवत् ? हिमगुकरव्रातवत्—चन्द्रकिरणसमूहवत् । चकार उक्तविशेषणसमुच्चयार्थः प्रसन्नत्वसुरभित्वादयोऽपि गुणास्तेषु वर्तन्त इत्यर्थः ।

पुनरपि किंविशिष्टैरम्भोभिः पीयूषजिद्भिः—स्वाद्वादिगुणसद्भावतया अमृततिरस्कारिभिः । भूयः किंविशिष्टैरम्भोभिः ? सुरसरिदुदकैः—संकल्पवशेन स्वर्गनदीजलैः, एतानि सुरसरिदुदकान्येवेति भावः ॥११२॥

तीर्थोदक-मंत्रः ।

अत्र तीर्थोदकाभिषेकमंत्रः पठनीय इत्यर्थः । तथा हि—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं पंपं हंहं संसं तंतं कंकं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा । एवमिक्षुरस-घृत-दुग्ध-दधि-सर्वौषधादिकक्षरागन्धोदकेष्वपि योज्यम् ।

मुक्ताचूर्णसवर्णकान्तिविसरव्याजाज्जगत्पावनी—
कारोत्सेकभरेण मंत्रजपनायासं विहस्याप्यरम् ।
दूरं यान्ति जिनाङ्गसंगसमुपाचान्तर्मलोन्मूलन—
श्यामानि त्रपयेव मज्जनजलान्येतानि धिन्वन्तु वः ॥११३॥

वृत्तिः—एतानि—प्रत्यक्षीभूतानि । मज्जनजलानि—जिनस्नानोदकानि । वः—युष्मान् । धिन्वन्तु—प्रीणयन्तु स्वर्गादिकसुखप्रदानेन परमानन्दमुत्पादयन्तु युष्माकमित्यर्थः । किं कुर्वन्ति सन्ति धिन्वन्तु ? अरं—अतिशयेन, दूरं—विप्रकृष्टं, यान्ति—गच्छन्ति सन्ति । किं कृत्वा पूर्वं ? मंत्रजपनायासं विहस्यापि—ॐ अमृते अमृतोद्भवे इत्यादिभिर्मंत्रैः किल प्रमा (?) न पवित्रीभवति तेषां जपनायासं जपक्लेशं तिरस्कृत्योपहस्य । केन कृत्वा विहस्य ? जगत्पावनीकारोत्सेकभरेण—त्रैलोक्यपवित्रीकरणगर्वातिशयेन । जलानां विहसनमपि कस्मात्संभवति ? मुक्ताचूर्णसवर्णकान्तिविसरव्याजात्—मुक्ताफलचूर्णसदृशद्युतिप्रसरमिषात् । कया कृत्वा दूरं यान्ति ? उत्प्रेक्ष्यते, त्रपयेव—लज्जयेव । त्रपोत्पत्तिकारण-

गर्भितं विशेषणमाह—कथंभूतानि जलानि ? जिनाङ्गसङ्गसमुपात्तान्तर्मलोन्मूलनस्थामानि—जिनस्य सर्वज्ञस्याङ्गं शरीरं जिनाङ्गं तस्य संगः सङ्गतिस्तस्मात्समुपात्तं सम्यग्गृहीतमन्तर्मलोन्मूलने पापक्षालने स्थामा शक्तिर्यैस्तानि तथोक्तानि ॥११३॥

आशीर्वादः।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै—
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥११४॥

इष्टिः—पूजेत्यर्थः।

शुद्धोदकाभिषेकः—चर्मादिस्पर्शरहितनिष्केवलोदकस्नपनमित्यर्थः।

ॐ मूलाग्रपर्वपरित्यागेऽप्यक्षतभावेन जिनयागयोग्येभ्यः कौलीन्यसारल्यनैर्मल्ययोगेऽपि करदण्डोपमर्दनेन निःस्रावणीयसारेभ्यः पौण्ड्रिकवांशिकप्रमुखेक्षुदण्डेभ्यस्तत्क्षणलब्धात्मलाभास्तत एवास्पृष्टविष्टम्भिस्त्वविदाहित्वगुरुत्वदोषत्वेन मुमुक्षूणामप्युपयोगयोग्यास्तेजोऽनुबन्धनिबन्धनत्वेन धर्मसन्तानार्थितया त्रैवर्णिकगृहस्थानामुपस्कारपूर्वकमासेवनीयाः सावर्ण्यप्रणयेनेव चारुचामीकरकरीराणामन्तःप्रविश्य शोभातिशयमुद्भासयन्तः—

ये दूरीकृतवैकृतामधुरताशैत्यप्रसादोद्धुरा
स्निग्धस्वादुविपाकबृंहणतया क्षीणान् पुष्णंति क्षणात्।
तैरिक्षोः सुरसैर्जिनं सुनुमहे खर्जूरराजादन—
प्राचीनामलकाम्रचोचकरकद्राक्षादिजैर्वा रसैः ॥११५॥

वृत्तिः—तैः—जगत्प्रसिद्धैः। इलोः—सुष्ठु स्तुतिविषयी कुर्महे अभिधेके केवला स्तुतिर्विरुद्धं समुदायेषु निवृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्त इति वचनादिक्षुशब्देनेक्ष्वाकुर्भगवान् वृषभेश्वरो लभ्यते तस्य सुरसैः—शोभना रसा पृथ्वी येषां ते सुरसाः सुपृथ्वीका नरेन्द्रास्तैः—त्रिनं सुनुमहे । ते के ? ये पौण्ड्रिकवांशिकप्रमुखेक्षुदण्डेभ्यस्तत्क्षणे लब्धात्मलाभाः—पुण्ड्रे राज्यतिलके नियुक्ताः पौण्ड्रिकाः, वंशे संघे अन्वये वा भवा वांशिकास्ते प्रमुखा मुख्या येषां हरिकुरूग्रनाथादीनां ते तथोक्ताः, ते च ते इक्षुदण्डा ऋषभसैन्यास्तेभ्यस्तत्क्षणं तत्कालं लब्धः प्राप्तः आत्मलाभो जन्म यैस्ते तथोक्ताः। कथंभूतेभ्य इक्षुदण्डेभ्यः ? मूलाग्रपर्वपरित्यागेऽपि अक्षतभावेन जिनयागयोग्येभ्यः। ननु ये मूलपर्व आद्यमहोत्सवगर्भावतारादिकं, अग्रपर्व अन्त्यमुत्सवं निर्वाणपूजादिकं परित्यजन्ति, अथवा मूलपर्वाणि अष्टमीचतुर्दशीप्रमुखानाद्यधर्मकर्मतिथीन्, अग्रपर्वाणि केवलज्ञानादिप्राप्तिहेतुभूततया श्रेष्ठपर्वाणि उत्तमतिथीन् श्रीपञ्चमीप्रमुखान् परित्यजन्ति, उपवासादिभिः स्नपनपूजनक्रियाकर्मादिभिर्धर्मकर्म न वृद्धिं नयन्ति ते कथमक्षतभावेनाखण्डभक्त्या जिनयागयोग्या जिनप्रतिष्ठादिकारापकतयोचिता भवन्तीति विरुद्धमेतत्। उक्तं च—

पर्वाणि प्रोषधान्याहुर्मासे चत्वारि तानि वै।
पूजाक्रियाव्रताधिक्याद्धर्मकर्मात्र बृंहयेत् ॥१॥
रसत्यागैकभक्तैकस्थानोपवसनक्रियाः।
यथाशक्ति विधेयाः स्युः पर्वसन्धौ च पर्वणि ॥२॥

तथान्यदपि विरुद्धं प्रदर्श्यते—कथंभूतेभ्य इक्षुदण्डेभ्यः ? कौलीन्यसारल्यनैर्मल्यगुणयोगेऽपि करदण्डोपमर्दनेन निःस्रावणीयसारेभ्यः—कुलीनस्योत्तमकुलस्य भावः कर्म वा कौलीन्यं, सरलस्योदारस्य भावः कर्म वा सारल्यं, निर्मलस्य निर्दोषव्रतस्य भावः कर्म वा नैर्मल्यं तानि च ते गुणाश्च कौलीन्यसारल्यनैर्मल्यगुणास्तैस्तेषां वा योगेऽपि सद्भावेऽपि

करदण्डाभ्यां भागधेयचतुर्थोपायाभ्यामुपमर्दनेन पीडनेन निःस्रावणीयसारा महर्णीयधनाश्च कथं भवन्तीत्यपि विरुद्धं। कथंभूतास्ते सुरसाः? मुमुक्षूणां—अभिलाषिणामपि, उपयोगयोग्याः—दर्शनज्ञानध्यानेषु हिताः। केन गुणेन? अस्पृष्टविष्टंभित्वविदाहित्वगुरुत्वदोषत्वेन—विष्टंभित्वं परेषामुपरोधकारित्वं, विदाहित्वं परेषां प्राणिनां दाहसन्तापकारित्वं, गुरुत्वं शब्दरसर्द्धिगौरवं विष्टंभित्वविदाहित्वगुरुत्वानि च ते दोषा विष्टंभित्वविदाहित्वगुरुत्वदोषाः न स्पृष्टा नाङ्गीकृता विष्टंभित्वविदाहित्वगुरुत्वदोषा यैस्तेऽस्पृष्टविष्टंभित्वविदाहित्वगुरुत्वदोषास्तेषां भावः कर्म वा अस्पष्टविष्टंभित्वगुरुत्वदोषत्वं तेन तथोक्तेन। भूयोऽपि कथंभूतास्ते सुरसाः? तेजोनुबन्धिनिबन्धनत्वेन—दीप्तिलक्षणप्रतापप्रकृतानुवर्तनबन्धनरहितत्वेन, धर्मसन्तानार्थितया—धनुराकर्षणधनतया, त्रैवर्गिकगृहस्थानां—धर्मस्थानवृद्धिलक्षणत्रिवर्गनियुक्तक्षत्रियाणां, उपस्कारपूर्वकं—समवायपूर्वकं, आसेवनीयाः—समन्तात् शुश्रूषणीयाः, सावर्ण्यप्रणयेनेव—सा लक्ष्मीः, वर्णिः पृथ्वी तयोः साधुर्हितः सावर्ण्यः स चासौ प्रणयः स्वामिसेवालक्षणः प्रकृष्टन्यायस्तेन सावर्ण्यप्रणयेन इव पादपूरणार्थः। चमस्य भावः कर्म वा चामी चारुर्विचित्रा द्विवारपानाश्चर्यकारित्वाच्चारुचामी तयोपलक्षिताः कराः शुण्डादण्डा येषां ते चारुचामीकरास्ते च ते करिणो गजास्तानीरयन्ति शत्रून् प्रति प्रेरयन्तीति चारुचामीकरकरीराः शत्रुनृपास्तेषां अन्तर्मध्ये प्रविश्य त्रैलोक्यलोकचित्तचमत्कारकारिसंग्रामं विधाय, शोभातिशयं—शोभया अतिपूजितं शयं दक्षिणकरं, उद्भावयन्तः—उत्कृष्टविभूषयन्तः। ह्व। दूरीकृतवैकृताः—दूरीकृतं निवारितं वैकृतं मासंस्कृत्यं वैभत्स्यं वा यैस्ते दूरीकृतवैकृताः। भूयः किंविशिष्टाः सुरसाः? मधुरताशैत्यप्रसादोद्धुराः—मधुरता न्यायमार्गप्रवर्तनतया सर्वजनप्रेयता शिष्टजनप्रतिपालनतेत्यर्थः, शितस्य तीक्ष्णस्य (?) भावः कर्म वा शैत्यं दुष्टनिग्रह इत्यर्थः, प्रसादः निष्कण्टकादितया स्वास्थ्यं प्रासादा हर्म्याणि वा तैरुद्धुरा उद्रिक्ता ये सुरसाः, क्षीणान्—दुःस्थितजनान्,

पूरयन्ति-धनधान्य-सुवर्णपट्टकूलादिवस्त्रवाहनादिप्रदानेन सुखयन्ति। कया हेतुभूतया? स्निग्धस्वादुविपाकवृंहणतया-स्निग्धाः पितृस्नेहपराः स्वादवः सुन्दराकारास्ते च ते विपाका विविधा विशिष्टा वा पाकाः पुत्रास्तेषां वृंहणं वृद्धिरुत्पत्तिरित्यर्थः तस्य भावः कर्म वा स्निग्धस्वादुविपाकवृंहणता तया तथोक्तया पुत्रजन्मादिमहोत्सवतयेत्यर्थः।

इदानीं परिहारपक्षः प्रदर्श्यते। तैरिक्षोः सुरसैः-रसालस्य शोभनद्रव्यैर्निर्यासैः, जिनं-तीर्थंकरपरमदेवं, वयं स्नुमहे-अभिषेचयामः। तैः कैः? तयदोर्नित्यसम्बन्धत्वात्, ये सुरसाः पौण्ड्रकवांशिकप्रमुखेक्षुदण्डेभ्यस्तत्क्षणलब्धात्मलाभाः-पुण्ड्राणां सुकुमारनामेक्षूणामिमे दण्डाः पौण्ड्रकाः, वांशानां कर्कटकेक्षूणामिमे दण्डा वांशिकाः पौण्ड्रकाश्च वांशिकाश्च पौण्ड्रकवांशिकास्ते प्रमुखा आद्या येषां कान्तारकोशकारकरङ्कशालिप्रभृतीनां ते पौण्ड्रकवांशिकप्रमुखास्ते च त इक्षुदण्डा रसालयष्टयः पौण्ड्रकवांशिकप्रमुखेक्षुदंडास्तेभ्यस्तथोक्तेभ्यः, तत्क्षणलब्धात्मलाभास्तत्कालपीलनोत्पन्ना इत्यर्थः। कथंभूतेभ्यः पौण्ड्रकवांशिकप्रमुखेक्षुदण्डेभ्यः? मूलेत्यादि-मूलानि सफाः, अग्राणि प्रान्तभागाः, पर्वाणि ग्रन्थयस्तेषां परित्यागे परिहारे सति, निश्चयेन, अक्षतभावेन-घुणकीटादिभिरनुपद्रुततया जिनयागयोग्येभ्यः-तीर्थंकरपरमदेवस्नपनोचितेभ्यः। पुनः कथंभूतेभ्यः इक्षुदण्डेभ्यः? कौलीन्येत्यादि-कौ पृथिव्यां लीनाः कुलीनास्तेषां भावः कौलीन्यं सरलानामवक्राणां भावः सारल्यं, निर्मलानामच्छानां भावः नैर्मल्यं कौलीन्यसारल्यनैर्मल्यानि तानि च तेषां योगे संमेलापके सति, अपि-निश्चयेन, करदण्डोपमर्दनेन-हस्तयष्टि-उपलेन निःस्रावणीयसारेभ्यः-निश्च्योतनीयनिर्यासेभ्यः। तत एव-तत्कालपीलनोत्पाद्यादेव कारणात्। मुमुक्षूणामपि-मुनीनामपि, अपिशब्दाच्छ्रावकाणामपि, उपयोगयोग्याः-पातुमुचिता। आस्वादनयोग्याश्च पर्युषिते रसे दोषसद्भावात्। तदुक्तम्—

दधि सर्पिः पयो भक्ष्यप्रायं पर्युषितं मतम् ।
गन्धवर्णरसभ्रष्टमन्यत्सर्वं विनिन्दितम् ॥ १ ॥

केन गुणेन मुमुक्षूणामुपयोगयोग्याः ? अतृष्णेत्यादि—विष्टम्भित्वं मलसंग्रहकारित्वं विदाहित्वं पित्तकारित्वं गुरुत्वं दुर्जरत्वं तानि विष्टम्भित्वविदाहित्वगुरुत्वानि तानि च ते दोषाश्च विष्टम्भित्वविदाहित्वगुरुत्वदोषाः न सृष्टा नोत्पादिता विष्टम्भित्वविदाहित्वगुरुत्वदोषा यैस्ते तथोक्तास्तेषां भावस्तत्त्वं तेन तथोक्तेन । भूयः किंविशिष्टा इक्षुरसाः ? आसेवनीयाः—आस्वादनीयाः । कथं ? उपस्कारपूर्वकं—घोपादिसंस्कारपूर्वकं । केषामासेवनीयाः ? त्रैवर्गिकगृहस्थानां—धर्मार्थकामनियुक्तसद्गृहमेधिनां परदारपराङ्मुखानामित्यर्थः । उक्तं च—

अनूढा च स्वकीया च परकीया पराङ्गने ।
त्रिवर्गिणः स्वकीया स्यादन्याः केवलकामिनाम् ॥ १ ॥

कया आसेवनीयाः ? धर्मसन्तानार्थितया—धर्मेण पुत्रार्थितया । केन हेतुना आसेवनीयाः ? तेजोऽनुबन्धिनिबन्धनत्वेन—शुक्रबन्धकारणत्वेन । ये रसाः किं कुर्वन्तः ? चारुचामीकरकरीरराणां—कमनीयकनककलशानां, शोभातिशयमुद्भावयन्तः—कान्त्युत्कर्षमत्युत्कर्षयन्तः । किं कृत्वा पूर्वं ? अन्तः—मध्ये, प्रविश्य—प्रवेशं कृत्वा । उत्प्रेक्षते, सावर्ण्यप्रणयेनेव—समानपीतवर्णत्वस्नेहेनेव, अन्योऽपि यः समानवर्णः सदृशजातीयो भवति । स मध्ये प्रविश्य शोभातिशयमुत्पादयति ॥ ८ ॥

ये रसाः कथंभूताः ? दूरीकृतवैकृताः—दूरीकृतं स्फेटितं वैकृतं मलसाधारणत्वेन रोगित्वं यैस्ते दूरीकृतवैकृताः । पुनः किंविशिष्टाः रसाः ? मधुरताशैत्यप्रसादोद्धुराः—मधुरता मृष्टता शैत्यं पित्तोद्रेकविनाशिता प्रसादः कायकान्तीकरणता मधुरताशैत्यप्रसादास्तैरुद्धुरा उत्कटा ये रसाः, क्षीणान्—कृशकायान् पुरुषान्, क्षणान्—मुहूर्तान्, पृणन्ति—पुष्टिकारितया सुखयन्ति । कया कृत्वा ? स्निग्धस्वादुविपाकहृद्यतया—

स्निग्धाश्च चिक्कणगुणाः स्वादवो मृष्टा विपाकहृद्यणा परिणामतो वृद्धिकराः स्निग्धस्वादुविपाकहृद्यास्तेषां भावः स्निग्धस्वादुविपाकहृद्यता तया तथोक्तया। तथा जिनं सुनुमहे। कैः? रसैः। कथंभूतै रसैः? खर्जूरेत्यादि—खर्जूराणि च स्वादुमस्तकपिच्चजिस्फलानि राजादनानि च क्षीरभूस्फलानि प्राचीनामलकानि च जीर्णधात्रीफलानि आम्राणि च सहकारफलानि चोचानि च नालिकेराणि करकाणि च दाडिमानि द्राक्षाश्च गोस्तनीफलानि खर्जूरराजादनप्राचीनामलकाम्रचोचकरकद्राक्षाः ता आदिर्येषां पूगकदलीफलादीनां तानि खर्जूरराजादनप्राचीनामलकाम्रचोचकरकद्राक्षादीनि तेभ्यो जाता खर्जूरराजादनप्राचीनामलकाम्रचोचकरकद्राक्षादिजास्तैस्तथोक्तैः। चा उक्तसमुच्चयार्थः। तेनान्येऽप्याम्रातकाम्लिकादीनामपि रसा लभ्यन्ते॥ ११५॥

रसमन्त्रः। पूर्ववत्पठनीय इत्यर्थः।

यस्यानिशं समरसैकनिधेः स्मरन्तः
शक्रादयो शमशर्मरसं स्पृशन्ति।
श्रेयः सृजन् प्रयतदृष्टिषु तस्य भर्तुः
प्रीणातु विश्वमभिषेकरसौघ एषः॥११६॥

वृत्तिः—तस्य—तीर्थंकरपरमदेवस्य, भर्तुः—त्रैलोक्यनाथस्य सम्बन्धित्वेन, एषः—प्रत्यक्षीभूतः, अभिषेकरसौघः—स्नपनरसप्रवाहः, विश्वं—त्रिभुवनं त्रिभुवनस्थितप्राणिवर्गं, प्रीणातु—तर्पयतु। रसौघः किंकुर्वन्? प्रयतदृष्टिषु—भगवत्स्नपनावलोकने यत्नपरलोचनेषु पुंसु, श्रेयः—शक्रचक्रितीर्थंकृदादिसाधनं भोगाकांक्षानिदानबन्धादिशल्यरहितं विशिष्टं पुण्यं, सृजन्—कुर्वन्नुत्पादयन्। तस्य कस्येत्याह, यस्य—भगवतः, आस्तां तावदन्ये सामान्यजनाः शक्रादयोऽपि—इन्द्रादयोऽपि, आदिशब्दादुग्रवंश्य-

भरतचक्रधरगणेन्द्रादयोऽपि स्मरन्तः—चिन्तयन्तः सन्तः। "स्मृत्यर्थकर्मणि" इति वचनात्कर्मणि षष्ठी। शमशर्मरसं—कर्मक्षयोत्पन्नसौख्यामृतं, स्पृशन्ति स्तुपन्ति प्राप्नुवन्ति। कथं? अनिशं—निरन्तरमविच्छिन्नं। कथंभूतस्य यस्य? समरसैकनिधेः—समः समत्वं परमसमाधिः स एव रसः पानीयं कर्ममलप्रक्षालनहेतुत्वात्संसारसुतृष्णानिवारणाच्च समरसस्तस्यैकोऽद्वितीयो निधिर्निधानभूतः समरसनिधिस्तस्य समरसैकनिधेः शुद्धोपयोगामृतसागरस्येत्यर्थः। उक्तं च—

साम्यं स्वास्थ्यं समाधिश्च योगश्चेतोनिरोधनम्।
शुद्धोपयोग इत्येते भवन्त्येकार्थवाचकाः ॥१॥

इति ॥ ११६ ॥

आशीर्वादः—

इष्टार्थस्याशंसनं कथनमाशीरुच्यते प्रतिपाद्यते येन यस्मिन्निति वेत्याशीर्वादः।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्यैः।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभुवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः—
र्धूपं प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ।११७

इष्टिः। इक्षुरसाभिषेकः।

ॐ निखिलस्नेहभुवनक्षीरोदजीवनैः कायानलसंजीवनपीयूषैर्विपापहागसिद्धमंत्रैर्वयोराज्यस्थापनबुद्धिसचिवैश्वरमधातुसम्वर्धनविध्वस्तसमस्तवाजीकरणाहङ्कारैः सौकुमार्यब्रह्मचर्यस्थापनाचार्यैः प्रजासर्जनावतारितविधातृव्यापारभारैः स्वरचारुताधिदैवत्वेन किन्नराणामपि स्पृहणीयैः कांतिकाष्ठानिर्माणनिर्मूलितशुभनामकर्मनाममभिः

प्रतिक्षिप्तलक्ष्मीकटाक्षोपातै रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवस्याप्यभिभवसम्पादनेन धाराधिरूढगदापहारगर्वैः, शीतवीर्यत्वेऽपि संस्कारानुवर्तनधुरीणत्वेन कर्मसहस्रकरणातसमर्थितसहस्रवीर्यविशेषणैः। कर्णपूर्णसुवर्णकुम्भत्वेऽपि सवर्णभावेन गन्धगौरवावगम्यसद्भावैः तत्तद्विकारतिरस्कारपुरस्कारेण स्फारस्फुरदुरुप्रभावैः अमीभिः—

आयुःपीयूषकुण्डैः स्मृतिमणिखनिभिः शेमुषीवल्लिकन्दै-
र्मेधासस्याम्बुवाहैर्वरफलतरुभिर्नेत्ररत्नाधिदेवैः ।
निष्पन्नैर्घ्राणपेयैः प्रचुरमधुरिमस्नेहदूनापराध्यैः
कुर्मो हैयङ्गवीनैः स्नपनमपनयध्वान्तमानोर्जिनस्य ॥११८॥

वृत्तिः—जिनस्य-जितकर्मशत्रोस्तीर्थंकरपरमदेवस्य । स्नपनं—अभिषेकं । कुर्मः—अनुतिष्ठामो वयं । कैः कृत्वा ? अमीभिः-प्रत्यक्षभूतैः । हैयङ्गवीनैः—ह्यस्तनदिनगोदोहसञ्जातघृतैः । उक्तं च—

तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहभवं घृतम् ।
गतकल्यगोदुग्धसंजातदधिमथन (नात्) ॥ १ ॥

समुत्पन्ननवनीतोत्कालनसद्यस्तनसर्पिर्भिरित्यर्थः । किंविशिष्टैर्हैयङ्गवीनैः ? निखिलस्नेहभवनक्षीरोदजीवनैः—निखिलेषु समस्तेषु स्नेहभवनेषु चिक्कणजलेषु क्षीरोदजीवनैः क्षीरसागरजलसदृशैः। भूयः कथंभूतैर्हैयङ्गवीनैः ? कायानलसंजीवनपीयूषैः—कायस्य शरीरस्य सम्बन्धित्वेन-नित्योऽग्निः कायानलस्तस्य संजीवनेषु संधुक्षणेषु पीयूषैः अमृतसदृशैः क्षुधाजनकैरित्यर्थः । पुनरपि कथंभूतैर्हैयङ्गवीनैः ? विषापहारसिद्धमंत्रैः—विषापहारेषु स्थावरजङ्गम विषनिवारणकारणेषु सिद्धमंत्रैः सम्यगाराधितमंत्रसदृशैः विषाभिभूतानां हितैरित्यर्थः । पुनरपि किंविशिष्टैर्घृतैः ? वयोराज्यस्थापनबुद्धिसचिवैः—वयस्तारुण्यं तदेव राज्यं त्रिवर्गसाधन-

हेतुत्वात्तस्य स्थापने स्थिरीकरणे बुद्धिसचिवैर्बुद्ध्या सचन्ति समवयन्ति बुद्धिसचिवा मंत्रिणस्तैः, यौवनराज्यस्थिरीकरणधीसचिवैरित्यर्थः । "मन्त्री धीसचिवोऽमात्योऽन्ये कामसचिवास्ततः" इत्यमरः । रूपकालङ्कारः । पुनरपि कथंभूतैर्हंयङ्गवीनैः ? चरमधातुसंवर्धनविध्वस्तसमस्तवाजीकरणाहङ्कारैः—चरमोऽन्तिमो धातुश्चरमधातुः शुक्रमित्यर्थः । उक्तं च तीसट्पायसूत्रे—

रसश्च रक्तं पिशितं च मेद—
स्त्वस्थीनि मज्जा त्वथ शुक्रमेते ।
स्युर्धातवः सप्त तथा मलाश्च
विण्मूत्रमुख्या मुनिभिः प्रदिष्टाः ॥१॥

चरमधातोः संवर्धनं सम्यग्वर्धनमतिशयेन स्फारीकरणं तेन विध्वस्ताः स्फेटिताः समस्तानामखिलानां वाजीकरणानां शुक्रवर्धनविधीनामहङ्कारो मदो यैस्तानि तथोक्तानि तैः तथोक्तैः, बन्धजातिः । पुनरपि कथंभूतैर्हंयङ्गवीनैः ? सौकुमार्यब्रह्मचर्यस्थापनाचार्यैः—सुकुमारस्य भावः कर्म वा सौकुमार्यं शरीरमार्दवं ब्रह्मचर्यं वीर्यस्याचरणता तयोः स्थापनायामाचार्यैर्गुरुभिरित्यर्थः । पुनरपि कथंभूतैर्हंयङ्गवीनैः ? प्रजासर्जनावतारितविधातृव्यापारभारैः—प्रजानां सन्ततीनां सर्जनेनोत्पादनेन अवतारितो दूरीकृतो विधातुर्ब्रह्मणो व्यापारभारो नियोगविधियो यैस्तानि तथोक्तानि तैस्तथोक्तैः । भूयः किंभूतैर्हंयङ्गवीनैः ? स्वरचारुताधिदैवतत्वेन किन्नराणामपि स्पृहणीयैः—स्वरस्य षड्जादिध्वनेश्चारुतया मानोहर्यस्याधिदैवतत्वेनाधिष्ठातृतया तिष्ठन्तु तावदन्ये सामान्यगन्धर्वादयो मनुष्याः किन्नराणामपि देवविशेषाणामपि स्पृहणीयैरभिलाषणीयैः । पुनः किंविशिष्टैर्हंयङ्गवीनैः ? कान्तिकाष्ठानिर्माणनिर्मूलितशुभनामकर्मनामभिः—कान्तिर्लावण्यं तस्याः काष्ठा परमप्रकर्षस्तस्या निर्माणेन निर्मूलितं तिरस्कृतं शुभनामकर्मणो दृष्टश्रुतरमणीयताहेतुभूतपुण्यप्रकृतेर्नाम अभि-

धानं येस्तानि तथोक्तानि तैस्तथोक्तैः शुभनामकर्मोपमैरित्यर्थः। भूयः कथंभूतैर्हेयङ्गवीनैः? प्रतिक्षिप्तालक्ष्मीकटाक्षपातैः—प्रतिक्षिप्ता तिरस्कृता अलक्ष्म्या अशोभायाः कटाक्षपाताः केकरवीक्षितानि पिङ्गुलता येस्तानि तथोक्तानि तैः। पुनः कथंभूतैर्हेयङ्गवीनैः? रुद्रेत्यादि—रुद्रस्येश्वरस्योर्ध्वनयनं ललाटस्थिततृतीयलोचनं तस्मादुद्भव उत्पत्तिर्यस्य स रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवस्तीव्राग्निस्तस्याप्यभिवसम्पादनेन त्रुत्कारितयाग्निरूपेण पराभवसंजननेन, धारामधिरूढः शुद्धायां स्थितो गदापहारगर्वाग्नि.............. तैस्तथोक्तैः। भूयः कथंभूतैर्हेयङ्गवीनैः? शीतेत्यादि—शीतवीर्यत्वेऽपि मन्दशक्तित्वेऽपि संस्कारानुवर्त्तनधुरीणत्वेन समवायानुरोधधौरेयत्वेन कर्मसहस्रकरणात्समर्थितं दृढीकृतं सहस्रवीर्यमिति विशेषणं येस्तानि तथोक्तानि तैः। ननु यानि शीतवीर्याणि मन्दशक्तीनि भवन्ति तानि कथं संस्कारानुवर्तनधुरीणानि भवन्ति कथं च कर्मसहस्रकरणात्समर्थितसहस्रवीर्यविशेषणानि स्युरिति विरुद्धं परिह्रियते-शीतवीर्यत्वे शिशिरवीर्यत्वे शीतलपरिपाकत्वे अपि निश्चयेन संस्कारानुवर्त्तनधुरीणत्वेन शरीभूषणानुरोधसमर्थतया कर्मसहस्रकरणात्कार्यसहस्रानुष्ठानात्समर्थितसहस्रवीर्यविशेषणानीति घटत एवेति सुस्थं। पुनरपि कथंभूतैर्हेयङ्गवीनैः? आकर्णेत्यादि—आकर्णं चंपापतिं मर्यादीकृत्य प्रसिद्धं (ख्यानि) पूर्णसुवर्णकुम्भानि समप्रशोभनाकृतिवेश्यापवीनि यानि तानि आकर्णपूर्णसुवर्णकुम्भानि कुलानि तेषां भावः कर्म वा आकर्णपूर्णसुवर्णकुम्भत्वं तस्मिन्। अपि शंकायां। ननु यानि तादृशानि तानि सवर्णभावेन सजातीयत्वेन हेतुना कथं गन्धगौरवायगम्य सद्भावानि सम्बन्धिगुरुत्वयशेयाकुटिलत्वानि भवन्तीति विरुद्धं वेश्याकुटिलत्वेन तत्पतेरपि कुटिलत्वसद्भावात्। तदुक्तम्—

सामान्यवनिता वेश्या भवेत्कपटपंडिता।
न हि कश्चित्प्रियस्तस्या दातारं नायकं विना॥ १॥

परिह्रियते, आकर्णं मुखपर्यन्तं पूर्णाः पूरिताः सुवर्णकुम्भाः कनककलशा येस्तान्याकर्णपूर्णसुवर्णकुम्भानि तेषां भाव आकर्ण-

पूर्णसुवर्णकुम्भत्वं तस्मिन् सति अपि निश्चयेन सवर्णभावेन समानपीतवर्णत्वेन गन्धगौरवेण आमोदप्राचुर्येणावगम्यो ज्ञातव्यः सद्भावोऽस्तित्वं येषां तानि गन्धगौरवावगम्यसद्भावानि तैस्तथोक्तैरिति सुखं । पुनरपि कथंभूतैर्हैयङ्गवीनैः ? तत्तदादि- ते ते जगत्प्रसिद्धा विकारा वातपित्तकफादयो दोषास्तत्तद्विकारास्तेषां तिरस्कारेण निराकरणतया स्फारस्फुरदुरुप्रभावैः—स्फाराः प्रचुराः स्फुरन्तो वैद्यविद्याविचित्तचित्तेषु चमत्कुर्वन्त उरवो गरिष्ठाः प्रभावा माहात्म्यानि येषां तानि तथोक्तानि तैस्तथोक्तैः । तथा चोवाच धन्वन्तरिः—

> विपाके मधुरं शीतं वातपित्तकफापहम् ।
> चाक्षुष्यमग्र्यं बल्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम् ॥ १ ॥

पुनरपि किं विशिष्टैर्हैयङ्गवीनैः ? आयुःपीयूषकुण्डैः—आयुर्जीवितव्यं तदेव पीयूषममृतं सद्यो जरानाशकत्वात् आयुःपीयूषं तस्य कुण्डैर्जलाशयविशेषैः "आयुर्वै घृतं" इति श्रुतिः । अपरं किंविशिष्टैर्हैयङ्गवीनैः ? स्मृतिमणिखनिभिः—स्मृतिरेव मणी रत्नविशेषोऽतीतार्थप्रद्योतकत्वात्तस्याः खनिभिरुत्पत्तिस्थानभूतैः । अन्यच्च किंविशिष्टैर्हैयङ्गवीनैः ? शेमुषीवल्लिकन्दैः—शेमाइं सन्देहं मुष्णाति निराकरोतीति शेमुषी बुद्धिरर्थग्रहणशक्तिरित्यर्थः, सैव वल्लिर्लता तत्त्वज्ञानफलदायिनीत्वात्तस्याः कन्दैर्मूलभूतैः । भूयोऽपि कथंभूतैर्हैयङ्गवीनैः ? मेधासस्याम्बुवाहैः—मेधा पाठग्रहणशक्तिः सैव सस्यं धान्यं विद्वज्जनजीवनोपायत्वात्तस्याम्बुवाहैर्मेघसदृशैः । "धीर्धारणावती मेधा" इत्यमरः । तथा चोक्तम्—

> यद्वेदागमवेदिभिर्निगदितं साक्षादिहायुर्नृणां
> यद्दोषेषु रसायनाय पठितं सद्यो जरानाशनात् ।
> यत्सारस्वतकल्पकान्तमखिलैः प्रोक्तं धियः सिद्धये
> तत्ते काञ्चनकेतकद्युतिरसच्छायं मुदे स्ताद्घृतम् ॥१॥

पुनरपि किंविशिष्टैर्हैयङ्गवीनैः ? वरफललक्ष्मिः—वरं देवताभीप्सितं तदेव फलं व्युष्टिराशापूरत्वात्स्य तत्क्ष्मिर्बुंधप्रायैः । अथवा वरफललक्ष्मिः पुण्यफलप्रदायिभिः वीर्यस्थिरीकरणहेतुत्वात् । पुनः किंविशिष्टैर्हैयङ्गवीनैः ? नेत्ररत्नाधिदेवैः—नेत्राण्येव रत्नानि वस्तुप्रकाशकत्वादनर्घ्यत्वात् । उक्तं च—

मुखस्यार्धं शरीरं स्याद् घ्राणार्धं मुखमुच्यते ।
नेत्रार्धं घ्राणमित्याहुस्तत्स्तेषु नयने परे ॥१॥

तेषामाधिदैवैरधिष्ठातृभिः प्रणिधानविधातृत्वात् । पुनः किंविशिष्टैर्घृतैः ? निष्ठ्यैः—निरवयेनोत्कालितैर्न तु घनीभूतैर्नवनीतप्रायैर्वा । पुनः किंविशिष्टैर्घृतैः ? घ्राणपेयैः—अतिसुगन्धिभिरित्यर्थः । पुनरपि कथंभूतैर्हैयङ्गवीनैः ? प्रचुरमधुरिमस्नेहदूनापराज्यैः—मधुरिमा जिह्वामृतभूतमाधुर्यं स्नेहश्चैकण्यं मधुरिमस्नेहौ प्रचुरौ बहुलतरौ मधुरिमस्नेहौ प्रचुरमधुरिमस्नेहौ ताभ्यां दूनानि सन्तापितानि तिरस्कृतान्यपराण्यन्यानि माहिषादीन्याज्यानि घृतानि यैस्तानि तथोक्तानि तैस्तथोक्तैः । कथंभूतस्य जिनस्य ? अपनयध्वान्तभानोः—अपगताः सर्वथैकान्तस्वभावतया इष्टेष्टविरोधाक्रान्ता नया नैगमादयोऽपनयास्त एव ध्वान्तान्यन्धकाराणि यथावद्वस्तुदृष्टिप्रतिबन्धकत्वात्तेषां स्फेटने भानुरिव भानुः श्रीसूर्यः प्रेक्षावतां वस्तुतत्त्वप्रकाशकत्वात्, अपनयध्वान्तभानुस्तस्य तथोक्तस्य । तथा चोक्तं स्वामिसमन्तभद्राचार्यैः—

त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवादिनाम् ।
आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते ॥ १ ॥

घृत-मंत्रः । पूर्ववत्पठनीय इत्यर्थः ।

धर्मार्थकामपरमोदयसुस्थितानाम्—
मप्यार्चितश्चरमवर्गचिकीर्षयाय ।
आयुर्वृषार्थसुखकृत्कृततुष्टिपुष्टिः
स्नानेऽस्य वः प्रतनुतामयमाज्यपूरः ॥ ११९॥

वृत्तिः—अस्य—तीर्थंकरपरमदेवस्य, स्नाने—अभिषेके, अयं प्रत्यक्षीभूतः, आज्यपूरः—घृतप्रवाहः, प्रतनुतां—विस्तारं गच्छतु । कीदृशोऽयमाज्यपूरः ? वः—युष्माकं, आयुर्वृषार्थसुखकृत्—आयुर्जीवितकालः वृषो धर्मः अर्थो धनं सुखं परमानन्दः तानि करोतीति तथोक्तः । पुनरपि कथंभूतोऽयमाज्यपूरः ? वो युष्माकं कृततुष्टिपुष्टिः—तुष्टिर्मनःसौख्यं पुष्टिः शरीरदार्ढ्यं कृते कर्तुमारब्धे तुष्टिपुष्टी येन स कृततुष्टिपुष्टिः । अयं कः ? यः आज्यपूरः, अर्चितः—पूजितः । केषामर्चितः ? धर्मेत्यादि—धर्मः प्राणिरक्षणादिलक्षणः, अर्थो धनधान्यादिलक्षणः, कामः पंचेन्द्रियादिभोगसुखलक्षणः, तेषां परमोदयेनोत्कृष्टफलदानकालेन, सुस्थितानामपि सुखीभूतानामपि, अपिशब्दाद्दुःस्थितानामपि । किं कर्तुमिच्छयार्चितः ? चरमवर्गचिकीर्षया—चरमोऽन्त्यो वर्गश्चरमवर्गो मोक्षस्तस्य चिकीर्षा कर्तुमिच्छा तया मोक्षप्राप्तीच्छयेत्यर्थः ॥ ११६ ॥

आशीर्वादः ।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै—
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥१२०॥

ॐ सज्जनैरिव कठोरजाठरानलखलसंसर्गेऽप्यनुबद्धनिसर्गमाधुर्यैः,
अजरामरत्वमनोरथपारवश्येनामृतलिप्सया विहितपायोधिमन्थन-

महाप्रयासान् कौमुदीन्दुकौमुदीविलासहासिना निजद्युतिवितानेन नूनं विबुधानप्युपहसद्भिः शुद्धार्जुनोपयोगजन्मतया खलाद्युपयोगसव्यपेक्षाणि क्षीरान्तराणि तिरस्कुर्वाणैः, चक्रिणामप्यनन्यसाध्यक्षुद्वेदनाप्रतिचिकीर्षया नित्योपयोगयोग्यत्वाज्जुगुप्सितापरभोजनाङ्गैः वरारोहसहस्राणामपि शरण्यतया प्रकाशितस्वशक्तिमाहात्म्यैः, तृष्णोद्रेकहरैरपि तृष्णानुबन्धिभिः, क्षतक्षीणहितैरप्यस्वप्नसेव्यैः, काशप्रकाशैरपि काशनाशनैः, रसायनैरपि श्रमहरैः, मदभ्रमहरैरपि योषितामतिप्रियैः, वत्सप्रियैरपि जीर्णज्वरकृच्छ्रच्छिदुरैः, अलक्ष्मीहरैरपि शुचिरुचिगोचरैः, परमशुक्ललेश्याविलासैरिवाध्यात्ममवकाशमनासादयद्भिः, तादृप्यमुपादाय बहिश्चकासद्भिरेभिः—

ओजःस्वाम्युद्यदानैः प्रथितबलकलैर्जीवनीयेषु धुर्यै—
मर्धुर्यस्नेहशैत्यान्वयसुहृदुदयैर्मेध्यतावाक्प्रसादैः।
धारोष्णैर्धावदष्टापदकुटवदनोद्गीर्णधारासहस्रै—
र्दिव्यैर्गव्यैः पयोभिः प्रभुमसमलसद्धाम्य संस्नापयामः॥१२१॥

वृत्तिः—एभिः-प्रत्यक्षीभूतैः, गव्यैः पयोभिः-गोभ्यो भवैर्दुग्धैः, प्रभुं-लोकत्रयीनाथं, तीर्थंकरपरमदेवं, स्नापयामः-अभिषिञ्चयामो वयमिति। कथंभूतैः पयोभिः? अनुबद्धनिसर्गमाधुर्यैः-अनुबद्धं संबद्धं निसर्गमाधुर्यं शर्करादिसंयोगं विनापि स्वाभाविकस्वादुत्वं यैस्तान्यनुबद्धनिसर्गमाधुर्याणि तैः। कस्मिन् सत्यपि? कठोरजाठरानलखलसंसर्गेपि-जठरे उदरे भवो जाठरः स चासौ दावानलोऽग्निः जाठरानलः क्षुदित्यर्थः, जाठरानलश्च खलं च तिलादिकल्कः पिण्याक इति यावत् कठोरे कठिने ये जाठरानलखले तयोः संसर्गेऽपि संयोगेऽपि। कैरिव? सज्जनैरिव-साधुलोकैरिव। कथंभूतैः सज्जनैः? अनुबद्धनिसर्गमाधुर्यैः-अङ्गीकृतस्वाभाविकप्रियत्वैः। क सति? कठोरेत्यादि-कठोरस्तीव्रतरो जाठरा-

नलोऽन्तर्गतक्रोधो येषां ते कठोरजाठरानला अन्तर्गतक्रूरपरिणामास्ते च ते खला दुर्जनास्तेषां संसर्गेऽपि सङ्गत्यामपि। तथा चोक्तं—

अज्ञानभावादशुभाशयाद्वा करोति चेत्कोऽपि जनः खलत्वम्।
तथापि सद्भिः शुभमेव चिन्त्यं न मथ्यमानेऽप्यमृते विषं हि ॥१॥

श्लेषोपमा। किं कुर्वद्भिः पयोभिः? निजद्युतिवितानेन—स्वकीयदीप्तिविस्तरेण, नूनमुत्प्रेक्षते, विबुधानपिशब्दाद्दानवादीनपि, उपहसद्भिः—उत्प्रासयद्भिरिव। कथंभूतेन निजद्युतिवितानेन? कौमुदीन्दुकौमुदीविलासहासिना—कौमुद्या ज्योत्स्नयोपलक्षित इन्दुः कौमुदीन्दुर्ज्योत्स्नाचन्द्रस्तस्य कौमुदी प्रभा तस्या विलासो लीला ते हसति तिरस्करोतीत्येवं शीलः कौमुदीन्दुकौमुदीविलासहासो तेन तथोक्तेन। कथंभूतान् विबुधान्? विहितपाथोधिमन्थनमहाप्रयासान्—विहितोऽनुष्ठितः पाथोधेः समुद्रस्य मन्थने विलोडने महान् गुरुतरः प्रयासः कष्टं यैस्ते तथोक्तास्तान्। कया? अमृतलिप्सया—सुधां लब्धुमिच्छया। केन कृत्वा? अजरामरत्वमनोरथपारवश्येन—...
जरामरणरहितत्वात्, अभिलापपराधीनत्वेन रसायनत्वेन जरानाशनं आयुष्यत्वेन मरणनिवारणं चेति। तथा चोक्तम्—

पथ्यं रसायनं बल्यं हृद्यं मेध्यं गवां पयः।
आयुष्यं श्वासहृद्वातरक्तविकारजित् ॥ १ ॥

किं कुर्वाणैरेभिः? शुद्धेत्यादि—शुद्धानि केवलानि यान्यर्जुनानितृणानि तेषामुपयोगेनास्वादनेन जन्मतयोत्पत्तितया, क्षीरान्तराणि-गोक्षीरेभ्योऽन्यानि क्षीराणि क्षीरान्तराणि, तिरस्कुर्वाणैः—निर्भर्त्सयद्भिः। कथंभूतानि क्षीरान्तराणि? खलाद्युपयोगसव्यपेक्षाणि—खलं तिलादिकल्क आदिर्येषां तुषकर्पासबीजादीनां ते खलादयस्तेषामुपयोगे आस्वादने सव्यपेक्षाणि अपेक्षासहितानि तानि तथोक्तानि। अन्योऽपि यः खलानां कर्णेजपानामधमानां वा आद्युपयोगे प्रथमसंयोगे सव्यपेक्षः साकांक्षो

भवति स शुद्धार्जुनोपयोगजन्मभिः शुद्धस्य पवित्रस्यार्जुनस्य मातुरेकसुतस्य तीर्थङ्करबकवत्यादिरूपस्य योजन्मभिः संयोगोत्पन्नैः साधुपुरुषैस्तिरस्क्रियते एवेति । हेतुरलङ्कारः । पुनः किंविशिष्टैर्गव्यैः पयोभिः ? चक्रिणामपि-षट्खण्डमेदिनीमहेश्वराणामपि, न केवलं सामान्यनरनरेश्वराणामित्यपेरर्थः जुगुप्सितापरभोजनाङ्गैः—जुगुप्सितानि निन्दितानि अपराण्यन्यानि भोजनाङ्गानि मोदकादीनि यैस्तानि तथोक्तानि तैः । कस्मात् ? नित्योपयोगयोग्यत्वात्—नित्यं सर्वकालमुपयोगे योग्यानि आस्वादे उचितानि नित्योपयोगयोग्यानि तेषां भावो नित्योपयोगयोग्यत्वं तस्मात् । कया ? अनन्यसाध्यक्षुद्वेदनाप्रतिचिकीर्षया—नान्येन केनचिद्भक्ष्यपानादिविशेषेण साध्या जेतुं शक्या अनन्यसाध्या सा चासौ क्षुद्वेदना बुभुक्षापीडा (च) तस्याः प्रतिचिकीर्षया प्रतिकारेच्छया । अन्योऽपि यो नित्योपयोगेन शाश्वत्केवलज्ञानदर्शनद्वयेन योग्यः शुक्लध्याने साधुर्भवति स चक्रिणामपि भोजनाङ्गानि जुगुप्सत एव । क्षुद्वेदना च तद्ध्यानमन्तरेण प्रतिकर्तुं न शक्यते । तथा चोक्तं;—

> समसुखशीलितमनसामशनमपि द्वेषमेति किमु कामाः ।
> स्थलमपि दहति झषाणां किमङ्ग ! पुनरङ्गमङ्गाराः ॥ १ ॥

अत्रापि हेतुरेव । पुनः किंविशिष्टैर्गव्यैः पयोभिः ? वरेत्यादि—वरारोहाणां मत्तकामिनीनां उत्कटीनां वा सहस्राणां पल्लवति—सहस्राणामपि, शरण्यतया—तीव्रकामवेदनानिमथनतया, प्रकाशितस्वशक्तिमाहात्म्यैः—प्रकटितनिजवीर्यप्रभावैः, चक्री यतः किल गोरत्नदुग्धपानबलेन षण्णवतिसहस्रमत्तकामिनीनां कामज्वरं चिकित्सति । पक्षे ये च वरारोहाणां गजारोहाणामासमन्तात्सहस्राणां शरण्या भवन्ति शरान् बाणान् नयन्ति शत्रून् प्रति प्रापयन्ति ये ते शरण्याः शरणेषु साधवः शरण्या धनुर्वेदचतुरा भवन्ति ते प्रकाशितस्वशक्तिमाहात्म्या

भवन्ति। प्रकाशितमलघ्यं लाभेन लब्धस्य रक्षणादिना प्रकटीकृतं स्वशक्तीनां प्रभूत्साहमंत्रजलक्ष्मोपलक्षितानां निजशक्तीनां माहात्म्यं महत्त्वं यैस्ते प्रकाशितस्वशक्तिमाहात्म्याः। अयमपि हेत्वलङ्कारतया चमत्करोति। भूयः कथंभूतैर्गव्यैः पयोभिः? तृष्णोद्रेकहरैरपि तृष्णानुनुबन्धिभिः—ननु यानि तृष्णोद्रेकहराणि धनादिलिप्साधिक्यस्फेटकानि भवन्ति तानि तृष्णानुबन्धीनि लोभदोषोत्पादकानि कथं भवन्तीति विरुद्धमेतत्, नैवं, तृष्णोद्रेकं पिपासाधिक्यं हरन्ति निराकुर्वन्तीति तृष्णोद्रेकहराणि तैस्तथोक्तैः; तृष्णानुबन्धिभिः तृष्णां स्त्रीसेवाभिलाषमनुबन्धन्ति पानादनन्तरमुत्पादयन्तीत्येवंशीलानि तृष्णानुबन्धीनि तैस्तृष्णानुबन्धिभिः। क्षतक्षीणहितैरप्यस्वप्नसेव्यैः—ननु ये क्षतक्षीणहिताः खण्डितदुर्बलवृद्धास्तेऽस्वप्नसेव्या देवैराराध्या कथमिति विरुद्धं, परिह्रियते, क्षतक्षीणेभ्यः खड्गादिपरिहारजर्जरितक्षपनरोगिभ्यो हितानि गुणकारीणि तैः, अस्वप्नैर्निद्रारहितैः पुरुषैः सेव्यानि तैः। उक्तं च—

क्षीणानां दुर्बलानां च तथा जीर्णज्वरार्दिनाम्।
दीप्ताग्निनामनिद्राणां क्षीरपानं विधीयते॥ १॥

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम्॥ २॥

न शस्तं लवणायुक्तं क्षीरं चाम्लेन वा पुनः।
करोति कुष्ठत्वग्दोषं तथान्ने च हितं मितम्॥ ३॥

काशप्रकाशैरपि काशनाशनैः—ननु यानि काशप्रकाशानि ईषद्भुत्त्युद्दीपनानि तानि कासनाशनानि कथमिति विरुद्धं, परिह्रियते, काशस्तृणविशेषस्तस्य पुष्पाण्यपि काशानि तद्वत्प्रकाशन्ते शुक्लगुणेन शोभन्ते काशप्रकाशनानि तैः, वत्सोत्पत्तेरनन्तरं षोडशेदिने तादृशं शौक्ल्यं जायते इति सूचितं भवतीति।

तदुक्तं—

बिल्वालाबुफले च त्रिभुवनविजयी शिखीध्वर्कं न सेवेत ।
क्षारं च दद्यातिथिभ्यः पयोऽपि वत्सोद्भवात्समारभ्य ॥१॥

कासनाशनैः—काशोरोगविशेषस्तस्य नाशनैर्निवारकैरिति सुगमं । रसायनैरपि भ्रमहरैः, ननु ये रसायनाः पक्षीन्द्रा गरुडास्ते भ्रमहरा कथं भ्रमो हर ईश्वरो येषां ते भ्रमहरास्तैः भ्रमहरैरित्यपि विरुद्धं परिह्रियते, रसायनैर्जराव्याधिजदोषाभिभूतैरत एव भ्रमहरैरायसस्फेटकैः । उक्तं च—

क्षीरं दुग्धं पयः स्वादु रसायनमथाश्रयम् ।
सौम्यं प्रश्रयजं स्तन्यं वारिसाम्यं च जीवनम् ॥ १ ॥

मदभ्रमहरैरपि योषितामतिप्रियैः—मदः शुक्रमहङ्कारो हर्षं उपलक्षणाद्विपाद्यादिश्च भ्रमो भ्रान्तिः सन्देहो मदभ्रमौ हरन्ति निराकुर्वन्तीति मदभ्रमहराः महामुनयः, ननु स्त्रीणां पराङ्मुखा ये न तु मदभ्रमहरास्ते योषितां स्त्रीणामतिशयेनापि प्रिया भर्तारः कथं भवन्तीति यानि तानि मदभ्रमहराणि तैः, योषितां कमनीयकामिनीनामतिप्रियैरलीकाभीष्टैर्गर्भाधानगुणकारित्वादिति सुगमं । वत्सप्रियैरपि जीर्णज्वरकृच्छ्रच्छिदुरैः, ननु ये वत्सप्रिया वत्सेन वर्षेण प्रिया जलमोचिसघनघनास्ते जीर्णस्य चन्द्रस्य ज्वरो हिंसालोपनमाच्छादनमित्यर्थः, तस्य कृच्छ्रं कष्टं तस्य च्छिदुराश्छेदनशीला कथं भवन्ति तत्प्रभाच्छादनहेतुत्वादिति विरुद्धं परिह्रियते वत्सानां वर्णकानां प्रियैर्हृद्यैः जीर्णज्वरकृच्छ्रच्छिदुरैः—चिरकालीनज्वररोगदुःखच्छेदनशीलैः । तथा चोक्तं—

जीर्णज्वरे किन्तु कफे विलीने
स्याद्दुग्धपानं हि सुधासमानम् ।
तदेव पीतं तरुणज्वरान्ते
निहन्ति हालाहलवन्मनुष्यम् ॥ १ ॥

अलक्ष्मीहरैरपि शुचिरुचिगोचरैः, ननु ये अलक्ष्मीहरा न लक्ष्मीहरा न चौरास्ते शुचिरुचिगोचराः कथं शुचिरुचेश्चन्द्रस्य गोचरा विषया रात्रिभ्रमणशीला इत्यर्थः, विरुद्धमेतत् परिह्रियते, अलक्ष्मीमशोभां हरन्ति निराकुर्वन्तीति अलक्ष्मीहराणि तैः, शुचिः शुक्ला रुचिः प्रभा यासां ताः शुचिरुचयस्ता च ता गावश्च शुचिरुचिगावः शुचिरुचिगोषु चरन्ति विचरन्तीति शुचिरुचिगोचराणि तैस्तथोक्तैः। शुक्लगवीसमुत्पन्नैरित्यर्थः। तथा चोक्तम्—

> विवत्सा बालवत्सानां पयो दोषलमीरितम् ।
> कृष्णायाः कृष्णवत्सायाः शुक्लायाश्च परं पयः ॥ १ ॥

कथंभूतैर्गव्यैः पयोभिः ? उत्प्रेक्ष्यते, परमशुक्ललेश्याविलासैरिव-उत्कृष्टशुक्ललेश्यालीलाभिरिव । किं कुर्वद्भिः ? अध्यात्मं-आत्मानमधिश्रित्य, अवकाशमनासादयद्भिः-अतिप्रचुरतयावगाहं प्राप्नुवद्भिः, अतएव तद्रूप्यं-गव्यपयोरूपत्वं, उपादाय-गृहीत्वा, बहिः-शरीरस्य बाह्ये, चकासद्भिः-शोभमानैरित्यर्थः । उक्तं च शुक्ललेश्यालक्षणं श्रीनेमिचन्द्रदेवसैद्धान्तैर्गोम्मटसारसिद्धान्ते—

> न कुणइ पक्खवायं न वि य णियाणं समो य सव्वेसिं ।
> णत्थि य रायद्दोषं णेहो वि य सुक्कलेसस्स ॥ १ ॥

किंविशिष्टैः पयोभिः ? ओजःस्वाम्युपदानैः-ओजस उत्साहस्य स्वाम्युपदानैः प्रशस्तनरेन्द्रदानैरिव । पुनरपि कथंभूतैः पयोभिः ? प्रथितबलफलैः-प्रथितबलं सिद्धफलं विख्यातवीर्यं फलन्तीति प्रथितफलानि तैः । भूयः कथंभूतैः ? जीवनीयेषु धुर्यैः—जीवन्ति जना यैस्तानि जीवनीयानि तेषु धुर्यैर्धौरेयैः, जातमात्राणामप्युपयोगित्वात् । जीवदानधुरोद्वहनसमर्थैरित्यर्थः । तथा चोक्तं—

क्षीरं सात्म्याज्जीवनं जन्मसात्म्या—
  धारोष्णं गव्यमायुष्यमुक्तम् ।
प्रातश्चैवं ग्रामधर्मावसाने
  भुक्तेः पश्चादात्मसा (ना) न सेव्यम् ॥ १ ॥

पुनरपि कथंभूतैः पयोभिः ? माधुर्यस्नेहशैत्यान्वयसुहृदुदयैः—माधुर्यं स्वादुत्वं मृष्टत्वमित्यर्थः स्नेहश्चिक्कणत्वं शैत्यं पित्तनाशित्वं माधुर्यस्नेहशैत्येषु अन्वयसुहृदुदयैरुत्तमकुलमित्राभ्युदयसदृशैः अन्वयसुहृद् यो यथा माधुर्यं प्रियत्वं करोति स्नेहं प्रेमाणं चोत्पादयति शैत्यं सौम्यं च विदधाति । श्लेषरूपकं । मेध्यतावाक्प्रसादैः—मेध्यता पवित्रता मेधायां साधुता वा वाक्प्रसादो वचोनैर्मल्यं च येभ्यस्तानि मेध्यतावाक्प्रसादानि तैः । धारोष्णैः—धारायामुष्णानि धारोष्णानि सुखोष्णानि तैः । उक्तं च—

शृ (सृ) तोष्णं कफवातघ्नं शृतशीतं च पित्तजित् ।
आमवातकरं चामं धारोष्णममृतं पयः ॥ १ ॥
सुश्रुतं यत्पयः पीतं पीयूषादपि तद्गुरु ।
कूर्चिकाश्च किलाटाश्च मुखश्लेष्मप्रवर्धनम् ॥ २ ॥

भूयोऽपि कथंभूतैः पयोभिः ? धावदष्टापदकुटवदनोद्गीर्णधारासहस्रैः—धावन्ति शीघ्रं पतन्ति अष्टापदकुटवदनैरुद्गीर्णानि कनककलशमुखैरुद्वान्तानि धाराणां सहस्राणि येषां तानि तथोक्तानि तैः । पुनः कथंभूतैः पयोभिः ? दिव्यैः—मनोहरैः । कथंभूतं प्रभुं ? असमलसद्वाग्रसं—असमोऽनन्यजनसाधारणो लसन् क्रीडन् वाक्षु वचनेषु रसो रागद्वेषादिरहितत्वेन स्थायीभावः शान्ताख्यो रसो यस्येति । तथा चोक्तम्—

सम्यग्ज्ञानसमुत्थानः शान्तो निःस्नेहनायकः ।
रागद्वेषपरित्यागात्सम्यग्ज्ञानस्य चोद्भवः ॥ १ ॥

दुग्ध-मंत्रः ।

क्षीराम्भोधिपयःप्रवाहधवलं स्वं रूपमाध्यायतां
बाह्यं भुक्तिमरं करोत्यविरतं यो भुक्तिमप्यान्तरम् ।
तस्यायं स्नपने क्षितौ तत इतः क्षीरप्रवाहो लुठन्
दिश्याद्विश्वजनस्य शान्तिमुदयं कीर्तिं प्रमोदं जयम् ॥१२२॥

वृत्तिः—तस्य—भगवतस्तीर्थंकरपरमदेवस्य, स्नपने—अभिषेकावसरे, अयं—प्रत्यक्षीभूतः, क्षीरप्रवाहः—गोदुग्धपूरः, विश्वजनस्य—सर्वलोकस्य, शान्तिं—सर्वकर्मविप्रमोक्षं विघ्नोपशमनं च दिश्यात्—प्रदेयात् । न केवलं शान्तिं, उदयं च क्रियात्—शक्रादिपदतीर्थंकृत्कल्याणत्रयलक्षणोपलक्षितमभ्युदयं च । तथा कीर्तिं—पुण्यगुणकीर्तनं, तथा प्रमोदं—परमाल्हादं, जयं—शत्रुपराभूतिं दिश्यात् । क्षीरप्रवाहः किं कुर्वन् ? क्षितौ—पृथिव्यां, तत इतः—इतस्ततः यत्र तत्र, लुठन्—विलोटयन् । तस्य कस्य ? यः—भगवान् सर्वज्ञवीतरागः, स्वं—स्वकीयं, बाह्यं रूपं—प्रतिमादिकं, आध्यायतां—चेतसि चिन्तयतां पुरुषाणां, भुक्तिं—इन्द्रचक्र्यादिपदभोगं, करोति—विदधाति । तदुक्तमार्षे—

सरत्ना निधयो देव्यः पुरं शय्यासने चमूः ।
भाजनं भोजनं नाट्यं भोगस्तस्य दशाङ्गकः ॥ १ ॥

यः—भगवान्, स्वं आन्तरं—अनन्तदर्शनज्ञानवीर्यसुखादिलक्षणोपलक्षितमभ्यन्तरं रूपं, आध्यायतां मुक्तिं—सर्वकर्मक्षयलक्षणोपलक्षितं मोक्षं, अपिशब्दाद्भुक्तिं च करोति । कथं ? अरं—अतिशयेन । पुनश्च कथं ? अविरतं—निरन्तरमविच्छिन्नमित्यर्थः । कथंभूतं स्वरूपं

याममान्तरं च? क्षीराम्भोधिपयःप्रवाहधवलं-क्षीरसागरनीरवत्पाण्डुर-मिति तात्पर्यम्॥ १२२॥

आशीर्वादः

आभिः पुष्पाभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपपङ्क्तिप्रदीपै-
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥१२३॥

इष्टिः। क्षीराभिषेकः।
समाप्त इत्यर्थः।

ॐ शिशिरस्पर्शैरपि भृशोष्णपरिणामैः उदीर्णमार्दवैरपि दर्शितस्तब्धभावैः, संग्रहकैरपि सिद्धगुरुत्वैः, पवमानसपत्नैरपि पावकसंवर्धनैः, पीनशासनैरप्यनङ्गसाधनैः, त्रिजगदाकारे समग्रेऽप्य-सम्बाधमसम्मान्तिमिस्तद्बहिःसंकटत्वसृष्टये विश्वसृजं स्वामिनमेव विज्ञापयितुमिच्छन्तीभिरिव कीर्तिभिरतिविशदतया सुगुप्तमनुविद्धै-रतिविशुद्धैः कैरप्यमीभिः—

रुच्यैर्बल्यशिलेयसाम्लमधुरैः सन्तानिकाबन्धुरैः
सम्यक्पक्वकपित्थगन्धसुमनैः रोचिष्णुभिर्मञ्जुलैः।
राजद्राजतभाजनव्यतिकरस्फारस्फुरत्कान्तिभिः
सिञ्चामो दधिभिः प्रभुं शुचिपयःसूतैः स्वहस्तोद्धृतैः ।१२४।

वृत्तिः—अमीभिः—प्रत्यक्षीभूतैः, दधिभिः प्रभुं स्नापये-त्रैलोक्य-नाथं सिञ्चामः स्नापयामो वयं। कथंभूतैर्दधिभिः? शिशिरस्पर्शैरपि

भृशोष्णपरिणामैः, ननु यानि शिशिरस्पर्शानि—हेमन्तर्तुदानि अपि शंकायां तानि भृशोष्णपरिणामानि—अतिग्रीष्मर्तुस्वाभावानि कथं भवतीति विरुद्धमेतत्, परिह्रियते, शिशिरस्पर्शैः स्पर्शनकाले शीतलैः—

शीतलं दधि सुखकारि उष्णं दोषकृद्यतः।
……………………………………………………॥ १॥

स्थौल्यं करोति हरतेऽनिलमेतदेकं-
यत्रोष्णतामुपगतं दधि तत्कदाचित्।
सर्पिःसितामलकमुद्गकषाययुक्तं-
सेव्यं वसन्तशरदातपकालवर्जम्॥ १॥

अपि निश्चयेन भृशोष्णपरिणामैः—मुक्तानां पित्तकारित्वादति-शयादहिमस्वभावैः। उक्तं च—

आम्लं पाकरसं ग्राहि गुरूष्णं दधि वातजित्।
मेदशुक्रबलश्लेष्मरक्तपित्ताग्निशोफकृत्॥ १॥
स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्धनम्।
वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुचिप्रियम्॥ २॥
विपाके मधुरं रूक्षं रक्तपित्तप्रसादनम्।
बलानां वर्धनं स्निग्धं विशेषाद्दधि माहिषम्॥ ३॥

उदीर्णमार्दवैरपि दर्शितस्तब्धभावैः। ननु ये उदीर्णमार्दवाः—उद्गतनिर्मदत्वात्ते कथं दर्शितस्तब्धभावाः—प्रकाशितोद्धतपरिणामाः, नैवं, उदीर्णमार्दवैः—उद्गतकोमलत्वैः दर्शितस्तब्धभावैः—प्रकटित-कठिनत्वैरिति सुस्थं। संग्रहकरैरपि सिद्धगुरुत्वैः। ननु ये संग्रहकराः परिग्रहस्वीकारिणस्ते सिद्धगुरुत्वाः प्राप्तमहत्त्वाः कथं भवन्ति, नैवं, संग्रहकरैः—मलस्तम्भकैः सिद्धगुरुत्वैः—सिद्धं प्रसिद्धं विख्यातं गुरुत्वमलघुत्वं येषां तानि सिद्धगुरुत्वानि तैस्तथोक्तैरिति सुस्थं।

पवमानसपत्नैरपि पावकसंवर्धनैः। पवमानः सपत्नो येषां ते पवमानसपत्ना मेघास्ते पावकवर्धना वैश्वानरवृद्धिकराः कथमिति विरुद्धं परिह्रियते, पवमानस्य वातरोगस्य सपत्नैर्निराकारकैः पावकसंवर्धनैः–क्षुधाकारकैरिति सुस्थं। पीनशासनैरप्यनङ्गसाधनैः। पीनं वृद्धिगतं शासनमाज्ञा येषां ते पीनशासनाः। ननु ये पीनशासना वृद्धादेशास्तेऽनङ्गसाधना हस्त्यश्वरथपादातिलक्षणचतुरङ्गसैन्यरहिताः कथमिति विरुद्धं परिह्रियते, पीनसं प्रतिश्यायं नासिकारोगमस्यन्ति क्षिपन्ति निवारयन्तीति पीनसासनानि तैस्तथोक्तैः। शसयोरैक्यं। तथा चोक्तम्—

> बवयोर्डलयोश्चापि शसयो रलयोस्तथा।
> अभेदमेव हीच्छन्ति येऽलङ्कारविदो जनाः॥ १॥

अनङ्गसाधनैः—अनङ्गस्य कन्दर्पस्य साधनैः शुक्रकारित्वात् सहकारिकारणैरिति सुस्थं। पुनरपि कथंभूतैर्दधिभिः? अतिविशदतया–अतिशयशुक्लत्वेन कीर्तिभिरनुविद्धैः—कीर्तिभिरनुसदृशैः। किं कुर्वतीभिः कीर्तिभिः? उत्प्रेक्ष्यते, त्रिजगदाकारे समग्रेऽपि—त्रिभुवनगृहे समस्तेऽपि, असम्बाधं—सम्यग्बाधारहितं यथा भवति तथा, असमान्तीभिः–सम्यगवकाशमलभमानाभिरुपर्युपरि प्रवृत्तया (?) तद्विसंकटत्वसृष्टये—तस्य त्रिजगदाकारस्य विसंकटत्वसृष्टये विस्तीर्णविधानाय, विश्वसृजं–जगत्कर्तारं, स्वामिनमेव—त्रैलोक्यप्रभुमेव नान्यं हरिहरहिरण्यगर्भादिकं, सुगुप्तं–अतिप्रच्छन्नं यथा कोऽपि न शृणोति तथा विज्ञापयितुमिच्छन्तीभिरिव–कथयितुकामाभिरिव। पुनरपि कथंभूतैर्दधिभिः? अतिविशुद्धैः–कुमुदकुन्दवदुज्ज्वलरूपैरित्यर्थः। तथा चोक्तम्—

> अक्वथितं दशघटिकाः क्वथितं द्विगुणाश्च ताः पयः पथ्यम्।
> रूपामोदरसाढ्यं यावत्तावद्दधि ग्राह्यम्॥ १॥

भूयः कथंभूतैर्दधिभिः? कैरपि—अनिर्वचनीयतया अपूर्वैरित्यर्थः।

पुनरपि कथंभूतैर्दधिभिः ? रुच्यैः—रुचौ भोजनेच्छायां साधूनि रुच्यानि सम्यक्त्वशुद्धिकराणि वा तैस्तथोक्तैः। बल्यशिलेयसाम्लमधुरैः—बले साधूनि बल्यानि बलकराणि शिलेयवत् शिलाजतुवत् साम्लमधुराणि अमलत्वस्वादुत्वसहितानि शिलेयसाम्लमधुराणि बल्यानि च तानि शिलेयसाम्लमधुराणि च बल्यशिलेयसाम्लमधुराणि तैः बल्यशिलेयसाम्लमधुरैः। तथा चोक्तं—

मधुराम्लः कटुः पाके किंचिदुष्णोऽमृतोपमः।
मेदोन्मादाश्मरीशोफकुष्ठापस्मारशर्कराः॥ १॥
हन्याच्छिलाजतुः क्षिप्रं कटुपाकं रसायनम्।
सर्वरोगहरं योगवाहमनुष्णशीतलम्॥ २॥

इत्यनेन विशेषणेन रसः कथितः। इदानीं रूपं प्रतिपादयति—कथंभूतैर्दधिभिः ? सन्तानिकाबन्धुरैः—सन्तानिका दुग्धप्रतया बन्धुरैर्मनोहरैः। इदानीं यं तृतीयं गुणं गन्धमाह—कथंभूतैर्दधिभिः ? सम्यक्पक्वकपित्थगन्धसुभगैः—सम्यक्पक्वस्य सुनिश्चितपरिणतस्य कपित्थस्येव दधित्थस्येव गन्धेन परिमलेन सुभगैः प्रीतिजनकैः। रोचिष्णुभिः रुच्युत्पादकैरित्यर्थः।

भ्राज्यलङ्कुम्भसहितस्थितिवृषिचरिप्रजनापत्रपेनामिष्णुच ।७३२।

मंगलैः—पापगालनैः सुखदायकैश्च। तथा चोक्तम्—

कन्या गौर्भेरिशंखं दधि फलकुसुमं पावको दीप्यमानो
यानं वा विप्रयुग्मं हयगजवृषभं पूर्णकुम्भध्वजं वा।
उद्धृत्योत्स्येयकुम्भं जलचरयुगलं स्निग्धमन्नं शवं वा
वेश्या स्त्री मांसखण्डं प्रियहितवचनं मंगलं प्रस्थितानाम्॥१॥
नग्नं तैलाभिसिक्तं भुजगमभिमुखं मुक्तकेशं च दग्धं
रक्तस्त्री रिक्तभाण्डं प्रतिमुखकलहं वानरं काष्ठभारम्।
विप्रैकं चिह्नाशं जटामुकुटधरं भर्तृहीना च नारी
प्रस्थाने प्रस्थितानामतिभवति भयं सर्वकार्येषु नष्टम्॥२॥

राजद्राजतभाजनव्यतिकरस्फारस्फुरत्कान्तिभिः—राजच्छोभमानं रजतस्य रूप्यस्येदं राजद्राजतं तच्च तद्भाजनं घटाद्यावपनं तस्य व्यतिकरेण व्यतिपङ्गेण स्फारा प्रचुरा स्फुरन्ती अव्याहतप्रवर्तमाना कान्तिः शोभा द्युतिर्येषां तानि तथोक्तानि तैस्तथोक्तैः। पुनरपि कथंभूतैर्दधिभिः ? शुचिपयःसूतैः—पवित्रदुग्धसञ्जातैः अरण्यचरगवाक्षीरसमुद्भूतत्वात्। तथा पुनः किंविशिष्टैः ? स्वहस्तोद्धृतैः—आत्मकरकमलोद्यालितैः। तथा चोक्तम्—

धर्मेषु स्वामिसेवायां सुतोत्पत्तौ च कः सुधीः।
अन्यत्र कर्मादेवाभ्यां (?) प्रतिहस्तं प्रयोजयेत् ॥१॥
भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरस्त्रियः।
विभवो दानशक्तिश्च स्वयं धर्मकृतेः फलम् ॥२॥
आत्मवित्तपरित्यागात्परैर्धर्मविधापनैः।
अवश्यमेव प्राप्नोति परभोगाय तत्फलम् ॥३॥

दधिमन्त्रः।

ध्यायन्ति मोहमथनाय यशःसुधांशु—
दुग्धोदधिं दधिमनन्तचतुष्टयं यम्।
भूयान्नृपादिजनतासु तदङ्गसङ्गा—
द्भूतार्थमंगलमिदं दधि मंगलाय ॥१२५॥

वृत्तिः—इदं—प्रत्यक्षीभूतं दधि, नृपादिजनतासु—राजादिलोकेषु, मंगलाय—श्रेयसे, भूयात्—अस्तु। कथंभूतमिदं दधि ? तदङ्गसङ्गात्—तस्य तीर्थंकरपरमदेवस्य शरीरसंभोगात्, भूतार्थमङ्गलं—सत्यार्थपरमकल्याणकरं। तस्य कस्य ? यं—स्वामिनं, ध्यायन्ति—स्मरन्ति योगिन इति गम्यते। किमर्थं ध्यायन्ति ? मोहमथनाय—मोहनीयकर्मणो मूलादुन्मूलनाय। कथंभूतं यं ? यशःसुधांशुदुग्धोदधिं—यशः पुण्यगुण-

कीर्तनं स एव सुधांशुश्चन्द्रः सर्वजनमन-आह्लादकारित्वात् तस्योत्पत्तौ दुग्धोदधि क्षीरसागरसमानं क्षीरोदनन्दनश्चन्द्र इति प्रसिद्धेः। किं कुर्वन्तं यं? दधि—धरन्तं। किं तत्? अनन्तचतुष्टयं—अनन्तज्ञान-दर्शन-वीर्य-सौख्यचतुष्कम् ॥ १२५ ॥

आशीर्वादः।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै—
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥१२६॥

इष्टिः। दध्यभिषेकः।

कक्कोलग्रन्थिपर्णागुरुतुहिनजटाजातिपत्रीलवङ्ग—
श्रीखंडैलादिचूर्णैः प्रतनुभिरवधूल्येन्दुधूलीविमिश्रैः।
आलिप्योद्वर्त्य शुद्धैः समलयजरसैः कालमैः पिष्टपिण्डैः
क्षक्षादित्वक्कषायैर्जिनतनुमसितुं स्नेहमाक्षालयामः ॥१२७॥

वृत्तिः—आक्षालयामः—प्रक्षालयामः। कां? कर्मतापन्नां जिन-तनुं—सर्वज्ञशरीरं। किं कृत्वाक्षालयामः? क्षक्षादित्वक्कषायैः—क्षक्षो जटीवृक्षः पर्कटीत्यर्थः स च आदिर्येषां वटपिप्पलोदुम्बरादीनां ते क्षक्षादय-स्तेषां त्वचश्छल्यस्तासां कषायैः क्वाथजलैः। किं कृत्वा पूर्वं? अवधूल्य—समन्तादुद्धूल्य। कैरवधूल्य? कक्कोलेत्यादि—कक्कोलानि च कर्पूर-कक्कोलानि मारीचानीत्यर्थः ग्रन्थिपर्णानि च शीर्णलोमकानि। उक्तं च—

ग्रन्थिपर्णं शुकं बर्हं पुष्पं स्थौणेयकुक्कुरे ॥१॥

तथा च—

स्थौणेयकं बर्हिचूडं शुकपुष्पं शुकच्छदम्।
विकर्णं शुकबर्हं च हरितं शीर्णलोमकम् ॥१॥

अगुरु च कृष्णलोहं तुहिनं च कर्पूरं जटा च तपस्विनी। उक्तं च—

तपस्विनी जटामांसा जटिला लोमसामिषी ॥१॥

जातिपत्री च सौमनसायनी। उक्तं च—

जातिपत्री जातिकोशा सुमनः पत्रिकापि च ।
मालती पत्रिका चैव प्रोक्ता सौमनसायनी ॥१॥

लवङ्गानि च देवपुष्पाणि । उक्तं च—

लवङ्गं देवकुसुमं भृङ्गारं शिखरं लवम् ।
दिव्यं चन्दनपुष्पं च श्रीपुष्पं वारिसंभवम् ॥१॥

श्रीखण्डं च चन्दनं एलाश्च सूक्ष्मा:—कक्कोलग्रन्थिपर्णागुरुतुहिन-जटाजातिपत्रीलवङ्गश्रीखण्डैला आदिर्येषां तमालपत्रनागकेशरादीनां तानि तथोक्तानि तेषां चूर्णैः क्षोदैः। कथंभूतैरेतेषां चूर्णैः ? प्रतनुभिः—अतिसूक्ष्मैः । पुनश्च किं कृत्वा पूर्वं ? कलमैः—कलमशालिसम्भवैः, पिष्टपिण्डैः—क्षोदमोदकैः, आलिप्य—समन्तात्समालिप्य, न केवलमालिप्य अपि तु-उद्वर्त्य—सम्मर्द्य च । कथंभूतैः पिष्टपिण्डैः ? इन्दुधूलीविमिश्रैः—कर्पूररजःसम्मिश्रितैः ।पुनः किंविशिष्टैः पिष्टपिण्डैः ? शुद्धैः—अविशुक्लै-रतिपवित्रैर्वा। भूयः किंगुणैः ? समलयजरसैः—चन्दनद्रवसहितैः ॥१२७॥

स्नेहापनयनम्—स्निग्धत्वस्फेटनम् ।

रक्तश्यामासितासितहरिद्राभवर्णान्नपिण्डैः
स्नानस्नेहोल्लिखितमवतार्यानुपूर्व्या जिनेन्द्रम् ।
नन्द्यावर्ताद्युपहितपुरोदिष्टपुष्पाक्षताद्यै—
र्भक्त्या विष्वक्कलिमलभिदे मञ्जु नीराजयामः ॥१२८॥

वृत्तिः—जिनानां गणधरदेवादीनामिन्द्रः स्वामी जिनेन्द्रस्तं जिनेन्द्रं वयं नीराजयामः—अवतारयामः । कैः ? नन्द्यावर्ताद्युपहितपुरोदिष्टपुष्पा-

नन्द्याद्यैः—नन्द्यावर्त आदिर्येषां स्वस्तिकादीनां तानि नन्द्यावर्तादीनि तानि च तानि पुरोदिष्टानि पूर्वकथितानि पुण्याक्षतादीनि दशमङ्गलद्रव्याणि तैः। कया? भक्त्या—परमधर्मानुरागेण। कथं नीराजयामः। विष्वक्—समन्तात्। किमर्थं नीराजयामः? कलिमलभिदे—अशुभकर्मविनाशनाय। कथं? मञ्जु समीचीनं यथा भवति। किं कृत्वा पूर्वं? अवतार्य। कैः? रक्तत्यादि—वर्णशब्दः प्रत्येकं प्रयुज्यते तेन रक्तवर्णाः कोकनदच्छवयः, श्यामवर्णा असितकान्तयः, असितवर्णा भिन्नाञ्जनतेजसः, सितवर्णाः श्वेतवर्णाः, हरिद्राभवर्णाः पीतच्छवयस्ते च तेऽन्नपिण्डा भक्तपिण्डास्तैस्तथोक्तैः। कया अवतार्य? आनुपूर्व्या—पूर्वस्थानतिक्रमेणानुपूर्वं अनुपूर्वस्य भाव आनुपूर्वी तया आनुपूर्व्यानुक्रमेणेत्यर्थः। कथंभूतं जिनेन्द्रं? स्नानस्नेहोल्लिखितं—अभिषेकस्नेहादुचितम्॥ १२८॥

मंगलावतरणम्।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै—
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि॥१२९॥

इष्टिः।

स्नानोत्तरपुरस्कारः—स्नानस्य पाश्चात्योऽलङ्कार इत्यर्थः।

ॐ अष्टापदान्वयैरपि हरिप्रियैः, विचित्रोपलखचितैरपि श्रवणविमुखैः, कण्ठार्पितदामकैरपि काठिन्यनिष्ठैः, पृथूदरैरपि चारुकलपत्रारविंदश्रीकैः, सद्गन्धसुमनोवसुहिरण्यगर्भैरपि जडाशयैः, चतुर्मानैरपि स्वप्रकाशप्रधानैः, उत्सूत्रैरपि कृतमाल्याक्षतचर्चैः, पूर्णैरिव मनोरथैः भव्यात्मनां परमानन्दमादधानैः—

क्षीरोदाद्याः समुद्राः किमुत जलमुचः पुष्करावर्तकाद्याः
किंवाद्येवं वितर्काः सुरमुरभिकुचाविद्भिरित्यूह्यमानैः।
पीयूषोत्सारिवारिप्रसरभरकिलद्दिग्गजव्रातमेतै—
स्तन्मः शस्तैरुदस्तैर्युगपदभिषवं श्रीपतेः पूर्णकुम्भैः ॥१२०॥

वृत्तिः—एतैः—प्रत्यक्षीभूतैः, पूर्णकुम्भैः—तीर्थोदकपरिपूर्णकलशैः कृत्वा, श्रीपतेः—समवशरणादिकेवलज्ञानादिविभूतिस्वामिनो जिनेन्द्रस्य, अभिषवं—अभिषेकं स्नपनं, तन्मः—विस्तारयामो वयमिति क्रियाकारकसम्बन्धः। कथं तन्मः? पीयूषेत्यादि—पीयूषममृतमुत्सारयन्ति तिरस्कुर्वन्तीत्येवंशीलानि पीयूषोत्सारीणि तानि च तानि वारीणि जलानि तेषां प्रसरभरो विस्तारातिशयस्तत्र किलन् क्रीडन् दिग्गजव्रातो दिङ्नागसमूहो यत्राभिषवस्नानकर्मणि तत्तथोक्तं। कथंभूतैः पूर्णकुम्भैः? अष्टापदान्वयैरपि हरिप्रियैः। ननु येऽष्टापदान्वयाः—शरभकुलोत्पन्नास्ते हरिप्रियाः—सिंहाभीष्टाः कथं भवन्ति, अष्टापदः सिंहान् मारयति यस्मादिति विरुद्धं, परिह्रियते, अष्टापदान्वयैः—सुवर्णसंघटितैः, हरिप्रियैः—इन्द्रप्रियैः याजक्याचार्याभीष्टैरिति सुस्थं। विचित्रोपलखचितैरपि श्रवणविमुक्तैः—विरूपका चित्रा विचित्रा तस्यां जातस्य राक्षसगणत्वात्। तथा चोक्तम्—

हस्तस्वातिमृतमृगशिरःपुष्यमैत्रादितिनानि
पौष्णादित्ये जगुरिह बुधा देवसंज्ञानि भानि।
पूर्वास्तिस्रः शिवभभरणी रोहिणीप्युत्तराश्च
प्राहुर्मर्त्याह्वयमुडुगणं नूनमेते मुनीन्द्राः ॥१॥
चित्राश्लेषे निऋतिपितृभे वासवं वा समघं
शक्राम्भोपेशभदहनचं रक्षोगणोऽयम्।
श्रेष्ठा प्रीतिं स्वकुलगणयोर्मध्यमा देवपुंसां
मर्त्यैर्दैवैरपि सह महद्रक्षसां वैरमाहुः ॥२॥

अथवा विशिष्टा चित्रा विचित्रा तस्यामुत्पन्नोजस्य बहुफलदायित्वात्। तथा चोक्तम्—

हस्ताश्विपुष्योत्तररोहिणीषु
चित्रानुराधामृगरेवतीषु।
स्वाती धनिष्ठासु मघासु मूले।
बीजोप्तिरुत्कृष्टफला प्रदिष्टा ॥ १ ॥

विचित्रामुप समीपे लाति गृह्णातीति विचित्रोपलं विचित्रोपलं च तत्खं चाकाशं विचित्रोपलखं तस्मिञ्श्रिताः पुष्टिं गता विचित्रोपलखचितास्तैस्तथोक्तैः, आदित्यादिभिर्ग्रहैरित्यर्थः। ननु ये विचित्रोपलखचिताश्चित्रानक्षत्रस्थानव्योमस्थितास्ते श्रवणविमुखाः—द्वाविंशनक्षत्रपराङ्मुखाः कथं भवन्ति तस्य विवारंभादिकार्येषु श्रेष्ठत्वात्। तथा चोक्तम्—

मृगादिपंचस्वपि भेषु मूले
हस्तादिके च त्रितयेऽश्विनीषु।
पूर्वात्रये च श्रवणे च तद्ज्ञ—
क्रियासमारम्भमुशन्ति सिद्धौ ॥१॥

अन्यच्च—

हस्ते मृगेन्द्रश्रवणाश्विनीतिष्य—
पौष्णश्रविष्ठश्च पुनर्वसुश्च।
श्रेष्ठानि धिष्ण्यानि नव प्रयाणे
त्यक्त्वा त्रिपंचादिमसप्ततारा: ॥१॥

इति विरुद्धं परिह्रियते, विचित्रा अनेकप्रकाराः श्वेतपीतहरितारुणकृष्णास्ते च ते उपला रत्नानि तैः खचिता यथाशोभं जटिता विचित्रोपलखचितास्तैस्तथोक्तैः, अवणविमुखैः—सच्छिद्रत्वजर्जरत्वादिदोषरहितत्वाज्जलक्षरणरहितैः। कण्ठार्पितदामकैरपि काठिन्यनिष्ठैः—कण्ठार्पितदामका नदीपर्वतदेवगुर्वादिसन्निधानेषु दत्तधनास्ते काठिन्यनिष्ठा नैष्ठुर्यतत्परा अदातारः कथं स्फुरन्ति विरुद्धं परिह्रियते, कण्ठार्पितदामकैः—गलारोपितपुष्पमालैः, काठिन्यनिष्ठैः—दृढतरस्वभावैः सुवर्णादिखरपार्थिवत्वादिति

सुस्थं । प्रथूदरैरपि चारुफलपत्रारविन्दश्रीकैः—पृथुर्विशालः पिठरवद्घटवद्वा उदरो येषां ते पृथूदरास्तैः, फलं चालब्धलाभः पत्राणि च गजतुरङ्गरथादिवाहनानि अरविन्दश्रीश्च पद्मप्रमाणलक्ष्मीः पद्मानि लक्ष्मीर्वा फलपत्रारविन्दश्रियः चार्व्यो मनोहराः फलपत्रारविन्दश्रियो येषां ते चारुफलपत्रारविन्दश्रीकाः । ननु ये पृथूदराः—पिठरघटजठरास्ते चारुफलपत्रारविन्दश्रीकाः कथं । उक्तं च—

पिठरजठरो दरिद्री घटजठरो दुर्भगः सदा दुःखी ।
भुजगजठरो बुभुक्षो बहुभोजी जायते मनुजः ॥१॥

इति विरुद्धं परिह्रियते । पृथु बहुलं उदं पानीयं रान्ति गृह्णन्तीति पृथूदरास्तैः पृथूदरैः, चारुफलपत्रारविन्दश्रीकैः—फलानि च नालिकेरबीजपूरादीनि पत्राणि चाम्रादिपल्लवा अरविन्दानि कमलानि, चारूणि मनोहराणि तानि च तानि फलपत्रारविन्दानि तेषां श्रीः शोभा येषु ते तथोक्तास्तैस्तथोक्तैरिति सुस्थं । सद्गन्धसुमनोवसुहिरण्यगर्भैरपि जडाशयैः—सतां विद्वज्जनानां गन्धाः सम्बन्धिनः सद्गन्धाः सुमनसो देवा विद्वांसो वा वसवो देवविशेषाः हिरण्यगर्भो ब्रह्मा । ननु ये सद्गन्धसुमनोवसुहिरण्यगर्भास्ते जडाशयाः मूर्खमनसोऽविवेकिनः कथमिति विरुद्धं परिह्रियते, गन्धाश्च चन्दनानि सुमनसश्च पुष्पाणि वसवश्च रत्नानि हिरण्यं च सुवर्णं गन्धसुमनोवसुहिरण्यानि सन्ति समीचीनानि गन्धसुमनोवसुहिरण्यानि गर्भेषु येषां ते सद्गन्धसुमनोवसुहिरण्यगर्भास्तैस्तथोक्तैः, जडाशयैः—जडस्य जलस्य आशया आश्रयाः स्थानानि जडाशयास्तैस्तथोक्तैरिति सुस्थं । चतुर्मानैरपि स्वप्रकाशप्रधानैः—चत्वारो मानाः कषायविशेषा येषां ते चतुर्मानाः । ननु ये चतुर्मानाः अनन्तानुबन्ध्यादिमानसहितास्ते स्वस्यात्मनः प्रकाशेन स्फुटीभावेन केवलज्ञानोद्योतेन प्रधाना मुख्याः कथमिति विरुद्धं । तथा चोक्तम्—

चक्रं विहाय निजदक्षिणबाहुसंस्थं
यत्प्राव्रजन्ननु तदैव स तेन मुञ्चेत्।
क्लेशं तमाप किल बाहुबली चिराय
मानो मनागपि हतिं महतीं करोति ॥१॥

परिह्रियते, चतुर्मानैः—चतुःप्रमाणैश्चतुःसंख्याकैश्चतुर्भिरित्यर्थः, स्वप्रकाशप्रधानैः—निजस्वाभाविकोद्योतप्रकृतिभिः, न तु कृत्रिमोद्योतैरिति सुस्थं। उत्सूत्रैरपि कृतमालयाक्षतचर्चैः—ननु ये उत्सूत्राः परमागमशब्दागमयुक्त्यागमरहितास्ते कृतमालयाक्षतचर्चाः कथं? कृता विहिता मालयस्य वैष्णवमतस्याक्षता अविच्छिन्ना चर्चा विचारणा खण्डना यैस्ते कृतमालयाक्षतचर्चाः, अथवा ये उत्सूत्रा यदृच्छाचारास्ते कृतमालयाक्षतचर्चाः प्रकल्पितलक्ष्मीवद्‌खण्डमण्डसन्माननाः कथमित्युभयप्रकारेण विरुद्धं परिह्रियते, उत्सूत्रैः—उत्कृष्टत्रिगुणश्वेतसूत्रवेष्टितैः कृतमालयाक्षतचर्चैः—कृता समनुष्ठिता मालयेन मलयाचलोद्भवचन्दनेनाक्षतैस्तन्दुलैश्च चर्चा पूजनं येषां ते तथोक्तास्तैः। किं कुर्वाणैः पूर्णकुम्भैः? भव्यात्मनां—रत्नत्रययोग्यप्राणिनां, परमानन्दं—उत्कृष्टसौख्यं, आदधानैः—कुर्वद्भिः। कैरिव? पूर्णैर्मनोरथैरिव—सम्प्राप्तैः स्वर्गमोक्षसौख्यदोहदैरिव।

किं क्रियमाणैः पूर्णकुम्भैः? विद्भिः—विद्वद्भिः, इति—अमुना प्रकारेण, ऊह्यमानैः—तर्क्यमाणैः उत्प्रेक्ष्यमाणैरित्यर्थः। इतीति किं? एते क्षीरोदाद्याः—क्षीरोदप्रभृतयः, समुद्राः—चत्वारः सागराः, अद्य-इदानीमेव घटरूपप्रकारेण, विवृत्ताः पर्यायान्तरं प्राप्ताः, किमुत—किमथवा, पुष्करावर्तकाद्याः—पुष्करावर्तप्रभृतयः जलमुचः—मेघाः अद्यैवं विवृत्ताः—इदानीं पूर्णकुम्भरूपेण जाताः। तदुक्तं—

मेघाश्चतुर्विधास्तेषां द्रोणाद्यः प्रथमो मतः।
आवर्तः पुष्करावर्तस्तुर्यः संवर्तकस्तथा ॥१॥

किंवा—किमथवा, सुरभिकुचाः—कामधेनुस्तनाः, अद्य एवं विवृत्ताः। पुनरपि कथंभूतैः पूर्णकुम्भैः? शस्तैः—मनोहरैः, तथा युगपत्—

समकालं, उद्गतैः—उच्छलितैरिति शेषः। विरोधोपमा संशयत्वात्संकरालङ्कारः ॥१३०॥

कलश मंत्रः।

व्यात्युक्षीरभसेन पाण्डुकशिलासान्निध्यसंसद्भिदो
 देवौघान् रमयन्तमीशजननस्नानोदभारं हसन्।
लोकानेष पुनातु पावनजिनाधीशाङ्गसङ्गार्जित—
 स्वान्तःक्षालनशक्तिरुज्ज्वलचतुःकुम्भाप्लवांभःप्लवः ॥१३१॥

वृत्तिः—एषः—प्रत्यक्षीभूतः, उज्ज्वलचतुःकुम्भप्लवाम्भःप्लवः—उज्ज्वलो दैदीप्यमानश्चतुर्णां कुम्भानामाप्लवाम्भःप्लवः समन्तात्कमनमनजलोच्छलनं, लोकान्—भव्यजनान्, पुनातु—पवित्रयतु। किं कुर्वन्? ईशजननस्नानोदभारं हसन्—ईशस्य त्रैलोक्यनाथस्य जननस्नानोदभारो जन्माभिषेकजलसमूहस्तं हसन् तिरस्कुर्वन्ननुकुर्वन्नित्यर्थः। ईशजननस्नानोदभारं किं कुर्वन्तं ? व्यात्युक्षीरभसेन—परस्परस्य रभसेन वेगेन, देवौघान्—चातुर्निकायदेवसमूहान्, रमयन्तं—क्रीडयन्तं। कथंभूतान् देवौघान् ? पाण्डुकशिलासान्निध्यसंसद्भिदः—पाण्डुकशिलासान्निध्ये पाण्डुकशिलासामीप्ये संसदां सभानां भिदो भेदाः प्रकारा येषां ते पाण्डुकशिलासान्निध्यसंसद्भिदस्तांस्तथोक्तान्। कथंभूत उज्ज्वलचतुःकुम्भप्लवाम्भःप्लवः ? पावनजिनाधीशाङ्गसङ्गार्जितस्वान्तःक्षालनशक्तिः—पावनः पवित्रो योऽसौ जिनाधीशो जिनानां गणधरदेवादीनामधीशः स्वामी तस्याङ्गं परमौदारिकशरीरं तस्य सङ्गेन संयोगेनार्जिता उपार्जिता स्वान्तःक्षालनशक्तिर्मनोमलप्रक्षालनसामर्थ्यं येन स पावनजिनाधीशाङ्गसङ्गार्जितस्वान्तःक्षालनशक्तिः ॥ १३१ ॥

आशीर्वादः।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै-
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥१२२॥

इष्टिः ।

पूर्णकलशाभिषेकः—समाप्त इत्यर्थः ।

ॐ दिक्चक्रवालविलसत्परिमलाघ्राणलौल्येन दिग्दन्तावलकपोलपालीविगलन्मदजलजुगुप्सयाभिसर्पतां मदान्धमधुकरनिकराणां झङ्कारसंरावैः श्रवणकुहरेष्वानन्दरसमभिवर्षद्भिः शरच्चन्द्रिकाचुम्बनगलच्चन्द्रकान्तोपलसलिलपूरानुकारितया प्रकामरमणीयं प्रकृतिरूपमपाकुर्वाणैरप्यसाधारणवसुन्धरागुणमत्सरेणेव सुरभितमद्रव्यविशेषैः, साङ्गत्यमुपेत्योपात्तेन केनचिद्रूपविशेषेण चक्षूंषि निश्चलायतमनिमेषयद्भिः, सद्यस्तापापनोददक्षेण शीतस्पर्शविशेषेण विरहिणां स्वसमागमसमयोज्जृम्भितरोमाञ्चकञ्चुकितवल्लभाकुचकुम्भनिर्दयपरिरम्भशर्मदुर्मनयद्भिः, शुचितमत्वगुणानुरागनिगडितमिवान्तःकरणं घ्राणपरितर्पिणा गन्धविशेषेण मुहुरासञ्जयद्भिः, अनिर्वचनाय सौरस्येनाभिनेयकाव्यान्यधोमुखयद्भिरमीभिः—

पङ्कजैः सहवासिभिः कुवलयैः सौगन्धिकैः कैरवै—
रन्यैरप्यधिवासितैः सुरभिभिः क्षोदैस्तथोपस्कृतैः ।
श्रीखण्डेन्दुवरागुरुप्रमुखजैः कल्याणकुम्भानना—
न्निर्यद्भिस्त्रिजगत्प्रभोरभिषवं गन्धोदकैः कुर्महे ॥१२३॥

वृत्तिः—अमीभिः—प्रत्यक्षभूतैः, गन्धोदकैः—गन्धेन चन्दनादिना मिश्रितजलैः, त्रिजगत्प्रभोः—त्रैलोक्यनाथस्य, अभिषवं—अभिषेकं,

कुर्महे—अनुतिष्ठामो वयं। गन्धोदकैः किं कुर्वद्भिः? मदान्धमधुकरनिकराणां झङ्कारसंरावैः श्रवणकुहरेष्वानन्दरसमभिवर्षद्भिः—मदेन अपूर्वपरिमललाभहर्षेणान्धा असमीक्षितकारिणो मदान्धाः, मदान्धाश्च ते मधुकरा भ्रमरा मदान्धमधुकरास्तेषां निकराः समूहा मदान्धमधुकरनिकरास्तेषां यथोक्तानां झङ्कारसंरावैः झङ्करणानि झङ्कारास्ते च ते संरावाः समीचीनाः शब्दास्तैः श्रवणकुहरेषु कर्णविवरेषु आनन्दरसं आह्लादामृतं अभिवर्षद्भिः समन्ताद्विकिरद्भिः। किं कुर्वतां मधुकरनिकराणां? अभिसर्पतां—समन्तादागच्छतां। केन हेतुना? दिक्चक्रवालविलसत्परिमलाघ्राणलौल्येन—दिक्चक्रवालेषु दिङ्मण्डलेषु विलसन् विशेषेण क्रीडनशीलत्वेन रममाणोऽत्याहतं प्रसरन् योऽसौ परिमलः कर्पूरादिविमर्दनोत्थजनमनोहरगन्धस्तस्याघ्राणं नासिकयोपादानं तस्य लौल्येन लम्पटतया। कयाभिसर्पतां? दिग्दन्तावलकपोलपालीविगलन्मदजलजुगुप्सया—दिग्दन्तावला दिग्गजेन्द्रास्तेषां कपोलपाल्यो निकटतटानि प्रशस्तकपोला इत्यर्थः ताभ्यो विगलन्ति प्रक्षरन्ति यानि मदजलानि दानवारीणि तेषां जुगुप्सया घृणया। किं कुर्वाणैर्गन्धोदकैः? शरच्चन्द्रिकाचुम्बनगलच्चन्द्रकान्तोपलसलिलपुरानुकारितया प्रकामरमणीयं प्रकृतिरूपमपाकुर्वाणैः—प्रकृतिरूपं स्वाभाविकसौन्दर्यं अपाकुर्वाणैः परित्यजद्भिः, कथंभूतं प्रकृतिरूपं? शरदित्यादि शरच्चन्द्रिका आश्विनकार्तिकसम्बन्धिनीचन्द्रज्योत्स्ना तस्याश्चुम्बनेन स्पर्शेन गलन्ति प्रक्षरन्ति यानि चन्द्रकान्तोपलसलिलानि इन्दुमणिजलानि तेषां पूरः प्रवाहस्तस्यानुकारितया तुल्यत्वेन प्रकामरमणीयमतिशयमनोहरं। किं कुर्वद्भिर्गन्धोदकैः? अप्येत्यादि—अप्सु साधवोऽप्याः साधारणाः सर्वजलतुल्याः ये वसुंधरागुणाः पृथ्वीगुणास्तेषां मत्सरेणेवासहिष्णुतयेव सुरभितमद्रव्यविशेषैः—अतिसुगन्धद्रव्यभेदैः। साक्षात्यमुपेत्योपात्तेन……केनचिद्रूपविशेषेण सौन्दर्यप्रकारेण चक्षूंषि—लोचनानि निश्चलायतं—स्थिरदीर्घं यथा भवति तथा अनिमेषयद्भिः—मीलनोन्मीलनमकारयद्भिः सर्वतात्पर्येण लोकनावलोकनं

कारयद्भिः। भूयः किं कुर्वद्भिर्गन्धोदकैः? सद्य इत्यादि—सद्यस्तत्कालं तापापनोददक्षेण—सन्तापस्फेटनचतुरेण शीतस्पर्शविशेषेण—शैत्यगुणपरेण विरहिणां—कमनीयकामिनीवियोगिनां पुरुषाणां स्वसमागमसमये निजागमनकाले उज्जृम्भितः प्रोल्लसितो योऽसौ रोमाञ्चो रोमहर्षणं तेन कञ्चुकिता निर्मिता ये वल्लभाकुचकुम्भा रमणीयवनितास्तनकलशास्तेषां निर्दयपरिरम्भोऽतिगाढालिङ्गनं तस्मादुद्भवं सुखं तद्दुर्मनयद्भिः—तिरस्कुर्वद्भिन्यक्कुर्वद्भिरित्यर्थः। अन्तःकरणं—मनोगन्धविशेषेण—परिमलप्रकारेण हेतुना, मुहुर्वारंवारं, आसञ्जयद्भिः—सन्धघ्नद्भिः। कथंभूतमन्तःकरणं? उत्प्रेक्ष्यते, शुचितमत्वगुणानुरागनिगडितमिव—पवित्रतरत्वगुणप्रीतिबद्धमिव। कथंभूतेन गन्धविशेषेण? घ्राणपरितर्पिणा—नासिकेन्द्रियप्रीणनशीलेन। भूयोऽपि किं कुर्वद्भिर्गन्धोदकैः? अनिर्वचनीयसौरस्येन—अनिन्दनीयशोभनरसत्वेन, अभिनेयकाव्यानि—सुकविरचितसंस्कारणीयसाहित्यानि, अधोमुखयद्भिः—अवाङ्मुखानि विदधद्भिस्तिरस्कुर्वद्भिरन्व (न) नुविदद्भिरित्यर्थः। पुनरपि कथंभूतैर्गन्धोदकैः? अधिवासितैः—सुगन्धीकृतैः। कैः कृत्वा? कुवलयैः—नीलोत्पलैः, तथा सौगन्धिकैः—कल्हारैः रक्तोत्पलैरित्यर्थः, तथा कैरवैः—कुमुदैः श्वेतोत्पलैः, तथान्यैरपि जातीचम्पकादिभिरपि। कथम्भूतैरेतैः? पंकजैः सहवासिभिः—श्वेतरक्तादिकमलसहितैरित्यर्थः। तथा—तेनैव प्रकारेण, चोदैः—चूर्णैः, उपस्कृतैः—संस्कृतैः। कथंभूतैः चोदैः? श्रीखण्डेन्दुवरागुरुप्रमुखजैः—श्रीखण्डं चन्दनं इन्दुः कर्पूरं वरं कुङ्कुमं अगुरुः कृष्णागुरुः प्रभृति (प्रमुख) शब्दादेलालवङ्गादि तेभ्यो जाताः श्रीखण्डेन्दुवरागुरुप्रभृतिजा (प्रमुखजा) स्तैस्तथोक्तैः। किं कुर्वद्भिर्गन्धोदकैः? कल्याणकुम्भाननान्—सुवर्णकुम्भमुखान, निर्यद्भिः—निर्गच्छद्भिः॥ १२२॥

गन्धोदकमन्त्रः।

यत्क्षीरोदपयः परं शुचिलसद्गन्धौघमर्हत्पूजा—
दसं स्वाभिषवे प्रयुञ्ज्युरुपधीकुर्युः सुराः स्वेषु च ।
तद्गन्धोदकमेतदार्हतमरं पूतं परं मंगलं
पापं नः सकलं निहन्त्ववभृथस्नानेऽद्य शीर्षेऽर्पितम् ॥१२४॥

वृत्तिः—तत्–जगत्प्रसिद्धं, एतत्–प्रत्यक्षीभूतं, आर्हतं—अर्हत इदं, सर्वज्ञसम्बन्धित्वेन, गन्धोदकं—गन्धतोयं, अद्य-इदानीं, अवभृतस्नाने यज्ञान्ताभिषेके (शीर्षे-मस्तके) अर्पितं–आरोपितं सत्, नः–अस्माकं, सकलं-समस्तं, पापं–नरकादिकारणमशुभकर्म, निहन्तु–अतिशयेन हन्तु विनाशयतु । कथंभूतं तद्गन्धोदकं ? अरं—अतिशयेन, पूतं–पवित्रं परमुत्कृष्टं, मंगलं–पापगालन-सुखादानहेतुभूतं । तत्किं ? क्षीरोदपयः—क्षीरसागरजलं, सुराः–देवाः, स्वाभिषवे—आत्माभिषेके, प्रयुञ्ज्युः—उपयोगीकुर्युः विदध्युः । तथा स्वेषु–आत्मीयपरिवारेषु, उपधीकुर्युः—प्राभृतीकुर्युः विदध्युः । चकारादन्येषु चोपधीकुर्युः । यत्कथंभूतं ? परं–उत्कृष्टं, शुचिलसद्गन्धौघं—समीचीनपरिमलप्रशस्तं अर्हत्पूजा दप्तं–सर्वज्ञस्यापि शरीरशोधनाद्गर्वितमित्यर्थः ॥ १२४ ॥

गन्धोदक-वन्दनम् ।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै—
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥१२५॥

इष्टिः ।

गन्धोदकाभिषेकः—समाप्त इत्यर्थः ।

इत्यभिषेक-निर्वर्तनम्—इति अमुना प्रकारेण अभिषेकस्य निर्वर्तनं—परिपूर्णम् ।

अथ विधि-शेषम्—अथानन्तरं विधेः शेषं कर्म कथ्यते इत्यर्थः—

यं मेरावभिषिच्य शान्तिमशनैरुक्त्वा जगच्छान्तये
स्नाताः स्नानजलैः परीत्य हरयोऽभ्यर्चन्ति नृत्यन्ति च ।
प्रार्चामस्तमथो जलादिकुसुमाञ्जल्यातपत्रादिभि—
स्तस्याग्रेऽखिलशान्तये निमिनुमोऽन्वक् शान्तिधारां जलैः ।१२६।

वृत्तिः—अथो—अनन्तरं, तं—प्रसिद्धं त्रिजगत्प्रभुं, प्रार्चामः—प्रकर्षेण पूजयामो वयं । कैः कृत्वा ? जलादिकुसुमाञ्जल्यातपत्रादिभिः—जलमादिर्येषां गन्धाक्षतादीनामष्टविधद्रव्याणां तानि जलादीनि, कुसुमाञ्जपुष्पाणामञ्जलिः दक्षिणकरपुटः कुसुमाञ्जलिः, आतपत्रं छत्रत्रयमादिर्येषां चामरादर्शादीनां तानि कुसुमाञ्जल्यातपत्रादीनि, जलादीनि च कुसुमाञ्जल्यातपत्रादीनि च जलादिकुसुमाञ्जल्यातपत्रादीनि तैस्तथोक्तैः । अन्वक्—पश्चात् । तस्य—त्रिजगत्प्रभोः, अग्रे—पुरः, जलैः कृत्वा शान्तिधारां निमिनुमः—निक्षिपामो वयं । कस्यै ? अखिलशान्तये—सर्वलोकविघ्नव्युदासाय । तं कं ? यं—भगवन्तं, हरयः—देवेन्द्राः, अभ्यर्चन्ति—समन्तात्पूजयन्ति । किं कृत्वा पूर्वं ? मेरौ—हेमाचले, अभिषिच्य—स्नापयित्वा । तथा अशनैः—उच्चैर्यथा भवत्येवं, शान्तिमुक्त्वा—परिपठ्य । किमर्थं ? जगच्छान्तये—त्रिभुवनजनविघ्नविनाशनाय । कथम्भूता हरयः ? स्नानजलैः—जिनाभिषेकपानीयैः, स्नाताः—कृतस्नानाः । किं कृत्वाभ्यर्चन्ति ? परीत्य—त्रीन् वारान् प्रदक्षिणां विधाय । न केवलमभ्यर्चन्ति अपि तु नृत्यन्ति च नाट्यं च कुर्वन्ति ॥ १२६ ॥

विधिविशेषविधानप्रतिज्ञानाय पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

सुगमम् । "चञ्चद्रत्नमरीचि" इत्यादि जलादिपूजाष्टकं प्रागुक्तमत्रापि योज्यम् ।

[तद्यथा—

चञ्चद्रत्नमरीचिकांचनकनद्भृङ्गारनालस्रुत—
श्रीखण्डस्फटिकादिवासितमहातीर्थाम्बुधाराश्रिया ।
इन्नुं शुष्कवमेतश स्वसमयाभ्यासोद्यतैराश्रितां
सत्कुर्वीय मुदा पुराणपुरुष ! त्वत्पादपीठस्थलीम् ॥ १ ॥

जलम् ।

इमैः सन्तापार्चिः सपदि जयदक्षैः परिमल—
प्रथामूर्च्छद्घ्राणैरनिमिषदगंशुव्यतिकरात् ।
स्फुरत्पीतच्छायैरिव शमनिधे ! चन्दनरसै—
र्विलिम्पेयं पेयं शतमखदृशां त्वत्पदयुगम् ॥ २ ॥

चन्दनम् ।

सुगन्धिमधुरोज्ज्वलाशकलतन्दुलच्छद्मना
सुभक्तिसलिलोक्षितैरिव निरीय पुण्याङ्कुरैः ।
सुपुञ्जरचनाञ्चितप्रणयपंचकल्याणकै—
र्भवान्तक ! भवत्क्रमावुपहरेयमेभिः श्रियै ॥

अक्षताः ।

हृदयकमलमध्यच्छिद्रिरामोदयोगा—
द्रसविसरविलासालोचनाब्जे हसद्भिः ।
विशदिमजितबोधैर्बुद्ध ! भावत्कमेतै—
श्चरणयुगमनूनैः प्रार्चयेयं प्रसूनैः ॥

पुष्पम् ।

सुस्पर्शद्युतिरसगन्धशुद्धिभङ्गी—
वैचित्रीहृतहृदयेन्द्रियैरमीभिः ।
भूतार्थक्रतुपुरुष ! त्वदंघ्रियुग्मं
साज्यैरमृतसखैर्यजेय मुख्यैः ॥

नैवेद्यम् ।

जाड्याधायित्ववैरादिव शशिनमपि स्नेहयुक्तं दहद्भिः
सौदर्यस्वर्णयोगात्पटुतररुचिभिः सोदरत्वादिवाशाम् ।
प्रेयोभिस्त्वत्प्रतापापहतिमिरहरैर्विश्वलोकैकदीप !
श्राद्धश्रद्धैरेभिस्तव पदकमले दीपयेयं प्रदीपैः ॥

दीपम् ।

धूपानिमानसकृदुद्यदुदारधूम—
स्तोमोल्लसद्भुवनहृद्गलनेत्रनासान् ।
दुष्कर्मगर्मुदचिरोद्धृतये धुताघ !
तत्पादपद्मयुगमभ्यहमुत्क्षिपेयम् ।

धूपम् ।

शाखापाकप्रणयविलसद्वर्णगन्धर्द्धिसिद्ध—
ध्वस्तद्रव्यान्तरमदरसास्वादरज्यद्रसज्ञैः ।
एभिश्चोचक्रमुकरुचकश्रीफलाम्रातकाम्र—
प्रेष्ठैः श्रेयःसुखफल ! फलैः पूजयेयं त्वदंघ्री ॥]

सत्पुष्पैः सुरभीकरोमि भुवनं कीर्त्या जितज्योत्स्नया
वाग्देवीं हरिचन्दनेन विदधे स्मेरां करोम्यक्षतम् ।
सद्वृत्तं विशदाक्षतैः शुचिजलैः पापं क्षिपाम्यत्पलि—
ध्यानैः शासदिवायमीशपदयोः पुष्पाञ्जलिः कल्प्यते ॥

वृत्तिः—अयं—प्रत्यक्षीभूतः पुष्पाञ्जलिः, ईशपदयोः—त्रैलोक्यनाथचरणयोर्विषयेऽग्रे वा कल्प्यते—रच्यते। अयं पुष्पाञ्जलिः किं कुर्वन् उत्प्रेक्ष्यते, अलिध्वानैः—भ्रमरशब्दैः कृत्वा, इति—एवं, शासदिव—कथयन्निव। इतीति किं? सत्पुष्पैः—समीचीनकुसुमैः, अहं कीर्त्यां कृत्वा—पुण्यगुणकीर्तनेन, भुवनं—जगत्, सुरभीकरोमि—सुगन्धीकरोमि। कथंभूतया कीर्त्यां? जितज्योत्स्नया—जिता तिरस्कृता ज्योत्स्ना चन्द्रचन्द्रिका यया सा जितज्योत्स्ना तया अत्युज्ज्वलयेत्यर्थः। हरिचन्दनेन—परमोत्तमचन्दनेन, वाग्देवीं—सरस्वतीं, स्मेरां—विकसितां ईषद्धसितां सुप्रसन्नां विदधे—कुर्वेऽहं। विशदाक्षतैः—अत्युज्ज्वलतन्दुलैः, सद्वृत्तं—सम्यक्चारित्रं, अक्षतं—अविध्वस्तं अखण्डितं, करोमि—विदधामि। शुचिजलैः—पवित्रपानीयैः, पापं—नरकादिदुःखकारणमशुभकर्म, क्षिपामि—क्षयं नयामि। इदमत्र तात्पर्यं पुष्पगन्धाक्षतजलैश्चतुर्भिर्मिश्रैरेव पुष्पाञ्जलिः क्रियते॥१३७॥

पुष्पाञ्जलिः।

अपि च—

वृषभो वृषलक्ष्मीवानजितो जितदुष्कृतः।
संभवः संभवकीर्तिः साभिनन्दोऽभिनन्दनः॥ १३८॥

सुमतिः सुमतिः पद्मप्रभः पद्मप्रभः प्रभुः।
सुपार्श्वः पार्श्वरोचिष्णुश्चन्द्रश्चन्द्रप्रभः सताम्॥१३९॥

पुष्पदन्तोऽस्तपुष्पेषु शीतलः शीतलोदितः।
श्रेयान् श्रेयस्विनां श्रेयान् सुपूज्यः पूज्यपूजितः॥१४०॥

विमलो विमलोऽनन्तज्ञानशक्तिरनन्तजित्।
धर्मो धर्मोदयादित्यः शान्तिः शान्तिक्रियाग्रणीः॥१४१॥

कुन्थुः कुन्थ्वादिसुदयः सुरप्रीतिररप्रभुः।
मल्लिर्मल्लिजये मल्लः सुव्रतो मुनिसुव्रतः॥ १४२॥

नमिर्नमत्सुरासारो नेमिर्नेमिस्तपोरथे ।
पार्श्वः पार्श्वस्फुरद्रोचिः सन्मतिः सन्मतिप्रियः ॥१४३॥
एते तीर्थकृतोऽनन्तैर्भूतसद्भाविभिः समम् ।
पुष्पाञ्जलिप्रदानेन सत्कृताः सन्तु शान्तये ॥१४४॥

वृत्तिः—अपि चैत्यारंभे । एते—प्रत्यक्षीभूताः, तीर्थकृतः—सर्वज्ञदेवाः, पुष्पाञ्जलिप्रदानेन—कुसुमाञ्जलिवितरणेन, सत्कृताः—सम्मानिताः सन्तः, शान्तये—सर्वविघ्नोपशमनाय क्षुद्रोपद्रवविनाशाय सर्वकर्मक्षयलक्षणोपलक्षिताय मोक्षाय च, सन्तु—भवन्तु । कथं ? समं—सार्धं, कैः समं ? भूतसद्भाविभिः भूता अतीताः सन्तो वर्तमानाः भाविनो भविष्यन्तो भूतसद्भाविनस्तैस्तथोक्तैः । कथंभूतैः ? अनन्तैः—अन्तातिक्रान्तैः तीर्थकृद्भिः सहेत्यर्थः ।

एते के ? वृषभः—श्रीमदादिनाथः । कथंभूतः ? वृषलक्ष्मीवान्—वृषस्य धर्मस्याहिंसालक्षणोपेतस्य लक्ष्मीरनन्तज्ञानादिलक्षणा विद्यते यस्य स वृषलक्ष्मीवान् । अजितः—द्वितीयतीर्थंकरपरमदेवः । कथंभूतः ? जितदुष्कृतः—जितानि क्षयं नीतानि दुष्कृतानि ज्ञानावरणादिपापानि येनेति जितदुष्कृतः । सम्भवः—समीचीनो भवो जन्म यस्येति सम्भवः । कथंभूतः ? सम्भवकीर्तिः—………………… । अभिनन्दनः—अभि समन्तान्नन्दनानि इन्द्रवनानि यस्येत्यभिनन्दनः । अथवा अभि समन्तान्नन्दनास्तनया हर्षकारिणो वा यस्येत्यभिनन्दनः । अभिनन्दतीति वा । (कथंभूतः) साभिनन्दः सा या लक्ष्म्या अभिनन्दः अभिमुख्येन समृद्धिर्यस्येति साभिनन्दः । अथवा सहाभिनन्दया सम्मुखसम्पदा वर्तत इति साभिनन्दः ॥

सुमतिः । कथंभूतः ? सुमतिः—शोभना केवलज्ञानलक्षणोपलक्षिता मतिर्बुद्धिर्यस्येति सुमतिः । पद्मप्रभः—पद्मैर्निधिविशेषैः प्रकर्षेण भाति शोभत इति पद्मप्रभः । अथवा पद्मोऽरुणयोर्मा लक्ष्मीर्यस्येति पद्मः, प्रकर्षेण भारती ति (?) पद्मः पद्मश्चासौ प्रभश्च

पद्मप्रभः। कथंभूतः ? पद्मप्रभः—पद्मस्येव रक्तकमलस्येव प्रभा कांतिर्यस्येति पद्मप्रभः। अथवा पद्मेन लाञ्छनेन प्रभाति व्यक्तिमायातीति पद्मप्रभः। पुनः कथंभूतः ? प्रभुः—आदेयमूर्तिर्निग्रहानुग्रहसमर्थो वा। तथा चोक्तम्—

सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते
द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि
प्रभोः परं चित्रमिदं तवेहितम्॥ १॥

सुपार्श्वः—शोभनं मरणादिभयनिवारकं पार्श्वमन्तिकमस्येति सुपार्श्वः। कथंभूतः ? पार्श्वरोचिष्णुः—पार्श्वे बाहुमूलाधोऽवयवौ रोचिष्णुनी शोभनशीले यस्येति पार्श्वरोचिष्णुः। चन्द्रादपि प्रकर्षेण भातीति चन्द्रप्रभः। अथवा चन्द्रेण लाञ्छनेन प्रभाति चतुरचित्तेषु चमत्करोतीति चन्द्रप्रभः। अथवा चन्द्रवत्सोमवत्कर्पूरवद्वा प्रभा यस्येति चन्द्रप्रभः। कथंभूतः ? सतां—विद्वज्जनानां हेयोपादेयविवेकिनां भव्यप्राणिनां चन्द्रः काम्य आह्लादकार इत्यर्थः।

पुष्पदन्तः—पुष्पवत्कुन्दकलिकाप्रवद्दन्ता रदा यस्येति पुष्पदन्तः कथंभूतः ? अस्तपुष्पेषुः—विध्वस्तकामः। शीतलः—शीतं सुखं लाति ददातीति शीतलः। कथंभूतः ? शीतलोदितः—शीतलानि संसारसन्तापनिवारकाणि उदितानि वचनानि यस्येति शीतलोदितः। श्रेयान्—प्रकृष्टः प्रशस्यः श्रेयान्। श्रेयस्विनां पुण्यवतां श्रेयान् प्रशस्यतरः। सुपूज्यः—सुष्ठु अतिशयेन पूज्यः सुपूज्यः। अतएव पूज्यपूजितः—पूज्यानामपि पूजितः पूज्यपूजितः।

विमलः—विशिष्टा विविधा वा मा लक्ष्मीर्यत्रेति विमोमोक्षस्तं लाति ददातीति विमलः। कथंभूतः ? विमलः—स्वयं कर्ममलकलङ्करहितः। अनन्तजित् अनन्तं निरवधिं संसारं मोहं वा जितवान् अनन्तजित्। कथंभूतः ? अनन्तज्ञानशक्तिः—अनन्तस्याकाशस्य ज्ञानशक्तिरस्य।

अथवा अनन्ते निरवधी ज्ञानशक्ती बोधवीर्ये यस्येति स तथोक्तः । अथवा अनन्तज्ञानं शक्तिः सम्पद्यस्य स तथोक्तः। धर्मः—नरके पतन्तं जन्तुगण-मुद्धृत्य शक्रादिवन्दितपदे धरतीति धर्मः । कथंभूतः ? धर्मोदयादित्यः—धर्म आत्मस्वभावः उत्तमक्षमादिलक्षणो रत्नत्रयलक्षणः प्राणिरक्षण-लक्षणो वा धर्म एव उदयः पूर्वपर्वतः सर्वधरणहेतुत्वात्तत्र आदित्यः श्रीसूर्यो धर्मोदयादित्यः । तथा चोक्तम्—

> धम्मो वत्थु सहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो ।
> रयणत्तयं च धम्मो जीवाण य रक्खणो धम्मो ॥ १ ॥

शान्तिः—शाम्यति सर्वकर्मविप्रमोक्षं करोतीति शान्तिः । कथंभूतः ? शान्तिक्रियाग्रणीः—विघ्नोपशमनकर्मनाशकः ।

कुन्थुः—कुथ्नाति तपः क्लेशं करोतीति कुन्थुः । कथंभूतः ? कुन्थ्वादिसुदयः—कुन्थुर्जन्तुविशेषस्त्रीन्द्रियः स आदिरल्पशरीरत्वाद्येषां चतुर्दशभेदभिन्नानां ते कुन्थ्वादयस्तेषु सुदयः परमकारुणिकः । तथा चोक्तम्—

> बादरसुहमेगिंदिय बितिचउरिंदियसण्णिअसण्णी यं ।
> पज्जत्तापज्जत्ता भूदा इय चोद्दसा भणिया ॥ १ ॥

अरप्रभुः—इयर्ति ऋच्छति वा लोकाग्रं गच्छतीत्यरः । अथवा सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्था इत्यभिधानात् इयर्ति ऋच्छति वा लोका लोकस्वरूपं जानातीत्यरः । अथवा अरस्तीतु आत्मत्यागी अरः सचासौ प्रभुस्त्रै-लोक्यनाथोऽरप्रभुः । कथंभूतः ? सुरप्रीतिः—सुराणां देवानां प्रीतिर्हर्षो यस्मादसौ सुरप्रीतिः । मल्लिः—मयि आत्मनि लीयते तज्जयो भवतीति मल्लिः । अथवा मल्ल्यते देवेन्द्रैरपि शिरसि धार्यते मल्लिः । सर्वधातुभ्य इः । कथंभूतः ? मल्लिजये मल्लः—मल्लिः पुष्पविशेषस्तस्या जये तिरस्कारेऽप-कर्षविधाने मल्लः समर्थः सौरभ्यातिशायकत्वात् । मुनिसुव्रतः—मुनिः प्रत्यक्षज्ञानवान् स चासौ सुव्रतः शोभनाचारः । अथवा मुनीनां शोभनानि

व्रतानि यस्य स मुनिसुव्रतः । कथंभूतः ? सुव्रतः—यथाख्यातचारित्रसहितः ।

नमिः नम्यते नमिः । नमत्सुरासारः—नमन्तः प्रकटीभवन्तः सुराणां देवानामासारा समूहा यमिति नमत्सुरासारः । नेमिः—नमति दीक्षाकाले सिद्धानिति नेमिः । कथंभूतः ? तपोरथे—संयमस्पन्दने नेमिः—चक्रधारा चक्रं रथाङ्गं तस्यान्तो नेमिः "स्त्री स्यात्प्रधिः पुमान्" इत्यमरः । पार्श्वः—पूर्यते ज्ञानादिभिर्गुणैः सम्पूर्णो जायते पार्श्वः । कथंभूतः ? पार्श्वस्फुरद्रोचिः—पार्श्वे सामीप्ये स्फुरन्ति प्रवर्तन्ते रोचींषि दीप्तयो यस्येति पार्श्वस्फुरद्रोचिः । सन्मतिः—शोभना मतिः केवलज्ञानं यस्येति सन्मतिः । कथंभूतः ? सन्मतिप्रियः—सन्मतीनां हेयोपादेयविवेकिनां प्रियोऽभीष्टः सन्मतिप्रियः ॥ १३८–१४४ ॥

पुष्पाञ्जलिः ।

आदिनाथोऽस्तु नः स्वस्ति स्वस्ति स्यादजितेश्वरः ।
सम्भवो भवतु स्वस्ति भूयात्स्वस्त्यभिनन्दनः ॥१४५॥
अस्तु वः सुमतिः स्वस्ति पद्मामः स्वस्ति जायताम् ।
सुपार्श्वः स्वस्ति भवतात् स्वस्ति स्याच्चन्द्रलाञ्छनः ॥१४६॥
रसतां स्वस्त्यस्तु सुविधिर्भवतु स्वस्ति शीतलः ।
श्रेयान् सम्पद्यतां स्वस्ति स्वस्त्यस्तु वसुपूज्यजः ॥१४७॥
राज्ञोऽस्तु विमलः स्वस्ति स्वस्ति भूयादनन्तजित् ।
भूयाद्धर्मजिनः स्वस्ति शान्तीशः स्वस्ति जायताम् ॥१४८॥
संघस्य कुन्थुः स्वस्त्यस्तु भवतात्स्वस्त्यरप्रभुः ।
स्वस्ति मल्लिजिनेन्द्रोऽस्तु स्वस्त्यस्तु मुनिसुव्रतः ॥१४९॥
जगतोऽस्तु नमिः स्वस्ति स्वस्ति स्यान्नेमिनायकः ।
स्वस्ति पार्श्वजिनो भूयात् स्वस्ति सन्मतिरस्त्विति ॥१५०॥

अस्मिन्निमे स्वस्त्ययने भक्तिरागादधीतिनाम् ।
स्वस्तिमन्तः स्वयं शश्वत् सन्तु स्वस्त्ययनं जिनाः ॥१५१॥

वृत्तिः—अस्मिन्—पूर्वोक्तप्रकारे, स्वस्त्ययने-कल्याणकरणे, भक्तिरागात्—सेवानुरागात्, अधीतिनां—अध्ययनवतां पुरुषाणां, इमे-प्रत्यक्षीभूताः, जिनाः—तीर्थंकरपरमदेवाः, स्वस्त्ययनं—कल्याणकरणं, सन्तु—भवन्तु । कथंभूता जिनाः ? स्वयं आत्मना, स्वस्तिमन्तः । कथं ? शश्वत्—निरन्तरं । सुविधिः—शोभनो विधिश्चारित्रं यस्येति सुविधिः पुष्पदन्तः । अन्यत्सर्वं सुगममेव ॥ १४५–१५१ ॥

पुष्पाञ्जलिविधानम् ।

शक्राः केवललब्धिसम्पदधिपं छत्रत्रयाद्यैः शिव—
श्रीकान्तासदुपायनैः परिचरन्त्यापच्छिदे यं मुदा ।
स्तुत्यैश्छत्रवितानचामरमुखैर्जात्यैर्हिरण्योपलैः
पुण्यैश्चित्तवचोऽङ्गकर्मभिरपि प्रार्चामि भूयोऽद्य तम् ॥१५२॥

वृत्तिः—अद्य—इदानीं, तं—भगवन्तं, भूयः—पुनरपि, प्रार्चामि-प्रकर्षेण पूजयामि । कैः ? छत्रवितानचामरमुखैः—छत्राण्यातपवारणानि वितानानि उल्लोचाः चामराणि च प्रकीर्णकानि तानि मुखानि प्रभृतीनि येषां दर्पणादीनां तैः । कथंभूतैः ? स्तुत्यैः—प्रशस्तैः । तथा हिरण्योपलैः-सुवर्णरत्नैः । कथंभूतैः ? जात्यैः—अकृत्रिमैः । न केवलमेतैरपि तु, चित्तवचोऽङ्गकर्मभिरपि—मनोवचनकायव्यापारैरपि । कथंभूतैः ? पुण्यैः—पुण्योपार्जनहेतुभूतैः ध्यानस्तवननर्तनादिभिरित्यर्थः । तं कं ? यं—भगवन्तं, शक्राः—देवेन्द्राः परिचरन्ति—पूजयन्ति । कैः कृत्वा ? छत्रत्रयाद्यैः—छत्रत्रयं श्वेतातपत्रत्रयं आद्यं येषां चामरादीनां तानि छत्रत्रयाद्यानि तैः । कथम्भूतैः ? शिवश्रीकान्तासदुपायनैः—शिवश्रीर्मोक्षलक्ष्मीः सैव कान्ता कमनीयकामिनी सर्वात्मसौख्यदायनीत्वात्तस्याः सदुपायनैः शोभनप्राभृतैः । कथभूतम्, तं ? केवललब्धिसम्पदधिपं—केवललब्धयः

सम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि चेति नवकेवललब्धय एव सम्पत्सम्पत्तिः ज्ञानसाम्राज्यसौख्यदायित्वात्तस्या अधिपं स्वामिनं । शक्राः किमर्थं परिचरन्ति ? आपच्छिदे—जन्म-जरा-मरण-विनाशाय । कया परिचरन्ति ? मुदा—हर्षेण परमधर्मानुरागेणेत्यर्थः ॥ १५२ ॥

छत्रादि-महामहः—महापूजा इत्यर्थः ।

भव्यानाह्लादयन्तीं समवसृतिमिव द्रक्ष्यतां स्वात्मतत्त्वं
श्रौतीं संस्कारकाष्ठामिव जिनतनुवन्माननीयां मुनीनाम् ।
एतां भृङ्गारनालाननपतदमृतैः पादपीठोपकण्ठे
श्रीभर्तुः पातयामस्त्रिभुवनजनताशान्तये शान्तिधाराम् ॥१५३॥

वृत्तिः—एतां—प्रत्यक्षीभूतां, भृङ्गारनालाननपतदमृतैः—कनकालुकामुखगलत्पानीयैः कृत्वा, शान्तिधारां—विघ्नोपशमनधारां, श्रीभर्तुः—समवशरणादिविभूतिस्वामिनः, पादपीठोपकण्ठे—चरणसिंहासनसमीपे, पातयामः—प्रक्षिपामो वयं । किमर्थं ? त्रिभुवनजनताशान्तये—त्रैलोक्यलोकविघ्नविनाशाय । किं कुर्वन्तीं ? भव्यान्—रत्नत्रययोग्यान्, आह्लादयन्तीं—सुखयन्तीं । कामिव ? समवसृतिमिव—समवशरणसभामिव । भूयः किंविशिष्टां ? मुनीनां—ज्ञानिनां, माननीयां पूजनीयां । कामिव ? श्रौतीं—श्रुतस्येयं श्रौती तां श्रौतीं, संस्कारकाष्ठामिव—संस्कारो मानसकर्म तस्य काष्ठां परमप्रकर्षतामिव । श्रुतभावनामिवेत्यर्थः । तथा जिनतनुवत्—सर्वधर्मज्ञमूर्तिमिव । किं करिष्यतां मुनीनां ? स्वात्मतत्त्वं—निजात्मस्वरूपं, द्रक्ष्यतां—अवलोकयिष्यताम् ॥ १५३ ॥

शान्तिधारा ।

न्यस्यार्चापीठमग्रेजिनमिह कमलस्यार्हतोऽन्तः शिवादीन्
पत्रेष्वाशासु धर्मप्रवचनप्रतिमाचैत्यगेहान् विदिक्षु ।
अष्टाशीतीष्टिहृष्टत्रिदशपरिवृतानर्हदभ्यर्णदीव्य—
द्‌वृत्ताधिष्ठान् यजेऽहं विधिवदथ रसाल्लालसो मण्डलेष्टौ॥१५४॥

वृत्तिः—अथ—शान्तिधारानन्तरं, अर्चापीठं—पूजापीठं, यजे—पूजयामि। कथं? विधिवत्—शास्त्रोक्तप्रकारेण। कस्मात्? रसात्—धर्मानुरागात्। कथम्भूतोऽहं? मण्डलेष्टौ—मण्डलपूजायां, लालसः—अत्यभिलाषः। किं कृत्वा पूर्वं यजे? अग्रेजिनं—जिनस्याग्रेऽग्रेजिनं अर्चापीठं न्यस्य—आरोप्य। न केवलं अर्चापीठं, तथा इह—अस्मिन्नर्चापीठे लिखितस्य कमलस्य—अष्टदलस्य, अन्तः—मध्ये कर्णिकायां, अर्हतः—सर्वज्ञान् न्यस्य, आशासु—पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरदिशासु अनुक्रमेण शिवादीन्—सिद्धसूर्युपाध्यायसाधून् न्यस्य, केषु? पत्रेषु—दलेषु। तथा विदिक्षु—अन्तरालेषु अग्निकोणादिषु चतुर्षु पत्रेषु अनुक्रमेण धर्मप्रवचनप्रतिमाचैत्यगेहान न्यस्य—धर्मश्च जैनधर्मः प्रवचनं च परमागमः प्रतिमाश्च जिनचैत्यानि चैत्यगेहाश्च जिनचैत्यालयास्तान्। अत्र प्रवचनशब्दे नकारस्य ह्रस्वत्वमेव चिन्तनीयं प्रशब्दा (दि) स्थितनकारस्य क्वचिदीषल्लघुत्वात्, "ईषल्लघुत्वमन्तस्थानां" इत्यभिधानात्। कथंभूतानर्हदादीन्? इष्टेत्यादि—इष्टया पूजया हृष्टा हर्षमिताः प्रीतिं प्राप्ता इष्टिहृष्टास्ते च ते त्रिदशा देवविशेषा इष्टिहृष्टत्रिदशा अष्टाशीतिश्च ते इष्टिहृष्टत्रिदशाश्च अष्टाशीतीष्टिहृष्टत्रिदशास्तैः परिवृताः पंचमण्डलस्थतया वेष्टितास्ते तथोक्तास्तान्। तथाहि—पूर्वमण्डले पंचदश तिथिदेवताः, द्वितीयमण्डले नवग्रहाः, तृतीये अष्टचत्वारिंशद्यक्षयक्ष्यः, चतुर्थे दशदिक्पालाः, पंचमे मण्डले भूतप्रेतकिन्नरश्रीदेवीक्षेत्रपालगन्धर्वदेवाश्चेति षट्। पुनरपि कथंभूतानर्हदादीन्? अर्हदित्यादि—अर्हतां जिनानामभ्यर्णे समीपे दीव्यत् क्रीडत् यद्‌वृत्तं ज्ञानं वृत्तं च तत्राधितिष्ठन्ति यथायोग्यं

न्वाप्य निवसन्तीति ये ते अर्हदभ्यर्णदीव्यदूमखाधिष्ठास्तांस्तथोक्तान् ॥ १५४ ॥

मण्डलार्चनसूचनार्थमर्हत्पुरः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

मण्डलार्चनम् ।

अथानन्दस्तवः—

जय देव ! प्रसिद्धेन स्वनाम्ना गां पुनीहि मे ।
जय शुद्धनय ! स्वान्तं स्वभक्त्या मेऽनुरञ्जय ॥१५५॥

वृत्तिः—हे देव—परमाराध्य ! त्वं जय—सर्वोत्कर्षेण प्रवर्तस्व । प्रसिद्धेन—वृषभस्वाम्यादितया विख्यातेन, स्वनाम्ना—निजाभिधानेन, मे—मम, गां—वाणीं, पुनीहि—पवित्रय । हे शुद्धनय—निश्चयनय ! अथवा शुद्धाः सर्वथैकान्तदोषरहिता नया नैगमाद्यो यस्य स भवति शुद्धनयस्तस्य सम्बोधनं क्रियते हे शुद्धनय ! मे—मम, स्वान्तं-मनः, स्वभक्त्या—आत्मपरमधर्मानुरागेण, अनुरञ्जय—सानन्दं विधेहि ॥१५५॥

जय दिव्याङ्ग ! गात्राणि स्वनत्या मे कृतार्थय ।
जय तेजोनिधे ! स्वस्मिन्नेत्राब्जे मे विनिद्रय ॥१५६॥

वृत्तिः—हे दिव्याङ्ग—उत्तमौदारिकतनो ! त्वं जय ! मे—मम, गात्राणि—अङ्गानि, स्वनत्या—निजनमस्कारेण, कृतार्थय—सफलय । हे तेजोनिधे—कोटिभास्करप्रतापलोपिलोचनप्रियप्रकाशनिधान ! त्वं जय । स्वस्मिन्—त्वयि विषये, मे-मम, नेत्राब्जे-लोचनकमले द्वे, विनिद्रय—विकाशय ॥१५६॥

यद्दर्शनविशुद्धयादिभावनादैवतं विभो ! ।
तपस्तप्तो जगज्जोतिस्तज्ज्योतिस्त्वे तनिष्यति ॥१५७॥

वृत्तिः—हे विभो—त्रैलोक्यनाथ ! यत्—यस्मात्कारणात्, तपः—इच्छानिरोधलक्षणं त्वं तप्तः—तप्तवानसि उपार्जितवानसि । कथम्भूतं

तपः ? दर्शनविशुद्ध्यादिभावनादैवतं—दर्शनविशुद्धिः सम्यक्त्वनिर्मलता आदिर्यासां विनयसम्पन्नतादीनां षोडशानां भावनानां ध्यानविशेषाणां ता दर्शनविशुद्ध्यादिभावनाः दैवतानि अधिदेवता यस्य तद्दर्शनविशुद्ध्यादिभावनादैवतं अलब्धलाभ-लब्धपरिरक्षण-रक्षितविवर्धनहेतुत्वाद्दैवतानीत्युच्यन्ते। अथवा दर्शनविशुद्ध्यादिभावनानां दैवतमधिष्ठातृप्रणिधानविधायित्वात्तथोक्तं। तत्—तस्मात् पूर्वभवोपार्जिततपः-संस्कारावतारिततपोलब्धिबलकारणात्, ते—तव, ज्योतिः—केवलज्ञानलक्षणं तेजः, तनिष्यति—लोकालोकेषु विस्तरिष्यति। कथंभूतं ज्योतिः ? जगज्ज्योतिः—लोकावलोकनलोचनमित्यर्थः ॥१५७॥

या त्वदवज्ञाहतैः पुण्यैस्त्वद्रागद्वारसङ्गतैः ।
त्वयि प्रयुज्यते कोपाल्लक्ष्मीस्तान्येव हन्ति सा ॥१५८॥

वृत्तिः—हे भगवन् ! या—लक्ष्मीः—समवशरणादिविभूतिः कर्मतापन्ना, पुण्यैः—समवशरणादिविभूतिविधायकसुकृतैः कर्तृभूतैः, त्वयि विषये प्रयुज्यते—प्रेर्यते। कथंभूतैः पुण्यैः ? अवज्ञाहतैः उपेक्षातिरस्कृतैः अनादरेण निष्प्रतिपत्तिभिरित्यर्थः। पुनरपि कथंभूतैः पुण्यैः ? तद्रागद्वारसङ्गतैः—तस्मिन् पूर्वोक्ते तपसि रागः प्रीतिस्तद्रागस्तद्राग एव द्वारं मुखं अन्तःप्रवेशहेतुत्वात्, तद्रागद्वारेण सङ्गतानि सम्मिलितानि सम्बद्धानि तद्रागद्वारसङ्गतानि तैस्तथोक्तैः। सा लक्ष्मीः कर्तृभूता तान्येव—प्रयोक्तॄणि पुण्यानि कर्मतापन्नानि, हन्ति—जर्जरयति हिनस्ति च। कस्मात् ? कोपात्—विपाकात् क्रोधाच्च प्रयोक्तृत्वानामविद्यात्वादित्यर्थः ॥१५८॥

सा चेयं च विभूतिस्ते जगतीश ! जगतां दृशः ।
लब्ध्या विशुद्धया तद्वृद्धया स्वस्याहान्त्यशुद्धताम् ॥१५९॥

वृत्तिः—हे जगतामीश—त्रिभुवनानां स्वामिन् ! सा—जगत्प्रसिद्धा निष्क्रमादिकल्याणसम्बन्धिनी भविष्यन्तीति, ते—तव, दृशः सम्यक्त्वस्य विभूतिः, इयं च—प्रत्यक्षीभूता वर्तमाना जन्माभिषेकविभूतिः, चकाराद्-

तीता गर्भावतारप्रभृतिका दशो विभूतिः, स्वस्य—आत्मनः, अन्वय-शुद्धतां—सम्यक्त्वाविनाभाविसुकृतप्रकारसंजातत्वं, आह—कथयति । कया कृत्वा अन्वयशुद्धतामाह ? लब्ध्या—विभूतेः (ति) प्राप्त्या तथा विशुद्ध्या—निर्मलत्वेन तथा तद्वृद्ध्या—विभूतिविशुद्धिद्वयवर्द्धनेन । कथंभूता विभूतिः ? कापि—अपूर्वा अनन्यसंभविनी । उक्तं च सम्यक्त्वोत्पत्तेः कारणं लक्षणं—

धर्मश्रुतजातिस्मृतिसुरर्द्धिजिनमहिमदर्शनान्मरुतां ।
आद्यं प्रथमसदृक्षो यं विना सुरश्रयां समानतादिभयाम् ।
ग्रैवेयिकियां पूर्वे देशजिनार्चिद्दणे नरतिरश्चां
सहग्भिभवैस्त्रिषु प्राक् श्वभ्रे एन्येषु स द्वितीयोऽसौ ॥ १ ॥

अस्यायमर्थः—नराणां तिरश्चां च सम्यक्त्वस्य चत्वारो हेतवः, धर्मश्रुति—जातिस्मृति-जिनमहिमदर्शन-रोगाभिभवाश्चेति । त्रिषु नरकेषु धर्मावंशाशिलासंज्ञकेषु जातिस्मृतिः रोगाभिभव [वो धर्मश्रुति] श्चेति । अन्यत्सुगमम् ॥ १५९ ॥

भुञ्जानोऽभ्युदयं चार्हन् जनैर्भोगीव लक्ष्यते ।
बुद्धैर्योगीव तत्त्वं तु जानाति त्वादृगेव तु ॥१६०॥

वृत्तिः—हे अर्हन्—इन्द्रादीनां प्रशस्य ! त्वमभ्युदयं—कामभोगादिकं भुञ्जानोऽपि चकारोह भु (?) भुञ्जानोऽपि जनैः—लोकैः भोगीव—भोगवानिव, लक्ष्यते—ज्ञायसे । बुद्धैः—विद्वद्भिस्त्वं योगीव—सर्वसावद्ययोगविरत व्रतसंयमीव लक्ष्यसे । तथा चोक्तं—

धात्रीबालासतीनाथपद्मिनीदलवारिवत् ।
दग्धरज्जुवदाभासं भुञ्जन् राज्यं न पापभाक् ॥ १ ॥

ननु भगवन्तं केचिद्भोगिनं जानन्ति केचिच्च योगिनं जानन्ति अस्त्येव कीदृशः इत्याह, तत्त्वं तु जानाति त्वादृगेव ते—हे भगवन् ! ते तव तत्त्वं याथात्म्यं त्वादृगेव त्वं प्रत्यक्षं जानासि, त्वत्सदृशः श्रुतज्ञानी तु

अनुमानादेव जानाति, अस्मादृशास्तु कथंचिदपि न जानातीत्यर्थः। उक्तं चाभ्युदयलक्षणं—

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१॥

निर्मलोन्मुद्रितानन्तशक्तिचेतयितृत्वतः।
ज्ञानं निःसीम शर्मात्मन् विन्दन् प्रतप तत्पदे ॥१६१॥

वृत्तिः—हे शर्मात्मन्—अनन्तसौख्यस्वभाव! त्वं तत्पदे—समवशरणसभायां मोक्षस्थाने वा, प्रतप—प्रकृष्टैश्वर्यवान्भव। उक्तं च—

आनन्दो ज्ञानमैश्वर्यं वीर्यं परमसूक्ष्मता।
एतदात्यन्तिकं यत्र स मोक्षः परिकीर्तितः ॥१॥

किं कुर्वन् प्रतप? ज्ञानं विन्दन्—अनन्तकेवलज्ञानं प्राप्नुवन्। कथंभूतं ज्ञानं? निःसीम—सर्वद्रव्यपर्यायपरिच्छेदकत्वादमर्यादं। कुतः? निर्मलेत्यादि—अनन्तशक्तिरनेकधीर्यं नयोपलक्षितश्चेतयिता, निर्मला द्रव्य-कर्म-भावकर्म-नोकर्ममलकलङ्करहितः उन्मुद्रित उद्घाटितोऽनन्तशक्तिश्चेतयिता येन तन्निर्मलोन्मुद्रितानन्तशक्तिचेतयितृ तस्य भावो निर्मलोन्मुद्रितानन्तशक्तिचेतयितृत्वं तस्मात्तः ॥१६१॥

नमस्तेऽचिन्त्यचरित! नमस्ते त्रिजगद्गुरो!।
नमस्ते त्रिजगन्नाथ! नमस्तेऽत्यन्तनिस्पृह! ॥१६२॥

वृत्तिः—हे अचिन्त्यचरित—असंभाव्ययथाख्यातचारित्र! ते—तुभ्यं नमः—नमस्कारोऽस्तु। हे त्रिजगद्गुरो—त्रिभुवनयाथात्म्यतत्त्वोपदेशक! ते—तुभ्यं नमः—प्रणामो भवतु। हे त्रिजगन्नाथ—त्रैलोक्यनाथ! ते—तुभ्यं नमः पादपतनमस्तु। हे अत्यन्तनिस्पृह—उत्कर्षेण स्वपरविषयातीत! ते—तुभ्यं नमः ॥१६२॥

नमस्ते केवलज्ञान! नमस्ते केवलेक्षण!
नमस्ते परमानन्द! नमस्तेऽनन्तविक्रम! ॥१६३॥

वृत्तिः—हे केवलज्ञान —अनन्तज्ञान ! ते—तुभ्यं नमः । हे केवलेक्षण—अनन्तदर्शन ! ते—तुभ्यं नमः । हे परमानन्द—अनन्तसौख्य ! ते तुभ्यं नमः । हे अनन्तविक्रम—अनन्तवीर्य ते तुभ्यं ! नमः ॥१६३॥

एवमानन्दतः स्तुत्वा शक्रः पूर्ववदादरात् ।
जन्माभिषेककल्याणक्रियां कृत्वा स्फुटं नटेत् ॥१६४॥

वृत्तिः—

पंचाङ्गप्रणामं कृत्वा चैत्यपंचगुरुसमाधिभक्तिभिराराध्य यथाबलं तमनुध्यायेत् । सामायिकं विधाय जिनध्यानं कुर्यादित्यर्थः ।

प्रागाहूता देवता यज्ञभागैः
प्रीता भर्तुः पादयोरर्घदानैः ।
क्रीतां शेषां मस्तकैरुद्वहन्त्यः
प्रत्यागन्तुं यान्त्वशेषा यथास्वम् ॥१६५॥

वृत्तिः—प्राक्—अभिषेकविधानात्पूर्वं, या देवताः—देवाः, आहूताः—आकारिताः, ता अशेषाः—समस्ता अपि, यथास्वं—निजनिजस्थानमनतिक्रम्य, यान्तु—गच्छन्तु । किमर्थं यान्तु अत्रैव किमिति न तिष्ठन्तु ? प्रत्यागन्तुं—पुनरायातुं भगवतः पुनः पुनर्यात्रादिविधाने बहुपुण्यकारणात् । किं कुर्वन्त्यो यान्तु ? भर्तुः पादयोः—त्रैलोक्यनाथचरणयोः सम्बन्धिनी शेषां—निर्माल्यपुष्पं, मस्तकैः—उत्तमाङ्गैः, उद्वहन्त्यः—धारयन्त्यः । कथंभूतां शेषां ? अर्घदानैः क्रीतां—अर्घान् दत्वा गृहीतां । कथंभूताः देवताः ? यज्ञभागैः—भगवत्पूजांशैः, प्रीताः—तृप्ताः प्रीतिं प्राप्ताः ॥१६५॥

१—अस्य वृत्तिरस्मिन् पुस्तके नोपलब्धा ।

चारुकाश्मीरानुरञ्जितपुष्पाक्षतवर्षेण सर्वामरविसर्जनम् ।

वृत्तिः—चारु मनोहरं यत्काश्मीरं जात्यकुंकुमं तेनानुरंजिता मूच्छिता ये पुष्पाक्षतास्तेषां वर्षेण निक्षेपेण सर्वेषाममराणां चेत्रपालादि-कुमारदिक्पालादिदेवानां विसर्जनमुत्कूलनमिति ।

इति पूजाविधानम् ।

अनेन विधिना यथाविभवमर्हतः स्नपनं
विधाय महमन्वहं सृजति यः शिवाशाधरः ।
चक्रिहरितीर्थकृत्पदकृताभिषेकः सुरैः
समर्चितपदः सदा सुखसुधाम्बुधौ मज्जति ॥१६६॥

वृत्तिः—स भव्यवरपुण्डरीकः पुमान्, सदा सुखसुधाम्बुधौ मोक्षा-मृतसमुद्रे, मज्जति—ब्रुडति तन्मयो भवतीत्यर्थः । स कथंभूतः ? चक्रीत्यादि—चक्री षट्खण्डमण्डितमेदिनीपतिः हरिरिन्द्रः तीर्थकृत्सर्वज्ञ-नाथस्तेषां पदेषु स्थानेषु सन्निवेशेषु कृताभिषेको विहितस्नपनः । पुनः कथंभूतः ? सुरैः—देवैः, समर्चितपदः—सम्पूजितचरणः । स कः ? यः-सद्गृहस्थः, अनेन—पूर्वोक्तप्रकारेण, विधिना—अनुक्रमेण, अर्हतः—सर्वज्ञनाथस्य, महं—पूजां, सृजति—करोति । किं कृत्वा पूर्वं ? स्नपनं-महाभिषेकं, विधाय—कृत्वा, कथं ? यथाविभवमिति । यः कथंभूतः ? शिवाशाधरः—शिवं परमकल्याणं निर्वाणमित्यर्थः, तस्याशां वाञ्छां धरतीति शिवाशाधरः । अनेन मिषेण कविना स्वनामापि सूचितं भवति ॥ १६६ ॥

पूजाफलम्—समाप्तमित्यर्थः ।

एवं समुदायाङ्क…………।

इत्यर्हद्दैवमहाभिषेकविधिः समाप्तः ।

श्रीविद्यानन्दिगुरोर्बुद्धिगुरोः पादपंकजभ्रमरस्तरः ।

श्रीश्रुतसागर इति देशव्रतितिलकष्टीकते स्मेदम् ॥ १ ॥

इति ब्रह्मश्रीश्रुतसागरकृता महाभिषेकटीका समाप्ता ।

श्रीरस्तु लेखकपाठकयोः शुभं भवतु,

श्री संवत् १५८२ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ रवौ श्रीआदिजिनचैत्यालये श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्री-देवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीविद्यानन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्री-मल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तेषां शिष्यवरब्रह्म-श्रीज्ञानसागरपठनार्थं, आर्या श्रीविमलश्री, चेली भट्टारकलक्ष्मीचन्द्र-दीक्षिता विनयश्रिया स्वयं लिखित्वा प्रदत्तं महाभिषेकभाष्यं ॥ छ ॥

शुभं भवतु, कल्याणं भूयात् , श्रीरस्तु ।

समाप्त

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः ।

अभिषेक-क्रमः ।

(७)

श्रीमन्मन्दरमस्तके शुचिजलैः धौते सुदर्भाक्षते
पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितं त्वत्पादपुष्पस्रजा ।
इन्द्रोऽहं निजभूषणार्थममलं यज्ञोपवीतं दधे
मुद्राकंकणशेखरानपि तथा जन्माभिषेकोत्सवे ॥
ॐ ह्रीं प्रस्थापनाय पुष्पाञ्जलिः ।

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः ॥
मंगलं भगवानर्हन् मंगलं भगवान् जिनः ।
मंगलं प्रथमाचार्यो मंगलं वृषभेश्वरः ॥
मंगलं प्रथमं लोके स्वोत्तमं शरणं जिनम् ।
नत्वायमर्हतां पूजाक्रमः स्याद्विधिपूर्वकम् ॥
यज्ज्ञानं विमलं यस्य विशदं विश्वगोचरम् ।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चितांह्रये ॥

श्रीमद्भिर्जिनराजजन्मसमये स्नानक्रमप्रक्रियां
मेरोर्मूर्ध्नि पयः पयोनिधिपयःपूर्णैः सुवर्णात्मकैः ।

कामं व्योममितश्रिया घटवतैः शक्रादयश्चक्रिरे
ते मर्त्यार्यजनानुरागजननीजातोत्सवं प्रस्तुवे ॥

ॐ ह्रीं श्रीं भूः स्वाहा प्रस्थापनाय पुष्पाञ्जलिः।

श्रीमज्जिनेन्द्रकथिताय सुमंगलाय
लोकोत्तमाय शरणाय विनेयजन्तोः।
धर्माय कायवाङ्मनस्त्रयशुद्धितोऽहं
स्वर्गापवर्गफलदाय नमस्करोमि ॥

पुण्यबीजोस्थितक्षेत्रं स्नानक्षेत्रं जगद्गुरोः।
शोधये शातकुम्भोरुकुम्भसंभृतवारिभिः ॥

ॐ ह्रीं जलेन भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा।

भूमिशोधनम्।

दुरन्तमोहसन्तानकान्तारदहनक्षमम्।
दर्भैः प्रज्वालयाम्यग्निं ज्वालापल्लवितांबरम् ॥

ॐ ह्रीं अग्निं प्रज्वालयामि स्वाहा।

अग्निप्रज्वालनम्।

षष्टे षष्टिसहस्रस्याप्यऽहीनां मोदहेतवे।
सिञ्चामि सुधया भूमिं भव्यभानोर्महामहे ॥

ॐ ह्रीं भूः षष्टिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्योऽमृताञ्जलिं प्रसिञ्चामि स्वाहा।

नागसन्तर्पणम्।

यमेन्द्रहव्यवाहानां धर्मनैर्ऋत्युदन्वताम् ।
मरुद्यक्षेत्रमौलीनां दिक्षु दर्भान् क्षिपाम्यहम् ॥
ॐ ह्रीं दर्पमथनाय नमः स्वाहा ।

ब्रह्मादिदशदिक्षु दर्भाः ।

तोयैर्गन्धाक्षतैः पुष्पैः साज्यायैश्च यजाम्यहम् ।
यागभूमिं जिनेन्द्रस्य दीपधूपफलैरिमाम् ॥
ॐ ह्रीं भूर्भूमिदेवतेदं जलादिकमर्चनं, गृह्ण गृह्ण नमः स्वाहा ।

मदीयपरिणामसमानविमलतमसलिलस्नानपवित्रीभूतसर्वांगयष्टिः सर्वांगैणार्द्रहरिचन्दनसौगन्धिगन्धदिग्धिविराद्दंसांसधवलधौतदुकूलान्तरीयोत्तरीयः ।

ॐ ह्रीं श्वेतवर्णे सर्वोपद्रवहारिणि सर्वजनमनोरञ्जनि परिधानोत्तरीयं धारणं हं हं झं झं सं सं तं तं पं पं परिधानोत्तरीयं धारयामि स्वाहा ।

वस्त्राभरणम् ।

अतिनिर्मलमुक्ताफलललितं यज्ञोपवीतमतिपूतम् ।
रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुषापहरणमाभरणम् ॥
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा ।

यज्ञोपवीतधारणम् ।

स्नानानुलिप्तसर्वाङ्गो धृतधौताम्बरः शुचिः ।
दधे यज्ञोपवीतादीन् मुद्राकंकणशेखरान् ॥
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा ।

शेखरमंत्रः ।

धृत्वा शेखरपट्टहारपदकं ग्रैवेयकालम्बकं
केयूराङ्गदमध्यबन्धुरकटीसूत्रं च मुद्रान्वितम् ।
चञ्चत्कुण्डलकर्णपूरममलं पाणिद्वये कङ्कणं
मञ्जीरं कटकं पदे जिनपदे श्रीगन्धमुद्राङ्कितम् ॥
षोडशाभरणम् ।

श्वेतसूत्रावृतान् पूर्णकुम्भान् सदकभूषितान् ।
संस्थाप्य कोणकोष्ठेषु पुष्पाणि प्रक्षिपाम्यहम् ॥
ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं[१] करोमि स्वाहा[२]
कलशस्थापनम् ।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्ममहापद्म-तिगिञ्छकेशरिपुण्डरीकमहापुंडरीक—गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्ध-रिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णकूलारूप्यकूलारक्तारक्तोदा-क्षीराम्भोनिधिशुद्धजलं सुवर्णघटं प्रक्षालितपरिपूरितनवरत्नगन्ध-पुष्पाक्षताभ्यर्चितमामोदकं पवित्रं कुरु कुरु झ्रौं झ्रौं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं अ सि आ उ सा नमः स्वाहा ।
कलशशुद्धिः ।

अभ्यर्च्य कलशांस्तोयप्रवाहैश्चन्दनैरहम् ।
अक्षतैः कुसुमैरन्नैर्दीपधूपफलैरपि ॥
ॐ ह्रीं नेत्राय कलशार्चनं करोमि स्वाहा ।
कलशार्चनम् ।

१—'पतेः' पाठान्तरं । २—'कलशं स्थापयामि स्वाहा' पाठान्तरम् ।

पाण्डुकाख्यां शिलां मत्वा पीठमेतन्महीतले ।
स्थापयामि जिनेन्द्रस्य मज्जनाय महत्तरम् ॥

ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्मं ठः ठः श्रीपीठस्थापनं करोमि स्वाहा ।

श्रीपीठस्थापनम् ।

पादपीठे कृते स्वर्गपादमौले जिनेशिनः ।
शैलेन्द्रस्नानपीठस्य पीठं प्रक्षालयाम्यहम् ॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन पीठप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ।

पीठप्रक्षालनम् ।

क्षिपामि हरितान् दर्भान् पीठे पूतान् मनोहरान् ।
विधूताशेषसन्तापान् दीप्तकाञ्चननिर्मितान् ॥

ॐ ह्रीं दर्पमथनाय नमः स्वाहा ।

पीठदर्भाः ।

प्रक्षाल्य पीठिकां प्रार्चे तोयैर्गन्धैः सुतन्दुलैः ।
प्रसूनैश्च चरुभिर्दीपैर्धूपैर्नानाफलैरपि ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा ।

पीठार्चनम् ।

श्रीवर्णं विदधे शुभ्रैः सदकैः शुचिभिः फलैः ।
देवदेवस्य पीठेऽस्मिन् सर्वलक्षणसंयुते ॥

ॐ ह्रीं श्रीकारलेखनं करोमि स्वाहा ।

श्रीलेखनम् ।

जलगन्धाक्षतकुसुमैश्चरुप्रदीपधूपफलनिवहैः।
जितकर्मरिपुं जिनपतिमर्चयामि प्रबलया भक्त्या॥

ॐ ह्रीं श्री यंत्रार्चनं करोमि स्वाहा।

यंत्रार्चनम्।

जिनराजप्रतिबिम्बं सकलजगद्भव्यपुण्यपुञ्जावलम्बम्।
भक्त्या स्पर्शयामि परया निर्भूषणमखिललोकभूषणममलम्॥

ॐ ह्रीं धात्रे वषट् प्रतिमास्पर्शनं करोमि स्वाहा।

प्रतिमास्पर्शनम्।

ॐ द्वीपे नन्दीश्वराख्ये स्वयममृतभुजोऽकृत्रिमां स्नापयेयु—
र्भावे भावार्हतो वा भवभयभिदया भाक्तिकाश्चैत्यगेहात्।
आनीयास्मिन् स्वकीयस्यतिविमलतमे कृत्रिमां स्नानपीठे
सद्भावैः स्थापनार्हत्प्रतिकृतिमधुना यक्षयक्षीसमेताम्॥
प्रणमदखिलामरेश्वरमणिमुकुटतटांशुखचितचरणाब्जम्।
श्रीकामं श्रीनाथं श्रीवर्णे स्थापयामि जिनम्॥

ॐ ह्रीं श्री क्लीं ऐं अर्हं जगतां कुर्वंतु श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनं करोमि स्वाहा।

श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनम्।

श्रीपादपद्मयुगलं सलिलैर्जिनस्य
प्रक्षाल्य तीर्थजलपूततमोत्तमांगम्।
आह्वानमम्बुकुसुमाक्षतचन्दनाद्यैः
संस्थापनं च विदधेऽत्र च सन्निधानम्॥

१—मर्चामि इति पाठान्तरम्। २—स्पृशामि इति पाठान्तरम्।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन श्रीपादप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ।

श्रीपाद-प्रक्षालनम् ।

करोमि परमां मुद्रां पंचानां परमेष्ठिनाम् ।
श्रीनिधेर्भव्यनाथस्य सन्निधौ त्रिजगद्गुरोः ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उ सा नमः पंचगुरुमुद्रावतारणं करोमि स्वाहा ।

पंचगुरुमुद्रावतारणम् ।

ॐ उसहाय दिव्वदेहाय सज्जोजादाय महापण्णाय अणंतचउट्ठयाय परमसुहाय पइट्ठियाय णिम्मलाय सयंभुवे अजरामरपदपत्ताय चउम्मुहाय परमेट्ठिणे अरहते तिलोयणाहाय तिलोयपुज्जाय अट्ठदिव्वदेवाय देवपरिपुज्जाय परमपदाय ममत्तहे सण्णिहाय स्वाहा ।

अनन्तज्ञानदृग्वीर्यसुखरूपजगत्पतेः ।
पाद्यं समर्चयाम्यद्भिर्निर्मलैः पादपङ्कजे ॥

ॐ ह्रीं अर्हन्त इदं पाद्यं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं नमोऽर्हद्भ्यः स्वाहा ।

कनत्कनकभृङ्गारनालाद्गलितवारिभिः ।
जगत्त्रितयनाथस्य करोम्याचमनक्रियाम् ॥

ॐ ह्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः स्वाहा ।

अर्घ्यपाद्याचमनक्रियाः ।

भस्मान्नमृद्गोमयपिण्डदीपैरद्भिः फलैर्मिश्रितगन्धपुष्पैः ।
त्वां वर्धमानैः सह पात्रसंस्थैर्दर्भाग्निकीलैरवतारयेऽर्हन् ॥

ॐ ह्रीं दशविधपिण्डावतरणं करोमि स्वाहा ।

दशविधपिण्डावतारणम् ।

नीराजनविधिद्रव्यैर्वर्धमानैः फलैरपि ।
विदधामि जिनेन्द्रावतारं पापोपशान्तये ॥

ॐ ह्रीं समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि स्वाहा ।

नीराजनावतारणम् ।

करोमि भक्त्या कुसुमाक्षताद्यैः
सुसंभृतैः पाणिपवित्रपात्रैः ।
जिनेश्वराणामिह पादपीठे
प्रकाशमाह्वाननपूर्वमादौ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अत्र एहि एहि संवौषट् स्वाहा ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् स्वाहा ।

आह्वान-स्थापन-सन्निधीकरणम् ।

ॐ ह्रीं परमेष्ठिने नमः जलम् ।

ॐ ह्रीं परमात्मकेभ्यो गन्धम् ।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनेभ्योऽक्षतम् ।

ॐ ह्रीं सर्वनृसुरासुरपूजितेभ्यः पुष्पम् ।

ॐ ह्रीं अनन्तानन्तसुखसंतृप्तेभ्यश्चरुम् ।

ॐ ह्रीं अनन्तानन्तदर्शनेभ्यो दीपम् ।

ॐ ह्रीं अनन्तानन्तवीर्येभ्यो धूपम् ।

ॐ ह्रीं अनन्तानन्तसौख्येभ्यः फलम् ।

सामोदैः स्वच्छतोयैरुपहिततुहिनैश्चन्दनैः स्वर्गलक्ष्मी-
लीलार्घ्यैरक्षतौघैर्मिलदलिकुसुमैर्दुर्गमैर्नित्यहृद्यैः ।
नैवेद्यैर्नव्यजाम्बूनदमददमकैर्दीपकैः काम्यधूम-
स्तूपैर्धूपैर्मनोज्ञैर्गृहसुरभिफलैः पूजयेऽत्रार्हदीशान् ॥

ॐ ह्रीं अर्हं नमः परमब्रह्मणे विनष्टाष्टकर्मणेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पुष्पाञ्जलिः ।

अथ दशदिक्पालविधानम्—

तत्तो बहिश्चापि सुरेन्द्रमग्नि-
यमं तथा नैर्ऋतिमम्बुधिं च ।
मरुत्कुबेरौ सशेखरं च
दिशाधिनाथान् क्रमतो यजामि ॥

दिक्पालपूजाविधानाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

भास्वन्तमैरावणवारणेन्द्रमारूढमिन्द्राण्यधिराजमिन्द्रम् ।
हस्तैर्विराजत्कुलकोटिशक्ति ? सम्पूजये प्राग्जिनराजयज्ञे ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं सुवर्णवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे इन्द्रदेव ! आगच्छागच्छ आह्वानं इन्द्राय स्वाहा । इन्द्रपरिजनाय स्वाहा । इन्द्रानुचराय स्वाहा । इन्द्रमहत्तराय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । अनिलाय स्वाहा । वरुणाय स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । इन्द्रदेवाय स्वगणपरिवारपरिवृताय

इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थं क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

दैदीप्यमानानलकीलज्वाला
स्फुटं स्फुलिङ्गात्मकशक्तिहस्तम्।
प्रशस्तवस्तारुहमग्निदेवं
स्वाहासमेतं परिपूजयामि ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं रक्तवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्न सपरिवार हे अग्निदेव! आगच्छागच्छ आह्वाननं। ॐ अग्नये स्वाहा। अग्निपरिजनाय स्वाहा। अग्न्यनुचराय स्वाहा। अग्निमहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा; ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा। अग्निदेवाय स्वगणपरिवारपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थे क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥ १ ॥

प्रचण्डचण्डान्वितबाहुदण्ड—
सुदण्डकोदण्डभटैः परीतम्।
छायाकटाक्षद्युतिभासमानं
लीलायवाहं यममर्चयामि ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं कृष्णवर्णं सर्वलक्षणसम्पूर्णं स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे यमदेव! आगच्छागच्छ यमाय स्वाहा। यमपरिजनाय

स्वाहा। यमानुचराय स्वाहा। यममहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा। यमदेवाय इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थं क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

ऋक्षाक्षतं व्यञ्जितवृक्षदेहं
ऋक्षाधिरूढं दृढमुद्गरास्त्रम्।
भास्वत्किरीटोज्ज्वलरत्नकान्ति
नैर्ऋत्यधीशं निरुतं यजामि ॥

ॐ क्रां क्रौं ह्रीं श्यामवर्णं सर्वलक्षणसम्पूर्णं स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे नैर्ऋत्यदेव! आगच्छागच्छ नैर्ऋत्याय स्वाहा। नैर्ऋत्यपरिजनाय स्वाहा। नैर्ऋत्यानुचराय स्वाहा। नैर्ऋत्यमहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा, नैर्ऋत्यदेवाय स्वगणपरिवारपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थं क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

भीमाहिपाशं मकराधिरूढ
मुक्तामयाकल्पविराजमानम्।
मनोरमस्त्रापरिवेष्ट्यमानं
जिनाध्वरेऽस्मिन् वरुणं समर्चे ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं सुवर्णवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे वरुणदेव! आगच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा। वरुणपरिजनाय स्वाहा। वरुणानुचराय स्वाहा। वरुणमहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। वरुणदेवाय स्वगणपरिवारपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं जलं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थं क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

महामहीजायुधशोभिहस्तं
तुरंगमारूढमुदारशक्तिम्।
विलासभूषान्वितवायुवेगं
सहासमेतं पवनं यजामि ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं सुवर्णवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे पवनदेव! आगच्छागच्छ पवनाय स्वाहा। पवनपरिजनाय स्वाहा। पवनानुचराय स्वाहा। पवनमहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। पवनदेवाय स्वगणपरिवारपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थं क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

अनेकरत्नोज्ज्वलपुष्पकाख्यं
विमानमारुह्य विभासमानम् ।
धनादिदेवीसहितं वहन्तं
करेण शक्तिं धनदं यजामि ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं सुवर्णवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे धनद ! आगच्छागच्छ धनदाय स्वाहा । धनदपरिजनाय स्वाहा । धनदानुचराय स्वाहा । धनदमहत्तराय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । अनिलाय स्वाहा । वरुणाय स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । धनददेवाय स्वगणपरिवारपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

यस्यार्थं क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा ।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

———

जटाकिरीटं वृषभाधिरूढं
त्रिशूलहस्तं धवलोज्ज्वलाङ्गम् ।
ललाटनेत्रं गिरिराजपुत्री-
समेतमीशानमिहार्चयामि ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं धवलवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे ईशानदेव ! आगच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा । ईशानपरिजनाय स्वाहा । ईशानानुचराय स्वाहा । ईशानमहत्तराय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । अनिलाय स्वाहा । वरुणाय स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा; ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । ईशानदेवाय स्वगणपरिवारपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गन्धं अक्षतं

पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थं क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

स्वकीयवेगार्जितवायुवेग-
मारूढमुत्तुङ्गकठोरकूर्मम्।
पद्मावतीशं धरणेन्द्रमत्र
यजामि धात्रीं धरणप्रकीर्तिम् ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं धवलवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे धरणेन्द्र! आगच्छागच्छ धरणेन्द्राय स्वाहा। धरणेन्द्रपरिजनाय स्वाहा। धरणेन्द्रानुचराय स्वाहा। धरणेन्द्रमहत्तराय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा; ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा। धरणेन्द्रदेवाय स्वगणपरिवारपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

यस्यार्थं क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

विदारितास्यं विकरालमूर्तिं
चलच्छटाटोपमुदारसौर्यम्।
सिंहं समारूढमदभ्रकान्तिं
सोमं समर्चाम्यथ रोहणीशं ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं धवलवर्णं सर्वलक्षणसम्पूर्णं स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे सोम ! आगच्छागच्छ सोमाय स्वाहा । सोमपरिजनाय स्वाहा । सोमानुचराय स्वाहा । सोममहत्तराय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । अनिलाय स्वाहा । वरुणाय स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा; ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । सोमदेवाय स्वगणपरिवारपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

यस्यार्थं क्रियते पूजा तस्य शान्तिर्भवेत्सदा ।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥१॥

एते महायज्ञविधानविघ्ना—
न्निवारणार्थं निहिता दिशानुगाः ।
दिग्पालकाः स्वस्वपरिच्छताख्याः
कुर्वन्तु शान्तिं जिनभाक्तिकानाम् ॥

ॐ आं क्रों ह्रीं इन्द्रादिदशदिक्पालकेभ्यः पूर्णार्घ्यं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं स्वाहा । पूर्णार्घ्यम् ।

इति दशदिक्पाल.........सम्पूर्णम् ।

अथ क्षेत्रपालार्चना विधिः—

क्षेत्रपालाय यज्ञेऽस्मिन्नत्र क्षेत्राधिरक्षिणे ।
बलिं ददामि यस्याप्त्यै वेद्यां विघ्नविनाशनम् ॥

ॐ आं क्रों अत्रस्थ विजयभद्र–वीरभद्र–माणिभद्र–भैरव–अपराजितपंचक्षेत्रपाला आगच्छ [त] आगच्छ [त] संवौषट्, आह्वानं स्थापनं सन्निधिकरणं ।

सघेनापि सुगन्धेन स्वच्छेन बहलेन च ।
स्नपनं क्षेत्रपालस्य तैलेन प्रकरोम्यहम् ॥

गुडार्चनम् ।

भोः क्षेत्रपाल ! जिनपप्रतिमांकभाल
दंष्ट्राकराल जिनशासनरक्षपाल ।
तैलाहिजन्मगुडचन्दनपुष्पधूपै—
र्भोगं प्रतीच्छ जगदीश्वरयज्ञकाले ॥
विमलसलिलधारामोदगन्धाक्षतौघैः
प्रसवकुलनिवेद्यैर्दीपधूपैः फलौघैः ।
पटहपटतरोघैः ! वस्त्रसद्भूषणौघैः
जिनपतिपदभक्त्या ब्रह्मणं प्रार्चयामि ॥

ॐ आं क्रों अत्रस्थ विजयभद्र-वीरभद्र-माणिभद्र-भैरवापराजित-पंचक्षेत्रपालाय अर्घ्यं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

इति क्षेत्रपालविधानसम्पूर्णम् ।

अथ कलशस्थापनं (शोद्धरणम्)—
तूर्यगीतस्तुतिध्यानव्रातैः सद्धलिरोदसी ।
मया जिनाभिषेकाय पूर्णकुम्भोऽयमुद्धृतः ॥
ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशोद्धारणं करोमि स्वाहा ।

कलशाभिषेकः (शोद्धारणं) ।

मतैरिव जिनेन्द्रस्य वारिभिस्तापहारिभिः ।
निर्मलं स्नापयामीशं विशुद्धं मद्विशुद्धये ॥
श्रीमद्भिः सुरसैर्निसर्गविमलैः पुण्याशयाभ्याहृतैः
शीतैश्चारुघटाश्रितैरवितथैः सन्तापविच्छेदकैः ।

तृष्णोद्रेकहरै रजःप्रशमनैः प्राणोपमैः प्राणिनां
तोयैर्जैनवचोमृतातिशयिभिः संस्नापयामो जिनम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वंवं मंमं हंहं संसं तंतं पंपं झंझं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रीं द्रावय द्रावय ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

जलस्नपनम् ।

शीतैर्जलैर्मलयजैर्बहलैरखण्डैः
शाल्यक्षतैः सुखकरैः कुसुमैर्हविर्भिः ।
दीपप्रदीपपटलैः रुचिरैर्विचित्रैः—
र्धूपैः फलैरपि यजे जिनमर्चयामि ॥

अष्टविधार्चनम् ।

सुस्निग्धैर्नवनालिकेरफलजैराम्रादिजातैस्तथा
पुंड्रेक्ष्वादिसमुद्भवैश्च गुरुभिः पापापहैरञ्जसा ।
पीयूषद्रवसन्निभैर्वररसैः सज्ज्ञानसंप्राप्तये
सुस्वादैरमलैरलं जिनविभुं भक्त्यानघं स्नापये ॥

ॐ ह्रीं नालिकेराम्रकदलीद्राक्षादिरसेन जिनस्नपनं करोमि स्वाहा ।

नालिकेरजलैः स्वच्छैः शीतैः पूतैर्मनोहरैः ।
स्नानक्रियां कृतार्थस्य विदधे विश्वदर्शिनः ॥

ॐ ह्रीं नालिकेररसेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

नालिकेररसस्नपनम् ।

घनसुगन्धसदक्षतपुष्पकै—
र्मनसिजातसुहव्यप्रदीपकैः ।

अनुपमागरुधूपसुसत्फलै—
जिनपतेः पदपद्मयुगं यजे ॥
अष्टविधार्चनम् ।

सपर्वैः कनकच्छायैः सामोदैर्मोदकारिभिः ।
सहकाररसैः स्नानं कुर्मः शर्मैकसद्मनः ॥
ॐ ह्रीं पवित्रतरसहकाररसेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।
आम्ररसस्नपनम् ।

उदक[1]चन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥
अष्टविधार्चनम् ।

भुक्त्यङ्गग्लानिमर्मविकीर्यमाणैः पिष्टार्थकर्पूररजोविलासैः ।
माधुर्यधुर्यैर्वरशर्करौघैर्भक्त्या जिनस्य स्नपनं करोमि ॥
ॐ ह्रीं पवित्रतरशर्करौघेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।
शर्करास्नपनम् ।

अलेन गन्धेन सदक्षतेन पुष्पेण शाल्यन्नचतुष्करेण ।
दीपेन धूपेन फलेन भक्त्या सुरासुरार्च्यं जिनमर्चयामि ॥
अर्घम् ।

देवानीकैरनेकैः स्तुतिशतमुखरैर्वीक्षिता यातिहृष्टैः
शक्रेणोच्चैः प्रमुक्ता जिनचरणयुगे चारुचामीकराभा ।

---

१ उदकचन्दनतन्दुल० पठनीयं अर्घ इति पुस्तके पाठः ।

धाराम्भोजक्षितीक्षुप्रचुरवररसश्यामला वो विभूत्यै
भूयात्कल्याणकाले सकलकलिमलक्षालनेऽतीवदक्षा ॥
प्राणिनां प्रीणनं कर्तुं दक्षैरिक्षुरसैर्मुदा ।
सौवर्णकलशैः पूर्णैः स्नापयेहं निरञ्जनम् ॥
ॐ ह्रीं पवित्रतरेक्षुरसेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

इक्षुरसस्नपनम् ।

शीतोदकैर्मञ्जुलगन्धलेपैः सतन्दुलैः पुष्पवरैश्च हव्यैः ।
दीपैश्च धूपै रुचिरैः फलौघैरर्चामि भक्त्या जिननाथमेनम् ॥

अर्घम् ।

ॐ दंडीभूततडिद्गुणप्रगुणया हेमद्रवस्निग्धया
चञ्चच्चम्पकमालिकारुचिरया गोरोचनापिङ्गया ।
हेमाद्रिस्थलसूक्ष्मरेणुनिलसद्धातूलिकालीलया
द्राघीयोघृतधारया जिनपतेः स्नानं करोम्यादरात् ॥
कनत्कनकसञ्जातमालिकारुचिरत्विषा ।
प्राज्येनाज्येन निर्वाणराज्यार्थं स्नापयाम्यहम् ॥
ॐ ह्रीं पवित्रतरघृतेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

घृतस्नपनम् ।

अर्चामि सलिलमलयजतन्दुलपुष्पान्नदीपधूपफलनिवहैः ।
नमदमरमौलिमालाललितपदकमलयुगलमर्हन्तम् ॥

अर्घम् ।

ॐ माला तीर्थकृतः स्वयंवरविधौ क्षिप्तापवर्गश्रिया
तस्येयं सुभगस्य हारलतिका प्रेम्णा तया प्रेषिता।
वर्मान्यस्य समर्प्यतो विनिहतन्दवेति शङ्का कृता
कुर्मः शर्मसमृद्धये भगवतः स्नान पयोधारया॥
स्थूलकल्लोलदुग्धाब्धेर्वेलाफेनानुकारिणा।
क्षीरपूरेण माराऱेः प्रारमे स्नपनक्रियाम्॥
ॐ पवित्रतरक्षीरेण जिनमभिषेचयामि स्वाहा।

क्षीरस्नपनम्।

सलिलघनसारसदकप्रसवहविर्दीपधूपफलनिवहैः।
नमदमरमौलिमालाललितपदकमलयुगलमर्हन्तम्॥

अर्घम्।

ॐ शुक्लध्यानमिदं समृद्धिमथवा तस्यैव भर्तुर्यशो—
राशीभूतमितस्वभावविशदं वाग्देवतायाः स्मितम्।
आहोस्वित्सुरपुष्पवृष्टिरियमित्याकारमातन्वता
दध्नैनं हिमखण्डपाण्डुररुचा संस्नापयामो जिनम्॥
लोकत्रयपतेः कीर्तिमूर्तिसाम्यादिव स्वयम्।
संलब्धस्तब्धभावेन दध्ना मञ्जनमारभे॥
ॐ ह्रीं पवित्रतरदध्ना जिनमभिषेचयामि स्वाहा।

दधिस्नपनम्।

सलिल-मलयज-सदक-कुसुम-सान्नाय-प्रदीप-धूप-फल-
स्तवक-शान्तिधारा-मङ्गलद्रव्यैराराधयामि स्वाहा।

अर्घम्।

पिष्टैश्च कल्कचूर्णैश्च गन्धद्रव्यसमुद्‌भवैः ।
जिनाङ्गं संगताभ्यादिस्नेहपूतं करोम्यहम् ॥

ॐ ह्रीं पवित्रतरकल्कचूर्णेन जिनाङ्गोद्वर्तनं करोमि स्वाहा ।

सुगन्धकल्कचूर्णोद्वर्तनम् ।

सकलकलमलाजैर्मल्लिकाफुल्लजाते—
रिव सितसमवर्णैर्लाजचूर्णप्रपूर्णैः ।
बहुलपरिमलौघैर्हारिहारिद्रचूर्णै—
र्जिनपतिमहमुच्चैः सम्प्रसिञ्चे रजोभिः ॥

ॐ ह्रीं पवित्रतरलाजादिचूर्णोद्वर्तनं करोमि स्वाहा ।

लाजादिचूर्णोद्वर्तनम् ।

वर्णानां प्रमुखैर्द्रव्यैर्जिनेन्द्रमवतारये ।
संसारसागरोत्तारं पूतं पूतगुणालयम् ॥

ॐ ह्रीं समस्तनीराजनद्रव्यैरवतारये दुरितमस्माकमपनयतु भगवान् स्वाहा ।

नीराजनावतरणम् ।

कंकोलैर्ग्रन्थिपर्णागरुतुहिनजटाजातिपत्रैर्लवङ्गैः
श्रीखण्डैलादिचूर्णैः प्रतनुभिरवधूलीन्दुधूलीविमिश्रैः ।
आलिप्तोद्वर्तशुद्धैः समलयजरसैः कालमैः पिष्टपिण्डैः
प्लक्षादित्वक्कषायैर्जिनतनुमभितः स्नेहमाक्षालयामि ॥
संस्नापितस्य घृतदुग्धदधिप्रवाहैः
सर्वाभिरौषधिभिरर्हत उज्ज्वलाभिः ।

उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेवं
कालेयकुङ्कुमरसोत्कटवारुपूरैः ॥
क्षीरभूरुहसञ्जातत्वक्कषायजलैरहम्।
मज्जातमलविच्छित्त्यै मज्जनं विदधे विभोः ॥

ॐ ह्रीं पवित्रतरकषायोदकेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा।

कषायोदकस्नपनम्।

हृद्योद्वर्तनकल्कचूर्णनिवहैः स्नेहापनोदं तनो—
वर्णाढ्यैर्विविधैः फलैश्च सलिलैः कृत्वावतारक्रियाम्।
सम्पूर्णैः सकुदुद्धृतैर्जलधराकारैश्चतुर्भिर्घटै—
रम्भःपूरितदिङ्मुखैरभिषवं कुर्मस्त्रिलोकीपतेः ॥
अम्भोभिः सम्भृतैः कुम्भैरम्भोधरनिभैः शुभैः।
कोणस्थैरभिषिञ्चामि चतुर्भिर्भुवनप्रभुम् ॥

ॐ ह्रीं पवित्रतरचतुष्कोणकुम्भोदकेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा।

चतुष्कोणकुम्भोदकस्नपनम्।

संसिद्धशुद्धया परिहारशुद्धया कर्पूरसम्मिश्रितचन्दनेन।
जिनेन्द्रदेवासुरपुष्पवृष्टिं विलेपनं चारु करोमि भक्त्या ॥

चन्दनानुलेपनम्।

वासन्तिकाजातिसुरेशवृन्दैर्बन्धूकवृन्दैरपि चम्पकाद्यैः।
पुष्पैरनेकैरलिभिर्वृताग्रैः श्रीमज्जिनेन्द्राङ्घ्रियुगं यजेऽहम् ॥

पुष्पोद्धरणम्।

कर्पूरोल्वणसान्द्रचन्दनरसप्राचुर्यशुभ्रत्विषा
सौरभ्याधिकगन्धलुब्धमधुपश्रेणीसमाश्लिष्टया ।
सद्यः सङ्गतगाङ्गयामुनमहास्रोतोविलासश्रिया
सद्गन्धोदकधारया जिनपतेः स्नानं करोमि श्रिये ॥
गन्धोदकैर्भ्रमद्भृङ्गसङ्गीतध्वनिबन्धुरैः ।
अभिषिञ्चामि सम्यक्त्वरत्नाकरविमलप्रभोः (भुम्) ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पवित्रतरगन्धोदकेन जिनमभिषेचयामि मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु, तुष्टिं कुरु कुरु, पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा ।

गन्धोदकस्नपनम् ।

—— ——

स्नानानन्तरमर्हतः स्वयमपि स्नानाम्बुसेकार्दितो
वार्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैर्दीपैः सुधूपैः फलैः ।
कामोद्दामगजांकुशं जिनपतिं स्वभ्यर्च्य संस्तौति यः
स स्यादारविचन्द्रमक्षयसुखः प्रख्यातकीर्तिध्वजः ॥

अर्चनाफलम् ।

—— ——

आह्वयाम्यहमर्हन्तं स्थापयामि जिनेश्वरम् ।
सन्निधीकरणं कुर्वे पञ्चमुद्रान्वितं महे ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अत्र एहि एहि संवौषट् स्वाहा ।

आह्वानम् ।

—— ——

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

स्थापनम्।

——

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् स्वाहा।

सन्निधीकरणम्।

——

स्वर्गंगादिजैर्वारिपूरैः पवित्रैः
सुधासोपमैश्चन्द्रद्रव्यादिमिश्रैः।
बुधाः पूजयेऽहं सदा वीरनाथं
कलौ कल्मषाकृन्तकं पूज्यपादम्॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरवर्धमानतीर्थंकराय नमः जलं निर्वपामि स्वाहा।

——

सुरारम्यश्रीखण्डजातैः सुगन्धै—
र्द्रवैर्भूरिसौरभ्यकाश्मीरयुक्तैः।
बुधाः पूजयेऽहं सदा वीरनाथं
कलौ कल्मषाकृन्तकं पूज्यपादम्॥

चन्दनम्।

——

क्षताघव्रजैरक्षतैरक्षतौघै—
र्ज्वलद्दिग्विभागैर्निधानप्रकाशैः।

बुधाः पूजयेऽहं सदा वीरनाथं
कलौ कल्मषाकृचिकं पूज्यपादम् ॥
अक्षतम् ।

जपाजातिमन्दारकुन्दादिपुष्पै
रणद्गन्धादिलुब्धालिवारावकर्णैः ।
बुधाः पूजयेऽहं सदा वीरनाथं
कलौ कल्मषाकृचिकं पूज्यपादम् ॥
पुष्पम् ।

महामण्डकैर्मोदकैः शालिभक्तैः
सितैर्हव्यपाकैः स्फुरद्भाजनस्थैः ।
बुधाः पूजयेऽहं सदा वीरनाथं
कलौ कल्मषाकृचिकं पूज्यपादम् ॥
चरुम् ।

ज्वलत्कीलजातैर्घृतादिप्रतापैः
महामोहध्वान्ताहतैः सत्प्रदीपैः ।
बुधाः पूजयेऽहं सदा वीरनाथं
कलौ कल्मषाकृचिकं पूज्यपादम् ॥
दीपम्

लसद्धूपधूम्रैः सुराधूपरोधै-
　　र्महाकर्मकाष्ठाहतैः सत्प्रधूपैः।
बुधाः पूजयेऽहं सदा वीरनाथं
　　कलौ कल्मषाकृत्तिकं पूज्यपादम्॥

धूपम्

मनोनेत्रहार्यैः सुपक्वाम्रपूगैः
　　कदम्बैश्च मोदैः सुनानाफलौघैः।
बुधाः पूजयेऽहं सदा वीरनाथं
　　कलौ कल्मषाकृत्तिकं पूज्यपादम्॥

फलम्

पानीयगन्धाक्षतपुष्पचारुनैवेद्यसद्दीपसुधूपवर्गैः।
फलैर्महार्घ्यैर्वरवर्धमानमुत्तारयध्वं खलु स्वेष्टसिद्ध्यै॥

अर्घम्।

अथ जयमाला—

चन्द्रार्ककोटिसंकाशं कन्दर्पाग्निशरं चिरम्।
कनत्काञ्चनसद्वर्णं भजेऽहं सुपवर्धनम्॥

सन्मतिजिनपं सरसिजवदनं संजनिताखिलकर्मकमथनम्।
पद्मसरोवरमध्यगतेन्द्रं पावापुरिमहावीरजिनेन्द्रम्॥

वीरभवोदधिपारोत्तारं मुक्तिश्रीवधुनगरविहारम् ।
... ... ॥

द्विद्वादशकं तीर्थपवित्रं जन्माभिषवणकृतनिर्मलगात्रम् ।
... ... ॥

वर्धमाननामाख्यविशालं मानप्रमाणलक्षणदशतालम् ।
.... ॥

शत्रुविमथनविकटभटवीरं इष्टैश्वर्यधुरीकृतदूरम् ।
.... ॥

कुण्डलपुरिसिद्धार्थभूपालं तत्पत्नीप्रियकारिणिबालम् ।
.... ॥

तत्कुलनलिनविकाशितहंसं घातपुरोघातिकविध्वंसम् ।
.... ॥

ज्ञानदिवाकरलोकालोकं निर्जितकर्मारातिविशोकम् ।
.... ॥

बालत्वे संयमपालीतं मोहमहामलमथनविनीतम् ।
.... ॥

घत्ता—

सर्वसाम्राज्यसंत्याज्यं कृत्वा तं श्रीमहानयम् ।
खण्डितं कर्मवैरीणां लब्धश्रीसङ्गमे परम् ॥
अर्घ्यं ।

इति श्रद्ध (न्द्ध) वध (न) विधि (:) समाप्तं (प्तः) ।

ॐ

अय्यपार्य-विरचितो जन्माभिषेक-विधिः ।

(८)

श्रीमन्मेरुगिरीन्द्रपाण्डुकशिलापीठस्थसिंहासने
संस्थाप्यामरराट् सुरेन्द्रनिकरैस्तीर्थङ्करं श्रीजिनम् ।
क्षीराब्धेः पयसा सुवर्णकलशैर्जन्माभिषेकं मुदा
चानीतेन निवर्तयेत्तदधुना संस्तूयते श्रेयसे ॥१॥

ॐ अर्हं जन्माभिषेकादौ शुद्धगन्धजलप्लवैः ।
भृङ्गारनालिनिर्यातैर्मार्जयामि महीतलम् ॥२॥

ॐ ह्रीं भूलहिते भूतधात्री पूता भव स्वाहा ।

प्रज्वाल्य दर्भपूलाग्रं ज्वलद्दीपशिखार्चिषा ।
जिनेन्द्रसवनारम्भे शोधयामि वसुन्धराम् ॥३॥

ॐ ह्‍ ल्‍म्‍ल्व्यू प्रज्वल प्रज्वल तेजोपतयेऽमिततेजसे स्वाहा ।

पूर्वोत्तरान्तरक्षोण्यां तु धृताञ्जलिनाञ्जसा ।
परितापविनिर्मुक्त्यै प्रीणयामि महोरगान् ॥४॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्षीं भूर्नागेभ्यः स्वाहा ।

विश्वविघ्नोपशान्त्यर्थं शक्राग्न्योरन्तरा भुवम् ।
इष्टिमष्टविधां कुर्वे क्षेत्रपालाय सम्प्रति ॥५॥
ॐ अत्रस्थक्षेत्रपालाय स्वाहा ।

तमालतरुकान्तिभाक्प्रकटिताट्टहासास्यवान्
दयागुणसमन्वितो भुजगभूषणैर्भीषणः ।
क्वणत्कनककिङ्किणीकलितनूपुराराववान्
दिगम्बरवपुर्मया जिनमखेऽर्च्यते क्षेत्रपः ॥६॥
ॐ ह्रीं क्रों प्र० श१–क्षेत्राधिपतये आगच्छ आगच्छ वषट् क्षेत्रपालाय इदम० शं स्वाहा । ❀

संशोध्यावनिमम्बुभिः कुशभृतैः संशुष्कदर्भाग्निना
सन्तर्प्याहिगणान् सिताज्यसुधया स्वारोप्य शक्रश्रियम् ।
धृत्वा षोडशभूषणानि वसने रत्नत्रयं श्रीजिन—
श्रीपादाञ्चित२चन्दनेन तिलकं कुर्वे ललाटे मम ॥७॥
ॐ ह्रीं ३अहमिन्द्रोऽस्मि स्वाहा ।

संस्कारान् गुणभूषितानमलिनान् पद्माननान् सद्गतान्
सद्वृत्तान् भुवनोच्छ्रितान् फलभृतान् श्रीजैनपूजान्वितान् ।
रैरत्नाक्षतगन्धकूर्चकुसुमस्रग्वस्त्रशोभान्वितान्
पूताङ्गान् विबुधव्रजानिव घटानभ्यर्च्य संस्थापये ॥८॥
ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा ।

❀ पुष्पमध्यगतः पाठः पुस्तकान्तरे नास्ति ।
१–क्षेत्राधिपं प्रीणयन् इत्यपि पाठः ।
२–श्रीपादार्चितचन्दनेन इत्यपि ।
३–ओं ह्रीं सुरेन्द्रोऽस्मि स्वाहा ।

लोकप्रसिद्धवरतीर्थजलाशयेभ्यः
स्नानीयकोणकलशोद्धृतमच्छवर्णः ।
कर्पूरपुष्पमणिचन्दनदर्भगर्भं
पैद्मादितीर्थजलमंत्रितमर्चयामि ॥९॥

ॐ नमो भगवते श्रीमते पद्म–महापद्म–तिगिञ्छ-केशरि-पुण्डरीक-महापुण्डरीकादिसरोवरसमद्भूतगङ्गासिन्धु– रोहिद्रोहितास्या– हरिद्धरि-कान्ता-सीतासीतोदा– नारीनरकान्ता–सुवर्णरूप्यकूला– रक्तारक्तोदाद्यनेक-तीर्थनदीनदजलप्रवाहपूरितमधुरजलधि– इक्षुसमुद्र –घृतार्णव –क्षीरसागर प्रभृत्यखिलतीर्थाधिदेवतेति मणिमयकलशासंभृतं नवरत्नसुगन्धचूर्ण-सुवर्णपुष्पफलकुशाद्यैरञ्चिततीर्थोदकं पवित्रं कुरु कुरु भ्रूँ भ्रूँ वं मं हं सं तं पं झ्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा स्वाहा ।

श्रीमद्भिः सलिलैश्च चन्दनरसैः शाल्यक्षतैरुद्गमैः
साज्यायैर्वरदीपकैरभिपतद्धूपैः फलैः स्वादुभिः ।
एतान् मंगलपूर्णकुम्भनिकरान् सद्वृत्तसंस्कारिणः
प्राप्तार्हन्मखमण्डनानभियजे विघ्नत्समूहानिव ॥१०॥

ओं ह्रीं नेत्राय संवौषट्

यत्कूर्मासनसिंहशावकसरोजातश्रियालंकृतं
त्रैलोक्याधिपतेस्त्रिधाधिगतया राज्यश्रियाधिष्ठितम् ।
सम्यग्दर्शनबोधवृत्तमिव तन्मूर्तं मृगेन्द्रासनं
मन्ये मुक्तिवधूस्वयंवरविधौ विन्यस्तमर्हत्प्रभोः ॥११॥

१–रेणु ।
२–भनु : करोमि जलमन्त्रपवित्रमेतत् ।
३–अलङ्कृतं । ४–सम्पूर्णं ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय स्वाहा ।

स्वर्णवर्णकरोद्धृततोयैः सिंहपीठमहमायतमेतत् ।
क्षालयामि मम किल्बिषपङ्कक्षालनाय कुशलीकृतचेताः ॥१२॥

ॐ ह्रीं श्रीं पीठप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ।

त्रिभुवनाधिपतेश्चकितात्मना चरणयोर्मदनेन समर्पितान् ।
इषुचयानिव तीक्ष्णकुशोचयान् स्नपनपीठतले निदधाम्यहम् ॥१३॥

ॐ ह्रीं दर्पमथनाय नमः ।

जिनाङ्घ्रिकमलावासां स्थिरीकर्तुं जिनालये ।
लक्ष्मीं लिखामि श्रीपीठे श्रीकारं कलमाक्षतैः ॥१४॥

ॐ ह्रीं श्रीलेखनं करोमि स्वाहा ।

अद्भिश्चन्द्रमणिप्रभाभिरमलैरालेपनैरक्षतै—
रक्षूणैः कुसुमैः सुगन्धभरितैरन्योमिरामोदिभिः ।
बालार्कद्युतिभिः प्रदीपततिभिर्धूपैर्मनोहारिभिः
सौरभ्यैरखिलैः फलैरभियजे सिंहासनं भासुरम् ॥१५॥

ॐ ह्रीं श्रीं सिंहासनश्रियै नमः स्वाहा ।

ॐ कल्याणातिशयान्वितस्य विलसत्तीर्थङ्करश्रीपते—
स्त्रैलोक्याधिगुरोः समस्तविदुषामानन्दविद्यानिधेः ।
देवस्यात्र चतुर्निकायविबुधैराराधितस्यार्हतः
श्रीमूर्तिं करणत्रयेण विधिना संस्थापयाम्यादरात् ॥१६॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमोऽर्हते स्वाहा ।

ॐ विनम्रनिखिलामरप्रमुखमौलिमालामणि—
प्रभापटलपाटलक्रमनखेन्दुमर्हत्प्रभुम् ।
निधाय नलिनासने सहितयक्षीयक्षेश्वरं
स्पृशामि परया मुदा त्रिभुवनैकरक्षामणिम् ॥१७॥

ॐ अर्हद्भ्यो नमः । ॐ नवकेवललब्धिभ्यो नमः । ॐ क्षीरस्वादुलब्धिभ्यो नमः । ॐ मधुरस्वादुलब्धिभ्यो नमः । ॐ सम्भिन्नश्रोतृभ्यो नमः । ॐ पादानुसारिभ्यो नमः । ॐ कोष्ठबुद्धिभ्यो नमः । ॐ बीजबुद्धिभ्यो नमः । ॐ सर्वौषधिभ्यो नमः । ॐ परमावधिभ्यो नमः । ॐ वल्गुनि वल्गुनि सुभवगो वृषभादिवर्धमानान्तेभ्यो वषट् स्वाहा ।

आह्वाने[1] स्थापनायामवतरयुगलं तिष्ठ तिष्ठ द्वयं च—
संवौषट्ठठयाभ्यां भवयुगलवषट्सन्निहितो ममेति ॥१८॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं च ऐं अर्हत्पदमनुपठितैः सन्निधाने त्रिमंत्रैर्योद्धा (?) मर्हन्तं सपर्यामहमिह विदधे केवलज्ञानभर्तुः ॥१९॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हन्नत्रावतर अवतर संवौषट् नमोऽर्हते स्वाहा ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हन्नत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ नमोऽर्हते स्वाहा ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हन् मम सन्निहितो भव भव वषट् नमोऽर्हते स्वाहा ।

ॐ कैवल्यद्वीपयात्रामभिपरिचलतां भव्यसांयात्रिकाणां
संसाराब्धौ यदीयं चरणयुगमभूत्पोतमुत्तीर्यमाणं ।
तस्याहं श्रीजिनस्य क्रमसरसिजयोरग्रतः पंचमुद्रां
कुर्वे निर्वाणलक्ष्मीपरिणयनकृतोपायसद्भक्तियुक्तः ॥२०॥

१—अनयोः स्थाने पाठोऽयमुपलभ्यते—
मलयरुहलुलिततंदुपुष्पैर्मम सन्निधिं जिनेन्द्रस्य ।
संवौषट्ठठवषडिति पल्लवमन्त्रैस्त्रिभिः कुर्वे ॥

ॐ वृषभाय दिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय परमसुखपद-प्रतिष्ठिताय निर्मलाय स्वयंभुवे अजरामरपदप्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्ठिनेऽर्हते त्रैलोक्यनाथाय त्रिलोकपूजार्हाय अष्टदिव्यभोगपरिप्राप्ताय परमपदाय ममात्र संनिहिताय स्वाहा ॥

लक्ष्मीरस्त्वभिवृद्धिरस्तु विजयश्रीरस्तु दीर्घायुर—
स्त्वाज्ञावार्चितकीर्तिरस्तु शुभमस्त्वारोग्यमस्तु स्थिरम् ।
श्रेयःश्रीपदमस्तु दुस्तरतपोभाजां जगद्भूभुजां
भव्यानां भवभीतिभारविधुरे भक्त्या जिने स्थापिते ॥२१॥

इत्याशीर्वादः ।

भर्तुः[1] पाद्यघटांबुभिश्चरणयोरापाद्य पाद्यक्रिया—
माद्यावाचमनक्रियां[2] जिनविभोः[3] कुंभोदकैः[4] पावनैः ।
सम्पूर्णार्घ्यघटामृतैरघरजः[5]संतापविच्छेदने—
रर्घीकृत्य तदंघ्रिधौतसलिलैः पूतोत्तमांगोऽस्म्यहम् ॥२२॥

ॐ ह्रीं क्ष्वीं स्वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः स्वाहा ॥

ॐ आर्द्राक्षतैर्विधृतगोमयभस्मभक्त—
पिंडैः सुधूपबहुदीपजलैः फलौघैः ।
मृत्पिंडकैर्जिनपतिं सकुशाग्रकीलैः
नीराजनैर्दशविधैरवतारयामि ॥२३॥

ॐ ह्रीं क्रों पवित्रनानापात्रार्पितनिखिलनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि विरजोऽस्माकं करोतु जिनेन्द्रः स्वाहा ॥

१—आद्यौ । २—जिष्णोराचमनक्रियां । ३—भगवतः । ४—कुम्भाहृतैः । ५—तीर्थोत्तमार्घ्यघटोदकैः ।

नीरजोऽमलमर्हंतं नीरधाराभिरर्चये ।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हन्नमः परमेष्ठिने स्वाहा ।

गंधादिभिरनालीढं सुगंधैरर्चये जिनं ॥२४॥

ॐ ह्रीं नमः परमात्मने स्वाहा ।

अक्षतैरक्षयज्ञानलक्षणं जिनपं यजे ।
ॐ ह्रीं नमोऽनादिनिधनाय स्वाहा ।

पुष्पैराराधयामीशं मनोक्षघ्राणसुप्रियैः ॥२५॥
ॐ ह्रीं नमः सर्वेन्द्रसुरासुरपूजिताय स्वाहा ।

अनंतसुखसंदक्षममृतान्नैर्यजे जिनं ।
ॐ ह्रीं नमोऽनन्तज्ञानाय स्वाहा ।

दीपैर्यजे जिनादित्यं लोकालोकप्रदीपकम् ॥२६॥
ॐ ह्रीं नमोऽनन्तदर्शनाय स्वाहा ।

धूपैर्ध्यानाग्निसंदग्धकर्मेंधनमर्हं यजे ।
ॐ ह्रीं नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा ।

जिनं त्रैलोक्यसाम्राज्यफलदं सुफलैर्यजे ॥२७॥
ॐ ह्रीं नमोऽनन्तसौख्याय स्वाहा ।

सिंहासनसितच्छत्रचामरध्वजदर्पणैः ।
भृंगारपालिकाकुंभैर्जिनमर्चामि मंगलैः ॥२८॥
ॐ ह्रीं नमः सर्वशान्तिकृते स्वाहा ।

इति नुतजलगंधैरक्षतैरक्षतांगै—
    र्वरकुसुमनिवेद्यैर्दीपधूपैः फलैश्च ।
जिनपतिपदपद्मं योऽर्चयेदर्चनीयं
    स भवति भुवनेशो मोक्षलक्ष्मीनिवासः ॥२९॥

ॐ ह्रीं नमो ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा ।

नमः पुरुजिनेन्द्राय नमोऽजितजिनेशिने ।
नमः संभवनाथाय नमोऽभिनन्दनार्हते ॥२०॥

नमः सुमतये तुभ्यं नमः पद्मप्रभाय च ।
नमः सुपार्श्वदेवाय नमश्चन्द्रप्रभाय ते ॥२१॥

नमोऽस्तु पुष्पदन्ताय नमः श्रीशीतलार्हते ।
नमः श्रेयोजिनेन्द्राय वासुपूज्याय ते नमः ॥२२॥

नमो विमलनाथाय नमोऽनन्तजिनेशिने ।
नमः श्रीधर्मनाथाय नमः शान्तिजिनाय ते ॥२३॥

नमः कुन्थुजिनेन्द्राय नमोऽरप्रभवे सदा ।
नमो मल्लिजिनेन्द्राय नमस्ते मुनिसुव्रते ॥२४॥

नमो नमिजिनेन्द्राय नेमिनाथाय ते नमः ।
नमः पार्श्वार्हते श्रीमद्वर्धमानार्हते नमः ॥२५॥

तीर्थकृद्भ्यो नमोऽर्हद्भ्यो जिनेन्द्रेभ्यो नमाम्यहम् ।
नमः सुरासुराधीशपूजितेभ्यो नमो नमः ॥२६॥

इति तीर्थङ्करपुष्पाञ्जलिः ।

श्रीमन्मेरुशिलोच्चये सुरपतिः श्रीपांडुपीठे पुरा
यं संस्थाप्य जितारिमीशमभवं कृत्वाभिषेकार्चने ।
भक्त्यानंदभरेण नाट्यमकरोद्व्याकोशनेत्रोत्पलः
शान्तिं देवनरेन्द्रवन्दितपदः कुर्यात्स वः श्रीजिनः ॥२७॥

पूर्वाद्याशासु दर्भाक्षतकुसुमलसत्पद्मपीठेषु सम्य-
गुद्धार्घ्यं प्रसूनाक्षतफलचरुकक्षीरदध्याज्यगंधैः ।

द्रव्यैर्यज्ञाङ्गभूतैर्जिनपतिसवने चारुपात्रार्पितैस्तै—
दिक्पालानाह्वयामि प्रियसुहृदनुगप्रेयसी वाहनांकान् ॥३८॥

ॐ ह्रीं क्रों दशदिक्पालकेभ्यः स्वाहा।

प्राच्यां दिशि—

ॐ मन्दोद्यन्मदगन्धमत्तमधुपव्यासक्तकुम्भस्थलो—
पान्तालङ्कृतपट्टहारपदकग्रैवेयघण्टान्वितम्।
कैलासाचलधीध्रकायमधिकह्यैरावणं वारणं
पौलम्या सह संयुतं सुरपतिं वज्रायुधं व्याहवे ॥३९॥

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्ण सपरिवार इन्द्र! आगच्छागच्छ इन्द्राय स्वाहा।

अस्मिन् यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ साम्प्रतं पालयन्मखम् ॥१॥

आग्नेयायां दिशि—

ॐ कनककपिशवर्णं किङ्कणीलग्नशृङ्गं
बृहदरुणमुदूढं लोलकीलावतंसम्।
अरुणमणिविभूषाभूषितं शक्तिशस्त्रं
धृतमनलदिगीशं स्वाहयाऽमाऽऽह्वयामि ॥ ४० ॥

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्ण सपरिवार अग्ने! आगच्छागच्छ अग्नये स्वाहा।

अस्मिन् यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ साम्प्रतं पालयन्मखम् ॥ १ ॥

अपाच्यां दिशि—

ॐ नीलाञ्जनाचलसमानतुलायरूढं
कालं कलङ्कचयुपं गुरुदीर्घदण्डम्।

लीलालकाङ्कितजटामुकुटाभिरामं
छायायुतं भुजगभूषणमाह्वयामि ॥ ४१ ॥

ॐ ह्रीं क्रों प्र० र यम ! आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा ।

अस्मिन् यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता ।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ साम्प्रतं पालयन्मखम् ॥ १ ॥

यातुधान्यां दिशि—

ॐ प्रबलममदुरुचैर्नीलरक्षोरदस्थं
कुवलयदमदामश्यामलं कोमलाङ्गम् ।
मणिमुकुटमयूखालङ्कृतं यातुधानं
त्रिभुवनपतियज्ञे मन्त्रिवं व्याहरामि ॥ ४२ ॥

ॐ ह्रीं क्रों प्र० र नैर्ऋते ! आगच्छ आगच्छ स्वाहा ।

अस्मिन् यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता ।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ साम्प्रतं पालयन्मखम् ॥ १ ॥

प्रतीच्यां दिशि—

ॐ अधिजलधिमवन्तं पश्चिमाशां विशेषा—
त्करिमकरमुदूढं कामिनीदत्तरश्मिम् ।
विधुविमलशरीरं यादसामीशितारं
वरुणमिह मखेऽस्मिन् प्रार्थये पाशपाणिम् ॥४३॥

ॐ ह्रीं क्रों प्र=र वरुण ! आगच्छ आगच्छ=स्वाहा ।

अस्मिन् यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता ।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ साम्प्रतं पालयन्मखम् ॥ १ ॥

वायव्यां दिशि—

ॐ जवजितद्धरिणं तुरंगरत्नं क्षितिरुहशाखबुद्बुदमञ्जनाभम् ।
जिनपतिसवने समीरणं वै निजललनार्पितलोचनं यजामि ॥४४॥

ॐ ह्रीं क्रों प्र=र पवन ! आगच्छागच्छ=स्वाहा ।
अस्मिन् यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता ।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ साम्प्रतं पालयन्मखम् ॥ १ ॥

उदीच्यां दिशि—

ॐ चित्ररत्नविचित्रितायतपुष्पयानमधिष्ठितं—
भूरिदानविनर्थिताखिललोकमुद्गतशक्तिकम् ।
हावभावविलासविभ्रमशोभितामरयोषितं
राजराजमिहाह्वये जिनराजमज्जनमण्डपे ॥ ४५ ॥

ॐ ह्रीं क्रों प्र=र धनद ! आगच्छागच्छ=स्वाहा ।
अस्मिन् यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता ।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ साम्प्रतं पालयन्मखम् ॥ १ ॥

ऐशान्यां दिशि—

ॐ पञ्चचन्द्रकलावतंसितजटाजूटाटवीकोटर—
क्रीडानन्दितपन्नगोद्धृतफणारत्नोर्मिमं मौलिनम् ।
भूतावेष्टितमम्बिकास्तनप्रान्तानवद्येक्षणं
व्यूढं शाक्वरमाह्वये त्रिनयनं शम्भुं त्रिशूलायुधम् ॥४६॥

ॐ ह्रीं क्रों प्र=र ईशान ! आगच्छ आगच्छ स्वाहा ।
अस्मिन् यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता ।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ साम्प्रतं पालयन्मखम् ॥ १ ॥

अधरस्यां दिशि—

ॐ अत्युन्नताङ्गकठिने कमठाधिरूढं
पद्मावतीरमणमञ्जनपर्वताभम् ।

पाशाङ्कुशाभयफलैः सहितं सुरेन्द्रा—
त्प्राचीनदिक्कटगतं धरणेन्द्रमीडे ॥ ४७ ॥

ॐ ह्रीं क्रों प्र=र धरणेन्द्र ! आगच्छागच्छ=स्वाहा।
अस्मिन् यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ सम्प्रतं पालमन्मखम् ॥ १ ॥

ऊर्ध्वायां दिशि—

ॐ आरूढ केसरिकिशोरमुदग्रकुन्त—
मिन्दुं सुधाधवलिताङ्गमनङ्गबन्धुम्।
तं रोहिणीहृदयवल्लभमाह्वयामि
दिग्यादरेण वरुणामरदक्षिणास्याम् ॥ ४८ ॥

ॐ ह्रीं क्रों प्र=र सोम ! आगच्छागच्छ सोमाय स्वाहा।
अस्मिन यस्मै मया पूजा जिनयज्ञे समर्पिता।
तया प्रीतोऽस्तु देवोऽसौ साम्प्रतं पालयन्मखम् ॥ १ ॥

ॐ सूत्रामा हुतभुक् कृतान्तनिऋती नाथप्रचेता श्वग—
स्याणोदक्पतिशङ्करोरगनिशानाथान् दिशामीश्वरान्।
शस्ताङ्गायुधवर्णवाहनवधूसन्मित्रभृत्यान्विता—
नाहूयाद्य जिनोत्सवेऽत्र विधिवन्मन्त्रेण चाभ्यर्चये ॥४९॥

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णाः सपरिवाराः सर्वे देवा आगच्छत आगच्छत ॐ ह्रीं दशदिक्पालेभ्यः स्वगणपरिवृतेभ्यः इदमर्घ्यं पाद्यं यजामहे यूयमत्र गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा।

यतध्वमधुनानिशं प्रतिदिशं समारक्षणे—
र्भजध्वमनपाध्वरं प्रमदपालकैर्भाक्तिकैः।
समाध्वमुचितासनेषु निहितेषु दिक्पालका
जिनेन्द्रसवनं मया व्यरचि वीक्षयध्वं मुदा ॥ १ ॥

भव्यैः स्वाभ्युदयैकमंगलजयस्तोत्रैः पवित्रीकृते
दिक्चक्रेऽखिलदिव्यतूर्यनिनदैरापूरिते व्योमनि ।
तीर्थेशस्य जिनस्य जन्मसवनं कर्तुं प्रसूनांजलिं
कृत्वा पूर्वकृतार्चनांचितघटानभ्युद्धरामि क्रमात् ॥५०॥

ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा ।

श्रीमत्पुण्यनदीनदाब्धिसरसीकूपादितीर्थाहृतै—
र्हस्ताद्धस्तिकया चतुर्विधसुरानीकैरिवार्यार्पितैः ।
रत्नालंकृतहेमकुंभनिकरानीतैर्जगत्पावनैः
कुर्वे मज्जनमंबुभिर्जिनपतेस्तृष्णापहैः शांतये ॥५१॥

ॐ ह्रीमर्हन् श्रीतीर्थोदकस्नपनं करोमि स्वाहा ॥

वापीकूपतटाकसागरसरित्कासारतीर्थांबुभिः
संसारज्वलदाहतप्ततनुभृत्पापापनोदक्षमैः ।
एभिः श्रीजिनराजमज्जनविधौ प्राप्तावदातप्रभैः
सम्यग्दर्शनबोधवृत्तलतिका संवर्धतां नः सदा ॥५२॥

ॐ ह्रीं हैं श्रीं वं मं हं सं तं पं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः नमोऽर्हते स्वाहा ।

तीर्थोदकैः सुरभिचंदनगंधलेपैः शाल्यक्षतैश्च कुसुमैर्विविधोपहारैः ।
दीपैश्च धूपनिवहैः सुफलैर्यजामि देवं जिनेंद्रमखिलाभ्युदयैकहेतुं ॥५३॥

ॐ ह्रीं हैं श्रीं सर्वशांतिं कुरु=स्वाहा ।

इति जलस्नपनम् ।

स्निग्धैश्चोचफलप्रभूतसलिलैश्चंद्रांशुशालोपमैः
पुंड्रेक्षुप्रभवै रसैरभिनवैर्माधुर्यधुर्यैरपि ।

सैद्रैश्चूतफलोद्भवैरपि रसैः सौवर्णचूर्णप्रभै—
रर्हंतं स्नपयाम्यहं त्रिमधुरैस्त्रैलोक्यरक्षामणिम् ॥५४॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः नमोऽर्हते स्वाहा ।

तीर्थोदकैः सुरभिचन्दनगन्धलेपैः शाल्यक्षतैः सुकुसुमैर्विविधोपहारैः ।
दीपैश्च धूपनिवहैः सुफलैर्यजामि देवं जिनेन्द्रमखिलाभ्युदयैकहेतुम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सर्वशांतिं कुरु कुरु स्वाहा ।

इति रसस्नपनम् ।

काश्मीरद्रवसन्निभेन कनकक्षोदप्रभाहारिणा
श्चेङ्गल्यङ्कुरकोरकद्युतिमुषा सत्कार्णिकारत्विषा ।
सन्ध्याभ्रच्छविना सरोरुहरजोराजीरुचामोदिना
त्रैलोक्याधिपतेः करोम्यभिषवं हैयङ्गवीनेन च ॥५५॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः नमोऽर्हते स्वाहा ।

तीर्थोदकैः सुरभिचन्दनगन्धलेपैः
शाल्यक्षतैः सुकुसुमैर्विविधोपहारैः ।
दीपैश्च धूपनिवहैः सुफलैर्यजामि
देवं जिनेन्द्रमखिलाभ्युदयैकहेतुम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सर्वशांतिं कुरु कुरु स्वाहा ।

इति घृतस्नपनम् ।

१—सान्द्रैश्चूतरसैश्च पङ्कजरजःकिञ्जल्कपुंजप्रभै—
रर्हन्तं स्नपयाम्यमीभिरनघं स्याद्वादविद्याविभुम् ।—पाठान्तरम् ।

मूर्तीभूतजिनेन्द्रकीर्तिधवलो यो ध्यानसे रोधसि
यः सन्तापमपाकरोति जगतां ज्योत्स्नावदातत्विषा ।
लक्ष्मीस्निग्धकटाक्षकान्तिभिरभूत्सौभाग्यसम्पादकः
सोऽर्हत्स्नानपयःप्लवोऽस्तु सुदृशामानन्दसन्दोहकृत् ।।५६।।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः नमोऽर्हते स्वाहा ।

तीर्थोदकैः सुरभिचन्दनगन्धलेपैः
शाल्यक्षतैः सुकुसुमैर्विविधोपहारैः ।
दीपैश्च धूपनिवहैः सुफलैर्यजामि
देवं जिनेन्द्रमखिलाभ्युदयैकहेतुम् ।।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सर्वशांतिं कुरु कुरु स्वाहा ।

इति क्षीरस्नपनम् ।

कर्पूरोत्कर एष वा सुरसरिद्डिंडीरपिण्डोत्करः
किं वायं शरदभ्रविभ्रमचयः किं वात्र भव्यात्मनाम् ।
पुण्यौघोऽयमिति प्रसन्नविबुधैराशङ्कया वर्णितं
शान्त्यर्थं भवताज्जगत्त्रयगुरुस्नानावदातं दधि ।।५७।।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः नमोऽर्हते स्वाहा ।

तीर्थोदकैः सुरभिचन्दनगन्धलेपैः
शाल्यक्षतैः सुकुसुमैर्विविधोपहारैः ।
दीपैश्च धूपनिवहैः सफलैर्यजामि
देवं जिनेन्द्रमखिलाभ्युदयैकहेतुम् ।।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सर्वशांतिं कुरु कुरु स्वाहा ।

इति दधिस्नपनम् ।

ॐ कर्पूरकाश्मीरपरागमिश्रलाजोत्करश्चन्द्रकरावदातैः ।
स्नेहापनोदार्थमिहार्हदङ्गमुद्वर्तयाम्यक्षतपिष्टचूर्णैः ॥ ५८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं पवित्रपरिमलद्रव्यविलुलितशालितन्दुलचूर्णैरर्हदङ्ग-लीनलेपनमपनयामि, अस्माकं पापपङ्कानुलेपनमपहरतु जिनेन्द्रः स्वाहा ।

चोचेक्ष्वाम्ररसाज्यदुग्धदधिजस्नेहापनोदक्षमैः
कल्कैः शीतलगन्धवस्तुजनितैरामोदिताशान्तरैः ।
स्वच्छैश्चारुकषायवल्कलजलैः संसाररोगापहै—
रर्हन्तं स्नपयामि मङ्गलघटैरन्यैर्जगच्छान्तये ॥ ५९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः नमोऽर्हते स्वाहा ।

तीर्थोदकैः सुरभिचन्दनगन्धलेपैः
शाल्यक्षतैः सुकुसुमैर्विविधोपहारैः ।
दीपैश्च धूपनिवहैः सुफलैर्यजामि
देवं जिनेन्द्रमखिलाभ्युदयैकहेतुम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हन् सर्वशांतिं कुरु कुरु स्वाहा ।

इति कषायोदकस्नपनम् ।

वर्णाश्ववर्णाक्षतवर्धमानफलप्रकारैरवतार्य पंचभिः ।
नीराजनं दिक्षु यथावकाशं निर्वाणलक्ष्मीरमणस्य कुर्वे ॥ ६० ॥

ॐ ह्रीं क्रों निखिलनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि नीरजोऽस्मान्-करोतु जिनेन्द्रः स्वाहा ।

इति नीराजनम् ।

स्नपनविष्टरकोणनिवेशितैरखिलतीर्थजलैरपि सम्भृतैः ।
जिनविभुं स्नपयामि चतुर्घटैः कलितपंककलंकविमुक्तये ॥६१॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं णमो अरहंताणं अ सि आ उ सा झ्वीं क्ष्वीं हं सः वं मं सं तं पं द्रां द्रीं नमोऽर्हते स्वाहा ।

तीर्थोदकैः सुरभिचन्दनगन्धलेपैः
शाल्यक्षतैः सुकुसुमैर्विविधोपहारैः ।
दीपैश्च धूपनिवहैः सुफलैर्यजामि
देवं जिनेन्द्रमखिलाभ्युदयैकहेतुम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा ।

इति चतुष्कोणकुम्भोदकस्नपनम् ।

कर्पूरागुरुचन्दनद्वयजटासोदीच्यसिद्धार्थक-
श्यामोशीरकचोरकुंकुमरुजाकक्कोलजातीफलैः ।
एलात्वग्दलकेसराब्जसुरभिद्रव्यादिचूर्णान्वितै-
र्मध्यस्थापितपूर्णकुम्भसलिलैस्तीर्थंकरं स्नापये ॥६२॥

ॐ ह्रीं क्रों अर्हन् मम पापं खण्ड खण्ड, दह दह, हन हन, पच पच, पाचय पाचय, अर्हन् झं झ्वीं क्ष्वीं हं सः पः हः चां चीं चूं चें चैं चों चौं चं चः, हां हीं हूं हें हैं हों हौं हं हः द्रां द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठ ठ, मम श्रीरस्तु सिद्धिरस्तु वृद्धिरस्तु शान्तिरस्तु तुष्टिरस्तु मनःसमाधिरस्तु दीर्घायुरस्तु कल्याणमस्तु स्वाहा ।

चातुर्जातकचन्दनागुरुशटिकाश्मीरलाक्षाम्बुधैः
सज्जासेव्यरुजामयाम्बुफलिनिमांसीन्दुजातीफलैः ।
सार्धं शर्करयाखिलार्धमितया शैलारसेनान्वितो

धूपो मुक्तिरमाविमोहनकरी स्याज्जैनपूजार्पितः ॥६३॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री नमोऽर्हतेऽनन्तचतुष्टयप्रभवाय मोक्षलक्ष्मीवशंकराय नमः स्वाहा।

ॐ निखिलभुवनभवनमङ्गलीभूतजिनपतिसवनसमयसम्प्राप्तावसरं, अभिनवकर्पूरकालागुरुकुङ्कुमहरिचन्दनाद्यनेकसुगन्धिबन्धुरगन्धद्रव्यसम्भारसम्बन्धबन्धुरं, अखिलदिगन्तरालव्याप्तसौरभातिशयसमाकृष्टमदसामजकपोलतलविगलितमदमुदितमधुकरनिकरम्बमधुकरं, अर्हत्परमेश्वरपवित्रतरगात्रस्पर्शनमात्रपवित्रीभवदिदं गन्धोदकधारावर्षं, अशेषहर्षनिबन्धनं शान्तिं करोतु कान्तिमाविष्करोतु कल्याणं प्रादुष्करोतु सौभाग्यं सन्तनोतु आरोग्यमातनोतु सम्पदं सम्पादयतु विपदमवसादयतु यशो विकासयतु मनः प्रसादयतु आयुर्द्राघयतु श्रियं श्लाघयतु बुद्धिं विवर्धयतु शुद्धिं विशुद्धयतु श्रियः पुष्णातु प्रत्यवायं मुष्णातु अनभिमतं निवारयतु मनोरथं परिपूरयतु, परमोत्सवकारणमिदं परममङ्गलमिदं परमपावनमिदं स्वस्त्यस्तु नः मवीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा सर्वशान्तिं कुरु कुरु पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा।

ॐ नमोऽर्हते भगवते त्रैलोक्यनाथाय घातिकर्मविनाशनाय अष्टमहाप्रातिहार्यसहिताय चतुस्त्रिंशदतिशयसहिताय अनन्तज्ञानदर्शनवीर्यसुखात्मकाय अष्टादशदोषरहिताय पंचमहाकल्याणसम्पूर्णाय नवकेवललब्धिसमन्विताय दशविशेषणसंयुक्ताय देवाधिदेवाय धर्मचक्राधीश्वराय धर्मोपदेशनकराय चमरवैरोचनाच्युतेन्द्रप्रभृतीन्द्रशतेन मेरुगिरिशिखरशेखरीभूतपाण्डुकशिलातले गन्धोदकपरिपूरितानेकविचित्रमणिमयमङ्गलकलशैरभिषिक्तं, इदानीमहं त्रिलोकेश्वरमर्हत्परमेष्ठिनमभिषेचयामि अर्हं मवीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

ॐ निखिलमङ्गलकरणप्रवणगन्धोदकं अभिषवणारम्भेण (?) भगवान् वृषभः·········अजितः प्रयच्छतु, शर्म सम्भवो विदधातु, रत्न-

प्यामिनन्दनमभिनन्दनः करोतु, सुमतिं सुमतिरुत्पादयतु, पद्मां पद्म-प्रभस्तनोतु, सुपार्श्वनस्वरः श्रियं दिशतु, चन्द्रप्रभः स्वान्तध्वान्तं धुनोतु, सुविधिः स्वाद्वादमुद्दीपयतु, शीतलो दुःखानलं शमयतु, श्रेयान् श्रेयः करोतु, वासुपूज्यो जगत्पूज्यतां जनयतु, विमलो निर्मलतामलङ्करोतु, दुरितारि-विजयमनन्तश्चिद्दधातु, धर्मः शर्मपदे दधातु, शान्तिः शान्तिं करोतु, कुन्थुः शमतां वितरतु, मनोरथचक्रमरः पूरयतु, मल्लिस्तपोबलमुल्लापयतु, यमनियमसम्पदं मुनिसुव्रतः सम्पादयतु, सद्विनयं नमिरापादयतु, निःश्रे-यसमरिष्टनेमिरुपनयतु, सत्पुरुषपरिषदलंकृतपार्श्वतां विश्राणयतु श्रीपार्श्वः, सद्धर्मश्रोत्रायुरारोग्यैश्वर्ययशांसि वर्धयतु श्रीवर्धमानः, स्वस्त्यस्तु वः भ्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा स्वाहा ।

ॐ वृषभाद्यः श्रीवर्धमानपर्यन्ताश्चतुर्विंशत्यर्हन्तो भगवन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः सम्भिन्नतमस्का वीतरागद्वेषमोहास्त्रिलोकनाथास्त्रि-लोकमहितास्त्रिलोकप्रद्योतनकरा जन्मजरामरणरोगविप्रमुक्ताः श्री-वत्सप्रमुखाष्टोत्तरसहस्रलक्षणालङ्कृतपरमौदारिकदिव्यदेहास्त्रिजगदधिप-त्वचिह्नभूतसिंहविष्टर (दि) महाप्रातिहार्यसहिताश्चारणविद्याधर-राजमहाराजपार्थिवसार्वभौमबलदेववासुदेवचक्रधरसुरासुरेन्द्रमुकुटतट-घटितमणिगणकिरणरागरञ्जितचारुचरणकमलयुगला देवाधिदेवाः प्रसी-दन्तु वः प्रसीदन्तु नः, सर्वकर्मविप्रमुक्ताः सकलविमलकेवलज्ञानादिस्वाभा-विकवैशेषिकाष्टगुणसंयुक्ता लोकाग्रमस्तकस्थाः कृतकृत्याः परममाङ्गल्य-नामधेयाः सर्वकार्येष्विहामुत्र च सिद्धाः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः, आमर्शक्ष्वे-लजाल्लविप्रुषजल्लसर्वौषधयो वः प्रीयन्तां, मतिस्मृतिसंज्ञाचिन्ताभिनि-बोधिकज्ञानिनो वः प्रीयन्ताम्, कोष्ठबीजपदानुसारिबुद्धिसम्भिन्नश्रो-तारः श्रमणा वः प्रीयन्ताम्, जलजङ्घाफलश्रेणितन्तुपुष्पाम्बरचारणा वः प्रीयन्ताम्, मनोवाक्कायबलिनः वः प्रीयन्ताम्, सुधामधुक्षीरसर्पि-रास्राव्यक्षीणमहानसा वः प्रीयन्ताम्, दीप्तोग्रतप्तमहाघोरानुतपसो वः प्रीयन्ताम्, देशपरमसर्वावधि-ऋजुविपुलमतिमनःपर्ययज्ञानिनो वः

प्रीयन्ताम् , इन्द्राग्नियमनैरितिवरुणवायुकुबेरैशानधरणसोमदेवताः प्रीयन्ताम् , चमरवैरोचकधरणभूतानन्दहरिषेणहरिकान्तवेणुदेववेणुकान्ताग्निशिखाग्निमाणववेलम्बप्रभंजनघोषमहाघोषजलप्रभजलकान्तपूर्णकान्तवशिष्ठामितगत्यमितवाहननामभवनेन्द्राः प्रीयन्ताम् , किन्नरकिम्पुरुषसत्पुरुषमहाकायातिकायगीतरतिगीतयशःपूर्णभद्रमाणिभद्रभीममहाभीमसुरूपप्रतिरूपकालमहाकालाभिधानव्यन्तरेन्द्राः प्रीयन्ताम् , आदित्यसोमाङ्गारकबुधबृहस्पतिशुक्रशनैश्चरराहुकेतु इति नवग्रहदेवताः वः प्रीयन्ताम् , वृषभमुखमहायक्षत्रिमुखयक्षेश्वरतुम्बुरुकुसुमावरनन्दिविजयाजितब्रह्मेश्वरकुमारषण्मुखपातालकिन्नरकिम्पुरुषगरुडगान्धर्वखेन्द्रकुबेरवरुणभृकुटिसर्वाह्णधरणमातङ्गनामचतुर्विंशतियक्षेन्द्राः प्रीयन्ताम्, ॐ चक्रेश्वरीरोहिणीप्रज्ञप्तिवज्रशृङ्खलापुरुषदत्तामनोवेगाकालीज्वालामालिनीमहाकालीमानवीगौरीगान्धारीवैरोट्यनन्तमतीमानसीजयाविजयाजिताऽपराजिताबहुरूपिणीविद्युत्प्रभाकुष्माण्डीपद्मावतीसिद्धायिनीनामचतुर्विंशतियक्षिदेवताः प्रीयन्ताम् , ॐ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारानतप्राणतारणाच्युतेन्द्राः षोडशकल्पवासिनो वः प्रीयन्ताम् , नवग्रैवेयकनवानुदिशपञ्चानुत्तरदेवा वः प्रीयन्ताम् , सर्वकल्याणसम्पत्तिरस्तु, सिद्धिरस्तु, पुष्टिरस्तु, शान्तिरस्तु, कल्याणमस्तु, मनःसमाधिरस्तु, दीर्घायुरस्तु, भूयोभूयः शाम्यन्तु घोराणि, पुण्यं वर्धताम् , धर्मो वर्धताम् , श्रेयो वर्धताम् , आयुर्वर्धताम् , कुलगोत्रं चाभिवर्धताम् , स्वस्ति भद्रं चास्तु वः० स्वाहा ।

ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां भगवन्तोऽर्हन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः सकलवीर्याः सकलसुखास्त्रिलोकेशास्त्रिलोकेश्वरपूजितास्त्रिलोकद्योतनकरा वृषभाद्यः श्रीवर्धमानपर्यन्ताः शान्तिकराः सकलकर्मरिपुविजयकान्तारदुर्गविषमेषु रक्षन्तु नो जिनेन्द्राः, सर्वे विधातारः, श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी-मेधा-धरणिकायाऽलेख्यमंत्रसाधनचूर्णप्रयोग-

स्थानगमनसिद्धसाधनायाः प्रतिहतकीर्तयो भवन्तु नो विद्यादेवताः, नित्य-महर्षिसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधवश्चातुर्वर्ण्यसङ्घसहिता नः प्रसीदन्तु, नवमहास्तिथिकरणमुहूर्तलग्नदेवताश्च नः प्रीयन्ताम्, इह चान्ये ग्राम-नगरदेवताः सर्वे गुरुभक्ता अक्षीणकोशकोष्ठागारा भवेयुः, दानतपो-वीर्यधर्मानुष्ठानादिभिर्नित्यमेवास्तु, मातृपितृभ्रातृसुहृत्स्वजनसम्बन्धि-बन्धुवर्गसहित (?) भवतु, धनधान्यैश्वर्यद्युतिबलयशस्कीर्तिवर्धनाय सामो-दप्रमोदोत्सवाय शान्तिर्भवतु, कान्तिर्भवतु, पुष्टिर्भवतु, वृद्धिर्भवतु, काम-माङ्गल्योत्सवाः सन्तु, शाम्यन्तु पापानि, शाम्यन्तु घोराणि, पुण्यं वर्धताम्, धर्मो वर्धताम्, श्रेयो वर्धताम्, आयुर्वर्धताम्, कुलगोत्रं चाभि-वर्धताम्, स्वस्ति भद्रं चास्तु नः क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वस्ति स्वस्ति स्वस्त्यस्तु मे स्वाहा।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीपार्श्वनाथाय धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय घातिकर्मनिर्मुक्ताय द्वादशगणपरिवेष्टिताय अनन्तज्ञानदर्शनवीर्यसुखास्प-दाय प्रक्षीणशेषकल्मषाय, अस्माकं सर्वपापोपसर्गभयविघ्नरोगवैरिवर्गा-पमृत्युनिपाताघ्नाशय नाशय, नरकरितुरगगोमहिषाजमारीरुपशमय उप-शमय, सर्वसस्यवृक्षगुल्मलतापत्रपुष्पफलराष्ट्रमारीर्विनाशय विनाशय, सर्वग्रामनगरखेडकर्वटमडम्बद्रोणामुखसंवाहनघोषकानभिनन्दय अभि-नन्दय, सुदर्शमहाजयचक्रविक्रमसत्त्वतेजोबलशौर्ययशांसि पूरय पूरय, अर्हं भं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

ॐ नमोऽर्हते भगवते देवाधिदेवाय सर्वोपद्रवविनाशनाय सर्वा-पमृत्युंजयकरणाय सर्वमंत्रसिद्धिकराय ॐ क्रों० ठ० भं वं ह्रः पः हः क्षीं अ सि आ उ सा सर्वशान्तिं पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा।

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये, ॐ नमः शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वपापप्रणाशनाय

सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

ॐ ह्म्ल्व्र्यूं मं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा सर्वरोगशान्ति-आयुरारोग्यं कुरु कुरु स्वाहा।

हेमाद्रिर्धवलामलस्थविरभूयस्नानदुग्धार्णसा
क्षीराब्धिः प्रथितोऽभवज्जिनपतेः स्नानोपयोग्यैर्जलैः।
यस्य स्नानजलावसिक्तमखिलं पूतं जगज्जायते
जीयादेष जिनेशिनामर्हतां जन्माभिषेकोत्सवः ॥६४॥

पुष्पाञ्जलिः।

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकं
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम्।
स्यात्सज्ज्ञानचरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसम्पादकं
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन! स्नानस्य गन्धोदकम्।६५।

(गन्धोदकवन्दनम्)

अष्टविधार्चनम्—

मलयजघनसारक्षोदसम्बन्धगौरां
सुरभिकुसुमवासामोदमत्तालिमालाम्।
जिनचरणसरोजे निर्वृतिश्रीविवाह—
क्षणविरचितधारां तीर्थधारां करोमि ॥६६॥

—जलम्।

शिशिरकरकराभैश्चन्दनैश्चन्द्रमिश्रै—
र्बहलपरिमलौघप्रीणितप्राणिघोणैः।

प्रणतदिविजमौलिप्रोतरत्नांशुजाले—
जिनपतिचरणाब्जद्वन्द्वमालेपयामि ॥६७॥
—चन्दनम् ।

कलमसदकपूरैः पुण्यबीजांकुराभैः
शिशुशशिविशदैस्तैर्वीतरागांघ्रिपीठे ।
विरचितमिह कुर्वे पंचपुञ्जानि लक्ष्म्या
जिनधवलकटाक्षैरक्षतैरक्षतांगैः ॥६८॥
—अक्षतान् ।

विषयत्रुजिनजेतुर्वीतरागस्य विष्णो—
श्चकितमदनमुक्तैः पुष्पबाणैरिवैभिः ।
परिमलितलतान्तैः प्राप्तमत्तद्विरेफै—
श्चरणकमलयुग्मं पूजया योजयामि ॥६९॥
—पुष्पम् ।

विपुलविमलपात्रेष्वर्पितं सिद्धमंधो ?
ह्यभिनवमनपेभ्यस्तीर्थकृद्भ्यः पुरस्तात् ।
सरसमधुरपक्वाम्रादिदुग्धाज्यदध्ना
विलसितमिह कुर्वे पादपीठोपकण्ठे ॥ ७० ॥
—नैवेद्यम् ।

मणिभिरिव समृद्धैः पद्मरागैः प्रदीपैः
प्रहिततिमिरौघैरुच्छिखैर्निश्चलैस्तैः ।
करयुगदलदत्ताराात्रिपात्रादिरूढै—
र्जिनविभुपवतार्य द्योतयाम्यङ्घ्रिपीठे ॥ ७१ ॥
—दीपम् ।

कुवलयदलनीलैः सौरभामोदमत्तै—
रलिभिरिव समन्तादाक्षते ? धूपधूमैः ।

अगरुमलयजोत्थैर्घ्राणपेयैर्जिनानां
जिनचरणसरोजद्वन्द्वमाराधयामि ॥ ७२ ॥
—धूपम् ।

रुचकपनसजम्बूचूतनारङ्गचोच—
क्रमुकबदररंभादाडिमानां फलौघैः ।
परिमितपरिपाकप्राप्तसौरभ्यसारै—
रभिलषितफलाप्त्यै पूजयाम्यर्हदङ्घ्री ॥ ७३ ॥
—फलम् ।

कनककरकनालोन्मुक्तधाराभिरद्भि—
र्मिलितनिखिलगन्धक्षोदकर्पूरभाग्भिः ।
सकलभुवनशान्त्यै शान्तिधारां जिनेन्द्र-
क्रमसरसिजपीठे पावनीमातनोमि ॥ ७४ ॥
—शान्तिधाराम् ।

वृषभोऽजितनामा च शंभवश्चाभिनन्दनः ।
सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ ७५ ॥
चन्द्राभः पुष्पदन्तश्च शीतलो भगवान्मुनिः ।
श्रेयांसो वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥ ७६ ॥
अनन्तो धर्मनामा च शान्तिः कुन्थुर्जिनोत्तमः ।
अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ७७ ॥
हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः ।
ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेन्द्रपूजितः ॥७८॥
कर्मान्तकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसम्भवः ।
एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ७९ ॥
पूजिता भरताद्यैश्च भूपेन्द्रैर्भूरिभूतिभिः ।
चतुर्विधस्य संघस्य शान्तिं कुर्वन्तु शाश्वतीम् ॥ ८० ॥
—स्तुतिः ।

धवलचामरभानुमण्डलसिंहविष्टरभारती—
त्रिदशतूर्यरवातपत्रलतान्तवृष्टिभिरष्टभिः ।
विगतशोकमहीरुहेण सहान्विताः सुरपूजिता
दधतु शान्तिमनन्तिमां जगतां त्रयस्य जिनेश्वराः ॥८१
इत्थं जिनेन्द्रजननाभिषवं यथाव—
ये कारयन्त्यखिलभव्यजनैकशान्तये ।
तेऽमी स्वजन्म सफलं परया विभूत्या
धर्मार्थकामविपुलाभ्युदयैर्नयन्ति ॥ ८२ ॥

ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः—

नमस्कृत्य जिनं वीरं नृसुरासुरपूजितम् ।
गुरूणामन्वयं वक्ष्ये प्रशस्तगुणशालिनाम् ॥ १ ॥
श्रीमूलसंघव्योमेंदुर्भारते भावितीर्थकृत् ।
देशे समंतभद्रार्यो जीयात्प्राप्तपदर्द्धिकः ॥ २ ॥
तत्त्वार्थसूत्रव्याख्यानगंधहस्तिविधायकः ।
स्वामी समंतभद्रोऽभूत देवागमनिदेशकः ॥ ३ ॥
अवटतटमटति स्फुटपटुवाचाटमाभंजेरपि ? जिह्वा ।
वादिनि समंतभद्रे स्थितवति सति का कथान्येषां ॥ ४ ॥
शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा शिवायनः शास्त्रविदां वरेण्यौ ।
कृत्स्नं श्रुतं श्रीगुरुपादमूले ह्यधीतवंतौ भवतः कृतार्थौ ॥ ५ ॥
तदन्वयेऽभूद्विदुषां वरिष्ठः स्याद्वादनिष्ठः सकलागमज्ञः ।
श्रीवीरसेनोऽजनि तार्किकश्रीर्विध्वस्तरागादिसमस्तदोषः ॥ ६ ॥
यस्य वाचां प्रसादेन ह्यमेयं भुवनत्रयं ।
आसीदष्टांगरूपेण गणितेन प्रमापितं ॥ ७ ॥
तच्छिष्यप्रवरो जातो जिनसेनमुनीश्वरः ।
यद्वाङ्मयं पुरोरासीत्पुराणं प्रथमं भुवि ॥ ८ ॥

तदीयप्रियशिष्योऽभूद्गुणभद्रमुनीश्वरः ।
शलाकाः पुरुषा यस्य सूक्तिभिर्भूषिताः सदा ॥ ९ ॥
गुणभद्रगुरोस्तस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते ।
यस्य वाक्सुधया भूमावभिषिक्ता जिनेश्वराः ॥ १० ॥
तच्छिष्यानुक्रमे याते संख्येये विश्रुतो भुवि ।
गोविंदभट्ट इत्यासीद्विद्वान्मिथ्यात्ववर्जितः ॥ ११ ॥
देवागमनसूत्रस्य श्रुत्या सद्दर्शनान्वितः ।
अनेकांतमयं तत्त्वं बहु मेने विदांवरः ॥ १२ ॥
नंदनास्तस्य संजाता वर्णिताखिलकोविदाः ।
दाक्षिणात्या जयंत्यत्र स्वर्णयक्षीप्रसादतः ॥१३ ॥
श्रीकुमारकविसत्यवाक्यो देवरवल्लभः ।
उद्यद्भूषणनामा च हस्तिमल्लाभिधानकः ॥ १४ ॥
वर्धमानकविश्चेति षडभूवन्कवीश्वराः ॥
सम्यक्त्वं सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे
चास्मिन् पांड्यमहीश्वरेण कपटाद्धंतुं स्वमभ्यागते ।
शैलूषं जिनमुद्रधारिणमुपास्यासौ मदध्वंसिना
श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः ॥ १५ ॥
तद्यथा—
तिर्यक्पश्यति पृष्ठतोपसरति स्कन्धे करोति क्षितिः
शिक्षां न क्षमते शिरो विधुनुते पंटास्वनादीर्घ्यति ।
संदिग्धप्रतिहस्तिनं निजमदस्याघ्राय गंधं स्वयं
छाया हंति करेण याति न वशः कोपोद्धुरः सिंधुरः ॥ १६ ॥
सोऽयं समस्तजगदूर्जितचारुकीर्तिः
स्याद्वादशासनरमाश्रितशुद्धकीर्तिः
जीयादशेषकविराजकचक्रवर्ति ।
श्रीहस्तिमल्ल इति विश्रुतपुण्यमूर्तिः ॥ १७ ॥

तस्यान्वये वरगुणाग्रगुलवीरसूरिः साक्षात्तपोधनपतिर्निजितांगभारिः ।
धर्मामृतांबुधृतसुप्तिनिरोधिहारी जैनो मुनिर्जयतु भव्यजनोपकारी ॥१८॥

आसीत्तत्प्रियशिष्यः कामक्रोधादिदोषरिपुविजयी ।
श्रीपुष्पसेननामा मुनीश्वरः कोविदैकगुरुः ॥१६॥

श्रीमूलसंघभव्याब्जभानुमान्विदुषां पतिः ।
पुष्पसेनार्यवर्योऽभूत्परमागमपारगः ॥२०॥

यस्यार्वाकानजैर्गीस्सुगतकणभुजो वाक्यभंगीरमोघी—
स्तत्त्वेपि दृढपादोदितमतमतनोत्सारमर्थापकर्थं ।
शोभां प्राभाकरी तामपहृतविमतां भाट्टविद्यामनैषी—
देवोऽसौ पुष्पसेनो जगति विजयते धर्षितार्हन्मतश्रीः ॥२१॥

तच्छिष्योऽन्यमतांधकारमथनः स्याद्वादतेजोनिधिः
साक्षाद्राघवपांडवीयकविताकांतारमूढात्मनां ।
व्याख्यानांशुचयैः प्रकाशितपदन्यासो विनेयात्मनां
स्वांतांभोजविकासको विजयते श्रीपुष्पसेनार्यमा ॥२२॥

श्रीमद्धर्मे गुणानां गणमिह दधया सम्यगारोप्य रूढो
बाह्यान्तः सत्तपोऽर्थं व्रतनियमरथं मार्गणौघैर्गुणाढ्यैः ।
लक्ष्मी कुर्वे न तत्त्वं मनसिजमजयन्मोहसंधानचित्तः
त्रैलोक्यं शासितारं जयति जिनमुनिः पुष्पसेनः सधर्मा ॥ २३ ॥

पुष्पसेनमुनिर्भाति भीमसेन इवापरः ।
बृहत्त्यागदयायुक्तो दुःशासनमदापहः ॥२४॥
बाणास्तपो धनुर्धर्मो गुणानामावलिर्गुणः ।
पुष्पसेनमुनिर्धन्वी शरव्यं पुष्पकेतनः ॥२५॥

तं पुष्पसेनदेवं कलिकालगणेश्वरं सदा वंदे ।
यस्य पदपद्मसेवा विबुधानां भवति कामदुहा ॥२६॥

तदीयशिष्योऽजनि दाक्षिणात्यः श्रीमान् द्विजन्मा भिषजां वरिष्ठः ।
जिनेन्द्रपादांबुरुहैकभक्तः सागारधर्मः करुणाकराख्यः ॥२७॥

तस्यैव पत्नी कुलदेवतेव पतिव्रतालंकृतपुण्यलक्ष्मीः ।
यदूकमांबो जगति प्रतीता चारित्रमूर्तिर्जिनशासनोक्ता ॥२८॥

तयोरासीत्सूनुः सदमलगुणाढ्यो सविनयो
जिनेन्द्रश्रीपादांबुरुहयुगलाराधनपरः ।
अधीता शास्त्राणामखिलमपिमंत्रौषधवतां
विपश्चिद्भिर्नेता नयविनयधानार्य इति यः ॥२९॥

श्रीमूलसंघकथिताखिलसन्मुनीनां श्रीपादपद्मसरसीरुहराजहंसः ।
स्यादय्यपार्य्य इति काश्यपगोत्रवर्यो जैनाग्रपाकुवरवंशसमुद्रचंद्रः ॥३०॥

प्रसन्नकविरावृतेः प्रवचनांगविद्यामृतेः
परमतत्त्वध-र्ममूर्तेः ।,
सुधाकर इवापरोऽखिलकराभिरामः सदा
चकास्ति सुकृतोदयःकुवलयोत्सवः श्रीयुतः ॥३१॥

कवितानाम काप्यन्या सा विदग्धेषु रज्यते ।
केऽपि कामयमानास्तां क्लिश्यंते हंत बालिशाः ॥३२॥

स्वस्त्यस्तु सज्जनेभ्यो येषां हृदयानि दर्पणसमानि ।
दुर्वचनभस्मसंगादधिकतरं यांति निर्मलताम् ॥३३॥

स्वस्त्यस्तु दुर्जनेभ्यो यदीयभीत्या कविर्वचः सर्वे ।
रचयंति सरससूक्तिं कवित्वरचनासु ये कृतिषु ॥३४॥

असतां संगपंकेन यदंगं मलिनीकृतं ।
तदहं धौतमिच्छामि साधुसंगतिवारिणा ॥३५॥

सुस्वरत्वं सुवृत्तत्वं साहित्यं भाग्यसंभवं ।
बलात्कारेण यन्नीतं स्वाधीनं नैव जायते ॥३६॥

शब्दशास्त्रमपि काव्यलक्षणं छंदसःस्थितिमजानता कृतिः ।
अय्यपार्यविदुषा विनिर्मिता ''' ' ' ' ' गुरुवरप्रसादतः ॥३७॥

शाकाब्दे विधुवार्धिनेत्रहिमगौ सिद्धार्थसंवत्सरे
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुष्यर्क्षवारेऽहनि ।
ग्रंथो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभा-
क्संपूर्णो मवरेक्कवौलनगरे श्रीपालवंशूर्जितः ॥३८॥

इत्यय्यपार्यविरचितजिनेन्द्रकल्याणाभ्युदये जन्माभिषेकविधिः ॥

समाप्त

नमः सिद्धेभ्यः ।

श्रीनेमिचन्द्रकवि-विरचितो

नित्यमहः ।

(१)

श्रीमत्पंचमवार्धिनिर्मलपयःपूरैः सुधासन्निभैः
यज्जन्माभिषवं सुराद्रिशिखरे सर्वे सुराश्चक्रिरे ।
त्रैलोक्यैकमहाप्तेर्जिनपतेस्तस्याभिषेकोत्सवं
कर्तुं भव्यमलोपलेपविलयं प्राज्ञैः स्तुतं प्रस्तुवे ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भूः स्वाहा इति पुष्पाञ्जलिं कुर्यात् ।

विहारकाले जगदीश्वराणामत्रात्तसेवार्थकृतापदान ।
इत्थार्चितो वायुकुमारदेव ! त्वं वायुना शोधय यागभूमिम् ॥२॥

ॐ ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा ।

विहारकाले जगदीश्वराणामत्रात्तसेवार्थकृतापदान ।
इत्थार्चितो मेघकुमारदेव ! त्वं वारिणा शोधय यागभूमिम् ॥३॥

ॐ ह्रीं क्लीं भूः शुद्ध्यतु स्वाहा पवित्रदर्भपूलोपात्तजलेन भूमिं सिंचेत् ।

गर्भान्वयादौ महितद्विजेन्द्रैर्निर्वाणपूजासु कृतापदान ।
इत्थार्चितो वह्निकुमारदेव ! त्वं ज्वालया शोधय यागभूमिम् ॥४॥

ॐ ह्रीं क्ष्वीं अग्निं प्रज्वालयामि निर्मलाय स्वाहा, पञ्चदर्भपूलानलेन भूमिं ज्वालयेत् ।

तुष्टा अमी षष्टिसहस्रनागा भवन्त्ववार्यां भुवि कामचाराः ।
यज्ञावनीशानदिशाप्रदत्तसुधोपमानाञ्जलिपूर्णवार्भिः ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्ष्वीं भूः षष्टिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्यः स्वाहा । इति नागतर्पणार्थमैशान्यां दिशि जलाञ्जलिं क्षिपेत् ।

ब्रह्मप्रदेशे निदधामि पूर्वं पूर्वादिकाष्ठासु पुनः क्रमेण ।
दर्भं जगद्दुर्गमजिनेन्द्रयज्ञविघ्नौघविध्वंसकृते समन्त्रम् ॥६॥

ॐ ह्रीं दर्भमथनाय नमः । इति ब्रह्मस्थानादिषु दर्भखण्डानव-स्थापयेत् ।

श्वेतं धूतं सान्तरीयोत्तरीयं धृत्वा नव्यं धारयेऽहं पवित्रम् ।
आलेप्यार्द्रं चन्दनं सर्वगात्रे सारं पुष्पं धारये चोत्तमाङ्गे ॥७॥

ॐ ह्रीं श्वेतवर्णे सर्वोपद्रवहारिणी सर्वजनमनोरञ्जिनी परि-धानोत्तरीये धारिणी हं हं झं झं वं वं सं सं तं तं पं पं परिधानोत्तरीये धारयामि स्वाहा । वस्त्रावरणम् ।

भावश्रुतोपासकदिव्यसूत्रं
द्रव्यं च सूत्रं च त्रिगुणं दधानः ।
मत्वेन्द्रमात्मानमुदारमुद्रां
श्रीकङ्कणं सन्मुकुटं दधेऽहम् ॥८॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा, इति मुद्राम् ।
ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा, इति कङ्कणम् ।
ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा, इति शेखरम् ।

संस्थाप्याढकवारिपूर्णकलशान् पद्मापिधानाननान्
प्राचो मध्यघटान्वितानुपहितान् सद्गन्धचूर्णादिभिः।
दोषाम्भःपरिपूरितांश्चतुरशः कोणेषु पद्माश्रितैः
कुम्भान्न्यस्य समङ्गलेषु निदधे तेषु प्रसूनं वरम् ॥९॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्ममहापद्मतिगिञ्छ-केसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीक—गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्ता-सीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णकूलारूप्यकूलारक्तारक्तोदा-क्षीराम्भोनिधि-जलं स्वर्णघटप्रक्षिप्तं गन्धपुष्पाद्यमामोदकं पवित्रं कुरु कुरु झ्रौं झ्रौं वं मं हं सं तं पं स्वाहा, इति जलशुद्धिं कुर्यात्।

ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा। इति कलश-स्थापनम्।

ॐ ह्रीं नेत्राय संवौषट्, इति कोणकुम्भेषु पुष्पाणि क्षिपेत्।

स्वच्छैस्तीर्थजलैरतुच्छसहजप्रोद्गन्धिगन्धैः सितैः
सूक्ष्मत्वायतिशालिशालिसदकैर्गन्धोद्गमैरुद्गमैः।
हव्यैर्नव्यरसैः प्रदीप्तिशुभैर्दीपैर्विंयद्धूपकै—
र्धूपैरिष्टफलावहैर्बहुफलैः कुम्भान् समभ्यर्चये ॥१०॥

ॐ ह्रीं नेत्राय संवौषट्, इति कलशानभ्यर्चयेत्।

हिरण्मयं हीरहरिन्मणीद्धश्रीपद्मरागादिविचित्रपार्श्वम्।
पीठं समुत्तुङ्गमिदं निवेश्य प्रक्षालयामः सलिलैः पवित्रैः ॥११॥

ॐ ह्रीं क्ष्मं ठ ठ, इति श्रीपीठं स्थापयेत्।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमत्पवित्रजलेन श्री-पीठप्रक्षालनं करोमि स्वाहा, इति श्रीपीठं प्रक्षालयेत्।

स्वच्छैस्तीर्थजलैरतुच्छसहजप्रोद्गन्धिगन्धैः सितैः
सूक्ष्मत्वायतिशालिशालिसदकैर्गन्धोद्गमैरुद्गमैः।

हव्यैर्नव्यरसैः प्रदीपितशुभैर्दीपैर्वियद्धूपकै—

धूपैरिष्टफलावहैर्बहुफलैः पीठं समभ्यर्चये ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा, इति श्रीपीठमभ्यर्चयेत् ।

नाकेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रभास्वत्कोटीरघृष्टोज्ज्वलपादपीठम् ।

आरोपये लोकजितं जिनेन्द्रं श्रीवर्णकीर्णाक्षतमध्यपीठम् ॥१३॥

ॐ ह्रीं श्रीलेखनं करोमि स्वाहा, इति श्रीवर्णमालिखेत् ।

ॐ ह्रीं धात्रे वषट्, इति श्रीपाद्यं स्पृष्ट्वा—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं

स्वाहा,

इति श्रीजिनबिम्बं श्रीवर्णे स्थापयेत् ।

आहूता भवनामरैरनुगता यं सर्वदेवास्तदा

तस्थौ यस्त्रिजगत्सभान्तरमहापीठाग्रसिंहासने ।

यं हृद्यं हृदि सन्निवाप्य सततं ध्यायन्ति योगीश्वरा—

स्तं देवं जिनमर्चितं कृतधियामावाहनार्थैर्भजे ॥ १४ ॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हं एहि एहि संवौषट् ।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हं तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हं मम सन्निहितो

भव भव वषट् ।

तीर्थोदकैर्जिनपादौ प्रक्षाल्य तदग्रे पृथगिमान्मंत्रानुच्चारयन्

पुष्पाञ्जलिं प्रयुञ्जीत ।

सुराचलाग्रे सुरपुंगवेन प्रक्लृप्तपाद्याचमनक्रियस्य ।

वारास्य कुर्वे चरणेऽत्र पाणौ पाद्यक्रियामाचमनक्रियां च ॥१५॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमोऽर्हते स्वाहा । पाद्यमन्त्रः ।

ॐ ह्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः स्वाहाः ।

आचमनमन्त्रः ।

भस्माम्बमृद्गोमयपिण्डदीपैरद्भिः फलैरक्षतमिश्रपुष्पैः ।
त्वां वर्धमानैः सहपात्रसंस्थैर्दर्भाग्निकीलैरवतारयेऽर्हन् ! ॥१६॥

ॐ ह्रीं नीराजनं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भगवान् स्वाहा, इति नीराजनं कुर्यात् ।

स्वच्छैस्तीर्थजलैरतुच्छसहजप्रोद्गन्धिगन्धैः सितैः
सूक्ष्मस्वायतिशालिशालिसदकैर्गन्धोद्गमैस्स्रुग्गमैः ।
हव्यैर्नव्यरसैः प्रदीपितशुभैर्दीपैर्वियद्धूपकै—
र्धूपैरिष्टफलावहैर्बहुफलैर्देवं समभ्यर्चये ॥ १७ ॥

ॐ नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा, इति जलैरभ्यर्चयेत् ।
ॐ नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा, इति गन्धैरभ्यर्चयेत् ।
ॐ नमोऽनादिनिधनेभ्यः स्वाहा, इत्यक्षतैरभ्यर्चयेत् ।
ॐ नमः सर्वनृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा, इति पुष्पैरभ्यर्चयेत् ।
ॐ नमोऽनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा, इति चरुभिरभ्यर्चयेत् ।
ॐ नमोऽनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा, इति दीपैरभ्यर्चयेत् ।
ॐ नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा, इति धूपैरभ्यर्चयेत् ।
ॐ नमोऽनन्तसौख्येभ्यः स्वाहा, इति फलैरभ्यर्चयेत् ।

अथ दिक्पालाह्वानम्—

उत्तुंगे शरदभ्रशुभ्रमुचितादभ्रस्फुरद्विभ्रमं
तं दिक्पात्रसुवल्लभं द्विपमुरूढं प्रगाढश्रियम् ।
दम्भोलिश्रितपाणिमप्रतिहताज्ञैश्वर्यविभ्राजितं
शच्यासंयुतमाह्वयामि मरुतामिन्द्रं जिनेन्द्राध्वरे ॥१८॥

ॐ ह्रीं क्रों सुवर्णवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे इन्द्र ! आगच्छ आगच्छ संवौषट् ।

ॐ ह्रीं क्रों.........तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं क्रों ....मम सन्निहितो भव भव वषट्, इन्द्राय स्वाहा, इन्द्रपरिजनाय स्वाहा, इन्द्रानुचराय स्वाहा, इन्द्रमहत्तराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, ॐ भू र्भुवः स्वः स्वाहा, इन्द्राय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गन्धं अक्षतान् पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं दधामहे प्रतिगृह्यतां इति स्वाहा।

शान्तिः सदास्तु तस्यायं देवो यस्य कुलेऽर्च्यते।

१—इन्द्राह्वानम्।

श्मश्रुकेशादिपिशङ्गवर्णं
निर्वर्णनामीलसशोणमूर्तिम्।
प्रस्तुज्वलज्वालजटालशक्तिं
स्वाहायुतं वह्निमिवाह्वयामि ॥१९॥

ॐ ह्रीं क्रों रक्तवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्न-सपरिवार हे अग्ने! आगच्छ आगच्छ संवौषट्, शेषं पूर्ववत्।

२—अग्न्याह्वानम्।

गवलयुगलधृष्टाम्भोदमारूढवन्तं
महितमहिषमुच्चैरञ्जनाद्रीन्द्रकल्पम्।
असितमहिषभूषं भीषणं चण्डदण्डं
विदितमदयधर्मं व्याह्वये धर्मराजम् ॥२०॥

ॐ ह्रीं क्रों कृष्णवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्न-सपरिवार हे यम! आगच्छ आगच्छ, शेषं पूर्ववत्।

३—यमाह्वानम्।

तमालनीलं पुरतोवलम्बि-
स्फुटत्सटाभारमुदारमृक्षम् ।
आरूढमामीलमुदृढशक्ति
वधूयुतं नैर्ऋतमाह्वयामि ॥२१॥

ॐ ह्रीं क्रों श्यामवर्णं सर्वलक्षणसम्पूर्णं स्वायुधवाहनवधूचिह्न-
सपरिवार हे नैर्ऋत ! आगच्छ, आगच्छ शेषं पूर्ववत् ।

४ – नैर्ऋताह्वानम् ।

करी कथंचिन्मकरः कथंचि-
त्सत्यापयेज्जैनकथंचिदुक्तिम् ।
यस्तं करिग्राह्मकरं गतोऽहि—
पाशोरुदैवे विश्रुतपाशपाणिः ॥२२॥

ॐ ह्रीं क्रों धवलवर्णं सर्वलक्षणसम्पूर्णं स्वायुधवाहनवधूचिह्न-
सपरिवार हे वरुण ! आगच्छ आगच्छ इत्यादि ।

५—वरुणाह्वानम् ।

यः पञ्चधाराचतुरं तुरंगं
समारुरोहोरुमहीरुहास्त्रः ।
तं वायुवेगीयुतवायुदेवं
व्याह्वानये व्याहतयागविघ्नम् ॥२३॥

ॐ ह्रीं क्रों कृष्णवर्णं सर्वलक्षणसम्पूर्णं स्वायुधवाहनवधूचिह्न-
सपरिवार हे पवन ! आगच्छ आगच्छ इत्यादि ।

६—पवनाह्वानम् ।

चारून्नतरत्नराजिभामराद्दितेन्द्रचापचित्रिताश
हारगौरराजहंसनीयमानमाननीयकेतनौघे।
व्योमयानमारूरोह यस्त्वमेष भूषणाभिराजमान
राजराज सर्वलोकराजराजयागमण्डपं समेहि ॥२४॥

ॐ ह्रीं क्रों पीतवर्णं सर्वलक्षणसम्पूर्णं स्वायुधवाहनवधूचिह्न-सपरिवार हे कुबेर! आगच्छ आगच्छ इत्यादि।

७—कुबेराह्वानम्।

कैलाशाचलसन्निभायतसितोत्तुङ्गाङ्गविभ्राजितं
पर्जन्योर्जितगर्जनं वृषममारूढं जगद्गूढकम्।
नागाकल्पमनल्पपिङ्गलजटाजूटार्धचन्द्रोज्ज्वलं
पार्वत्याः पतिमाह्वये त्रिनयनं भास्वत्त्रिशूलायुधम् ॥२५॥

ॐ ह्रीं क्रों धवलवर्णं सर्वलक्षणसम्पूर्णं स्वायुधवाहनवधूचिह्न सपरिवार हे ईशान! आगच्छ आगच्छ इत्यादि।

८—ईशानाह्वानम्।

ऐरावणोरुचरणातिपृथुत्वधर्मं
श्रीकूर्मवज्रनिभपृष्ठकृतप्रतिष्ठम्।
व्याह्वानये धवलमंकुशपाशहस्तं
पद्मापतिं फणिपतिं फणिमौलिचूलिम् ॥२६॥

ॐ ह्रीं क्रों धवलवर्णं सर्वलक्षणसम्पूर्णं स्वायुधवाहनवधूचिह्न-सपरिवार हे धरणेन्द्र! आगच्छ आगच्छ इत्यादि।

९—धरणेन्द्राह्वानम्।

अरुणसितसटौघभ्राजितश्वेतगात्र-
प्रखरनखररंहः सिंहमारूढवन्तम् ।
कुवलयमयमालं कान्तकान्तं सकुन्तं
सितनुतकरसान्द्रं चन्द्रमाह्वानयामि ॥२७॥

ॐ ह्रीं क्रों धवलवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे चन्द्र ! आगच्छ आगच्छ इत्यादि ।

१०—चन्द्राह्वानम् ।

इन्द्राग्निकालनिऋतारमरुत्पाशिवायु-
श्रीदेन्दुशेखरफणाधरराजचन्द्राः ।
अर्घ्यादिपूजनविधेर्भवत प्रसन्नाः
प्रत्यूहजालमपसारयताध्वरस्य ॥२८॥

ॐ ह्रीं क्रों इन्द्रादिदशदिक्पालकदेवा यजमानप्रभृतीनां शान्तिं कुरुत कुरुत स्वाहा ।

पूर्णार्घ्यः ।

अथाभिषेकविधिः—

येनोद्धृतं भव्यजगद्भवाब्धे-
रभ्युद्धृतं येन दुरन्तमेनः ।
पूर्णार्घमर्हन्तमिहाभिषेक्तुं
तं पूर्णकुम्भं वयमुद्धरामः ॥ २९ ॥

ॐ ह्रीं कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा ।

इति कलशमुद्धरेत् ।

यच्छानादिमहत्त्वनिर्मितमहत्त्वाकाशमेत्याम्भसां
व्याजाचन्द्रमिषिञ्चतीह जिनमित्याविष्कृताशङ्ककैः ।
अच्छाच्छैरपि शीतलैः सुमधुरैस्तीर्थोपनीतैर्जलैः
शान्त्यापादितवारिपूर्णमनघं देवं जिनं स्नापये ॥३०॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं हंसस्त्रैलोक्यस्वामिनो जलाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

१—जलाभिषेकः ।

तापध्वंसिभिरर्हदागमनिभैश्चोचाम्बुभिः शीतलैः
पुण्ड्रेक्षुप्रभवै रसैश्चमधुरैः सन्तुष्टिपुष्टिप्रदैः ।
चोचाद्युद्भफलप्रभूतसुरसैः सुस्वादुसौरभ्यकै-
र्नित्यानन्दरसैकतृप्तमरहद्देवं वरां स्नापये ॥३१॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सस्त्रिजगद्गुरोर्नालिकेरादिरसाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा ।

२—नालिकेरादिरसाभिषेकः ।

सौरभ्यं वरमार्द्रता यदि सुपर्णस्येह सम्पद्यते
तत्तेन ह्युपमीयते घृतमिदं नान्येन केनापि च ।
धीरैरित्यभिवर्णितेन महता हैयङ्गवीनेन वै
सिञ्चामो बलकान्तिपुष्टिसुखदं श्रेयस्करं श्रीजिनम् ॥३२॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सस्त्रैलोक्यस्वामिनो घृताभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

३—घृताभिषेकः।

आकृष्टत्वममर्त्यकैरसदृशं देवस्य सेवाकृते
मत्वेति स्वयमेत्य तं स्नपयति क्षीराम्बुराशिर्ध्रुवम्।
इत्युद्भावितशङ्कनैर्बहुशुभैः क्षीरैर्जिनं स्नापये
क्षीराभासुतनुं सुमेरुशिखरे क्षीराभिषेकाप्तये ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं हंसस्त्रैलोक्यस्वामिनः क्षीराभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

४—क्षीराभिषेकः।

लेश्या किं बहिरुद्गता जिनपतेः शुक्ला समुज्जृम्भणा-
दन्तर्मातुमशक्तितः किमथवा ध्याने नु शुक्लाह्वयम्
किं वा केवलनामधीः किमथवा तीर्थंकरं पुण्यमि-
त्याशङ्केन शशाङ्कदीधितिरुचा दध्ना जिनं स्नापये ॥२४॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सस्त्रैलोक्यस्वामिनो दधिस्नपनं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

५—दध्यभिषेकः।

काश्मीरकृष्णागरुसल्लवङ्ग—
निधाक्षतानामवधूल्यचूर्णैः।

शालेयचूर्णैर्हरिचन्द्रनार्द्रै—
उद्वर्तये स्नेहहरैर्जिनाङ्गम् ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः त्रैलोक्यस्वामिनः कल्कचूर्णेनोद्वर्तनं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

६—उद्वर्तनम्।

सपंचवर्णैर्वरवल्मपिण्डैर्निवर्त्यकार्तस्वरभाजनस्थैः।
नीराजनार्थैरपि पूर्वमुक्तैर्नीराजयामो भगवज्जिनेन्द्रम् ॥ २६ ॥

ॐ ह्रीं क्रों समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भगवान् स्वाहा।

७—नीराजनम्।

क्षीरद्रुमत्वक्कलितैः सुखोष्णैः कषायनीरैरभिषेचयामः।
कषायनाशोद्यदनन्तबोधं भवज्वरामूलविलोपनार्थम् ॥ २७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिभुवनपतेः कषायाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

८—कषायाभिषेकः।

विसेन बोधद्रुमपल्लवेन धामार्गवेणापि युतैः सुवार्भिः।
सहोद्धृतैः कोणघटैश्चतुर्भिः संस्थापये तच्चतुरसुबोधम् ॥ २८ ॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमोऽर्हते भगवते मङ्गललोकोत्तमशरणायकोणकलशजलाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

९—कोणकलशाभिषेकः।

मध्यस्थापितचारुभूषितबृहत्कुम्भीयगन्धाम्भसा—
सौरभ्याहृतचञ्चरीकनिचयैः पङ्कापनोदक्षमाम् ।
स्वामुद्धोषयतेव शक्तिमभितो भव्यात्मनां भूरिणा—
गंगाम्बोमरयोपमेन जगतामीशं जिनं स्नापये ॥ ३९ ॥

ॐ ह्रीं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा स्वधा ।

१०—गन्धोदकाभिषेकः ।

घातिव्रातविघातजातविपुलश्रीकेवलज्योतिषः
देवस्यास्य पवित्रगात्रकलनात्पूतं हितं मंगलम् ।
कुर्याद्भव्यभवार्तिदावशमनं स्वर्मोक्षलक्ष्मीफल—
प्रोद्यद्धर्मलताभिवर्धनमिदं सद्गन्धगन्धोदकम् ॥४०॥

निःशेषाभ्युदयोपभोगफलवत्पुण्यांकुरोत्पादकं
धृत्वा पंकनिवारकं भगवतः स्नानोदकं मस्तके ।
ध्यातौ सर्वमुनीश्वरैरभिनुतौ प्रेक्षावतामर्चिता—
विन्द्राद्यैर्मुहुरर्चितौ जिनपतेः पादौ समभ्यर्चये ॥४१॥

ॐ नमोऽर्हत्परमेष्ठिभ्यो मम सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा ।

आत्मपवित्रीकरणम् ।

ॐ ह्रीं श्वानत्भ्योऽभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा ।

पुष्पाञ्जलिः ।

यत्रागाधविशालनिर्मलगुणे लोकत्रयं सर्वदा
सालोकं प्रतिबिम्बितं प्रविशतां नित्यामृतानन्दनम् ।
सर्वाब्ज्ञानिमिषास्पदं स्मृतिगतं तापापहं धीमता-
मर्हत्तीर्थमपूर्वमक्षयपदं वार्धारया धारये ॥ ४२ ॥

ॐ ह्रीं परमब्रह्मणे अनन्तानन्तज्ञानशक्तये जलम् ॥ १ ॥

गन्धश्चन्दनगन्धबन्धुरतरो यद्दिव्यदेहोद्भवो—
गन्धर्वाद्यमरस्तुतो विजयते गन्धान्तरं सर्वतः ।
गन्धादीनखिलानवैति विशदं गन्धाद्विमुक्तोऽपि य-
स्तं गन्धाद्यघगन्धमात्रहतये गन्धेन सम्पूजये ॥४३॥

ॐ ह्रीं सहजसौगन्ध्यबन्धुराय गन्धम् ॥ २ ॥

इन्द्राहीन्द्रसमर्चितैरनुपमैर्दिव्यैर्वलक्षाक्षतै—
र्यस्य श्रीपदसन्नखेन्दुसविधेनक्षत्रजालायितम् ।
ज्ञानं यस्य समक्षमक्षतमभूद्वीर्यं सुखं दर्शनं
यायज्म्यक्षतसम्पदे जिनमिमं सूक्ष्माक्षतैरक्षतैः ॥४४॥

ॐ ह्रीं अक्षतफलप्रदाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

यस्य द्वादशयोजने सदसि सद्गन्धादिभिः स्वोपमा—
नप्यर्थात्सुमनो गणान् सुमनसां वर्षन्ति विष्वक्सदा ।
यः सिद्धिं सुमनःसुखं सुमनसां स्वं ध्यायतामावहे—
त्तं देवं सुमनोमुखैश्च सुमनोभेदैः समभ्यर्चये ॥४५॥

ॐ ह्रीं सुमनसुखप्रदाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

यद्व्याबाधविवर्जितं निरुपमं स्वात्मोत्थमत्यूर्जितं
नित्यानन्दसुखेन तेन लभते यस्तृप्तिमात्यन्तिकीम् ।
यं चाराध्य सुधाशिनो ननु सुधास्वादं लभन्ते चिरं
तस्योद्यद्रसचारुणैव चरुणा श्रीपादमाराधये ॥४६॥

ॐ ह्रीं अनन्तानन्तसुखसन्तृप्ताय चरुम् ॥ ५ ॥

स्वस्यान्यस्य सहप्रकाशनविधौ दीपोपमेऽप्यन्वहं
यः सर्वं ज्वलयन्ननन्तकिरणैस्त्रैलोक्यदीपोऽस्त्यतः।
येनोद्दीपितधर्मतीर्थममवत्सत्यं विभोस्तस्य स—
दीप्त्या दीपितदिङ्मुखस्य चरणौ दीपैः समुद्दीपये ॥४७॥

ॐ ह्रीं अनन्तदर्शनाय दीपम् ॥ ६ ॥

येनेदं भुवनत्रयं चिरमभूद्दूपितं सोऽप्यहो
मोहो येन सुधूपितो निजमहाध्यानाग्निना निर्दयम् ।
यस्यास्थानपथस्य धूपघटजैर्धूमैर्जगद्धूपितं
धूपैस्तस्य जगद्वशीकरणसद्धूपैः पदं धूपये ॥ ४८ ॥

ॐ ह्रीं वशीकृतत्रिलोकनाथाय धूपम् ॥ ७ ॥

यद्भक्त्या फलदायि पुण्यमुदितं पुण्यं नवं बध्यते
पापं नैव फलप्रदं किमपि नो पापं नवं प्राप्यते ।
आर्हन्त्यं फलमद्भुतं शिवसुखं नित्यं फलं लभ्यते
पादौ तस्य फलोत्तमादिसुफलैः श्रेयः फलायार्च्यते ॥४९॥

ॐ ह्रीं अभीष्टफलप्रदाय फलम् ॥ ८ ॥

मंगं लाति मलं च गालयति यन्मुख्यं ततो मंगलं
देवोऽर्हन् वृषमंगलोऽभिविनुतस्तैर्मङ्गलैः साधुभिः ।
चञ्चच्चामरतालवृन्तमुकुरैर्मुख्यैतरैर्मङ्गलै—
र्मुख्यं मंगलमिद्धसिद्धसुगुणान् सम्प्राप्तुमाराध्यते ॥५०॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अर्हन्त इदं सकलमङ्गलद्रव्यार्चनं गृह्णीष्व गृह्णीष्व नमः परममङ्गलेभ्यः स्वाहा अर्घ्यम् ॥ ९ ॥

ज्वलितसकललोकालोकलोकोत्तरश्री—
कलितललितमूर्ते कीर्तितेन्द्रैर्मुनीन्द्रैः ।
जिनवर ! तव पादोपान्ततः पातयामो
भवदवशमनार्थामर्थतः शान्तिधाराम् ॥ ५१ ॥

शान्तिकृद्भ्यः स्वाहा शान्तिधाराम् ॥ १० ॥

पुष्पेषोरिषवो वयं पुनरिदं पुष्पेषुनिष्पेषकं
निष्पीतानि मधुव्रतैर्वयमिदं निष्पापसंसेवितम्।
इत्यालोच्य नमन्त्यपास्य मदमित्याशङ्कयन्तीश ! ते
निष्पीताखिलतत्त्वपादकमले पुष्पाणि निष्पातये ॥ ५२ ॥

ॐ ह्रीं अर्हन्तः इदं पुष्पाञ्जलिप्रार्चनं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं नमोऽर्हद्भ्यो ध्यातृभ्योऽभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा पुष्पाञ्जलिः ॥ ११ ॥

इत्येकादशविधमहः।

अथ श्रुतपूजा—

अपौरुषेयानखिलानदोषानशेषविद्भिर्विहितप्रकाशान्।
प्रकाशितार्थान् प्रयजे प्रमाणं प्रवेदयद्द्वादशदिव्यवेदान् ॥५३॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं र्हं ह्सौ ह्सं सरस्वति सर्वशास्त्रप्रकाशिनि वद वद वाग्वादिनि अत्रावतर अवतर संवौषट् नमः सरस्वत्यै स्वाहा।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं र्हं ह्सौ ह्सं सरस्वति सर्वशास्त्रप्रकाशिनि वद वद वाग्वादिनि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः नमः सरस्वत्यै स्वाहा।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं र्हं ह्सौ ह्सं सरस्वति सर्वशास्त्रप्रकाशिनि वद वद वाग्वादिनि मम सज्ज्ञानं कुरु कुरु ॐ नमः सरस्वत्यै स्वाहा।

ॐ ह्रीं शब्दब्रह्मणे जलं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं शब्दब्रह्मणे गन्धं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं शब्दब्रह्मणे अक्षतान् निर्वपामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं शब्दब्रह्मणे पुष्पं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं शब्दब्रह्मणे चरुं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं शब्दब्रह्मणे दीपं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं शब्दब्रह्मणे धूपं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं शब्दमक्षये फलं निर्वपामि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं शब्दमक्षये अर्घ्यं निर्वपामि ।

शान्तिधारां पुष्पाञ्जलिम् ।

अथ गणधरपूजा—

ये येऽनगारा ऋषयो यतीन्द्रा मुनीश्वरा भव्यभवव्यतीताः ।
तेषां समेषां पदपङ्कजानि सम्पूजयामो गुणशीलसिद्ध्यै ॥५४॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपवित्रतरगात्रचतुरशीतिगुणगण धरचरणा आगच्छत आगच्छत संवौषट् ।

ॐ ह्रीं सम्य० अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ।

ॐ ह्रीं सम्य० मम रत्नत्रयशुद्धिं कुरुत कुरुत वषट् ।

ॐ ह्रीं गणधरचरणेभ्यो जलं निर्वपामि स्वाहा ॥ १ ॥

एवं गन्धादि ।

अथ यक्षपूजा;—

यक्षं यजामो जिनमार्गरक्षादक्षं सदा भव्यजनैकपक्षम् ।
निर्दग्धनिःशेषविपक्षकक्षं प्रतीक्ष्यमत्यक्षसुखे विलक्षम् ॥५५॥

ॐ ह्रीं हे यक्ष ! अत्रागच्छागच्छ संवौषट् ।

ॐ ह्रीं हे यक्ष ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं हे यक्ष ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

ॐ ह्रीं यक्षाय इदमर्घ्यं पाद्यं गन्धं अक्षतं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा ॥ २ ॥

अथ यक्षीपूजा —

यक्षीं सपक्षीकृतभव्यलोकां लोकाधिकैश्वर्यनिवासभूताम् ।
भूतानुकम्पादिगुणानुमोदां मोदाञ्चितामर्चनमातनोमि ॥५६॥

ॐ ह्रीं हे यक्षि ! अत्रागच्छागच्छ संवौषट् ।

ॐ ह्रीं हे यक्षि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ।

ॐ ह्रीं हे यक्षि ! अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट् ।

ॐ ह्रीं हे यक्षीदेवि ! इदं जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं नैवेद्यं दीपं धूपं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं यजामहे प्रतिगृह्यतां २ स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ ब्रह्मपूजा—

यः सारसम्यग्गुणलक्षणेन ब्रह्माणमेकं भजते जिनेन्द्रम् ।
ब्रह्माणमेनं परिपूजयामस्तं ब्रह्मविद्विघ्नविघातरक्षम् ॥ ५७ ॥

ॐ ह्रीं हे ब्रह्मन् ! आगच्छ आगच्छ संवौषट् ।

ॐ ह्रीं हे ब्रह्मन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ।

ॐ ह्रीं हे ब्रह्मन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

ॐ ह्रीं ब्रह्मणे इदमर्घ्यं पाद्यं गन्धं अक्षतं पुष्पं नैवेद्यं दीपं धूपं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा ॥ ४ ॥

इति नित्यमहः सम्पूर्णः—

इन्द्रनन्दियोगीन्द्र-प्रणीतं

जिनस्नपनम् ।

(१०)

सिद्धानाराध्य सद्भावस्थापनायां जिनेशिनः ।
स्नपनं विधिनद्धिस्वहितार्थं वितनोम्यहम् ॥ १ ॥

तत्र प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन्नुत्क्षिप्य कुसुमाञ्जलिम् ।
शुद्ध्यं तत्स्नपनक्षेत्रमासिच्यामलवारिभिः ॥ २ ॥

भुवं संशोधयाम्यग्निर्दर्भै प्रक्षालयाम्यहम् ।
पुनामि तेन भूभागं प्रीणामि सुधयोरगान् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं ह्रैं नमः सर्वज्ञाय सर्वलोकनाथाय धर्मतीर्थंकराय श्रीशान्तिकराय परमपवित्रेभ्यः शुद्धेभ्यो नमो भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा ।

ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्निकुमाराय भूमिं ज्वालय ज्वालय स्वाहा ।

ॐ ह्रीं वायुकुमाराय महीं पूतां कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं भूः षष्टिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्योऽमृताञ्जलिं प्रसिञ्चामि स्वाहा ।

दर्भान् विनिक्षिपे दिक्षु जलार्थैर्मेदिनीं यजे ।
मुद्रां संधारयाम्यादौ कंकणं कलयाम्यहम् ॥ ४ ॥

ॐ दर्पमथनाय नमः । इति नवदर्भस्थापनम् ।

ॐ नीरजसे नमः (जलं), शीलगन्धाय नमः (गन्धं), अक्षताय नमः (अक्षतं), विमलाय नमः (पुष्पं), परमसिद्धाय नमः (नैवेद्यं) ज्ञानोद्योताय नमः (दीपं), श्रुतधूपाय नमः (धूपं), अभीष्टफलदाय नमः (फलं), इति भूम्यर्चनम् ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा । मुद्रिकाम् ।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा । कंकणम् ।

शिरोरं सन्दधाम्येष ब्रह्मसूत्रं वहामि तत् ।
कोणेषु कलशान् न्यस्य तोयाद्यैरर्चयामि तान् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्राय स्वाहा । शिरोरम् ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय स्वाहा । यज्ञोपवीतसंधारणम् ।

ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा । (कलशस्थापनम्) ।

ॐ ह्रीं नेत्राय संवौषट्—कलशार्चनम् ।

स्थापयाम्यवनौ पीठं वारिणा क्षालयामि तत् ।
पीठे विनिक्षिपे दर्भान् यजे पीठं जलादिभिः ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं हं क्ष्मं ठ ठ श्रीपीठस्थापनं करोमि स्वाहा ।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः पवित्रतरजलेन पीठप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ।

ॐ दर्पमथनाय नमः—पीठदर्भः ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शज्ञानचारित्राय स्वाहा—पीठार्चनम् ।

श्रीवर्णं निदधे तत्र जिनेन्द्रार्चां स्पृशाम्यहम् ।
अर्हन्तं स्थापये पीठे जिनांघ्री क्षालमाम्यहम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं हं श्रीं नमः श्रीलेखनं करोमि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं हं श्रीं नमः श्रीयंत्रं पूजयामि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं हं श्रीं नमः श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनं करोमि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं हं श्रीं नमः पादप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ।

आह्वयाम्यहमर्हन्तं स्थापयामि जिनेश्वरम् ।
सन्निधीकरणं कुर्वे पंचमुद्रान्वितं महे ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं र्हं अर्हन् ! आगच्छ आगच्छ संवौषट् नमोऽर्हते स्वाहा—आह्वानम् ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं र्हं अर्हन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ नमोऽर्हते स्वाहा—स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं र्हं अर्हन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् नमोऽर्हते स्वाहा—सन्निधीकरणम् ।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः—पंचगुरुमुद्रावतारणम् ।

पाद्यमापाद्याम्बद्भिस्तनोम्याचमनक्रियाम् ।
अक्षतैः पुष्पसम्मिश्रैरर्हन्तमवतारये ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं र्हं नमः पाद्यमर्घ्यं च करोमि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं क्ष्वीं वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः स्वाहा आचमनम् ।

ॐ ह्रीं र्हं बहुविधाक्षतपुष्पौघपूर्णपाणिपात्रेण भगवदर्हतोऽवतरणं करोमि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राण्यस्माकमुत्पादमितुमक्षतानि विदधातु भगवान् स्वाहा ॥ १ ॥

कुर्वे गोमयपिण्डेन सदूर्वेणावतारणम् ।
आद्यावतारणं भर्तुः कुर्मो गोमयभस्मना ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं दूर्वांकुराक्षतसितसर्षपयुक्तैर्हरितगोमयपिण्डकैर्भगवतोऽर्हतोऽवतरणं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भगवान् स्वाहा—गोमयपिण्डावतरणम् ।

ॐ ह्रीं भस्मपिण्डकैर्भगवतोऽर्हतोऽवतरणं करोम्यस्माकमष्टविधकर्माणि भस्मीकरोतु भगवान् स्वाहा—भस्मपिण्डावतरणम् ।

गन्धशालिसमुत्पन्नैस्तनोम्यन्नावतारणम् ।
हिमकुङ्कुमकर्पूरक्षोदैरप्यवतार्यते ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं कुन्देन्दुकुमुदधवलवर्तुलौदनपिण्डकैर्भगवतोऽर्हतोऽवतरणं करोमि क्षेमसुभिक्षमस्माकं करोतु भगवान् स्वाहा—शाल्यपिण्डावतरणम् ।

ॐ ह्रीं सुरभिशिशिरविमलसलिलपरिपूर्णेनाञ्जलिना भगवतोऽर्हतोऽवतरणं करोमि विमलशीलध्यानमस्माकमुत्पादयतु भगवान् स्वाहा—सलिलाञ्जल्यवतरणम् ।

अवतारो जिनेन्द्रस्य दीपरत्नैर्विधीयते ।
देवोऽवतार्यते पुष्पैर्गन्धोदकसमन्वितैः ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं पद्मरागमणिभिरिव देदीप्यमानैः कर्पूरादिदीपैरुभयपार्श्वप्रज्वलितया कल्कया भगवतोऽर्हतोऽवतरणं करोम्यस्माकं धर्ममुज्ज्वलं करोतु भगवान् स्वाहा—दीपावल्यवतरणम् ।

मातुलुंगादिभिः पक्वैः फलैः समवतारये ।
भक्त्यावतारयामीदं सिद्धार्थैर्वर्धमानकैः ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं पवित्ररससमुत्पन्नैः क्रमुकनालिकेरमातुलिंगपनसदाडिमजम्ब्वाम्रफलैर्भगवतोऽर्हतोऽवतरणं करोम्यस्माकमाशाफलमुत्पादयतु भगवान् स्वाहा—फलावतरणम् ।

ॐ ह्रीं सितहरितपीतकृष्णलोहितैर्वर्धमानकैर्भगवतोऽर्हतोऽवतरणं करोमि श्रियमस्माकं वर्धमानं करोतु भगवान् स्वाहा—वर्धमानकावतरणम्

ज्वलज्ज्वलनदीप्तान्तैर्दर्भैः समवतार्यते ।
निष्पातयामि पुष्पेषु क्षिपः पुष्पाञ्जलिं क्षिपे ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं कनककनककपिशावर्णैरस्माबलम्नाग्निज्वालाज्ज्वलिताखिलदिङ्मुखैः पापारातिकुलोन्मूलदाहकैर्निबिडनिबद्धदर्भपूलैर्नीराजन-

विधिना भगवतोऽर्हतोऽवतरणं करोम्यात्मोज्ज्वलनमस्माकं करोतु भगवान् स्वाहा—दर्भदीर्घांकुरावतरणम् ।

ॐ ह्रीं दूर्वांकुराक्षतसितसर्षपपुष्कैः मृत्पिण्डकैर्भगवतोऽर्हतो वतरणं करोमि सर्वसस्यां वसुधां करोतु भगवान् स्वाहा-मृत्पिण्डावतरणम्

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अर्हन्त इमं पुष्पाञ्जलिं प्रार्चनं गृह्णीष्वं गृह्णीष्वं नमोऽर्हद्भ्यः स्वाहा—पुष्पाञ्जलिः ।

ॐ पूजयामो जलैः पूतैर्यजामश्चन्दनैर्वरैः ।
अर्चयामोऽक्षतैः शुभ्रैरम्भोभिः कुसुमैः शुभैः ॥ १५ ॥
चारुणा चरुणार्चामो दीप्रैर्दीपैर्यजामहे ।
महयामो वरैर्धूपैश्चाययामो निर्मलैः फलैः ॥ १६ ॥

ॐ ह्रीं ह्रं नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं ह्रं नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं ह्रं नमोऽनादिनिधनेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं ह्रं नमः सर्वनृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं ह्रं नमोऽनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं ह्रं नमोऽनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं ह्रं नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं ह्रं नमोऽनन्तसौख्येभ्यः स्वाहा ।
ॐ ह्रीं ह्रं नमोऽर्घ्यं निर्वपामि स्वाहा ।

आह्वयामि सुराधीशं स्वाहानाथं समाह्वये ।
समाह्वयामि कीनाशं नैर्ऋतिं व्याहराम्यहम् ॥ १७ ॥
आहूयते पयोराशिर्वायुर्व्याह्रीयते मया ।
कुर्वे वैश्रवणाह्वानमीशानं व्याहरामहे ॥ १८ ॥
व्याहरे फणिनामीशमाह्वये रोहिणीपतिम् ।
अम्भोभिः सम्भृतः कुम्भः शुम्भन्नुद्ध्रियते मया ॥ १९ ॥

ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिह्न-सपरिवारा इन्द्राग्नियमनैर्ऋत्यवरुणवायुकुबेरेशानधरणेन्द्रचन्द्राः ! आगच्छत आगच्छत संवौषट्, अत्र स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठ ठ, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्, हे इन्द्रादिदशलोकपालका इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा—इन्द्रादिदश-दिक्पालाह्वानम् ।

ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा—कलशोद्धरणम् ।

अम्भसा शोभमानेन स्वयंभूरभिषूयते ।
चोचाम्भसाभिषिञ्चामि स्वच्छेन त्रिजगद्गुरुम् ॥२०॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं झ्वीं क्ष्वीं हंसः अ सि आ उ सा अर्हं नमः पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि।

सलिले चेत्यादि…………………… ।
………………………………………… ॥१॥

ॐ ह्रीं……………पवित्रतरनालिकेररसेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

सुधारसोपमैर्देवं स्नापयाम्यैक्षवैः रसैः ।
स्नापयामि रसैश्चौतैः पूतैर्भुक्तिवधूपतिम् ॥२१॥

ॐ ह्रीं……………पवित्रतरेक्षुरसेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।
ॐ ह्रीं……………पवित्रतरचूतरसेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

आमोदिभिर्जिनेन्द्रस्य घृतैः कुर्वेऽभिषेचनम् ।
अर्हन्तं स्नापये क्षीरैः शरज्ज्योत्स्नानुकारिभिः ॥२२॥

ॐ ह्रीं……………पवित्रतरघृतेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।
ॐ ह्रीं……………पवित्रतरक्षीरेण जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

चन्द्रकान्तशिलाशुभ्रैर्दधिभिः स्नापये जिनम् ।
स्नेहो न्यपोह्यते गन्धैस्तनौ लग्नो जिनेशिनः ॥२३॥

ॐ ह्रीं..............पवित्रतरदध्नाजिनमभिषेचयामि स्वाहा ।
ॐ ह्रीं

कर्पूरचन्दनोन्मिश्रैः पिष्टैरुद्वर्त्यते पुनः ।
वर्णाद्यप्रमुखैर्द्रव्यैर्भव्यभानुर्निवर्त्यते ॥२४॥

ॐ ह्रीं पवित्रतरसुगन्धशालिपिष्टेन जिनाङ्गमुद्वर्तनं करोमि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं क्रों समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भगवान् स्वाहा ।

जिनेशः क्षीरवृक्षत्वगम्भोभिरभिषिच्यते ।
अभिषेकं चतुःकोणगतैः कुम्भैर्विदध्महे ॥२५॥

ॐ ह्रीं..............पवित्रतरकषायोदकेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं..............पवित्रतरचतुष्कोणकुंभजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ।

शंभुं समभिषिञ्चामि गन्धाम्भःकुम्भधारया ।
उत्तमाङ्गं समासिच्य जिनस्नानीयवारिणा ॥२६॥

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा ह्रं नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु तुष्टिं कुरु कुरु पुष्टिं कुरु कुरु सर्वविघ्नविनाशनं कुरु कुरु स्वाहा, श्रीशान्तिरस्तु, शिवमस्तु, जयोऽस्तु, नित्यमारोग्यमस्तु, सहपुष्टिसमृद्धिरस्तु, कल्याणमस्तु, शुभमस्तु, अभिवृद्धिरस्तु, दीर्घायुरस्तु, कुलगोत्रधनं सदास्तु ।

❋ इति स्नपनम् ❋

सकलकीर्ति-विरचितो
रत्नत्रयाद्यभिषेकः ।

(११)

१—रत्नत्रयाभिषेकः ।

व्योमापगादितीर्थोद्भवेनातिस्वच्छवारिणा ।
रत्नत्रयं जगत्पूज्यं भक्त्या संस्नापयाम्यहम् ॥ १ ॥
तीर्थोदकाभिषेकः ।

सद्यः पीलितपुण्ड्रेक्षुरसेन शर्करादिना ।
रत्नत्रयं जगत्पूज्यं भक्त्या संस्नापयाम्यहम् ॥ २ ॥
रसाभिषेकः ।

कनत्काञ्चनवर्णेन सद्यः सन्तप्तसर्पिषा ।
रत्नत्रयं जगत्पूज्यं भक्त्या संस्नापयाम्यहम् ॥ ३ ॥
घृताभिषेकः ।

सद्गोक्षीरप्रवाहेन शुक्लध्यानाकरेण वा ।
रत्नत्रयं जगत्पूज्यं भक्त्या संस्नापयाम्यहम् ॥ ४ ॥

दुग्धाभिषेकः ।

हिमपिण्डसमानेन दध्ना पुण्यफलेन वा ।
रत्नत्रयं जगत्पूज्यं भक्त्या संस्नापयाम्यहम् ॥ ५ ॥

दध्यभिषेकः ।

हेमोत्पन्नचतुःकुम्भैर्नानातीर्थाम्बुपूरितैः ।
रत्नत्रयं जगत्पूज्यं भक्त्या संस्नापयाम्यहम् ॥ ६ ॥

कलशाभिषेकः ।

दिव्यद्रव्योघमिश्रेण सुगन्धेनाच्छवारिणा ।
रत्नत्रयं जगत्पूज्यं भक्त्या संस्नापयाम्यहम् ॥ ७ ॥

गन्धोदकाभिषेकः ।

इत्यभिषिच्य दग्ज्ञानवृत्तान्यभ्यर्चयन्ति ये ।
जगत्त्रयसुखं भुक्त्वा स्युस्ते चिराद्धितन्मयाः ॥ ८ ॥

पूर्णार्घः ।

● इति रत्नत्रयस्नपनविधिः । ●

२—श्रुतस्नपनविधिः ।

व्योमापगादितीर्थोद्भवेनातिस्वच्छवारिणा ।
जिनेन्द्रमुखजां वाणीं सिञ्चे विश्वैकमातृकाम् ॥ १ ॥

तीर्थोदकाभिषेकः ।

सद्यःपीलितपुण्ड्रेक्षुरसेन शर्करादिना ।
जिनेन्द्रमुखजां वाणीं सिञ्चे विश्वैकमातृकाम् ॥ २ ॥

रसाभिषेकः ।

कनत्काञ्चनवर्णेन सद्यःसंतप्तसर्पिषा ।
जिनेन्द्रमुखजां वाणीं सिञ्चे विश्वैकमातृकाम् ॥ ३ ॥

घृताभिषेकः ।

सद्गोक्षीरप्रवाहेन शुक्लध्यानाकरेण वा ।
जिनेन्द्रमुखजां वाणीं सिञ्चे विश्वैकमातृकाम् ॥ ४ ॥

दुग्धाभिषेकः ।

हिमपिण्डसमानेन दध्ना पुण्यफलेन वा ।
जिनेन्द्रमुखजां वाणीं सिञ्चे विश्वैकमातृकाम् ॥ ५ ॥

दध्यभिषेकः ।

हेमोत्पन्नचतुःकुम्भैर्नानातीर्थाम्बुवारिभिः ।
जिनेन्द्रमुखजां वाणीं सिञ्चे विश्वैकमातृकाम् ॥ ६ ॥

कलशाभिषेकः ।

दिव्यद्रव्यौघमिश्रेण सुगन्धेनाच्छवारिणा ।
जिनेन्द्रमुखजां वाणीं सिञ्चे विश्वैकमातृकाम् ॥ ७ ॥

गन्धोदकाभिषेकः ।

इतिश्रीभारतीं जैनीं येऽभिषिच्य यजन्ति ते
विज्ञाय द्वादशाङ्गानि वै स्युः केवलिनोऽचिरात् ॥ ८ ॥

पूर्णार्घः ।

---

* इति श्रुतस्नपनविधिः । *

३—गणधरपादुकास्नपनविधिः ।

व्योमापगादितीर्थोद्भवेनातिस्वच्छवारिणा ।
अभिषिञ्चे जगत्पूज्यान् गणेन्द्रचरणान् मुदा ॥ १ ॥

तीर्थोदकाभिषेकः ।

सद्यःपीलितपुण्ड्रेक्षुरसेन शर्करादिना ।
अभिषिञ्चे जगत्पूज्यान् गणेन्द्रचरणान् मुदा ॥ २ ॥

रसाभिषेकः ।

कनत्काञ्चनवर्णेन सद्यःसन्तप्तसर्पिषा ।
अभिषिञ्चे जगत्पूज्यान् गणेन्द्रचरणान् मुदा ॥३॥
घृताभिषेकः ।

सद्गोक्षीरप्रवाहेन शुक्लध्यानाकरेण वा ।
अभिषिञ्चे जगत्पूज्यान् गणेन्द्रचरणान् मुदा ॥४॥
दुग्धाभिषेकः ।

हिमपिण्डसमानेन दध्ना पुण्यफलेन वा ।
अभिषिञ्चे जगत्पूज्यान् गणेन्द्रचरणान् मुदा ॥५॥
दध्यभिषेकः ।

हेमोत्पन्नचतुःकुम्भैर्नानातीर्थाम्बुपूरितैः ।
अभिषिञ्चे जगत्पूज्यान् गणेन्द्रचरणान् मुदा ॥६॥
कलशाभिषेकः ।

दिव्यद्रव्यौघमिश्रेण सुगन्धेनाच्छवारिणा ।
अभिषिञ्चे जगत्पूज्यान् गणेन्द्रचरणान् मुदा ॥७॥
गन्धोदकाभिषेकः ।

स्नापयित्वेति तोयाद्यैर्येऽर्चयन्ति गर्णि क्रमात् ।
प्राप्य विश्वोन्नता भूतीर्भवन्ति तत्समाः क्रमात् ॥८॥
पूर्णार्घः ।

---

* इति गणधरपादुकास्नपनविधिः *

भट्टारकशुभचन्द्र-प्रणीतः
सिद्धचक्राभिषेकः ।

(१२)

अनन्तरूपं सुगुणैः समग्रं कर्मारिभेत्तारमहं सुमन्त्रैः ।
संस्थापये श्रीशिवसातधारं सिद्धं विशुद्धं परमात्मरूपम् ॥१॥

ॐ णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्नत्र अवतर अवतर संवौषट्, आह्वाननम् ।

ॐ णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्नत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, संस्थापनम् ।

ॐ णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्नत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्, सन्निधापनम् ।

नत्वा सिद्धं विशुद्धेद्धं चिन्मात्रं लोकमूर्ध्वगम् ।
तदग्रे स्थापये कुम्भं वार्भिः पूर्णं हिरण्यजम् ॥२॥

ॐ चतुष्कलशस्थापनम् ।

गङ्गादिवरपानीयैर्हिमचन्दनशीतलैः ।
शुद्धात्मपदारूढं स्नापयाम्यजमुत्तमम् ॥३॥

शुद्धोदकाभिषेकः ।

वनगन्धाक्षतपुष्पैर्नैवेद्यैर्दीपधूपफलनिचयैः।
चाये सिद्धं सिद्धचै कर्माष्टकभावनिर्मुक्तम् ॥४॥

—अर्घम्।

पुण्ड्रेक्षुनालिकेरादिरसै रम्यैः शुभावहैः।
शुद्धात्मपदारूढं स्नानपयाम्यजमुत्तमम् ॥५॥

इक्षुरसाभिषेकः।

वनगन्धाक्षतपुष्पैर्नैवेद्यदीपधूपफलनिचयैः।
चाये सिद्धं सिद्धचै कर्माष्टकभावनिर्मुक्तम् ॥६॥

—अर्घम्।

सर्वांगपुष्टिदै रम्यैराज्यैर्घ्राणादितर्पिथैः।
शुद्धात्मपदारूढं स्नापयायजमुत्तमम् ॥७॥

घृताभिषेकः।

वनगन्धाक्षतपुष्पैर्नैवेद्यदीपधूपफलनिचयैः।
चाये सिद्धं सिद्धचै कर्मा कभावनिर्मुक्तम् ॥८॥

—अर्घम्।

शुभ्रैः स्निग्धैर्वरक्षीरैः शुक्लध्यानोज्वलैः परैः।
शुद्धात्मपदारूढं स्नापयाम्यजमुत्तम ॥९॥

दुग्धाभिषेकः।

वनगन्धाक्षतपुष्पैर्नैवेद्यदीपधूपफलनिचयैः।
चाये सिद्धं सिद्धचै कर्माष्टकभावनिर्मुक्तम् ॥१०॥

—अर्घम्।

पुण्यपिण्डैरिवाखण्डैः स्थिरैर्दधिभिरुत्तमैः ।
शुद्धात्मपदारूढं स्नापयाम्यजमुत्तमम् ॥११॥

दध्यभिषेकः ।

जलगन्धाक्षतपुष्पैर्नैवेद्यदीपधूपफलनिचयैः ।
यजे सिद्धं सिद्ध्यै कर्माष्टकभावनिर्मुक्तम् ॥१२॥

—अर्घम् ।

लवङ्गैलासुकर्पूरचूर्णैः पूर्णैः सुगन्धिभिः ।
शुद्धात्मपदारूढं स्नापयाम्यजमुत्तमम् ॥ १३ ॥

सर्वौषध्यभिषेकः ।

चतुर्वर्गैरिवोद्धृतैश्चतुष्ककलशामृतैः ।
शुद्धात्मपदारूढं स्नापयाम्यजमुत्तमम् ॥ १४ ॥

चतुःकलशाभिषेकः ।

जलगन्धाक्षतपुष्पैर्नैवेद्यदीपधूपफलनिचयैः ।
यजे सिद्धं सिद्ध्यै कर्माष्टकभावनिर्मुक्तम् ॥ १५ ॥

—अर्घम् ।

कर्पूरचन्दनद्रव्यैर्व्यक्तैर्गन्धोदकैः शुभैः ।
शुद्धात्मपदारूढं स्नापयाम्यजमुत्तमम् ॥ १६ ॥

ॐ नमो भगवते सिद्धाय सकलकर्मप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेश-बन्धरूपरजोमुक्ताय शान्ताय शान्तये विश्वरूपतेय ? ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः

अनाहतपराक्रमाय कर्मदहनाय मम शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

गन्धोदकाभिषेकः।

वनगन्धाक्षतपुष्पैर्नैवेद्यदीपधूपफलनिचयैः।
यायै सिद्धं सिद्धयै कर्माष्टकभावनिर्मुक्तम्॥ १७॥

—अर्घम्।

यदङ्गसंगितो येन याति पापं नृणां क्षणात्।
तदर्पये निजे मूर्ध्न्यवतिष्ठति कथं मम॥ १८॥

गन्धोदकवन्दनम्।

स्नापयित्वेति ये भक्त्या यायन्ते सिद्धनायकम्।
भुक्त्वा स्वर्भूपदं मुक्तौ सुखायन्ते हितैषिणः॥ १९॥

इत्याशीर्वादः।

---

* इति सिद्धचक्राभिषेकः *

कलिकुण्डयन्त्राभिषेकः।

(१२)

संसाध्याखिलकल्याणमालोद्वेलोदयश्रियम् ।
कलिकुण्डमखण्डात्माभीष्टमारोपयाम्यहम् ॥ १ ॥

अनेन आह्वानस्थापनसन्निधिकरणानि कुर्यात् ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हन् कलिकुण्डदण्डस्वामिन् अतुलबल-वीर्यपराक्रम ! अत्र आगच्छ आगच्छ, तिष्ठ तिष्ठ, अत्र मम सन्निहितो भव भव संवौषट् हूं फट् स्वाहा ।

सत्पुष्पदाम्ना प्रविराजितेन घटेन पूर्णेन सपल्लवेन ।
संमङ्गलार्थं कलिकुण्डदेवपदाग्रभूमिं समलङ्करोमि ॥ २ ॥

कलशस्थापनम् ।

शुद्धेन शुद्धह्रदपल्वलकूपवापी-गङ्गातटाकादिसमाहृतेन ।
शीतेन तोयेन सुगन्धिनाहं भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयंत्रम् ।३।

कलशस्नपनम् ।

नीरैः सुगन्धैः कलमाक्षतौघैः पुष्पैर्हविर्भिर्वरदीपधूपैः ।
भास्वत्फलौघैः कलिकुण्डयंत्रं सम्पूजयामीष्टफलाय भक्त्या ।१।

अष्टविधार्चनम् ।

ये चोचमोचादिसदिक्षुजा ये द्राक्षारसालादिफलोद्भवा ये।
एभी रसैः स्वैरमृतोपमानैर्भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयन्त्रम् ।४।

चोचादिरसस्नपनम्।

नीरैः सुगन्धैः इत्यादि।
गोरचनापिङ्गलपावनायुरारोग्यपुष्ट्यादिकृता नराणाम्।
द्राघिष्टया सद्घृतधारयाहं भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयंत्रम् ॥५॥

घृतस्नपनम्।

नीरैः सुगन्धैरित्यादि।
कुन्दावदातोत्पलसिन्धुवारचंद्रांशुमालाद्रवमाहसद्भिः।
गव्यैः पयोभिः किमु माहिषैश्च भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयंत्रम् ।६।

दुग्धस्नपनम्।

नीरैः सुगन्धैरित्यादि
ग्राहिष्ठगन्धेन कुठारलोध्यकाठिन्यभाजा करयुग्मकेन।
स्निग्धेन सचास्तरेण दध्ना भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयंत्रम् ॥७॥

दधिस्नपनम्।

नीरैः सुगन्धैरित्यादि।
नीरैरमीभिर्वियदापगायानीतैर्हिमामोदिमृतालिवर्गैः।
आपूरितैः कोणघटैश्चतुर्भिर्भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयंत्रम् ॥८॥

कोणघटस्नपनम्।

नीरैः सुगन्धैरित्यादि ।

सद्गन्धवस्तुत्करमिश्रयद्भिः सन्तापहृद्भिर्जगतां पवित्रैः ।
गन्धोदकैर्गन्धनरान्धमृङ्गैर्भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयंत्रम् ॥९॥

गन्धोदकस्नपनम् ।

नीरैः सुगन्धैरित्यादि ।

भक्त्याभिषिञ्चन्ति यजन्ति भक्त्या ये विघ्नघातैः कलिकुण्डयंत्रम् ।
सुवाहितश्रामरकीर्तिनस्ते यान्त्यष्टकर्मक्षयरूपमुक्तिम् ॥१०॥

इति कलिकुण्डाभिषेकः

समाप्तः ।

जिन-श्रुत-गुरु-सिद्ध-रत्नत्रय-स्नपनविधिः ।

(१४)

श्रीमन्मन्दरसुन्दरे (९३-१) ॥ १ ॥

श्रीपीठप्रक्षालनं, श्रीवर्णलेखनं, श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनं ।

इन्द्राग्न्यन्तकनैऋतो (९४-२) ॥ २ ॥

ॐ आँ क्रों सर्वे लोकपालाः सपरिवारा आगच्छत आगच्छत, निजनिजस्थाने चोपविश्य, इदं जलादिकमर्चनं गृह्णीध्वं २ ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा स्वधा ।—दिक्पालस्थापनम् ।

आहृत्य स्नपनोचितोपकरणं (९५-३) ॥ ३ ॥

—कलशस्थापनम् ।

सौवर्णान् कलशांस्तीर्थवारिपूर्णान् सुरैः स्तुवान् ।
सिद्धपीठे विधिज्ञोऽहं स्थापयामीव वारिधीन् ॥ ४ ॥

—कलशस्थापनम् ।

सामोदैः स्वच्छतोयैः (११९, १२०-११) ॥ ५ ॥

—अर्हदिष्टिः—कलशार्चनकर्म ।

अथ दिक्पालार्चनम् ।

पूर्वस्यां दिशि कुडलांशनिचय (६६-१५) ॥ ६ ॥

हे इन्द्र आगच्छ आगच्छ (२३) —इन्द्रदिक्पालाह्वाननम्।

अग्निं पालितपूर्वदक्षिणदिशं (६७–१६) ॥ ७ ॥

ॐ अग्निदेवमाह्वानयामहे स्वाहा २।

आसीनं सितवर्णभाजि (६८–१७) ॥ ८ ॥

ॐ यमदेवमाह्वानयामहे स्वाहा ३।

आशां दक्षिणपश्चिमां (६९–१८) ॥ ९ ॥

ॐ नैर्ऋत्यदेवमाह्वानयामहे स्वाहा ४।

पश्चिन्याश्रितदन्तिदन्त (७०–१९) ॥ १० ॥

ॐ वरुणदेवमाह्वानयामहे स्वाहा ५।

आसेकस्यामपि पश्चिमोत्तरदिशि (७१–२०) ॥ ११ ॥

ॐ पवनदेवमाह्वानयामहे स्वाहा ६।

हंसौघेन समूह्यमानमनघं (७१,७२–२१) ॥ १२ ॥

ॐ कुबेरदेवमाह्वानयामहे स्वाहा ७।

ईशानं वृषपृष्ठगं गणपतेः (७२–२२) ॥ १३ ॥

ॐ ईशानदेवमाह्वानयामहे स्वाहा ८।

तिष्ठन्तं कमठस्य निष्ठुरतरे (७३–२३) ॥ १४ ॥

ॐ धरणेन्द्रदेवमाह्वानयामहे स्वाहा ९।

आमूर्ध्वायां दिशि सिंहवाहन (७४–२४) ॥ १५ ॥

ॐ सोमदेवमाह्वानयामहे स्वाहा १०।

इत्येवं लोकपाला ये समाहूता मयाधुना।
निजासनेषु ते सर्वे सम्यक्तिष्ठन्तु सादरात् (रम्) ॥ १६ ॥
विघ्नान्निघ्नन्तु निःशेषान् सहायाः सन्तु ते मम।
समधान्यैस्तथैतेभ्यो बलिं दद्यात्समाहुतिम् ॥ १७ ॥

पूर्णाहुतिः—इति दिक्पालार्चनम्।

अथ क्षेत्रपालस्नपनविधिः—

भोः क्षेत्रपाल ! जिनप (२८१) ॥ १८ ॥

अथाभिषेकः—

श्रीमद्भिः सुरसैर्निसर्गविमलैः (९६–४) ॥ १९ ॥

—जलेन जिनस्नपनम्।

केवलज्ञानजन्माने गणेन्द्रकथितां लिपौ।
सूरिभिः स्थापितां जैनीं वाचं सिञ्चे वराम्बुभिः ॥२०॥

—जलेन श्रुतं स्नापयामः।

सर्वज्ञध्वनिजन्योघमत्यद्भुतश्रुतश्रियः।
गणेशस्य क्रमौ तीर्थपाथोभिः क्षालयाम्यहम् ॥२१॥

—जलेन महर्षिं स्नापयामः।

सौरभ्येण परां शुद्धिं धारिणा तीर्थवारिणा।
स्वभावपदमापन्नं सिद्धं संस्नापयाम्यहम् ॥२२॥

—जलेन सिद्धं स्नापयामः।

तीर्थेन तीर्थे शुचिनिर्मलेन प्रह्लादने ह्लादनदुर्मदेन।
स्वात्मानमानन्दरसेन सेक्तुं सिञ्चामि रत्नत्रयमंमसाहम् ॥२३॥

—जलेन रत्नत्रयमभिषेचयामः।

अञ्चामि सलिलमलयजतन्दुलफुल्लान्नदीपधूपफलनिवहैः।
नमदमरमौलिमालालालितपदकमलयुगलमर्हन्तम् ॥२४॥

—संक्षेपाष्टकम्।

रसाभिषेकः—

सुस्निग्धैर्नवनालिकेरफलजैराम्रादिजातैस्तथा
पुण्ड्रेक्ष्वादिसमुद्भवैश्च गुरुभिः पापापहैरञ्जसा।

१—गजाङ्कुराकृताभिषेके इक्षुरसाभिषेकस्य यः पाठो नोपलब्धः पूर्वं स एव इति भावि।

पीयूषद्रवसन्निभैर्वररसैः सज्ज्ञानसम्प्राप्तये
सुस्वादैरमलैरलं जिनविभुं भक्त्यानघं स्नापये ॥२५॥

—इक्षुरसेन जिनमभिषेचयामः।

सद्यःपीलितपुण्ड्रेक्षुप्रकाण्डरसधारया।
जैनीं समरसं लिप्सुरभिषिञ्चामि भारतीम् ॥ २६ ॥

—इक्षुरसेन श्रुतं स्नापयामः।

पुरुदेवाञ्जलौ क्षिप्तं श्रेयसेक्षुरसं हसन्।
पुनात्विक्षुरसो विश्वं गणनाथपदार्पितः ॥ २७ ॥

—इक्षुरसेन महर्षिं स्नापयामः।

खर्जूराम्रादिजातेन रसेन मलहारिणा।
स्वभावपद्मापन्नं सिद्धं संस्नापयाम्यहम् ॥ २८ ॥

—इक्षुरसेन सिद्धं स्नापयामः।

असक्तमध्यात्मदृशां समश्रीचलाचलापांगरसं पिपासुः।
रत्नत्रयं तत्क्षणपीलितेक्षुरसोरुधाराभिरहं सुनोमि ॥२९ ॥

—इक्षुरसेन रत्नत्रयं स्नापयामः।

अञ्चामि (इत्यादिनार्घ्यम्)

घृताभिषेकः—

दण्डीभूततडिद्गुणप्रगुणया (९७–५) ॥ ३० ॥

—घृतेन जिनमभिषेचयामः।

निष्टप्तनासिकापेयतप्तभर्माभसर्पिषा ।
स्नापयामि जगल्लक्ष्मीस्नेहिनीं भगवद्गिरम् ॥ ३१ ॥

—घृतेन श्रुतं स्नापयामः।

भक्त्या हैयंगवीनेन हृद्येनायुष्यचक्रिणा।
गणभृच्चरणौ पुण्यौ पुण्यायापचराम्यहम् ॥ ३२ ॥

—घृतेन महर्षिं स्नापयामः।

दाहोत्तीर्णस्वर्णाभाकारया घृतधारया।
स्वभावपदमापन्नं सिद्धं संस्नापयाम्यहम् ॥ ३३ ॥

—घृतेन सिद्धं स्नापयामः।

सद्धर्मपीयूषरसेन कामं भक्तात्मनां स्नेहयितुं मनांसि।
हृद्येन सद्दर्शनबोधवृत्तं हैयंगवीनेन मुदाभिषिञ्चे ॥ ३४ ॥

—घृतेन रत्नत्रयं स्नापयामः।

अञ्चामि—।

दुग्धाभिषेकः—

माला तीर्थकृतः स्वयंवरविधौ (९८-६) ॥ ३५ ॥

—दुग्धेन जिनं स्नापयामः।

रसायनेन पीयूषस्पर्धिनाभिपुणोम्यहम्।
गोक्षीरेण सवर्णेन जिनवाणीं स्वसिद्धये ॥ ३६ ॥

—दुग्धेन श्रुतं स्नापयामः।

पवित्रेण पवित्राणामग्रण्यौ मुक्तिशर्मणे।
प्रसादयामि दुग्धेन पादुके गणधारिणः ॥ ३७॥

—दुग्धेन महर्षिं स्नापयामः।

दुग्धेन शुभ्रवर्णेन सुस्नेहेन विराजिना।
स्वभावपदमापन्नं सिद्धं संस्नापयाम्यहम् ॥ ३८ ॥

—दुग्धेन सिद्धं स्नापयामः।

धर्मामरोर्वीरुहरोहणेन दयारसेनार्द्रयितुं स्वचेतः।
धारोष्णगोक्षीरभरेण भक्त्या रत्नत्रयस्य स्नपनं करोमि ॥३९॥

—दुग्धेन रत्नत्रयं स्नापयामः।

अंचामि—।

दध्यभिषेकः—

शुक्लध्यानमिदं समृद्धमथवा (९८-७) ॥ ४० ॥

—दध्ना जिनं स्नापयामः।

हिमपिण्डसपिण्डेन कव्येन स्नेहशालिना।
दध्ना रोचिष्णुना सिञ्चे जिनवाचं रुचिप्रदाम् ॥ ४१ ॥

—दध्ना श्रुतं स्नापयामः।

जगतां मङ्गलस्योच्चैर्मङ्गलाय गणेशिनः।
मङ्गलो मङ्गलेनांह्री दध्ना संस्नापयाम्यहम् ॥ ४२ ॥

—दध्ना महर्षिं स्नापयामः।

मनोवाक्कायशुद्ध्यर्थं दध्नैनं हिमपाण्डुना।
स्वभावपदमापन्नं सिद्धं संस्नापयाम्यहम् ॥ ४३ ॥

—दध्ना सिद्धं स्नापयामः।

रत्नत्रयं मुक्तिरसामृतेन स्वचित्तभावैरपितुं घनेन।
दध्नाभिषिञ्चे हरिशंखनाभिसनाभिनाहं स्वकरोद्धृतेन ॥४४॥

—दध्ना रत्नत्रयं स्नापयामः।

अञ्चामि—।

उद्वर्तनम्—

द्रव्योद्वर्तनकल्कचूर्णनिवहैः स्नेहापनोदं तनो-
र्वर्णाढ्यैर्विविधैः फलैश्च सलिलैः कृत्वावतारक्रियाम्।

—सर्वौषधेन जिनस्योद्वर्तनं करोमि (११-८)

कंकोलादिमहाद्रव्यैः प्लाक्षादिक्वाथसंयुतैः।
स्वभावपदमापन्नं सिद्धं संस्नापयाम्यहम् ॥ ४५ ॥

—सर्वौषधेन सिद्धं संस्नापयामः।

चतुःकलशाभिषेकः—

१—अस्मादग्रे श्रुतमहर्षिस्नपनपाठः पुस्तके नोपलब्धः।
२—अस्मादग्रे रत्नत्रयस्नपनपाठोऽपि नोपलब्धः।

सम्पूर्णैः सकृदुद्धुतैर्जलधराकारैश्चतुर्भिर्घटै—
रम्भःपूरितदिङ्मुखैरभिषवं कुर्मस्त्रिलोकीपतेः ॥ ४६ ॥
(६६-८)

—कलशेन जिनं स्नापयामः।

विचित्रसुरभिद्रव्यवासितोदकपूरितैः।
सौवर्णैः कलशैर्जैनीं गिरमाप्लावयेऽञ्जसा ॥ ४७ ॥

—कलशेन श्रुतं स्नापयामः।

सुवर्णकुम्भमुखोद्गीर्णैः सौरभ्यव्याप्तदिङ्मुखैः।
तीर्थोदकैर्गणेन्द्रस्य क्रमावाप्लावयेऽञ्जसा ॥ ४८ ॥

—कलशेन महर्षिं स्नापयामः।

नानातीर्थोदकापूर्णैः कल्याणकलशैर्वरैः।
स्वभावपदमापन्नं सिद्धं संस्नापयाम्यहम् ॥ ४९ ॥

—कलशेन सिद्धं स्नापयामः।

तीर्थोदकैराशुसुगन्धदिव्यद्रव्यादिवासैः परिपूरितेन।
आप्लावये कुम्भचतुष्टयेन रत्नत्रयं शर्मसमृद्धिसिद्ध्यै ॥५०॥

—कलशेन रत्नत्रयं स्नापयामः।

अभ्यामि सलिल—।

गन्धोदकाभिषेकः—

कर्पूरोल्वणसान्द्रचन्दनरस (१०२—९) ॥ ५१ ॥

—गन्धोदकेन जिनं स्नापयामः।

मिलद्भ्रमोच्छलत्स्वच्छसीकराकीर्णदिग्दिवा।
गन्धोदकेन वाग्देवीं जैनीं सिञ्चाम्यहं मुदा ॥ ५२ ॥

—गन्धोदकेन श्रुतं स्नापयामः।

जगत्तापहरणोद्यैः सौरभ्याकुलितालिना।
प्रीत्या गन्धोदकेनाहमुक्षामि गणिनां क्रमौ ॥ ५३ ॥

—गन्धोदकेन महर्षिं स्नापयामः।

गन्धोदकेन शुचिना गन्धद्रव्येण वासिना।
स्वभावपदमापन्नं सिद्धं संस्नापयाम्यहम् ॥ ५४ ॥

—गन्धोदकेन सिद्धं स्नापयामः।

दिग्मंडलं वासयितुं निलिम्पवर्गस्य विस्मारयितुं स्वमोकः।
गन्धोदकेनाभिषुणोमि रत्नत्रयाय रत्नत्रयमक्षमाहम् ॥ ५५ ॥

—गन्धोदकेन रत्नत्रयं स्नापयामः।

अत्रवामि—।

स्नानानन्तरमर्हतः स्वयमपि (१०१—१०) ॥ ५६ ॥

—स्नानानन्तरोपस्कारः।

अभिषिच्येति येऽर्चन्ति जलाद्यैर्जिनभारतीम्।
ते भजन्ति श्रियं कीर्तिद्योतिताशाधरां पराम् ॥ ५७ ॥

—श्रुतस्नपनार्घः[1]।

ये सिद्धाय ददत्यर्घं शुद्धभावेन भाविताः।
सन्धिवाशाधरभ्रूक्षकीर्तियात्रा भवन्ति ते ॥ ५८ ॥

—सिद्धस्नपनार्घः।

एवं विधायाभिषवं जलाद्यै रत्नत्रयं येऽष्टभिरर्चयन्ति।
ते भुक्तशर्माभ्युदया भजन्ते मुक्तिं शिवाशाधरपूज्यपादाः॥५९॥

—रत्नत्रयस्नपनार्घस्तवः।

इति जिन-श्रुत-गुरु-सिद्ध-रत्नत्रय-स्नपनविधानक्रमोक्तविधिः समाप्तः।

१— आसादये महर्षिस्नपनार्घेण भाव्यम्।

भाषापंचामृताभिषेकपाठ[१]

(१५)

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भूः स्वाहा—प्रस्तावनपुष्पाञ्जलिः ।

ॐ सर्वज्ञेभ्यः सर्वलोकनाथेभ्यो धर्मतीर्थंकरेभ्यः शान्तिनाथेभ्यः परमशुद्धेभ्यो नमः समस्ततीर्थोदकपरिषेचनेन अभिषवभुवः शुद्धिं करोमि स्वाहा ।

ॐ क्लीं दर्भतृणाग्निं प्रज्वालयामि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं अर्हं ज्ञानोद्योताय नमः प्रज्वालितदर्भाग्निना भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भूः ऐशान्यां दिशि षष्टिसहस्रनागशुद्धां भूमिं सन्तर्पयामि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं अर्हं आग्नेयायां दिशि क्षेत्रपालं सन्तर्पयामि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं हूं दर्पमथनाय, भूमौ नवदर्भान् स्थापयामि स्वाहा । ततो भूमेरष्टविधार्चनं कुर्यात् ।

ॐ ह्रीं अर्हं नीरजसे स्वाहा (जलं), ॐ ह्रीं अर्हं शीलगन्धाय स्वाहा (गन्धं), ॐ ह्रीं अर्हं अक्षताय स्वाहा (अक्षतं), ॐ ह्रीं अर्हं विमलाय स्वाहा (पुष्पं), ॐ ह्रीं अर्हं परमसिद्धाय स्वाहा (नैवेद्यं), ॐ ह्रीं अर्हं

१—अस्मिन् पाठे मंत्राः प्रायः सकलकीर्तिविरचितत्रिवर्णाचारात्संयोजिताः ।

ज्ञानोद्योताय स्वाहा (दीपं), ॐ ह्रीं अर्हं श्रुतधूपाय स्वाहा (धूपं), ॐ ह्रीं अर्हं अभीष्टफलदाय स्वाहा (फलं)।

तदनन्तरं इन्द्रः स्वं भूषणैर्भूषयेत्—

ॐ ह्रीं हूं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं सौवर्णं यज्ञोपवीतं रजतमयमुत्तरीयं च संधारयामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं हूं मुद्रिका-कंकण-अंगद-कंठमाला-कुण्डल-पट्ट-मुकुटानि व्रतगुणशीलभूतानि सन्धारयामि स्वाहा।

श्रीजिनवर चौबीस वर, कुनयध्वान्त हर भान।
अमितवीर्य दृगबोध सुख—युत तिष्ठो इह थान॥ १॥
गिरीश शीस पांडुपै शचीस ईश थापियो
महोत्सवो अनन्दकंदको सबै तहां कियो।
हमैं सो शक्ति नाहिं व्यक्त देखि हेतु आपना
यहां करै जिनेन्द्रचन्द्र की सुबिंब थापना॥ २॥

ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्मं ठ ठ पीठं स्थापयामि स्वाहा।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रजलेन पीठप्रक्षालनं करोमि स्वाहा।

ॐ ह्रीं हूं दर्पमथनाय श्रीपीठे नवदर्भांक्षिक्षिपामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं हूं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय पीठार्चनं करोमि स्वाहा।

ॐ ह्रीं हूं श्रीपीठे श्रीलेखनं करोमि स्वाहा।

ॐ ह्रीं हूं धात्रे वषट् श्रीपादस्पर्शनं करोमि स्वाहा।

ॐ ह्रीं हूं यंत्रस्थप्रतिमाभिषेकपीठं स्थापयामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं हूं क्ष्मं ठं मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु श्रीपीठे प्रतिमां स्थापयामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हन् एहि एहि संवौषट् नमोऽर्हते स्वाहा। इत्यनेन गन्धाक्षतपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्—इदं आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः नमोऽर्हते स्वाहा। इत्यनेन गन्धाक्षतपुष्पाञ्जलिं जिनपादयोर्निक्षिप्य श्रीपादौ स्पृशेत्—इदं स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हन् मम सन्निहितो भव भव वषट् नमोऽर्हते स्वाहा। इत्यनेन म्वीं क्ष्वीं हं सः सबीजां सुरभिमुद्रां प्रदर्शयेत्—इदं सन्निधीकरणं।

ॐ ह्रीं हं मं वं ह्वः पः ह अ सि आ उ सा नमः परमेष्ठिमुद्रां दर्शयामि स्वाहा।

ॐ नमो हं ऐं ह्रीं क्लीं हं अर्हन् इदं पाद्यं गृहाण २ नमोऽर्हते स्वाहा।

ॐ ह्रीं हं म्वीं क्ष्वीं यं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं आचमनक्रियां कारयामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिह्न-सपरिवारा इन्द्राग्न्यन्तकनैर्ऋतवरुणवायुकुबेरेशधरणेन्द्रचन्द्रा आगच्छत आगच्छत संवौषट्, तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, मम सन्निहिता भवत भवत वषट्—इदं जलाद्यर्चनं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा स्वधा।

कनकमणिमय कुम्भ सुहावने, हरि सुक्षीर भरे अति पावने।
हम सुवासित नीर यहां भरें, जगतपावन पांय तरैं धरें ॥३॥

ॐ ह्रीं हं स्वस्तये चतुःकोणकलशान् स्थापयामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं हं नेत्राय संवौषट् कलशार्चनं करोमि स्वाहा।

ॐ ह्रीं स्वस्तये पूर्णकलशोद्धरणं करोमि स्वाहा।

शुद्धोपयोगसमान भ्रमहर परम सौरभ पावनो
आकृष्ट भृङ्गसमूह गंगसमुद्भवो अतिपावनो।
मणिकनककुम्भ निसुम्भकिल्विष विमलशीतल भरि धरौं।
श्रम-स्वेद-मल निरवार जिन त्रय धार दे पांयनि परौं ॥४॥

ॐ नमो र्हं ऐं श्री ह्रीं क्लीं र्हं गन्धपुष्पामोदिप्रावनतीर्थजलैर्भगवतोऽर्हंतोऽभिषवणं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

अतिमधुर जिनधुनि सम सुप्राणित प्राणिवर्ग सुभावसों,
बुधचित्तसम हरिचित्त नित्त सुमिष्ट इष्ट सुभावसों।
तत्काल इक्षुसमुत्थ प्रासुक रतनकुम्भविषैं भरौं,
यमत्रास तापनिवार जिन त्रय धार दे पांयनि परौं ॥५॥

ॐ नमो र्हं ऐं श्री ह्रीं क्लीं र्हं गन्धपुष्पामोदिपवित्र-इक्षुरसैर्भगवतोऽर्हंतोऽभिषवणं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

निश्शक्षिससुवर्णमदमनीय ज्यो विधि जैन की,
आयुप्रदा बलबुद्धिदा रक्षा सु यों जिय जैन की।
तत्काल मन्थित क्षीर उत्थित प्राज्य मणि झारी भरौं
दीजे अतुलबल मोहि जिन त्रय धार दे पांयनि परौं ॥६॥

ॐ नमो र्हं ऐं श्री ह्रीं क्लीं र्हं पावनहैयङ्गवीनैर्भगवतोऽर्हंतोऽभिषवणं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

शरदभ्रशुभ्र सुहाटकद्युति सुरभि पावन सोहनो,
क्लीवत्वहर बलधरन पूरन पयस कल मनमोहनो।
कृतउष्ण गोधनतैं समाहृत घट जटितमणिमैं भरौं,
दुर्बलदशा मो मेट जिनत्रय धार दे पांयनि परौं ॥७॥

ॐ नमो र्हं ऐं श्री ह्रीं क्लीं र्हं पावनक्षीरैर्भगवतोऽर्हंतोऽभिषवणं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

वर विशदजैनाचार्य ज्यों मधुराम्लकर्कशता धरै,
शुचिकर रसिक मंथन विमंथन नेह दोनों अनुसरै।
गोदधि सुमणिभृंगार पूरन लायकर आगैं धरौं,
दुखदोष कोपनिवार जिन त्रय धार दे पांयनि परौं ॥८॥

ॐ नमो र्हं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं र्हं विशुद्धदधिभिर्भगवतोऽर्हतोऽभिषवणं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

ॐ ह्रीं क्रौं समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भगवान् स्वाहा।

सर्वौषधी मिलायके भरि कंचन भृङ्गार
जजौं चरण त्रय धार दे सार तार भवतार ।।९।।

ॐ नमो र्हं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं र्हं कषायरसै—र्भगवतोऽर्हतोऽभिषवणं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

चतुःकोणकलशाभिषेकः—

ॐ नमो र्हं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं र्हं चतुःकोणकलशैर्भगवतोऽर्हतोऽभिषवं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

गन्धोदकाभिषेकः—

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये, नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हन् अ सि आ उ सा नमः मम सर्वशान्तिं कुरु, मम सर्वतुष्टिं कुरु, मम सर्वपुष्टिं कुरु स्वाहा स्वधा।

सम्पूर्णः।

ॐ

गुणभद्रभदन्तग्रथितस्य महाभिषेकस्य इन्द्रवामदेवकविरचिता पंजिका ।

सिद्धिः ।

पे० पं०		
१—१,	आनम्यार्हन्तमादौ—	अभिषेकप्रारंभादौ जिनेश्वरं प्रणम्य ।
	विहितस्नानशुद्धः—	प्रतिष्ठायामिन्द्रलक्षणप्रतिपादनचतुर्थ-परिच्छेदे प्रोक्तवद्विहितस्नानक्रमेण शुद्धः पवित्रीकृतविग्रहः ।
,, २,	जिनपतीत्यादि—	जिनेन्द्रस्नानतोयैरप्यात्ताप्ता शुद्धिर्येन, इत्यनेन तत्राप्युक्तवन्मन्त्रस्नानेन चाप्ता शुद्धिर्येन स तथोक्तः ।
,, ३,	आचम्य—	तथैव मंत्राचमनं कृत्वा ।
१—६—२,	बुधनुत्येत्यादि—	प्रतिष्ठाविधानाष्टमपरिच्छेदोक्तवद्बुधैः प्रणीतां सकलक्रियां च कृत्वा ।
,, ४,	चरममहीत्यादि (यजनेत्यादि)—	प्रतिष्ठायां तीर्थोदकादानविधानीयषष्ठ परिच्छेदोक्तवत्पवित्रतायां भूमौ, जलाद्युद्धविधार्चनं च स्नानद्रव्यशुद्धिं च गन्धाक्षतासेचितरोपितपात्रशुद्धिं च तत्र चाष्टमपरिच्छेदोक्तवद्दहनशोषणादिविधानेन बहिरन्तरङ्गात्मशुद्धिं च कृत्वा ।

१—८, [महामहं— महापूजाविधानं प्रारभेऽहं, इति सम्बन्धः

१४—१, श्रीमान्—सौधर्मादिभिर्विरचितशोभाविशेषलक्षणा श्रीर्यस्यासौ श्रीमान् जिनानां विधिरिति सम्बन्धः

१४—२, अमितभुजगमितैः—अमिता विक्रियाविशेषादसंख्याता भुजास्ताभिर्गमितैः हस्ताहस्तिकया प्रापितैः

१४—३, योऽभ्यधायि—यो विधिरुक्तः।

१४—४, प्रस्तूयते—प्रारभ्यते।

१४—४, प्रक्लृप्तपरिकरः—अत्राभिषेकयोग्यैर्द्रव्यैः।

१४—६, अभ्रंकषेत्यादि—अभ्रंकषा आकाशस्पर्शिनः अभ्रविभ्रमात्यसटशाः कूटकोटयः कूटानां शिखराणां कोटयः पिनद्धा आरोपिता विवता विस्तीर्णा विधूयमाना वातान्दोलिता विविधा मावल्लसिद्धूपभावैर्नानासङ्गैर्विचित्रितत्वाद्बहुप्रकारा ध्वजराजयो ध्वजानां पंक्तयस्तैर्विराजमानस्य।

१४—१४, मध्यीकृतमहामेरुतया—मध्यीकृत इव प्राङ्गणस्य सोन्नतभूमिभागमध्ये स्थापित इव मेरुस्तस्य भावो महामेरुता तया मध्यीकृतमहामेरुतया सहिते इत्याध्याहार्यम्, तस्मिन् जम्बूद्वीपोपमाने [;प्राङ्गणे प्रस्तावनाय पुष्पाणि निक्षिपेदिति सम्बन्धः।

+ पुनामि—पवित्रीकरोमि।

+ अर्हन्महमहीं—जिनयज्ञभूमिं।

१५—२०, हरिद्भागे—दिग्भागे ।

१६—१, मातरिश्वेति—मातरिश्वा पवनस्तस्य दिग्भागं ।

१६—४, अणूनवीक्षण—अन्यूनं वीक्षणमवलोनं यत्र अनवरतालोकने तृप्तिजनकमित्यर्थः ।

१६—५, विधित्सुः—कर्तुमिच्छुः इति ।

+ अर्हन्महामहमहीं—जिनाभिषेकभूमिं ।

१६—८, विदधे—एतैरुक्ताष्टप्रकारैर्धरयामि पूजयामीत्यर्थः ।

१६—२२, दुकूलान्तरीयोत्तरीयः—श्लक्ष्णवस्त्रमुत्तरीयं परिधानं चोत्तरीयं विद्यते यस्यासावेवंभूतोऽहं भवामि ।

१७—१३, करवाणि—अतिशयेन करोमि ।

१८—१३, मुद्रिकां—मुद्रामिव मुद्रिकां ।

१८—१५, स्प्रष्टुकामे—स्पर्शितुं कामो यस्य ।

१८—१५, पवमानेत्यादि—पवमानात्पव [मा] नाचलिता आन्दोलिताः ।

+ शालिनिकरेत्यादि—शालीनां निकरैः समूहैः ।

+ समास्तरणेन—प्रस्तारविशेषेण कल्याणेषु मनोहरेषु ।

+ गर्भपदित्यादि—गर्भकल्याणभिषवसदृशा धरणी तस्याः कोणेषु वैरत्नानि विविधानि रत्नानि ।

१—शुष्कदर्भपूलानां ज्वालयाम्येषपावकः ।

तेनाग्निना पुनाम्येनामर्हन्महमहीरुहं " —पूजाभावे एवं विधः पाठः ।

+ श्च्योतम्—द्रवीभूतं,

+ कलमसद्मकैः—शाल्यक्षतैः ।

+ गिरिशिखरस्य—गिरिप्रधानस्य ।

+ तिरीटश्रियं—मुकुटश्रियं ।

+ सम्पर्को ?—समाश्रयं ।

१७—२२, नैव भावार्हतां सा—न विद्यते सा स्नानेच्छा भावार्हतां भाव-
पूजायोग्यानां जिनानां।

१७—२३, श्रद्धालुः—यद्यपि सा न विद्यते तथाप्यहं द्रव्यपूजां समाश्रित्य
श्रद्धावान्।

१७—२३, स्नापनायां—स्नपनं स्नापना तस्यां।

१७—२३, विहितमतिः—विहिता प्रवृत्ता मतिर्यस्य।

१८—२, आरोहामि—आरोहणवलानं करोमि।

१८—२, उद्यदित्यादि—उद्यमानत्तेद्यः? गंभीरो ध्वनिस्तेन ध्वनितानि
दिशास्थानकानि दिशास्यानि दिग्वदनानि
यत्र पीठे।

१८—७, (निष्टप्तकांचनमयं)—निष्टप्तं अतितप्तशुद्धसुवर्णमयं।

१८—७, मुहुः— वारंवारं।

१८—७, आत्मयोनेः—स्वयंभुवः

१८—६, अध्यासनात्—उपवेशनसमाश्रयात्।

+ एषः—विद्यमानः प्रवर्तमानो विधिरित्यर्थः

१८—१०, एतच्छुलात्—पीठप्रक्षालनमिषेण।

१८—१०, परिमाष्टुं कामः—प्रक्षालयितुकामः

+ हैरण्यगर्भे—हिरण्यस्य भावो हैरण्यं तद्‌गर्भे यस्य अथवा
हैरण्यानि रत्नानि गर्भे यस्य तस्मिन्।

+ विविधेन्द्रचापे—पंचरत्नप्रभवेन्द्रचापं यस्य तस्मिन्।

१८—२१, यः श्रीमदैरित्यादि—इत्येतस्याष्टकस्य विषमपदप्रख्यापनं प्र-
तिष्ठायां विहितत्वादत्र न प्रतिपाद्यते।

१८—१७, अमृतभुजः—सौधर्माद्या देवाः

” अकृत्रिमं—जिनबिंबं।

१९—१६, भावे—मनसि।

” भावार्हतः—भावपूजायोग्यस्य परमेश्वरस्य बिम्बं स्नापयेयुरिति
सम्बन्धः।

१८—१६, **भवभयभिदया**—भवेषु भयं तस्य भिदाया हेत्वर्थे तृतीया-
निर्देशः भवभयभेदनहेतोरित्यर्थः

" **भाक्तिकः**—अर्हद् भाक्तिकः

स्थवीयसि—स्थिरतरे निश्चले इत्यर्थः

१८—१६, **सद्भावस्थापनेत्यादि**—जिनबिम्बं पीठे स्थाप्य यत्पूजनं
क्रियते सद्भावस्थापना तस्यामर्हत्प्रति-
बिम्बस्य या विधिस्तेन

१६—१४, **श्रीकामः**—अर्हदभिषेककर्ता मुक्तिश्रीप्राप्तुकामः अष्ट-
विधार्चनायां

२१—१०, **शशिकान्तेत्यादि**—चन्द्रकान्तस्फटिकखंडैरिव निर्मलैः दृषा
ङ्कुरैरिव पुष्पाङ्कुरैरिव

२२—३, **हिमहरीत्यादि**—हिमवत्सीतलो हरिचंदनादियोगकाश्च ते तुरु-
ष्काश्च तुरुष्कदशीया वरशर्कराः सह अभि-
भूता अभिसमन्तात् संजातास्तैः

२२—४, **धूपितकाष्ठैः**—स्वकीयामोदैर्वासिता दिशा यैः।
प्रत्ययस्तुतो ?

अशेषमुषः—निर्शेषाणि कर्माणि मुष्णाति विनाशयतीत्येवं-
शीलः

लक्ष्मीधाम—केवलज्ञानादिलक्ष्मीस्तस्या धाम स्थानं

भवाध्वजेत्यादि—भवः संसारस्तस्याध्वा मार्गस्तत्र जातश्रम-
हरणे छायाद्रुमः

अथ लोकपालेषु—

कैलासशैलेत्यादि—कैलासपर्वतसमानोत्तुंगा कायघटना
संस्थानं यस्य तं। दीप्तसुवर्णस्य घन-
घटिता घंटाश्च गले ग्रीवायां घंटिकाजालं

च कक्षासु नक्षत्रमालाखंडैर्मंडनं च अयो-
गश्च एतैरलंकरणैर्मंडितस्तं

२३—६, कोमलमृणालेत्यादि—कोमलकमलवद्धवलानां चतुर्णां
दन्तानामन्तेषु कान्ता मनोहराः कमला-
करास्तेषु कमलदलान्येव रक्तास्तेषु
रचितं संगीतकं तूर्यत्रयं यस्य तं ऐरा-
वर्णं

२३—११, उद्योतयन्तं—प्रकाशयन्तं। अथ तस्य लोकपालस्याङ्गस्थिति-
पंचभूतानां मध्ये यत्तेजोनाम भूतं तस्याधिपतये
स्वाहा, यद्वायुसंज्ञकं 'भूतं' तस्याधिपतये अनि-
लाय स्वाहा, यदद्संज्ञं? भूतं तस्याधिपतये वरु-
णाय स्वाहा, यदाकाशात्मकं भूतं तस्याधिपतये
सोमाय स्वाहा, यत्पृथिवीसंज्ञकं भूतं तस्याधिप-
तये प्रजापतये इन्द्राय स्वाहा, एवमुत्तरत्रापि

२३—२३, बभ्रु भ्रूरित्यादि—कपिले भ्रुवौ च श्मश्रू च कैश्यं केश-
समूहभूतैरेतैर्विलोललोचनाभ्यां च विभी-
षणं भयजनकं

२३—२४, भाभास्यमानं—भा प्रभा तया भासमानः

२३—२७, भीषणेत्यादि—भीषणा भयानका अनीला अवलोकयितुम-
शक्या मूर्तिर्यस्य।

२३—२८, भास्वद्भालोऽपि—आदित्यप्रभाया अभिभवात्, यद्भवं
तद्भावयन्तं उत्पादयन्तं, ज्वलन्तं-दीप्तं

२४—१, वस्तारूढं—छागारूढं

२४—२, स्वाहानाथं—स्वाहानाम देवी तस्या नाथं अथवा स्वाहाशब्देन

सर्वस्य देवसमूहस्य यत् हवनं तस्य ग्राहकत्वात्तत्राथं प्रधानमित्यर्थः

२४—१३, समुज्जृम्भितः—उच्छलितः

२४—१४, पुष्करध्वानः—वाद्यविशेषध्वनिः

२४—१४, साध्वसं—भयं।

२४—१४, सामासादितेत्यादि—समासादितयाश्रितमन्तकान्तिकं स्वस्वामि यमसामीप्यं येन, प्रतिपक्षसमानकक्षसमीक्षयेव अवलोकनयेव विषाणाग्रं शृङ्गाग्रं, ज्योतिर्विमानसमितिः समूहो येन।

२४—१६, प्रतिमाहिषेत्यादि—प्रतिमहिषरूपेव प्रतिमहिषस्य सममहिषस्य क्रोधेनेव शूत्कारा एव वातास्तैः सरखडितं जीमूतसंघातं मेघसमूहो यस्मात्।

२४—१८, माहिषवरं—महिषप्रधानं

२४—२०, माषकुल्माषवर्णं—अर्धस्विन्ना माषास्तद्वद्वर्णो यस्य तं धूम्रवर्णं इत्यर्थः

२४—२१. छायया मा—छाया नाम देवी तया सहितं वे

२५—१, अन्तकान्तिकसमुपस्थितं—यमसमीपनैर्ऋत्यदिग्भागं समाश्रितं येन।

२५—१, मषीमाषेत्यादि—मषी च माषाश्चाङ्गाराश्च मषीमाषाङ्गारका इव रूक्षशुष्ककृष्णाकार इव।

२५—२, विकृतदेहं—विरूपदेहं।

२५—२, रक्षोवाहनं—ईदृग्विधरक्षोवाहनारूढं।

२५—३, भास्वद्धेमेत्यादि—भास्वच्छोभमानहेममुकुटाग्रे घटिता रचिता रत्नप्रभा तस्या भारेण समूहेन उद्भिन्ना विघटिता घना निबिडा आत्मनः स्वस्य

अल ! वाहनस्य च तनुच्छाया तमः संहतिर्देहस्य कृष्णतैव तमः समूहो येन

२५—५, हेतीत्यादि—हेतिव्रातस्य शस्त्रसंघातमध्ये विधीतः प्रशस्तो मुद्गरः करे यस्य तं ।

२५—६, नैर्ऋत्य—हे नैर्ऋत्य त्वां भक्त्या समाह्वानये आदरेण असंयत-सम्यग्दृष्टित्वाद्यथा[1]·································

२६— या विराजमानं भुवनधनदं ।

२६—१२, धनपूर्वया—धनदाह्वया ।

२६—१३, धनदनिनदं—धनद इति निनदः शब्दो यस्य ।

२६—१३, भक्त्या—आदरेण, ७ ।

२६—१६ समुत्तुंगेत्यादि—समुत्तुंगे दीर्घे संगतं अन्योन्यं ,समाने तरङ्गे सुदंकुरे तरंग इवेपद्धके शृंगे यस्य ।

„ धौतेत्यादि—धौतकलधौतस्य शुद्धसुवर्णस्य वितता प्रशस्ता अश्वत्थपत्राणां माला तया मण्डितं मस्तकं यस्य ।

२६—१८, साक्षाद्वृषभ—·································

२६—२१, भवानीधवं—पार्वतीभर्तारं ।

२६—२२, भर्ब—ईश्वरं भुवननायकं—लोकपालं ८ ।

२७—१ सुरवारणेत्यादि—सुरगजस्य चरणतलमिव पृथुलं स्थूलं पृष्ठ-भागं तेनाभिरामं प्रष्ठं प्रधानं ।

२७—२, अशेषेत्यादि—समस्तधराया भारधरणे या श्रुतिः श्रवणं लोकोक्तिस्तस्यां श्रेष्ठं प्रसिद्धं ।

२७—४, फणामणीत्यादि—फणायां फटायां मणिगणा रत्नसमूहा-स्तैरुज्ज्वलं उत्कटं यथा भवति तथा दीप्ताः कुटिलाः कुन्तलास्तैरुल्लसितं शोभितं ।

---

१ अस्मादग्रेतनः कतिपयपाठः पुस्तकाच्च्युतः पत्राभावात् ।

२७—५, विकटेत्यादि—विकटं चतुरस्रेषु चक्रं विस्फुरन् स्वस्तिकं यस्य तं स्वस्तिकलाञ्छन मित्यर्थः ।

२७—७, गुणैरनणुं—गुणैर्जिनोपसर्गोपसर्गविनिवारणाद्या अथवा जिनशासनप्रकाशनाद्या गुणास्तैरनणुर (म) नल्प-महान्तं ९ ।

२७—६ संहारसंध्येत्यादि—संहारसंध्येव प्रलयकालसन्ध्येव अरुणा आरक्ताःसरला दीर्घाः सटाटोपा यस्य ।

२७—११, करालेत्यादि—अदिदीप्रखड्गधाराकारनखसमूहेन भीकरया प्रलयाकारानुकारिणं ।

२७—१२—ककुब्वलयेत्यादि—दिशां वलयस्थानेषु ये निश्चला मदगजास्तेषां कर्णेषु कठोरो भयजनकः कण्ठीरवः कंठ-निनादो गर्जनं यस्य राजकंठीरवं राजसिंहं ।

२७—१३, पृथु—प्रलंबं ।

२७—१३ दधतं—धारयन्तं वक्षसा उरस्थलेन इत्यर्थः ।

२७—१४, ज्योत्स्नामिव—प्रभामिव ।

२७—१४, अंसे—स्कन्धदेशे ।

२७—१५, श्वेतभानुं—सोमं ।

२७—१५, सुभानुं—सुष्ठु भानवः किरणा यस्य ।

२७—१६, कान्ताङ्कं—कान्तानि मनोज्ञानि अंगानि यस्य अथवा कान्ता वल्लभा देवी अंगे उत्संगे यस्य १० ।

२७—१६, समाप्यं—तिष्ठ ।

२७—२१, विधिः—अयमभिषेकविधिः ।

„ वर्धतां—वृद्धिं गच्छतां ।

„ वर्धमानः—वर्धमानो वृद्धिस्वरूपो तत्र ।

अथ नवग्रहेषु—

नीरेजहस्तं—कमलहस्तं १।

जिनेत्यादि—जिनमानने महोत्सवे उत्कंठितं २।

कमंडल्वित्यादि—कमलेन व्याप्तहस्तं ५।

पंचशाखं—हस्तं ६।

पेतुः—स्वीकरोतु ७।

व्यसनप्रवाहं—विघ्नसमूहं ८।

ध्वजेत्यादि—ध्वजेन युतः सहितः कुशः दर्भाकारशस्त्रं तत्पाणौ यस्य ९।

शश्वत्—अनवरतं।

चंद्रबलाबलेत्यादि—चन्द्रस्य बलाभ्यामाप्यं सदसद्दानं शुभोऽशुभार्थसंपादनयोः स्फुरद्विक्रमो व्यापारो येषां।

सत्कृत्य—सन्मान्य।

उपहितां—सम्पादितां।

प्राप्नुत—लभध्वं सेवध्वमित्यर्थः।

व्यक्तं च—प्रतीतियोग्यं कुरुत यूयं।

अथ स्नपनविधानस्य—

२८—१६, विरतातोद्यप्रघोषो—……………………निर्घोषः।

२६—३, यौवनारंभैरिव—प्रथमयौवनप्रारंभैरिव।

२६—३, चतुराश्रमबन्धुजनेत्यादि—चत्वारश्च ते आश्रमाश्च चतुराश्रमाः ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थयतिसंज्ञकाश्चतुर्थसंघसंज्ञका-[त्वांस्त] स्त एव बन्धुजनाः समानैकधर्मत्वात्सधर्मिणस्तेषां

संभ्रमैरिव यथोचितविनयक्रमेण परस्परमातिथ्यकरणैरिव ।

२६—७, स्वयंभूरमणेत्यादि—स्वयंभूरमणोऽन्तिमसमुद्रः पृथु आगमोक्तविस्तारोपलक्षितः स चासौ नदीनाथश्च तत्पर्यन्तकेभ्यः ।

२६—८, कुलधरशिखरेत्यादि—षण्णां कुलपर्वतानामधित्यका उपरितनविभागास्तेषूद्भूतिभाग्भ्यः विनिर्गताभ्यः ।

२६—१०, अनिमिषपतिभिः—देवपतिभिः ।

२६—१५, नानैनोनिदाघेत्यादि—नाना बहुप्रकारं एनः पापं कर्मेत्यर्थः तदेव निदाघः निदाघकालस्तत्रोद्भूतं आतपस्तेन तप्तस्य जगतस्तापापनोदने पापहारे दक्षाणि ।

२६—१६, भव्यभवभृत्सस्यानि—भव्यप्राणिसस्यानि ।

३०—४, संगताः—प्रवृत्ताः ।

३०—५, कृत्स्नेऽपि—समस्तेऽपि ।

३०—५, श्वेतिते—धवलीकृते ।

३०—६, विशदरुचा—निर्मलया ।

३०—५, मूर्च्छेव—चूलिकामेण ।

३०—६, उत्तुंगभावात्—अत्युच्चैःस्वरूपतः ।

३०—६, कनकशिखरिणं—मेरुपर्वतं ।

३०—६, स्पृष्टसौधर्मधाम्ना—स्पर्शितं सौधर्मस्वर्गस्य भूभागं येन संख्यया लक्षयोजनमात्रगणनया ।

३०—७, अविदुः—जानन्तिस्म ।

३०—७, पंचमं चार्णवानां—समुद्राणां मध्ये पंचमं क्षीरसमुद्रमित्यर्थः नालिकेरजलेन धवलितं शातं कनकशिख-

रिखं क्षीरार्णवमिति सुरपरिवृढा जातशंका इव जानन्तिस्म, कथंभूतं कनकपर्वतं? यस्य मूर्ध्ना चूलिकाग्रेण। किं विशिष्टेन स्पृष्टसौधर्मधाम्ना तं कनकशिखरिणं क्षीर-समुद्रोपमं जानन्ति स्मेति सम्बन्धः।

२०—८, प्रोद्यद्राकेत्यादि—प्रोद्यन् उदितः राकामृगाङ्कः पूर्णिमायाश्चन्द्रः
२०—६, (चन्द्रकान्तेत्यादि—) चन्द्रकान्तोपलविमलजलं तस्य आसार-पूरप्रवाहैः वर्षापूरप्रवाहैः।

२०—१३,—धुर्यो—प्रधानः।

२०—१४, विश्वां—समस्तां।

" एनां—विद्यमानां।

" व्यश्नुवानः—व्याप्नुवन् रक्षन्तु, एनः शान्तये, नः अस्माकं।

२०—१५ क्षपितजगदघः—निर्णाशितं जगतः अघं पापं येन स तथोक्तः

२१—१० दक्षेत्यादि—दक्षो नामा राजा तस्य मखमथनं यज्ञविध्वंसनं तत्कालसमयोद्भूतं।

२१—११, निजामोदेत्यादि—निजामोदेन निजपरिमलेन दिग्धानि लिप्तानि पुष्टिं नीतानि दिग्रमणीयानां दिग्वधूनां घ्राणविवराणि नासारंध्राणि यैः (येन)।

२१—१२, पारदेनेव—सूतकेनेव।

२१—१२, राजतान्—रजतेन रूप्येन निर्वर्तान् पारदेन रंजितान् श्वेतानि-त्यर्थः अपि समुच्चये।

२१—१३, शातकुंभकुंभान्—हेमकुंभान्।

२१-१२, संपादयता—ददता।

२१-१३, हैयंगवीनेन—घृतेन।

३१-१४, घृताब्धिरित्यादि—घृताब्धेः घृतस्य शातकुंभानां घृतस्य हेमकुंभास्ते च ते पृथुकुंभा विस्तीर्ण-कलशास्तेषां कोट्यः तासां घटा घटनं येभ्यो देवेभ्यस्तैः।

३१-१५, पटभुजेत्यादि—पटूनां दक्षानां स्वभुजानां वर्तनं अन्योन्य-हस्तान् हविक्रया संचरणस्तेन घटितो विरचितो नाटकस्याटोप उत्कट आडम्बरो यैः।

३१-१७, क्षपाटपतिभिः—क्षपायां रात्रावटनं गमनं येषां ते क्षपाटाः अष्टधाव्यन्तरदेवानां षष्ठजातिसम्बन्धिनो राक्षसाख्या व्यन्तरदेवाः, अनेनोपलक्षणेन सर्वे व्यन्तरेन्द्रा ग्राह्यास्तन्मुख्यत्वेन शते-न्द्रा वा तैः।

३१-१७, सदाप्युपचितं—अनवरतपूजितं।

३१—२२, अतिक्रान्तेत्यादि—अतिक्रान्तो निराकृतो राजहंसस्यांशानां गात्राणां श्वेतिम्नः शुक्लत्वस्यारामः समूहो यैस्तैरेव रमणीयकैः मनोनयनयाः सुखो-त्पादकैः।

३२-२, मानसरयान्—मानसवेगान्।

३२-२, स्वकरैः—स्वकीयैः करैः।

३२-२, करेभ्यः—अन्येषां देवानां करेभ्यः सकाशादानीय।

३२-२, अभिषिक्तपूर्वः—यो भगवान् पूर्वमभिषिक्तः।

३२-३, शारदेत्यादि—शारदीयैः शरत्कालीयैः शरधवलाम्बुधरैः प्रचुरैः शुक्लैरंबुधरैरभिरामे व्योमान्तराले विलसच्छो-भमानं चन्द्रबिम्बं तद्वदीद्धः शुक्लाभ्रः निर्मल इत्यर्थः।

३२-४, दुग्धाब्धिरित्यादि—दुग्धाब्धेः भूरिलवारिणा परितः सर्वतः आलिंगिता मूर्तिर्यस्य।

३२-४, कार्तस्वराचलतटे—सुवर्णाचलतटे।

३२-४, विलसन्—संप्राप्ततीर्थंकरत्वेन शोभमानः।

३२-५-७८, कुंभाम्भोदाः—कुंभसदृशा मेघाः

क्षीरवारि—क्षीरार्णवजलं।

क्षरन्ति—वर्षन्ति।

प्राहिणोत्—प्रस्थापितवान्।

आगात्—आयाता।

विदधत्—अहमभिषेककर्ता कुर्वन् सन्।

३२-६-७६, सर्वप्रसिद्धा—सर्वजनप्रसिद्धा।

सपदि—साम्प्रतं।

सुरसरित्—आकाशगंगा।

किंस्वित्—आहोस्वित्।

अत्रावतीर्णा—अत्राभिषेकसमये उत्तीर्यायाता।

सकलं—सर्वलक्षणलक्षितविग्रहं।

ज्योत्स्नया—जात्यपेक्षयैकवचनं तस्माद्रश्मिभिरित्यर्थः।

पीयूषं—अमृतं।

ऐरावतकरप्रबुलं—ऐरावतगजपुष्कर इवायतं।

इत्याक्षिप्तः—इत्युक्तप्रकारेण वितर्कितः।

३२-१३-८०, विदधत्—कुर्वन्।

पंचमेन—पंचमेन क्षीरसमुद्रेण।

स्वच्छायेत्यादि—स्वच्छाया एवाच्छाच्छहासैरतिनिर्मलहासैः।

अलं—अत्यर्थं, अरि मोहनीयं कर्म, रजः ज्ञानावरणाद्यं कर्म, रहस्यं अन्तरायकर्म।

३२-२२, निजवीर्येत्यादि—निजवीर्यमाधुर्याभ्यां निर्जितामृतस्य गर्विता तस्मात्लब्धस्तब्धभावेन।

३२-१-८१, शुद्धेत्यादि—शुद्धो निर्मलः इद्धः परिपूर्णो निष्करणो-र्तीन्द्रियः क्रमकरणरहितस्चासौ केवलाव-बोधश्चैतेन कृत्वा प्रबुद्धं भुवनत्रयं यस्मात्।

वर्धिताश्चर्येत्यादि—वर्धितान्याश्चर्यात्मकानि कार्याणि य-स्मिंश्चासौ विधिश्च तत्र धुर्यं प्रधानं।

३२-३-८२, शुभतमेत्यादि—शुभतमपरमाणुभ्यः उद्भूतः संजातो निर्धौ-तदेहो धातुवर्जितत्वात् निर्मलो देहस्त-स्मात् प्रभवा बहला बहुतरा भास्वरः स्वद्रव्यलेश्यायाः स्वशरीलेश्यायाः (या) वैशेषोऽतिशयो यस्य।

विधुधवलेत्यादि—विधुवद्धवला शुक्ला विसर्पंती विस्फुरती भावलेश्या वद्दर्पदर्शं निर्मलं।

अहमीहे—अहं वाञ्छे वाञ्छितार्थो भवामि।

३३—२०, अपनुदंतु—अपाकरोतु निराकरोदित्यर्थः ?

कुर्महे—वयं विदध्महे वर्तयाम इत्यर्थः।

३४—११—८७, काष्टेत्यादि—काष्टानां पापात्मानां अशेषकषायवैरिणां विजय एव श्रीः सैव गोमिनी भूमिः स्थानं तस्याः संगमं।

संसारज्वरेत्यादि—संसार एव ज्वरस्तस्माद्भवस्तापस्तस्य सन्ततिः सन्तानमेव रुजो व्याधयस्तासां रुजामुत्सादनं निर्मलतो निर्घाटनं इच्छवः वाञ्छोपयुक्ता वयं।

३५—१७—८८, शुभाख्याः—शुभनामानः।

व्याजं—मिषान्तरं मदीयः स्नपनकं महाभिषेकेऽयाग-न्संप्राप्ताः।

नित्यनिक्षेपयोग्यैः—नित्याभिषेकयोग्यैः।

३५—१, निर्निक्तेत्यादि—निर्निक्तं सुवर्णस्य शुद्धसुवर्णस्य रेणुयमानं रेणुमयं कञ्जं च कमलं तस्य किञ्जल्कं पुष्प-रजःसमूहेन पिञ्जरितैः।

३५—२,विजितेत्यादि—विजितानि विलसद्विलासिनीनां विलोलानि कदा-चिच्चपैरनिशोभमानानि विलोचनानि विशि-ष्टनेत्राणि यैर्नीलतीरजदलैर्नीलकमलदलैस्तैः परिपूरितं सकलजनानां घ्राणविवरं नासारंध्रं ये पु बन्धुरं मनोज्ञं सौगंध्यं येषु च तैः कलशैः।

३५—३—८६, अन्धीकृतालिभिः—अस्यामोदास्वादनेन अन्यत्र गम-नाभावादन्धीभूतैर्मधुकरैः।

विजितेत्यादि—विजितो निर्जितो दिग्द्विपानां दिग्गजानां गन्धो यैः।

+गन्धद्रव्यसंभारेत्यादि—सुगन्धद्रव्याणां संभारस्य संघातस्य सम्बधेन संयोगेन बन्धुरं।

+समदसामजाः—मदो सुराः सामजा गजाः।

३५—६—६०, श्रद्धालो—श्रद्धापरे देवेन्द्र इति सम्बन्धः।

चलिताचलेश्वरतटे—चलिते मेरुशिखरे।

उद्दण्डपादाहते—अतिवीर्योपयुक्ताभ्यां पादाभ्यामाहते सति।

भ्रमुः—भ्रमन्तिस्म।

विमानपतयः—देवाः।

दीप्ताखिलाशाः—दीप्राः प्रकाशिता अखिला आशा यैर्भुजैः, सौधर्मस्य नर्तनावसरे भुजैः समस्तै भुरिति सम्बन्धः।

यस्य —नृत्यवतो देवेन्द्रस्य।

उच्छ्वासेत्यादि—उच्छ्वास एव समीरो वायुस्तस्माद्दूरे विलुठन्ति दूरोत्सारितानि भवन्ति कूटानि शिखराणि यस्मात्स तथोक्तस्तस्य।

देवेन्द्रे—पूर्वविशेषणविशिष्टे सौधर्मेन्द्रे।

नटति—नृत्यं कुर्वति सति।

स्फुटं—प्रव्यक्तं यथा भवति।

अंहोमलक्षालनैः—पापमलक्षालनैः।

उत्तमाङ्गं—मस्तकं अथवोत्तमाङ्गं शरीरं अन्वर्थजां अयमुत्तमाङ्ग इति सार्थकं नाम, नः अस्माकं,।

तं प्रति—तं जिनेन्द्रं प्रति।

चमरीरुहाद्यैः—चामरघंटामंगलद्रव्यैः।

पाथोभिः—तोयैः।

भजतां—सेवातत्परभव्यानां।

निरर्गलवृत्तिप्रत्यूहः—दुर्निवार्यवृत्तिविघ्नं।

कुमार्गव्यूहः—मिथ्यामार्ग एव व्यूहः संग्रामभूमौ विरचितसैन्यरचनाविशेषः।

अथैकादशपूजाविधानं—

३५—१४—११, सकललोकसंधारिणा—प्राणधारणायाः साधारणसामर्थ्यात सकललोकान् संधारयति तत्तथोक्तं तेन।

कनत्कनकरेणुना—कनककमलकिञ्जल्कसंयुक्तत्वात्कुङ्कुमवर्णस्येव रेणवो यथा।

क्षपितपापदूरेणुना—जिनेन्द्रचरणाग्रे सम्पादनोपयोग्येन पापापायसम्भवात् क्षपिता विनाशिताः पापमेव दुष्टा रेणवो यस्मात्तथोक्तं।

धारये—जिनेन्द्रचरणौ धाराविषयी कृत्वा धारयामि।

३६—१—६३, लक्ष्मीकटाक्षललितैः—लक्ष्मीकटाक्षविक्षेपा इव ललितैः सरोजैः।

क्षतमलैः—तुषरहितैः।

अमलाक्षताङ्गैः—अमलानि निर्मलानि अक्षतानि अखंडानि सम्पूर्णानि अंगानि येषां तैः।

३६—१२—६५, प्रथिता—निक्षिप्ता।

हारिसारं—यानि हारीणि मनोज्ञानि वस्तूनि तेषु सारं।

३६—१२—६६, मसृणेत्यादि—मसृणा स्निग्धा धवला दीर्घाः स्थूलाः कर्पूरस्य पाल्यः कलिकाश्च ताः ज्वलिताः प्रदीप्तास्तासां बिमला दीप्तयः प्रभास्ता एव व्याप्ता प्रबोधिता दीप्तास्तेजस्काः प्रदीपास्तैः।

परिकरितशरीरैः—परिवेष्टितशरीरैः।

३६—२२—६७, स्थगितसकलदिक्कैः—धूमस्तोमेन नमिता आस्थ्या-दिवा ? सकला दिशा यैः।

दिग्गजोद्दीपनैः—दिग्गजानां कामोद्दीपनसमर्थैः।

३६—५—६८, सातकुंभद्युतिभिः—सुवर्णवर्णाच.............

आम्रभेदैः—आम्रसमूहैः।

अनाम्लैः—अम्लत्वरहितैः सुस्वादैरित्यर्थः।

चंचरीकच्छविभिः—कृष्णवर्णैः।

अभ्यासोप.....अभ्याससमीपमुपनीतैः।

ताला—तालव्यजनं।

अन्दकः—दर्पणः।

३७-६-६६, विश्वैः—समस्तैः विधिक्रमः।

श्रीगुणभद्रदेवेत्यादि—श्रीरन्तरङ्गबहिरङ्गतपोलक्षणा श्रीस्तयोपलक्षिता श्रीः, गुणभद्रो गुणैर्व्यवहारनिश्चयात्मकरत्नत्रयस्वरूपैः गुणैर्भद्रः शोभमानः स चासौ देवः, अथवा श्रीगुणभद्रदेवाभिधानो ग्रंथकर्ता स चासौ गणभृदाचार्यस्तेन पूज्ये चरणकमले यस्य, क्रमैः अभिषेकाविधानक्रमैः।

त्रिःपातये—त्रीन् वारान् पातये सम्पादये।

\+ \+ \+ \+

प्राहुर्नित्यमहः—जिनावासे स्वगेहे वा प्रत्यहं यथावसरं महामंत्रपूर्वकं महास्नानलघुस्नानविधानाभ्यां चोचतोयेक्षुरसाज्यक्षीरदधिभिर्जिनेन्द्रार्चामभिषिच्याक्षतंतन्दुलाद्यैः समभ्यर्च्य च शक्तितो यथायोग्यपात्रसन्तर्पणं क्रियते स नित्यमहः १

चतुर्मुखमहः—नृपैर्मुकुटबद्धैश्चतुर्मुखमंडपे यो महामहो विधीयते स चतुर्मुखमहः। २

कल्पद्रुमाष्टाह्निकौ—कल्पवृक्ष इव जगदाशासंतर्पणमुख्यत्वेन चक्रधराधीश्वरैर्जिनेन्द्रस्यानेकविधं रत्नसुवर्णाद्यैर्यदर्चनं क्रियतेऽसौ महः कल्पद्रुमाह्वः ३ त्रिषु नन्दीश्वरेष्वष्टम्याद्यष्टदिनपर्यन्तं सुरेन्द्रैर्निर्मितभव्यसमूहैर्जिनेन्द्रार्चना क्रियते स भवत्यष्टाह्निको महः। ४ इत्येतौ द्वौ।

दिव्येन्द्रध्वजः—संभूयेन्द्रप्रतीन्द्राद्यैः पंचसु कल्याणेष्वन्यत्रा-
कृत्रिमजिनभवनेषु वा महामहोत्सवेन अर्ह-
त्परमेश्वरस्यार्चनं प्रकर्षेण सम्पाद्यते स
दिव्येन्द्रध्वजलक्षणो महः।

इत्यमून्—इत्यनुक्तस्वरूपान्।

बहुविधस्वान्तर्भेदात्—नानाविधस्वकीयान्तर्भेदान्, यत् यस्यां
पूजायां, इत्येतान् भेदानाहुः।

बुधाः—शास्त्रनिपुणाः।

इत्यन्वहं—इत्येवं प्रत्यहं।

कृतमहभिषवः—कृतो निर्वर्तितो महाभिषवो येन स तथोक्तः।

शरण्यं—संसारत्रासाच्छरणयोग्यं।

सुमनसः—देवाः।

इति महाभिषेकः।

अथ शान्तिमंत्राभिषेको (कः) शीतोदकप्रदानेन शीताः शीताः आपः, शिवं मोक्षसौख्यं, मांगल्यं मलं पापं तेन रहितत्वान्मांगल्यं, श्रीमत् अनन्तचतुष्टयाद्यनन्तगुणलक्षणा श्रीः सा विद्यते यस्य तच्छ्रीमान् अवतात् पातु, वः युष्माकं भव्यानां पुण्याः पांत्वितिमांत्रिकप्रयोगः, अथवा पुण्या इति स पुण्याः आपः पांतु। शेषं सुगमं।

ज्ञात्वेवं सूत्रिता सम्यङ्मंत्रपदार्थधारिणः।
प्रकुर्वन्ति जिनेन्द्रार्चां ते यान्ति परमं पदम्॥ १॥

इतीन्द्रश्रीपंडितवामदेवविरचिता महाभिषेकस्य
विषमपदपञ्जिका समाप्ता।

सं० १५३६ फाल्गुणसितपूर्णिमायां श्रीहस्तिकान्तस्थितेन कोविद-घनकरेण लिखितं श्रेयर्थम्।

शुभम्।

मुद्रक—बाबू कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारीबाजार, आगरा।